सामान्य मनोविज्ञान की रूप-रेखा

चतुर्दश संस्करण

(संशोधित एवं परिवर्द्धित)

लेखकगण

डॉ० राज राजेश्वरी प्रसाद सिन्हा,
एम० ए० (पटना), पी०-एच० डी०, (राँची विश्वविद्यालय) बी० एल० (राँची)
रीडर तथा अध्यक्ष
मनोविज्ञान विभाग, राँची कॉलेज (राँची विश्वविद्यालय), राँची

डॉ० विमल प्रसाद राय, एम० ए० (पटना)
पी०-एच० डी० (बिहार विश्वविद्यालय)
वरीय मनोवैज्ञानिक, दिल्ली आरक्षी, दिल्ली

और

श्री अवधेश कुमार, एम० ए०, एम-एड० (पटना)
शिक्षा पदाधिकारी, धनबाद

१९७२ ई०]

[मूल्य ७ ५० रुपये

प्रकाशिकाएँ
श्रीमती शलेश्वरी देवी
तथा
श्रीमती रामप्यारी देवी
पटना

प्रथम संस्करण अगस्त १९५८
चतुर्थ संस्करण मार्च १९७२

सेलिंग एजेन्टस
भारती भवन (डिस्ट्रीब्यूटर्स)
गोविन्द मित्रा रोड पटना—४

मुद्रक
जयहिन्द प्रेस लंगरटोली पटना ४

प्रस्तावना

मनोविज्ञान पर अब भी राष्ट्रभाषा मे अच्छी पुस्तको का अभाव है। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए 'सामान्य मनोविज्ञान की रूप-रेखा' की रचना कर मेरे तीन योग्य विद्यार्थियो ने अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया है, इसके लिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

यह पुस्तक अत्यन्त ही सरल भाषा मे लिखी गयी है। मनोवैज्ञानिक समस्याओ की व्याख्या आलोचनात्मक एव सुव्यवस्थित ढग से की गयी है। दैनिक जीवन से सम्बद्ध उपयुक्त उदाहरणो से यह पुस्तक परिपूर्ण है।

आवश्यकतानुसार प्रयोगात्मक उदाहरणो का उल्लेख इस पुस्तक की एक प्रमुख विशेषता है।

अत मेरा विश्वास है कि भारतीय विश्वविद्यालयो के आधार पर, विशेषकर प्रारम्भिक छात्रो के लिए लिखी गयी यह पुस्तक उच्चवर्गीय विद्यालयो के लिए भी लाभप्रद होगी।

आशा है, पाठकगण तथा मनोविज्ञान के शिक्षक इन लेखको को प्रोत्साहित कर इन्हें इस विषय पर और भी इसी प्रकार की अच्छी पुस्तकें लिखने की प्रेरणा देंगे।

एम० ए० (पटना), एम० एस-सी, पी-एच० डी० (मिचिगन)
अध्यक्ष मनोविज्ञान-विभाग, पटना कॉलेज
पटना विश्वविद्यालय, पटना।

अपनी बातें

(प्रथम संस्करण)

शिक्षण के गत कुछ वर्षों के अनुभव से यह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान पर हिन्दी में समुचित रूप से लिखी गयी पुस्तकों के अभाव में इस विषय में दी गयी आई ए० की शिक्षा के उपरान्त भी विद्यार्थियों को मनोविज्ञान की मूलभूत बातों का यथोचित ज्ञान नहीं हो पाता। फलत: बी० ए० की कक्षा में वे इस विज्ञान का अध्ययन करते समय पर्याप्त कठिनाइयों का अनुभव करते पाये जाते हैं। विद्यार्थियों की इन कठिनाइयों को देखकर ही हमें इस पुस्तक की रचना करने की आकांक्षा जगी।

विद्यार्थियों की सुविधा एवं लाभ के लिए इस पुस्तक को लिखते समय भाषा की सरलता एवं सुगमता के साथ-साथ विषय की रोचकता पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है। यह सब ख्याल रखा गया है कि विद्यार्थी विषय को भलीभाँति समझ सकें।

चित्रों तालिकाओं दैनिक जीवन से संबद्ध उदाहरणों तथा प्रयोगों के विवरण द्वारा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को उपयुक्त ढंग से समझाने का प्रयत्न किया गया है। अस्तु, हमारा दृढ़ विश्वास है कि मनोविज्ञान के आलोच्य विषय को पूर्ण रूपेण समझने तथा अधिक समय तक याद रखने में यह पुस्तक विद्यार्थियों के निमित्त अत्यन्त ही सहायक होगी।

पारिभाषिक शब्दों के व्यवहारों में पूरी सावधानी बरती गयी है। सुविधा के लिए अंगरेजी के पारिभाषिक शब्दों को यथास्थान कोष्ठक में दिया गया है। इसी लिए पारिभाषिक शब्दों की कोई अलग से सूची नहीं दी गयी है। प्रयोगात्मक उदाहरणों का विस्तृत उल्लेख विशेषकर बी० ए० के विद्यार्थियों के लिए ही किया गया है। आशा है यह उनके लिए पूर्णत: उपयोगी सिद्ध होगा। प्रयोग (Experiment) क्या है, यह कैसे किया जाता है आदि बातों का उल्लेख संक्षेप में इसलिये किया गया है कि विद्यार्थियों को बी ए की कक्षा में पहुँचने पर विस्तृत प्रयोगात्मक अध्ययन करने में सुविधा प्राप्त हो।

परन्तु यह पुस्तक विशेष रूप से भारतीय विश्वविद्यालयों के मनोविज्ञान के प्रारम्भिक छात्रों को ध्यान में रखकर ही लिखी गयी है। फलस्वरूप यहाँ मूलभूत बातों को ही अत्यधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है।

इस पुस्तक की सबसे बडी विशेषता यह है कि मनोविज्ञान तथा दर्शन-शास्त्र के प्रमुख विशेषज्ञो,—जैसे, डॉ० विमलेश्वर दे, अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग, लगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर, डॉ० आनन्दी हजारी, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, लगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर, डॉ० एस० एम० मुहसिन, निदेशक, शिक्षा एवं व्यावसायिक मार्ग-दर्शन कार्यालय, बिहार सरकार, पटना, प्रिंसिपल गया प्रसाद सिंह, रामदयालु सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर, डॉ० सुखदेव सिंह शर्मा, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, दर्शन-विभाग लगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर, श्री विश्वनाथ सिंह, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, लगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर, तथा प्रोफेसर शारदा सिन्हा, अध्यक्षा, मगध महिला कॉलेज, पटना—ने इस पुस्तक की बहुत प्रशसा की है, जो इनके द्वारा इस पुस्तक के सम्बन्ध मे दी गयी सम्मतियो से ही स्पष्ट होगा। अपना बहुमूल्य समय देकर इस पुस्तक की प्रतिलिपि पढकर इसके बारे मे अपनी सम्मति देने का जो कष्ट इन लोगो ने किया है, इसके लिए हम इनके सदा कृतज्ञ रहेंगे।

मनोविज्ञान के अन्य विशेषज्ञो से हमारा अनुरोध है कि पुस्तक पढने पर यदि वे इसमे कुछ आवश्यक सशोधन की आवश्यकता का अनुभव करें तो कृपया अवश्य हमे सूचित करें ताकि हम इस पुस्तक के अगले सस्करण मे उनके सुझावो का उपयोग कर सके।

पुस्तक का मुद्रण कम समय मे होने के कारण जगह-जगह इसमे कुछ मुद्रण-सम्बन्धी त्रुटियाँ रह गयी हैं जिन्हें पढते समय पाठकगण सुधार लेने का कष्ट करेंगे। फिर भी, यथासम्भव पुस्तक के अन्त मे शुद्धिपत्र दे दिया गया है।

हमारे श्रद्धेय गुरुवर डॉ० अवध किशोर प्रसाद सिंह, एम० ए० (पटना), एम०एस-सी०, पी-एच० डी० (मिचिगन), अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग, पटना कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय ने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर हमारे ऊपर जो कृपा की है, उसके लिए हम उनका हृदय से आभार मानते है।

हम अपने आदरणीय गुरुवर डॉ० विमलेश्वर दे, एम० ए० (पटना), पी० एच० डी० (लदन), अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग, लगट सिंह कॉलेज (बिहार विश्वविद्यालय) के भी सदा ऋणी रहेंगे, जिन्होने इस पुस्तक के प्रणयन मे समय-समय पर अपने बहुमूल्य सुझावो द्वारा हमारा पथ-निर्देशन किया है।

श्रद्धेय डॉ० आनन्दी हजारी, एम० ए० (पटना), पी-एच० डी० (लदन), लगट सिंह कॉलेज की कृपा एव प्रोत्साहन का ही फल है कि प्रस्तुत पुस्तक का दृष्टिकोण इतना अधिक प्रयोगात्मक हो सका है। इसके लिए हम उनके अत्यन्त ही अनुगृहीत हैं।

श्री विश्वनाथ सिंह, असिस्टेस्ट प्रोफेसर, मनोविज्ञान-विभाग, लगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर ने इस पुस्तक के प्रणयन-काल मे समय-समय पर जो अपने सुझाव दे कर हमें अनुगृहीत किया है, इसके लिए हम सदा इनके आभारी रहेंगे।

अपने सहकारी प्रो० श्री वीरेन्द्र कुमार एवं श्री राजेश्वरी प्रसाद मधुकर भी हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

हम अपने मित्र श्री चन्द्रदेव नारायण सिन्हा के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने पुस्तक की भाषा को सरल बनाने में योग प्रदान किया है।

अन्त में हम अपने उन विद्यार्थियों के भी कम कृतज्ञ नहीं जिन्होंने अपना समय देकर इस पुस्तक की प्रेस-प्रतिलिपि तैयार की है तथा चित्रों के डिजाइन बनाये हैं। इसके लिए उन्हें हम धन्यवाद देते हैं।

मनोविज्ञान विभाग
लंगट सिंह कॉलेज मुजफ्फरपुर
(बिहार विश्वविद्यालय)
अगस्त १९५८

राज राजेश्वरी प्रसाद सिन्हा
विमल प्रसाद राय
और
अवधेश कुमार

दो शब्द

(द्वितीय संस्करण)

'सामान्य मनोविज्ञान की रूप-रेखा' के द्वितीय संस्करण को प्रस्तुत करते समय हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। पुस्तक की लोकप्रियता इसीसे सिद्ध है कि वर्ष भर के भीतर ही दूसरे संस्करण का प्रकाशन करना पड़ा। हमारे छात्रों ने इसे अत्यधिक अपनाकर इसकी उपादेयता की पुष्टि तो की ही है, अन्य प्रान्तों में भी इसकी माँग इतनी बढ़ गयी है कि पूर्ति की समस्या विकट रूप में हमारे सामने उपस्थित है। कागज के अभाव के फलस्वरूप कम ही प्रतियाँ छप पायी हैं। कागज के सुलभ होते ही हम इस कमी को दूर करने की पूर्ण चेष्टा करेंगे।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह संस्करण अपने यथोचित एवं परिवर्द्धित रूप में छात्रों एवं पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। 'मानस की अवस्थाएं' 'प्रेरणा' 'कल्पना और स्वप्न' इत्यादि अध्याय विशेषतः बी० ए० (दर्शन) के छात्रों के हेतु जोड़ दिये गये हैं।

पुस्तक सुबोध एवं सहजगम्य हो सके, एतदर्थ यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है। अगर कहीं असफलता रह गयी हो तो सूचना एवं सुझाव के लिए हम आभारी रहेंगे।

पुस्तक की सफलता का सारा श्रेय हमारे छात्रों तथा शुभचिन्तकों को है जिनकी सहायता के फलस्वरूप द्वितीय संस्करण का शीघ्र प्रकाशन सम्भव हो सका। कुछ अध्यायों की 'प्रतिलिपि' तथा 'प्रूफ' की शुद्धि के लिए हम अपने दो मित्रों श्री राजेश्वर प्रसाद 'मधुकर', एम० ए० डिप्-इन-स्पेशल-एड तथा श्री नागेन्द्र प्रसाद, एम० एस-सी०, प्राध्यापक रसायन-विभाग, लंगट सिंह कॉलेज के कृतज्ञ हैं। समयाभाव के कारण पुस्तक में यत्र-तत्र मुद्रण की त्रुटियाँ रह गयी हैं जिनके लिए हम हृदय से क्षमाप्रार्थी हैं। हिमाचल प्रेस पटना के संचालक श्री रजनी कान्त सिन्हा के प्रति भी हम कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं जिन्होंने पुस्तक के मुद्रण में विलक्षण धैर्य एवं अध्यवसाय का परिचय दिया है।

'रूप-रेखा' के इस संस्करण की प्रकाशिकाओं के प्रति आभार प्रकट किए बिना हमारे 'दो शब्द' अधूरे रह जायेंगे। पुस्तक की कलेवर-वृद्धि के कारण प्रकाशन-व्यय में पुष्कल वृद्धि होने पर भी, हमारे आग्रह पर पुस्तक का मूल्य उन्होंने केवल ५० पैसे बढ़ाया है।

अपने इस द्वितीय संस्करण में हमें कितने सफल हो पाये हैं इसका लेखा जोखा सहृदय पाठकों पर छोड़ देते हैं।

मुजफ्फरपुर,
जुलाई, १९५९

राज राजेश्वरी प्रसाद सिन्हा, विमल प्रसाद राय
और
अवधेश कुमार

(तृतीय संस्करण)

सबसे पहले हम पाठकों और प्राध्यापक साथियों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं जिनके सहयोग से पुस्तक का द्वितीय संस्करण दो तीन महीनो मे ही समाप्त हो गया। साथ साथ हम क्षमाप्रार्थी भी हैं क्योंकि पुस्तक के तृतीय संस्करण को प्रकाशित कराने म थोडी देर अवश्य हो गयी है जिसके कारण हमारे पुस्तक विक्रेताओ एव प्यारे छात्रों को निराश होना पड़ा है। इसका एकमात्र कारण कागज का न मिलना था। जो कुछ भी थोडा बहुत कागज इकट्ठा कर पाये हैं उन्हीं को लेकर यह तृतीय संस्करण प्रस्तुत है। देश के कोने-कोने से इस पुस्तक की जितनी माँग रही है उसे ध्यान में रखकर हमें अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि हम इस बार भी बहुत छोटी सी प्रतियाँ ही प्रकाशित करा पाये है परन्तु कागज के मिलते ही हम और अधिक प्रतियाँ यथाशीघ्र अवश्य प्रकाशित करायेंगे।

बिहार तथा पटना विश्वविद्यालयो के प्री यूनिवर्सिटी कोर्स के पत्रो (Papers) को ध्यान मे रखते हुए हमने इस पुस्तक को दो भागो में बाँट दिया है। साथ-साथ बी० ए (दर्शन शास्त्र) के छात्रो की आवश्यकताओ की विशेष बातें पुस्तक के तीसरे भाग मे दी गयी है। बिहार से बाहर के मनोविज्ञान के छात्रो की आवश्यकताए भी ध्यान में रखी गयी हैं। परन्तु अत्यधिक शीघ्रता के कारण पुस्तक के मुद्रण में कुछ भूलें रह गयी हैं। हमारे कुशल पाठकगण उन्हें यथासम्भव सुधार लेने की कृपा करें।

तृतीय संस्करण में भी हमने जो सुधार किये हैं, उन सुधारों का श्रेय विशेष कर हमारे विभाग के परम बन्धुवर श्री अजीमुर्रहमान तथा प्रो श्री वीरेन्द्र कुमार सिन्हा जी को है। इस पुस्तक में उनके इस सहयोग के लिए हम अत्यन्त आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त हम सभी मनोवैज्ञानिकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिनसे हमे किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त हुई है।

अन्त मे हम कालिका प्रेस के श्री ब्रह्मदेव प्रसाद श्री त्रिभुवन प्रसाद और अन्य कर्मचारियों तथा सर्वोदय प्रेस के उदय बाबू के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट किये बिना नही रह सकते जिनकी तत्परता का ही फल है कि इतने कम समय में यह संस्करण पाठको के सामने हम प्रस्तुत कर पा रहे है।

—राज राजेश्वरी प्रसाद सिन्हा, बिमल प्रसाद राय तथा अवधेश कुमार

(चतुर्थ संस्करण)

आज आपके समक्ष इस पुस्तक का चौथा संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण प्रस्तुत करते हुए हम बहुत ही हर्ष का अनुभव हो रहा है। हमारे प्रिय छात्रों तथा

शिक्षक बन्धुओ ने इस पुस्तक का स्वागत हृदय से किया है और यह इसी का परिणाम है कि दो वर्ष के बीच ही हम आज इस पुस्तक का चौथा संस्करण समुपस्थित कर पा रहे है। हम अपने छात्रो और शिक्षक बन्धुओ के प्रति हृदय से शुभकामनाएँ तथा आभार प्रकट करते है। हमे विश्वास है कि उनका यह सहयोग हमे इसी तरह सदा मिलता रहेगा।

प्राक्-विश्वविद्यालय वर्ग के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखते हुए इस पुस्तक मे कुछ अंश जोड भी दिये गये है और कुछ मे संशोधन भी किये गये है। ऐसा करने के समय पटना विश्वविद्यालय के त्रिवर्षीय स्नातक वर्ग प्रथम भाग के प्रथम पत्र के पाठ्यक्रम (Paper 1 of the Three Year Degree Course, Part, 1, Patna University) को भी ध्यान मे रखा गया है।

इस पुस्तक से जो अंश प्राक्-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो के लिए आवश्यक नही है, बल्कि विशेषकर डिग्री (Degree) के विद्यार्थियो के लिए ही उपयोगी है, उन्हे चिह्न देकर अलग कर दिया गया है। इन संशोधनो के करने मे जिन किन्ही व्यक्तियो की सहायता हमे मिली है उनके प्रति हम अपना आभार प्रकट करते है। विशेषकर हम अपने बन्धुवर प्रो० अजीमुर्रहमान, मनोविज्ञान-विभाग, लगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर (विश्वविद्यालय), के आभारी है।

इस पुस्तक के 'प्रूफ' की अशुद्धियो के सुधार मे हमे 'दी पटना वीकली नोट्स प्रेस' के श्री रवीन्द्र नारायण लाल, का भी सहयोग प्राप्त हुआ है। हम उनके कृतज्ञ हैं।

हम कालिका प्रेस, पटना-४ के श्री ब्रह्मदेव प्रसाद, रामेश्वर प्रसाद तथा श्री त्रिभुवन प्रसाद के प्रति भी अपना आभार प्रकट करते है जिन्होने इस संस्करण के मुद्रण मे हमारी भरपूर सहायता की है।

इस पुस्तक की प्रकाशिकाओ को हम धन्यवाद दिये बिना नही रह सकते जिन्होने इस पुस्तक से प्रकाशन का भार आज तक उठाया है।

अन्त मे हम अपने 'सोल एजेण्ट', भारती भवन, पटना-४ के श्री मोहित मोहन सोम के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते है जिनकी तत्परता और परिश्रम का ही फल है कि यह पुस्तक इतने ही कम दिनो मे भारत के अनेक विश्वविद्यालयो मे इतनी अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सकी है।

इस सम्बन्ध मे हम सेकेण्डरी बोर्ड ऑफ स्कूल एक्जामिनेशन (बिहार) बिहार विश्वविद्यालय एवं पटना विश्वविद्यालय के अधिकारी विद्वानो के प्रति भी अपना सहज हार्दिक आभार प्रकट करते हैं जिन्होने इस पुस्तक को माध्यमिक, प्राक् विश्वविद्यालय वर्ग, आई० ए० एवं बी० ए० (दर्शन) के पाठ्यक्रम के लिए स्वीकृत किया है।

आशा है, मनोविज्ञान के छात्र एवं शिक्षकगण इस संस्करण की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर अपने सुझावों से हमें अनुगृहीत करेंगे। यह संस्करण हमारे छात्रों को और भी अधिक सहायता कर सकेगा, यह हमारा ध्रुव विश्वास है।

—लेखकगण

(पंचम संस्करण)

यह हमारे प्रिय छात्रों शिक्षक बन्धुओं तथा गुरुजनों की कृपा का ही फल है कि आज हम इस पुस्तक का पंचम संस्करण प्रस्तुत करने में समर्थ हो पाये हैं। हमें इस बात का दुःख है कि कुछ कारणवश यह संस्करण समय से एक महीना देर से निकल रहा है। आशा है पाठकों को इससे जो असुविधा हुई है उसके लिए वे हमें क्षमा करेंगे।

यों तो इस संस्करण में आवश्यकतानुसार जहाँ-तहाँ संशोधन किये ही गए हैं परन्तु इसकी मुख्य विशेषता है कि त्रिवर्षीय स्नातक वर्ग द्वितीय भाग (Three Year Degree Course Part II) के मनोविज्ञान एवं दर्शन शास्त्र के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए, इसके कुछ अध्यायों में कुछ अंश जोड़ भी दिये गये हैं। प्राक विश्वविद्यालय (मनोविज्ञान) के पाठ्यक्रम में जो अंश नहीं है उन्हें " चिह्न लगाकर अलग कर दिया गया है अर्थात वे अंश सिर्फ त्रिवर्षीय स्नातक वर्ग द्वितीय भाग (मनोविज्ञान तथा दर्शन शास्त्र) के विद्यार्थियों के लिए ही हैं। इस पुस्तक का तीसरा भाग (Part III) तो सिर्फ दर्शन शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए ही है। पुस्तक का यह संस्करण अब हमारे प्राक विश्वविद्यालय (मनोविज्ञान) तथा त्रिवर्षीय स्नातक वर्ग द्वितीय भाग मनोविज्ञान एवं दर्शन शास्त्र दोनों के लिए ही उपयोगी होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

इस पुस्तक के संशोधन में हमें जिन लोगों का सहयोग मिला है उनके हम अत्यन्त ही आभारी हैं। साथ-साथ हम उन पुस्तकों के लेखकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकते जिनकी सहायता इस संस्करण के कुछ अध्यायों में नये अंश जोड़ने के हेतु ली गयी है।

इस संस्करण की मुद्रण त्रुटियों के लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं। आशा है, वे इन्हें सुधार लेने का कष्ट करेंगे।

हम सदा अपने पाठकों तथा शिक्षक बन्धुओं से इस बात की आशा रखते हैं कि वे हमारा ध्यान इस संस्करण की त्रुटियों की ओर आकृष्ट करेंगे तथा अपने सुझावों से हमें अवगत कराने का कष्ट करेंगे। हम हमेशा इसके लिए उनके आभारी होंगे।

अगस्त, १९६२ —लेखकगण

(षष्ठ संस्करण)

यह हमारे प्रिय छात्रों, शिक्षक बन्धुओं तथा गुरुजनों की कृपा का ही फल है कि आज हम पुस्तक का षष्ठ संस्करण प्रस्तुत करने में समर्थ हो पाये हैं।

इस संस्करण की मुद्रण-त्रुटियों के लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं। आशा है, वे इन्हें सुधार लेने का कष्ट करेंगे।

हम सदा अपने पाठकों तथा शिक्षक बन्धुओं से इस बात की आशा रखते हैं कि वे हमारा ध्यान इस संस्करण की त्रुटियों की ओर दिलायेंगे तथा अपने सुझाव से हमें अवगत कराने का कष्ट करेंगे। हम हमेशा इसके लिए उनके आभारी होंगे।

अक्टूबर, १९६१ —लेखकगण

*

आशा है, मनोविज्ञान के छात्र एवं शिक्षकगण इस संस्करण की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर अपने सुझावों से हमें अनुगृहीत करेंगे। यह संस्करण हमारे छात्रों को और भी अधिक सहायता कर सकेगा यह हमारा ध्रुव विश्वास है।

—लेखकगण

(पंचम संस्करण)

यह हमारे प्रिय छात्रों शिक्षक बन्धुओं तथा गुरुजनों की कृपा का ही फल है कि आज हम इस पुस्तक का पंचम संस्करण प्रस्तुत करने में समर्थ हो पाये हैं। हमें इस बात का दुःख है कि कुछ कारणवश यह संस्करण समय से एक महीना देर से निकल रहा है। आशा है पाठकों को इससे जो असुविधा हुई है उसके लिए वे हमें क्षमा करेंगे।

यों तो इस संस्करण में आवश्यकतानुसार जहाँ-तहाँ संशोधन किये ही गए हैं परन्तु इसकी मुख्य विशेषता है कि त्रिवर्षीय स्नातक वर्ग द्वितीय भाग (Three Year Degree Course Part II) के मनोविज्ञान एवं दर्शन-शास्त्र के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए इसके कुछ अध्यायों में कुछ अंश जोड़ भी दिए गये हैं। प्राक् विश्वविद्यालय (मनोविज्ञान) के पाठ्यक्रम में जो अंश नहीं हैं उन्हें "चिह्न लगाकर अलग कर दिया गया है, अर्थात्, वे अंश सिर्फ त्रिवर्षीय स्नातक वर्ग, द्वितीय भाग (मनोविज्ञान तथा दर्शन शास्त्र) के विद्यार्थियों के लिए ही हैं। इस पुस्तक का तीसरा भाग (Part III) तो सिर्फ दर्शन शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए ही है। पुस्तक का यह संस्करण अब हमारे प्राक् विश्वविद्यालय (मनोविज्ञान) तथा त्रिवर्षीय स्नातक वर्ग, द्वितीय भाग मनोविज्ञान एवं दर्शन शास्त्र दोनों के लिए ही उपयोगी होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

इस पुस्तक के संशोधन में हमें जिन लोगों का सहयोग मिला है उनके हम अत्यन्त ही आभारी हैं। साथ-साथ हम उन पुस्तकों के लेखकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकते जिनकी सहायता इस संस्करण के कुछ अध्यायों में नये अंश जोड़ने के हेतु ली गयी है।

इस संस्करण की मुद्रण त्रुटियों के लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं। आशा है वे इन्हें सुधार लेने का कष्ट करेंगे।

हम सदा अपने पाठकों तथा शिक्षक बन्धुओं से इस बात की आशा रखते हैं कि वे हमारा ध्यान इस संस्करण की त्रुटियों की ओर आकृष्ट करेंगे तथा अपने सुझावों से हमें अवगत कराने का कष्ट करेंगे। हम हमेशा इसके लिए उनके आभारी होंगे।

अगस्त, १९६२

(षष्ठ संस्करण)

यह हमारे प्रिय छात्रों, शिक्षक बन्धुओं तथा गुरुजनों की कृपा का ही फल है कि आज हम पुस्तक का षष्ठ संस्करण प्रस्तुत करने में समर्थ हो पाये हैं।

इस संस्करण की मुद्रण-त्रुटियों के लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं। आशा है, वे इन्हें सुधार लेने का कष्ट करेंगे।

हम सदा अपने पाठकों तथा शिक्षक बन्धुओं से इस बात की आशा रखते हैं कि वे हमारा ध्यान इस संस्करण की त्रुटियों की ओर दिलायेंगे तथा अपने सुझाव से हमें अवगत कराने का कष्ट करेंगे। हम हमेशा इसके लिए उनके आभारी होंगे।

अक्टूबर, १९६३

—लेखकगण

*

सम्मतियाँ

हिन्दी में मनोविज्ञान जैसे विषय पर लिखी गयी उपयुक्त पुस्तकों का अभाव वर्षों से चल रहा था। परन्तु यह अभाव बहुत अर्थों में 'सामान्य मनोविज्ञान' की रूप रेखा के प्रकाशन से जाता रहा यह मेरा विश्वास है।

मैंने इस पुस्तक के प्रणयन काल में इसकी प्रतिलिपि पढ़ी है। पढ़ने के सिल सिले में यथास्थान आवश्यकतानुसार मैंने अपनी राय भी दी है जिसका उपयोग इसके लेखकों ने किया है। सुबोध भाषा में मनोविज्ञान के जटिल सिद्धान्त बड़ी स्पष्टता के साथ वर्णित है। इस पुस्तक के प्रयोगात्मक दृष्टिकोण ने इसका मूल्य और बढ़ा दिया है, क्योंकि आजकल आरम्भ से ही मनोविज्ञान की पढ़ाई का दृष्टि कोण प्रयोगात्मक होना चाहिए।

पुस्तक में दिये गये दैनिक जीवन से सम्बद्ध उदाहरण तालिकाएं और चित्र अत्यन्त ही उपयुक्त है जो मनोविज्ञान के आलोच्य विषय को और भी अधिक रोचक एवं बोधगम्य बना देते है। मुझे आशा है इस पुस्तक से उच्च वर्ग के छात्रों को भी विशेष सहायता मिलेगी।

इस पुस्तक की रचना जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण से की गयी है उससे मैं सन्तुष्ट हूँ तथा अपने इन तीन योग्य शिष्यों एवं अपने विश्वविद्यालय के तीन सुयोग्य तथा अनुभवी प्राध्यापकों की शुभकामनाएं मैं अपने हृदय से करता हू।

और मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं पर भी इसी प्रकार की श्रेष्ठ पुस्तक लिखकर मनोविज्ञान के विद्यार्थियों की सहायता करेंगे।

अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग —विमलेश्वर दे
लगट सिंह कॉलेज मुजफ्फरपुर एम० ए० (पटना) पी एच० डी० (लन्दन)
(बिहार विश्वविद्यालय)

हिन्दी में इस विषय पर पुस्तकों का अभाव नहीं है परन्तु अत्यन्त ही सरल भाषा में प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से लिखी गयी यह पुस्तक अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है जो इसे इस विषय पर अभी तक उपलब्ध हिन्दी की सभी पुस्तकों से श्रेष्ठ बना देती है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रारम्भिक छात्रों के लिए लिखी गयी यह पुस्तक उच्च वर्गों के छात्रों के लिए भी बहुत ही उपयोगी होगी।

निर्देशक
शिक्षा एवं व्यावसायिक मार्ग-दर्शन
कार्यालय, बिहार सरकार, पटना

एम. एम. नुरुद्दिन.
१३.७.६२.

एम० ए० (पटना), पी-एच०डी० (एडिनबरा)

आशा है, मनोविज्ञान के छात्र तो इससे लाभान्वित होंगे ही साथ साथ दर्शन शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए भी यह पुस्तक अत्यन्त ही उपयोगी होगी।

प्रिंसिपल रामदयालु सिंह कॉलेज
मुजफ्फरपुर
(बिहार विश्वविद्यालय)

एम० ए० (पटना)

•

सामान्य मनोविज्ञान की रूप रेखा मुझे आद्योपान्त पढ़ने का अवसर मिला। पढ़ने पर मुझे ऐसा लगा कि यदि हमारे दर्शन शास्त्र के छात्र भी इसे पढ़ें तो उन्हें काफी लाभ होगा। इस पुस्तक में मनोविज्ञान के क्षेत्र में किये गये नवीनतम प्रयोगों का भी उल्लेख जमा किया है। भाषा और पाठ्य सामग्री दोनों ही दृष्टिकोण से यह पुस्तक श्रेष्ठ है।

समस्त भारत मे यह पुस्तक अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी ऐसा मेरा प्रबल विश्वास है।

असिस्टेंट प्रोफेसर दर्शन विभाग
लगटसिंह कालेज
मुजफ्फरपुर

एम० ए (पटना) पी एच डी (डरहम)

•

इस पुस्तक के प्रणयन-काल मे ही मुझ इसकी प्रतिलिपि को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि इसके लेखकों ने मेरे सुझावों का उपयोग यथास्थान इस पुस्तक में किया है। यों तो सामान्य मनोविज्ञान पर बहुत सी पुस्तकें लिखी गयी हैं परन्तु सामान्य मनोविज्ञान की रूप रेखा पढ़ने से मैं इस निश्चय पर पहुचा कि अत्यन्त ही सरल भाषा में प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से लिखी गयी यह पुस्तक आई ए० तथा उच्च वर्गों के छात्रों के लिए भी उपयोगी होगी।

मैं इन लेखकों को उनकी इस सफलता पर हार्दिक बधाई देता हु।

असिस्टेंट प्रोफेसर मनोविज्ञान विभाग
लगट सिंह कॉलेज मुजफ्फरपुर

एम० ए (पटना)

'सामान्य मनोविज्ञान की रूप-रेखा' को पढ़ने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि यह पुस्तक अत्यन्त ही सरल भाषा मे प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से लिखी गयी है। इसपर यो तो अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं, पर यह उन सभी मे सर्वश्रेष्ठ है। मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि मनोविज्ञान के छात्रो के लिए लिखी गयी यह पुस्तक दर्शन-शास्त्र के विद्यार्थियो के लिए भी अत्यधिक उपयोगी है।

अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग
मगध महिला कॉलेज, पटना
(पटना विश्वविद्यालय)

एम० ए० (द्वय), पटना

सातवाँ अध्याय—ध्यान

आठवाँ अध्याय—भाव

नवाँ अध्याय—संवेग

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

भूमिका—शाब्दिक अर्थ—आत्मा का विज्ञान तथा इसकी आलोचना—मन का विज्ञान तथा इसकी आलोचना—पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना—चेतन अनुभूति का विज्ञान तथा इसकी आलोचना—व्यवहार का विज्ञान तथा इसकी त्रुटियाँ—व्यवहार तथा अनुभूति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध—मनोविज्ञान की एक उपयुक्त परिभाषा एवं उसका विश्लेषण— मनोविज्ञान की एक दूसरी परिभाषा।

क्या मनोविज्ञान एक विज्ञान है?—विज्ञान के तीन प्रमुख कार्य, विज्ञान की विशेषताएँ तथा मनोविज्ञान मे इन विशेषताओ का समावेश।

आज के इस वैज्ञानिक युग मे मनोविज्ञान एक सर्वमान्य स्थान ग्रहण कर चुका है। इसकी उपयोगिता जीवन के प्राय प्रत्येक क्षेत्र मे प्रमाणित हो चुकी है। कला, साहित्य, शिक्षा, कारखाने, सैनिक सगठन, मानसिक रोगो की चिकित्सा, अपराध और न्याय, बाल-जीवन, किशोरावस्था तथा मनुष्य के प्रत्येक वैयक्तिक और सामाजिक पहलुओ मे मनोविज्ञान ने अनुसन्धान एव मार्ग-प्रदर्शन किया है। इतना ही नही, आज पशु-पक्षियो के व्यवहारो और उनकी अनुभूतियो का भी अध्ययन मनोवैज्ञानिक करने लगे है। कुछ ऐसे भी अन्वेषक हैं जो भूत-प्रेतो के व्यवहारो एव अनुभूतियो तथा आत्मा की अन्य अलक्ष्य क्रियाओ का भी अध्ययन करने मे अभिरुचि रखते है।

मनोविज्ञान का सम्बन्ध प्राणियो की प्रकृति (Nature) के वैज्ञानिक अध्ययन से है, परन्तु इसका सबसे अधिक सम्बन्ध मनुष्यो के व्यवहारो एव उनकी अनुभूतियो का अध्ययन करने से है। मनुष्य किसी कार्य को कैसे (How) करता है, क्या (What) करता है एव क्यो (Why) करता है, इन विषयो का अध्ययन करना मनोविज्ञान का उद्देश्य है। मनोविज्ञान इस बात का विश्लेषण करने का प्रयास करता है कि व्यक्ति किस प्रकार किसी वस्तु पर ध्यान देता है, सोचता है, समझता है, सीखता है तथा उसमे किस प्रकार कल्पना, स्मरण एव विस्मृति इत्यादि की क्रियाएँ होती है—तथा अपने प्राप्त अनुभवो मे व्यक्ति के अन्दर कैसी अनुभूतियाँ, कैसे भाव (Feeling) अथवा सवेग उत्पन्न होते हैं तथा वह अपने वातावरण से कैसे अपना अभियोजन करने के लिए किस प्रकार की क्रियाएँ करता है आदि।

शाब्दिक अर्थ—मनोविज्ञान शब्द सुनने से ऐसे लगता है कि जैसे यह मन का विज्ञान हो परन्तु यदि Psychology शब्द की उत्पत्ति पर विचार किया जाय तो पाया जायगा कि Psychology शब्द लैटिन भाषा के दो शब्दों के मेल से बना हुआ है।

Psyche + Logos = Psychology

Psyche का अर्थ आत्मा (Soul) से है तथा Logos का अर्थ है विचार विमर्श करना (To talk or discuss)।

अर्थात् आत्मा + विचार विमर्श = मनोविज्ञान।

अर्थात् Psychology का अर्थ हुआ आत्मा के विषय में बातचीत अथवा विचार विमर्श (Talk about the soul)। शाब्दिक बनावट के अनुसार मनोविज्ञान का यह अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

Psychology के विकास के आरम्भिक दिनों में अब मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र का भाग माना जाता था दार्शनिकों ने इसे आत्मा का विज्ञान (Science of Soul) की संज्ञा दी थी।

परन्तु समय बीतता गया और मनोविज्ञान धीरे धीरे दर्शन शास्त्र की शाखा मात्र न रह कर आज एक स्वतन्त्र विज्ञान का रूप ले चुका है। बीतते हुए समय के साथ साथ इस नये क्षेत्र में नये-नये अन्वेषण होते गये जिसके फलस्वरूप मनोविज्ञान की परिभाषा भी क्रमशः बदलती गयी। इस सम्बन्ध में जानने की बात यह है कि आज के मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञान की परिभाषा देने से अधिक रुचि मनोविज्ञान के क्षेत्र में आविष्कार करने में रखते हैं। यही कारण है कि आज भी मनोविज्ञान की कोई एक निश्चित एवं मान्य परिभाषा नहीं बन पायी है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में दिन प्रति दिन होने वाले अनुसन्धान नयी-नयी विधियाँ एवं नयी-नयी विचारधाराएं इसके कारण हैं।

यही कारण है कि भिन्न भिन्न युगों में मनोविज्ञान की भिन्न भिन्न परिभाषाएं दार्शनिकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी।

उन परिभाषाओं की त्रुटियों एवं गुणों पर ध्यान देना आवश्यक है। हम उन परिभाषाओं में से प्रमुख परिभाषाओं की चर्चा यहाँ करेंगे।

मनोविज्ञान की परिभाषा सबसे पहले दार्शनिकों ने दी। उनके अनुसार मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें आत्मा के विषय में विचार विमर्श किया जाय।

आत्मा का विज्ञान तथा इसकी आलोचना (Science of Soul and its criticisms)—दो सबसे पहली परिभाषा जो दार्शनिकों ने दी वह यह है कि ... का ... (Science of Soul) है। दार्शनिक मान्यताओं की ... की यह परिभाषा जँची। परन्तु यदि ध्यान से देखा ... नजर आयेंगी—

१ पहली त्रुटि तो यह है कि Soul अर्थात् आत्मा और मन अर्थात् Mind दोनो का आपसी अन्तर इस परिभाषा द्वारा स्पष्ट नही हो पाया। साथ ही साथ मन और आत्मा के स्वरूप एव प्रकृति के विषय मे भी दार्शनिको मे चिरकाल से मतभेद रहा है।

२ दूसरी त्रुटि यह मानी गयी है कि आत्मा शब्द कहने से मनोविज्ञान का गत्यात्मक स्वरूप स्पष्ट नही हो पाता है। लगता है, जैसे आत्मा शब्द किसी सूक्ष्म अथवा अदृश्य वस्तु की चर्चा के अतिरिक्त और कुछ नही अभिव्यक्त करता।

३ कुछ मनोवैज्ञानिको का विचार है कि आत्मा शब्द एक दार्शनिक शब्द है, अर्थात् इसकी चर्चा मनोविज्ञान मे न होकर दर्शन-शास्त्र मे होनी चाहिए। यह इसकी तीसरी त्रुटि है।

४ इसकी चौथी त्रुटि यह है कि इस परिभाषा से यह पता नही चलता है कि मनोविज्ञान एक समर्थक विज्ञान है अथवा आदर्श-निर्धारक विज्ञान। परिभाषा मे इस प्रकार के शब्द का प्रयोग नही होना चाहिए जिनसे कई अथवा अस्पष्ट अर्थ (Ambiguous meaning) निकलते हो।

इस प्रकार हमने देखा कि मनोविज्ञान की परिभाषा 'आत्मा का विज्ञान' बहुत उपयुक्त नही है। अस्तु, नयी परिभाषाएँ दी गयी।

मन का विज्ञान तथा इसकी आलोचनाएं (Science of Mind and its criticisms)— इसके बाद कुछ मनोवैज्ञानिको ने इसे 'Science of mind' अर्थात् मन का विज्ञान कहना अधिक उचित समझा। पर ध्यान देने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनोविज्ञान को मन का विज्ञान (Science of Mind) कहना भी इसकी त्रुटि-रहित परिभाषा नही हो पायी। इस परिभाषा मे निम्नलिखित त्रुटियाँ (Defects) हैं—

१. 'आत्मा' की तरह 'मन' (Mind) का भी भिन्न-भिन्न दार्शनिको ने भिन्न-भिन्न अर्थ बतलाया है। अस्तु, जो द्वयार्थता (Ambiguity) पहली परिभाषा मे थी, प्राय वैसी ही द्वयार्थता दूसरी परिभाषा मे भी लक्षित होती है। मन का अर्थ कभी हम हृदय से लेते है तो कभी मस्तिष्क से। अस्तु, मन के विषय मे किसी निश्चित परिभाषा पर एक मत नही हो सका।

२ आत्मा की तरह मन को भी नही देखा जा सकता है और न उस पर प्रत्यक्ष रूप से (Directly) कोई प्रयोग (Experiment) ही सम्भव है। मनोविज्ञान चूँकि प्रयोगात्मक (Experimental) है, अस्तु इसके आलोच्य विषय को अधिक स्पष्ट होना चाहिए।

३ इस परिभाषा मे भी यह नही कहा गया है कि मनोविज्ञान आदर्श-निर्धारक विज्ञान (Normative science) है अथवा समर्थक विज्ञान (Positive science)।

शाब्दिक अर्थ—मनोविज्ञान शब्द सुनने से ऐसे लगता है कि जैसे यह मन का विज्ञान हो परन्तु यदि Psychology शब्द की उत्पत्ति पर विचार किया जाय तो पाया जायगा कि Psychology शब्द लेटिन भाषा के दो शब्दों के मेल से बना हुआ है।

Psyche + Logos = Psychology

Psyche का अर्थ आत्मा (Soul) से है तथा Logos का अर्थ है विचार विमर्श करना (To talk or discuss)।

अर्थात् आत्मा + विचार विमर्श = मनोविज्ञान।

अर्थात Psychology का अर्थ हुआ आत्मा के विषय में बातचीत अथवा विचार विमर्श (Talk about the soul)। शाब्दिक बनावट के अनुसार मनोविज्ञान का यह अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

Psychology के विकास के आरम्भिक दिनों में जब मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र का भाग माना जाता था, दार्शनिकों ने इसे आत्मा का विज्ञान (Science of Soul) की संज्ञा दी थी।

परन्तु समय बीतता गया और मनोविज्ञान धीरे धीरे दर्शन शास्त्र की शाखा मात्र न रह कर आज एक स्वतन्त्र विज्ञान का रूप ले चुका है। बीतते हुए समय के साथ-साथ इस नये क्षेत्र में नये-नये अन्वेषण होते गये जिसके फलस्वरूप मनोविज्ञान की परिभाषा भी क्रमशः बदलती गयी। इस सम्बन्ध में जानने की बात यह है कि आज के मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञान की परिभाषा देने से अधिक रुचि मनोविज्ञान के क्षेत्र में आविष्कार करने में रखते हैं। यही कारण है कि आज भी मनोविज्ञान की कोई एक निश्चित एवं मान्य परिभाषा नहीं बन पायी है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में दिन प्रति दिन होने वाले अनुसन्धान नयी-नयी विधियाँ एवं नया-नयी विचारधाराएं इसके कारण हैं।

यही कारण है कि भिन्न भिन्न युगों में मनोविज्ञान की भिन्न भिन्न परिभाषाएं दार्शनिकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी।

इन परिभाषाओं की त्रुटियों एवं गुणों पर ध्यान देना आवश्यक है। हम इन परिभाषाओं में से प्रमुख परिभाषाओं की चर्चा यहाँ करेंगे।

मनोविज्ञान की परिभाषा सबसे पहले दार्शनिकों ने दी। उनके अनुसार मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें आत्मा के विषय में विचार विमर्श किया जाय।

आत्मा का विज्ञान तथा इसकी आलोचना (Science of Soul and its criticisms)—जो सबसे पहली परिभाषा जो दार्शनिकों ने दी वह यह है कि मनोविज्ञान आत्मा का विज्ञान (Science of Soul) है। दार्शनिक मान्यताओं की दृष्टि से उस समय के दार्शनिकों की यह परिभाषा बनी। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो इसके अन्दर अपसिद्धित त्रुटियाँ नजर आयेंगी—

'चेतना का विज्ञान' तथा इसकी आलोचना (Science of Consciousness and its criticisms) —मनोविज्ञान के विकास के इतिहास पर ध्यान देने से समय-समय पर दी गयी मनोविज्ञान की परिभाषा को समझने मे अधिक सहायता मिलती है। उट (Wundt), टिचेनर (Titchener) आदि मनोवैज्ञानिको ने, जो मनोविज्ञान के 'स्ट्रकचरलिस्ट स्कूल' (Structuralist School)[१] के मानने वाले है, उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे मनोविज्ञान को 'चेतना का विज्ञान' (Science of Consciousness) कह कर पुकारा। इनका कहना था कि चेतन-अनुभूति का अध्ययन अन्तर्निरीक्षण (Introspection) की विधि के द्वारा सम्भव है। इस परिभाषा की उपयुक्तता (Correctness) पर विचार करने पर मनोविज्ञान की यह परिभाषा भी त्रुटिपूर्ण मालूम पडती है, क्योकि—

१ मनोविज्ञान मे हम केवल चेतना का अध्ययन नही करते, बल्कि अचेतन तथा उपचेतन आदि क्रियाओ, जैसे —सहज क्रियाओ, स्वप्न, मानसिक बीमारियो इत्यादि—का भी अध्ययन करते हैं।

२ दूसरी बात यह कि चेतन अनुभूतियो के साथ-साथ हम व्यवहारो का भी अध्ययन करते हैं।

३ इतना तो उस परिभाषा मे भी कहना चाहिए था कि यह विज्ञान है, तो किस प्रकार का विज्ञान है।

आगे आने वाले मनोवैज्ञानिको ने मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान नही कह कर 'चेतनअनुभूति का विज्ञान' कहा है (Psychology is the Science of Conscious experience)।

इसके बाद मनोविज्ञान की जो दूसरी परिभाषा आयी, वह है —Psychology is the science of behaviour, अर्थात्, मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो मनुष्य के व्यवहारो का अध्ययन करता है।

व्यवहार का विज्ञान तथा इसकी त्रुटियाँ (Science of Behaviour and its defects)—उपर्युक्त परिभाषा की त्रुटियो के कारण बीसवी शताब्दी मे वाटसन

१ 'स्ट्रकचरलिस्ट स्कूल' (Structuralist School) या 'स्ट्रक्चरलिज्म' (Structuralism)—इस विचारधारा के अनुसार सभी मानसिक प्रक्रियाएँ (Mental processes) निम्नलिखित तीन तत्त्वो (Elements) के योग (Sum) से बने है—(क) सवेदना (Sensation), (ख) प्रतिमा (Image) और (ग) भाव (Feeling) इसे 'एलिमेण्टरिज्म' (Elementarism) के नाम से भी पुकारा जाता है। इस मत के मानने वाले मनोवैज्ञानिको मे 'उट' (Wundt) तथा 'टिचेनर' (Titchener) के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्हे 'स्ट्रकचरलिस्ट्स' (Structuralists) भी कहा जाता है। उनके अनुसार 'चेतनानुभूति' (Conscious experience) ही मनोविज्ञान का आलोच्य विषय था जो उपर्युक्त तीन तत्त्वो के योग (Sum) से बना है। इस मत के अनुसार 'अन्तर्निरीक्षण' (Introspection) ही मनोविज्ञान की एकमात्र विधि थी।

४ साथ-साथ 'मन' शब्द को परिभाषा में रखने से मनोविज्ञान के आलोच्य विषय (Subject matter) का गत्यात्मक रूप (Dynamic nature) स्पष्ट नहीं हो पाता।

यह परिभाषा १९वी शताब्दी म दी गयी थी। यह वह युग था जब मनोविज्ञान को लोग काल्पनिक दर्शन (Speculative Philosophy) का एक अभिन्न अंग मानते थे। इसलिए उस समय के मनोविज्ञान को फायर साइड साइकोलोजी (Fire-side Psychology) भी कहा गया है। अर्थात मनोविज्ञान के अध्ययन के लिये मनुष्यो को आराम से अगीठी के सामने बैठ कर सिर्फ अपने आन्तरिक विचारों एव भावनाओ पर ध्यान देना ही काफी था, जैसा कि ठंड के दिन मे अपने प्रदेश मे लोग अंगीठी के सामने बठ कर अपने मन की बातो पर चिन्तन करते अक्सर पाये जाते है।

इस प्रकार के आत्मचिन्तन (Speculation) से उत्पन्न मनोविज्ञान के लिए किसी भी प्रकार के प्रयोग (Experiment) की आवश्यकता नही थी। कोई भी व्यक्ति जो अन्तर्निरीक्षण (Introspection) द्वारा अपनी भावनाओ का अध्ययन करने म समर्थ था उसे हम मनोवैज्ञानिक होने की सज्ञा दे सकते थे।

इस युग के दार्शनिक मनोवैज्ञानिक (Philosopher Psychologist) मानसिक अवस्था की वास्तविकता (Truth) एव उसपर प्रयोगों की सम्भावना पर विश्वास न कर केवल उतनी ही बातो को स्वीकार करना चाहते थे जो वे अपने व्यक्तिगत चिन्तन (Speculation) द्वारा अपनी मानसिक एवं शारीरिक अवस्थाओं के विषय में निष्कर्ष निकाल पाते थे।

पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना—परन्तु वुण्ट (Wundt) नामक मनोवैज्ञानिक ने १८७९ ई० में लिपजिग (Leipzig) नामक स्थान पर पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की जिसके फलस्वरूप मनोविज्ञान मे प्रयोगों द्वारा ज्ञानवृद्धि की अधिक सम्भावना देखी गयी। इसका असर यह हुआ कि मनोविज्ञान का दार्शनिक रूप धीरे-धीरे प्रयोगात्मक रूप मे परिणत हो गया और दार्शनिक मनोविज्ञान की जगह वैज्ञानिक मनोविज्ञान (Scientific Psychology) ने ले ली। इसके साथ साथ दार्शनिक मनोवैज्ञानिको की सख्या घटते घटते समाप्त हो गयी तथा मनोविज्ञान में प्रयोगवाद (Experimentalism) का नया युग प्रारम्भ हुआ। फलत: नयी-नयी परिभाषाएं फिर आयी। आज के सामान्य मनोविज्ञान (General Psychology) का प्राचीन काल्पनिक दर्शन (Speculative Philosophy) से अब कोई पहले जैसा सम्बन्ध नही रह गया है। आज का सामान्य मनोविज्ञान पूर्णत: वैज्ञानिक विधियों एवं उनसे प्राप्त निष्कर्षों पर आधारित है।

इस युग के मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को परिभाषित करते समय कहा कि मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान है (Psychology is the science of conscious-

ठीक इसी प्रकार अगर किसी के हँसने की क्रिया से उस क्रिया के पीछे छिपी हुई प्रसन्नता की अनुभूति को अलग कर दें तो हँसने का व्यवहार का कोई अर्थ नही रह जाता।

साथ साथ हम यह भी पाते है कि एक ही व्यवहार के पीछे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न-भिन्न अनुभूति हो सकती है, जैसे — रोने का ही व्यवहार ले। रोने के व्यवहार मे साधारणत· दु ख की अनुभूति होती है। परन्तु, मिथिला मे दो महिलाएँ जब एक-दूसरे से कुछ दिनो तक अलग रहने के बाद मिलती है तो प्रसन्नता के कारण रोती पायी जाती है। अस्तु, इस प्रकार के रुदन मे प्रसन्नता की अनुभूति होती है।

अस्तु, परिस्थिति-विशेष मे रोने के व्यवहार के अध्ययन के लिए उसके अन्दर छिपी हुई अनुभूति को भी समझने की आवश्यकता है।

फलत, किसी को रोते देखकर ही यह ठीक-ठीक नही कहा जा सकता कि उसकी अनुभूति कैसी हो रही होगी। अस्तु, अनुभूतियो का अध्ययन भी जरूरी है। फिर रोने का व्यवहार कई एक कारणो से हो सकता है। कोई परीक्षा मे फेल हो जाने के कारण रोता है, कोई अपने पिता की मृत्यु के कारण रोता है तो कोई प्रेयसी से बिछुड़ने के कारण रोता है — सभी रोने मे दु ख की अनुभूति होती है, परन्तु दु ख की तीव्रता एव स्वभाव (Nature) मे अन्तर होता है। परिणामस्वरूप, व्यवहारो के अध्ययन के लिए हमे उनके अन्दर की अनुभूतियो की तीव्रता (Intensity) का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। अस्तु, व्यवहारो को अनुभूतियो से अलग नही किया जा सकता।

ठीक इसी प्रकार हम किसी की अनुभूतियो को, उसके व्यवहारो को देखे बिना, तथा उसका सम्बन्ध अनुभूतियो से जाने बिना नही समझ सकते। व्यवहार और अनुभूतियो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। मनोविज्ञान का आलोच्य विषय दोनो मे से सिर्फ एक न होकर दोनो को होना चाहिए — ऐसा उचित प्रतीत होता है। अस्तु, मनोविज्ञान को हम मानसिक प्रक्रियाओ (Mental processes) का विज्ञान कह सकते हैं जो शारीरिक व्यवहारो द्वारा प्रकट होती है तथा जिन्हे हम अपने अनुभवो द्वारा समझ पाते हैं।

मनोविज्ञान की एक उपयुक्त परिभाषा तथा इसका विश्लेषण — अस्तु, मनोविज्ञान की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी गयी है, जो उपयुक्त मालूम पडती है — 'मनोविज्ञान एक ऐसा समर्थक विज्ञान है जो प्राणी की अनुभूतियो एव व्यवहारो का अध्ययन अनुभूतियो के माध्यम से करता है' (Psychology is the positive science of experience and behaviour interpreted in the terms of experience)।

अब हम इस परिभाषा का विश्लेषण निम्नलिखित प्रकार से करेंगे —

१ **समर्थक विज्ञान (Positive Science)**—मनोविज्ञान को जब हम विज्ञान

कहते हैं तो हमारा अभिप्राय होता है समर्थक विज्ञान से क्योंकि मनोविज्ञान अपने आलोच्य विषय (Subject matter) का निष्पक्ष एवं ज्यों-का-त्यों (Describes as it is) वर्णन करता है। वह किसी प्रकार के आदर्श निर्धारण का अभ्यास नहीं करता जो नीतिशास्त्र (Ethics) आदि जैसे आदर्श निर्धारक विज्ञान का काम है। विज्ञान किसी वस्तु विशेष का क्रमबद्ध (Systematic) नियन्त्रित (Controlled) तथा निष्पक्ष (Objective) अध्ययन है।

२ अनुभूति (Experience)— प्राणी जब तक जीवित रहता है तब तक वह आन्तरिक एवं बाह्य उत्तेजनाओं से किसी रूप मे प्रभावित होता रहता है। इन उत्तेजनाओं के बीच उसे भिन्न भिन्न अवस्थाओ मे गुजरना पड़ता है। इन परिवर्तनशील अवस्थाओं अथवा परिस्थितियो से प्राणी म उत्पन्न प्रभावों (Effects) को ही अनुभूति कहा जाता है। यह अनुभूति चेतन (Conscious) उपचेतन (Sub conscious) तथा अचेतन (Unconscious) होने के अतिरिक्त शारीरिक (Bodily) अथवा मानसिक (Mental) दोनों प्रकार की हो सकती है। इसलिए प्राणी की हरेक प्रतिक्रिया (Reaction) के पीछे कोई-न-कोई अनुभूति छिपी ही रहती है। यदि अनुभूति का विस्तृत अर्थ (Wider sense) लिया जाय तो इससे उन सभी प्रतिक्रियाओं का बोध होता है जिनके होने के कारण प्राणी को हम जीवित कह सकते है। (*It means any reaction through which the organism lives In this sense it includes a reaction whether mental or bodily* —Spearman)

संकुचित अर्थ (Narrow sense) में अनुभूतियो का अर्थ उत्तेजनाओ की चेतना है। परन्तु मनोविज्ञान में हम अनुभूतियों को एक विस्तृत अर्थ में ही प्रयुक्त करते है। वस्तु संवेदना प्रत्यक्षीकरण चिन्तन संवेग भाव स्मरण सीखना इत्यादि सभी मानसिक प्रक्रियाएं किसी न किसी प्रकार की अनुभूतियाँ ही है, जो वातावरण से उपयुक्त अभियोजना (Adjustment) के लिए आवश्यक है।

३ व्यवहार (Behaviour)— विस्तृत अर्थ में व्यवहार से भी प्राणी की प्रक्रिया का बोध होता है। ये प्रक्रियाएं चेतन हो अथवा अचेतन शारीरिक अथवा मानसिक इन्हें हम व्यवहार की ही संज्ञा देंगे। इस विस्तृत अर्थ में मकडूगल (McDougall) ने मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुए कहा था कि— मनोविज्ञान व्यवहारों का समर्थक विज्ञान है (Psychology is the positive science of behaviour)।

आगे चलकर व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने व्यवहार शब्द मे सिर्फ उन प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जो पृथक शारीरिक हैं और जिन्हें हम बाहर से देख सकते हैं जैसे—दौड़ना हँसना रोना खाते समय मुँह का चलाना इत्यादि। परन्तु व्यवहार को भी मनोविज्ञान में हम संकुचित अर्थ म नहीं ग्रहण करते।

व्यवहार और अनुभूति दोनों को उनके विस्तृत अर्थ मे देखने से पता चलता कि दोनों म एक अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है अर्थात् हम एक को दूसरे से सर्वथा

अलग नही कर सकते । व्यवहार को अनुभूति से पृथक कर दिये जाने पर उसका कोई अर्थ नही रहता । हम अपने तथा दूसरो के व्यवहारो का अध्ययन अनुभूतियो के माध्यम से ही कर पाते है ।

४ अनुभूतियो के माध्यम से (Interpreted in terms of experience)—हम दूसरे के व्यवहारो मे अपने गत अनुभवो के आधार पर समझ जाते है । जब कोई व्यक्ति आँखें लाल-लाल किये, जोर-जोर से बोलता है तथा अगसचालन करता है तो परिस्थिति-विशेष को देख कर हम तुरत उसके व्यवहारो का अर्थ समझ लेते है कि वह व्यक्ति क्रोधित हो गया है तथा उसके व्यवहार उसके क्रोध के सूचक है । यह दूसरे के क्रोधपूर्ण व्यवहारो का अर्थ हमने अपनी अनुभूति द्वारा जान लिया । अस्तु, व्यवहारो के अर्थ का स्पष्टीकरण अनुभूतियो द्वारा होता है ।

मनोविज्ञान की एक अन्य परिभाषा - यहाँ ध्यान रखने कि बात यह है कि मनुष्यो के व्यवहार वातावरण मे अभियोजन (Adjustment) के लिए ही किये जाते है । अस्तु, कुछ मनोवैज्ञानिको द्वारा दी गयी निम्नलिखित परिभाषा भी यथेष्ट मालूम होती है—

"मनोविज्ञान वातावरण के सम्पर्क से प्राणी मे अभियोजन के उद्देश्य से उत्पन्न होने वाली क्रियाओ (मानसिक तथा शारीरिक) का समर्थक विज्ञान है ।" (Psychology may be defined as a positive science which studies the activities of the organism (mental or bodily) resulting from environmental stimulations for the sake of adjustment to them)

प्राणी द्वारा वातावरण के साथ किये गये अभियोजन पर हम आगे 'प्राणी और वातावरण' नामक अध्याय मे प्रकाश डालेंगे ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि मनोविज्ञान एक प्रगतिशील विज्ञान है, यह हमे नही समझना चाहिए कि यह परिभाषा ही सर्वमान्य, सर्वश्रेष्ठ अथवा अन्तिम परिभाषा है । मनोविज्ञान दिनानुदिन प्रगति कर रहा है और यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कुछ वर्षो बाद मनोविज्ञान की फिर एक नयी परिभाषा हमारे सामने आ जायगी । सच तो यह है कि मनोविज्ञान अपने जिस शाब्दिक अर्थ अथवा आलोच्य विषय (आत्मा पर विचार-विमर्श) को लेकर अध्ययन करने चला था वह अब एकदम बदल गया है । आज हम मनोविज्ञान मे आत्मा की बात नही करते । आज हमारे आलोच्य विषय का क्षेत्र आत्मा से हटकर अत्यन्त विस्तृत एव कई शाखाओ मे विभक्त हो गया है जिनकी चर्चा हम आगे दूसरे अध्याय मे करेंगे । आज हमारे अध्ययन का आलोच्य विषय ही नही बदल गया, बल्कि विधियाँ भी परिमार्जित एव परिवर्तित हो गयी हैं । अत कुछ आधुनिक विचारको का कहना है कि आज मनोविज्ञान (Psychology) का सर्वथा एक नया नामकरण होना चाहिए ।

यहाँ मनोदैहिक विधियों (Psychophysical methods) तथा नियंत्रित एवं प्रयोगात्मक ग्रूप की विधि (Controlled and experimental group) आदि का उपयोग किया जाता है। इन विधियों के फलस्वरूप हमारे अध्ययन में अधिक दुरुस्ती (Precision) एवं यथार्थता (Accuracy) आ जाती है। ये विधियाँ बार-बार एक ही रूप में दुहरायी भी जा सकती हैं।

मनोविज्ञान में पहले आत्मनिष्ठ विधियों (Subjective methods) का ही अधिक उपयोग होता था परन्तु आज उनका स्थान वैज्ञानिक विधियाँ ले चुकी हैं। मनोविज्ञान की विधियों (Methods of Psychology) का उल्लेख करते समय इस पर हम आगे तीसरे अध्याय में विशेष प्रकाश डालेंगे।

३ क्रमबद्ध विज्ञान (Systematic Knowledge)—मनोविज्ञान का ज्ञान भंडार बिखरा हुआ नहीं है वरन् इसमें प्राप्त सामग्रियों का परिमाणात्मक विवेचन (Statistical treatment) कर इसे क्रमबद्ध रूप दिया गया है।

४ प्रगतिशीलता (Progressiveness)—अन्य विज्ञान की तरह मनोविज्ञान भी अपने क्षेत्र में प्रगति करता आ रहा है। यह अपने निष्कर्षों से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट नहीं है इसलिए इसके क्षेत्र में नये-नये अन्वेषण (Researches) होते जा रहे हैं। फलत दिनानुदिन इसके ज्ञान भंडार का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है।

५ जाँच तथा पुनरावृत्ति (Verification and Revision)—मनोविज्ञान को अपने अन्वेषणों (Researches) से प्राप्त निष्कर्षों पर मिथ्या गौरव नहीं है। यदि मनोवैज्ञानिक को यह मालूम हो जाता है कि उसके निष्कर्षों एवं नियमों में कोई त्रुटि रह गयी है, तो वह अपनी वैज्ञानिक विधियों द्वारा फिर से नये नये प्रयोगों की पुनरावृत्ति कर अपने निष्कर्षों की सत्यता पर विचार करता है। अगर उसे पहले का निष्कर्ष गलत दृष्टिगत होता है तो वह बिना संकोच के पुराने निष्कर्षों का परित्याग कर देता है और नये निष्कर्षों को मान्यता देता है।

६ प्रयुक्तता (Applicability)—विज्ञान में प्रयुक्तता के गुण का महत्त्व माना गया है। विज्ञान के निष्कर्षों से हमें अन्य समस्याओं को समझने एवं सुलझाने में यदि यथेष्ट सहायता मिले तो हम यह कह सकते हैं कि अमुक विज्ञान में प्रयुक्तता का गुण है। आज मनोविज्ञान की प्रयुक्तता में संसार को जरा भी शक नहीं।

आज शिक्षा सेना उद्योग धन्धे, व्यवसाय मानसिक बीमारियाँ इत्यादि सभी क्षेत्रों में मनोविज्ञान की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। इसका वर्णन विस्तार से अगले अध्याय में किया जायगा।

७ विषय की सत्यता की अनन्त खोज (Endless search for the truth regarding its subject matter)—अन्त में यह कहना आवश्यक है कि विज्ञान के क्षेत्र में अपने विषय की सत्यता की खोज में एवं उसे प्रमाणित करने के प्रयास में वैज्ञानिक अनन्त प्रयास करते जा रहे हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इस अनन्त अन्वेषण का गुण वर्तमान है।

यही कारण है कि मनोविज्ञान आज अपने विषय का क्रमबद्ध, सुसगठित एव व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त कर सका है। अस्तु, मनोविज्ञान के होने मे अब किसी को कोई विशेष शक नही रह गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त वातो से यह स्पष्ट है कि एक विज्ञान की जितनी भी विशेषताएँ है वे सब मनोविज्ञान मे वर्त्तमान है। अत हम मनोविज्ञान को भी विज्ञान की सज्ञा दे सकते है। परन्तु यहाँ यह कहना आवश्यक है कि मनोविज्ञान भौतिक विज्ञानो (Physical Sciences) की तरह पूर्णरूपेण यथार्थ विज्ञान (Exact Science) क्यो नही है। इसका प्रमुख कारण मनोविज्ञान का आलोच्य विषय ही है। मनोविज्ञान के आलोच्य विषय का सम्बन्ध मूलत मनुष्यो से है। अन्य विज्ञान के आलोच्य विषय या तो पूर्णत निर्जीव है (जैसे—गैस, रग, पत्थर, मिट्टी इत्यादि) या ऐसे जीवधारी है जो विकास के दृष्टिकोण से मनुष्यो की अपेक्षा बहुत ही निम्न-कोटि के है। फलत गैस, रग, पत्थर इत्यादि पर वैज्ञानिक अध्ययनो के सिलसिले म वैज्ञानिक जितना अधिक नियत्रण (Control) करना चाहते है, वे सफलता के साथ कर पाते है। परन्तु मनुष्य पर किये गये प्रयोगो के सिलसिले मे उतना अधिक नियन्त्रण कर पा सकना मनोवैज्ञानिको के लिए कठिन ही नही वरन् असम्भव जैसा है। फिर भी, जितना नियन्त्रण सम्भव हो पाता है, उतना तो वे करते ही है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगो मे वरते गये नियत्रण के अनुपात की इसी विभिन्नता के कारण कुछ आलोचको ने मनोविज्ञान को अर्द्ध-विज्ञान (Semi-science) अथवा नकली विज्ञान (Pseudo science) कहा है।

कुछ लोग ऐसा भी कहते है कि मनोविज्ञान के निष्कर्ष भौतिक विज्ञानो (Physical science) के निष्कर्षो की तरह यथार्थ (Exact) नही होते, बल्कि ये भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे बदलते जाते है।

परन्तु यदि इस वात पर ध्यान दिया जाय कि मनोविज्ञान का आलोच्य विषय मनुष्यो से सम्बन्ध रखता है जिसमे सदा कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन होते रहते है, इसके प्राप्त निष्कर्षो की यथार्थता (Exactness) की त्रुटि का अधिक महत्त्व नही रह जायगा।

परन्तु, जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी भी विषय का वैज्ञानिक होना उसके आलोच्य विषय आदि से अधिक उसकी विधियो की वैज्ञानिकता पर निर्भर करता है—हम पाते है कि मनोविज्ञान की विधियो को पूर्णरूपेण वैज्ञानिक माना जा सकता है।

अस्तु, हम अन्त मे यह कह सकते है कि वैज्ञानिक विधियो एव विज्ञान की अन्य सारी विशेषताओ के वर्त्तमान होने के कारण मनोविज्ञान को निस्सन्देह एक विज्ञान की सज्ञा दे सकते हैं।

दूसरा अध्याय

मनोविज्ञान की शाखाएँ एवं इसकी उपयोगिताएँ

(Branches and Uses of Psychology)

भूमिका—सैद्धान्तिक मनोविज्ञान—सामान्य शारीरिक प्रयोगात्मक बाल पशु, असामान्य तथा सामाजिक मनोविज्ञान।

व्यावहारिक मनोविज्ञान शिक्षा औद्योगिक तथा व्यावसायिक औपचारिक चिकित्सा अपराध सम्बन्धी एवं कानून सम्बन्धी मनोविज्ञान।

मनोविज्ञान की उपयोगिताएँ

सन् १८७९ में वुण्ट (Wundt) महोदय नामक मनोवैज्ञानिक ने मनोविज्ञान की सर्वप्रथम स्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत की। उनके अनुसार— Psychology is the study of normal human adult mind. आगे चलकर जो प्रयोग मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए उनसे यह स्पष्ट पता चला कि वुण्ट महोदय द्वारा दी गयी परिभाषा मनोविज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत न बनाकर सीमित बना रही थी। वुण्ट के अनुसार मनोविज्ञान सिर्फ सामान्य वयस्क मनुष्यों की मानसिक स्थितियों का अध्ययन है। इस परिभाषा के विरुद्ध की गयी प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप आज हम मनोविज्ञान के क्षेत्र का विस्तार विभिन्न शाखाओं में पाते हैं। आज मनोविज्ञान न केवल सामान्य व्यक्तियों का अध्ययन करता है बल्कि असामान्य व्यक्तियों का भी अध्ययन कर रहा है। आज हम वयस्कों के अतिरिक्त मनोविज्ञान द्वारा बालकों एवं किशोरों का अध्ययन करने लगे हैं। आज मनोविज्ञान का क्षेत्र मनुष्यों तक सीमित नहीं वरन् पशुओं पर भी हमारे मनोवैज्ञानिक अध्ययन हो रहे हैं। साथ-साथ मनुष्यों के जीवन से सम्बन्धित भिन्न भिन्न क्षेत्र जैसे—चिकित्सा शिक्षा उद्योग एवं व्यवसाय अपराध इत्यादि—में भी मनोविज्ञान की अपनी नवीन शाखाएँ विकसित हो गयी हैं।

इन अनेक शाखाओं को पाठकों के सामने हम निम्नलिखित प्रकार से विभक्त कर प्रस्तुत कर सकते हैं किन्तु ये शाखाएँ पूर्णतः एक-दूसरे से पृथक नहीं हैं। इनका वर्गीकरण सिर्फ इन्हें स्पष्ट रूप से समझने के लिए ही किया गया है।

आगे की तालिका (पृष्ठ १८ देखे) से ज्ञात होता है कि हम साधारणत मनोविज्ञान की शाखाओ को दो भागो मे बांट सकते हैं—(क) सैद्धान्तिक मनोविज्ञान (Pure or Theoretical Psychology) तथा (ख) व्यावहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology)। इन दोनो की भी अपनी-अपनी शाखाएँ है जिनमे कुछ शाखाओ का उल्लेख हम विस्तार से आगे करेंगे।

(क) सैद्धान्तिक मनोविज्ञान (Pure or Theoretical Psychology)—इसके अन्तर्गत मनोविज्ञान की वे शाखाएँ आती है जिनका कार्य मनोवैज्ञानिक ज्ञान (Psychological Knowledge) को बढाना है।

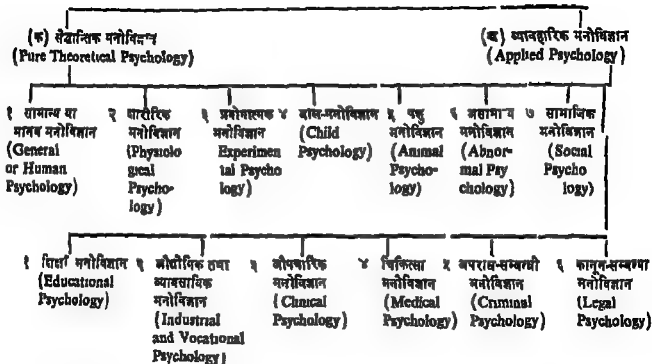
(ख) व्यावहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology)—व्यावहारिक मनोविज्ञानिक (Applied Psychologist) या हम यह भी कह सकते है कि व्यावहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology) सैद्धान्तिक मनोविज्ञान की शाखाओ द्वारा अर्जित मनोविज्ञानिक ज्ञान का व्यवहार एव उपयोग जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो से सम्बन्धित समस्याओ को दूर करने मे करता है।

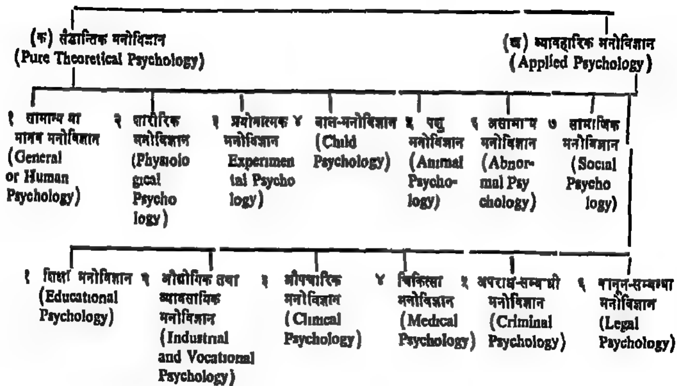
उदाहरणार्थ, मानसिक बीमारियो (Mental diseases) को रोकना तथा उनकी चिकित्सा करना, शिक्षा तथा उद्योग-धन्धो से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न समस्याओ को हल करना, कार्य का चुनाव (Choice of vocation), बच्चो का पालन-पोषण करना तथा अन्य क्षेत्रो मे मनोविज्ञान का उपयोग कर इनकी समस्याओ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर उन्हे दूर करना तथा सही-सही रूप से उनको हल करना ही व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक का कर्त्तव्य है।

इस तरह हम देखते है कि अब मनोविज्ञान दर्शन-शास्त्र (Philosophy) की एक शाखा मात्र नही रहा, बल्कि इसमे दिन-प्रति-दिन होने वाले अन्वेषणो (Researches) तथा प्रयोग (Experiments) के कारण मनोवैज्ञानिक ज्ञान मे वृद्धि भी हो रही है। इन अर्जित ज्ञानों का उपयोग भी जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रो मे होने लगा है, फलस्वरूप इसका क्षेत्र अब बहुत ही विस्तृत हो गया है। किन्तु वस्तुत हर शाखा मे प्राणी की क्रियाओं (व्यवहार तथा अनुभूति) का ही अध्ययन होता है। सिर्फ जिस परिस्थिति-विशेष मे उनकी क्रियाओ का अध्ययन किया जाता है, उसके स्वभाव (Nature) मे ही अन्तर है, जैसे—शिक्षा-मनोविज्ञान मनुष्य की क्रियाओ का अध्ययन शिक्षा से सम्बन्धित परिस्थितियो मे करता है और औद्योगिक मनोविज्ञान मनुष्य की क्रियाओ का अध्ययन उनके उद्योग-धन्धो से सम्बन्धित परिस्थितियो मे करता है।

अस्तु, हम देखते है कि सैद्धान्तिक मनोविज्ञान अपने क्षेत्र मे, ज्ञानवृद्धि मे लगा है तथा व्यावहारिक मनोविज्ञान उन अभिवृद्ध ज्ञानो को जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे प्रयुक्त कर प्राणियो के लिए उपयोग करना चाहता है।

मनोविज्ञान की शाखाएँ (Branches of Psychology)




मनोविज्ञान की शाखाएं (Branches of Psychology)
(क) सैद्धान्तिक मनोविज्ञान (Pure Theoretical Psychology)
(ख) व्यावहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology)
१ सामान्य या मानव मनोविज्ञान (General or Human Psychology)
२ शारीरिक मनोविज्ञान (Physiological Psychology)
३ प्रयोगात्मक मनोविज्ञान Experimental Psychology)
४ बाल-मनोविज्ञान (Child Psychology)
५ पशु मनोविज्ञान (Animal Psychology)
६ असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology)
७ सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology)
१ शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology)
२ औद्योगिक तथा व्यावसायिक मनोविज्ञान (Industrial and Vocational Psychology)
३ औपचारिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology)
४ चिकित्सा मनोविज्ञान (Medical Psychology)
५ अपराध-सम्बन्धी मनोविज्ञान (Criminal Psychology)
६ कानून-सम्बन्धी मनोविज्ञान (Legal Psychology)

इस तरह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओ के ध्येय मे समानता होने के कारण सभी शाखाओ मे परस्पर सम्बन्ध भी है। अब हम नीचे मनोविज्ञान की कुछ प्रमुख शाखाओ पर एक-एक कर विचार करेंगे और देखेंगे कि किस तरह इन सभी मे परस्पर सम्बन्ध है।

(क) सैद्धान्तिक मनोविज्ञान

(Pure or Theoretical Psychology)

१ सामान्य अथवा मानव-मनोविज्ञान (General or Human Psychology)--इसके अन्तर्गत प्रौढ मनुष्यो का सामान्य क्रियाओ (मानसिक तथा शारीरिक) का अध्ययन किया जाता है [Study of the activities (Mental and bodily) of the normal adult human being]। प्रौढ मनुष्यो की क्रियाओ (शारीरिक तथा मानसिक) का अध्ययन वैज्ञानिक विधियो द्वारा किया जाता है तथा उनकी उत्पत्ति (Origin), वृद्धि (Growth) और विकास (Development) सम्बन्धित सामान्य नियमो (General Laws) की खोज की जाती है। भिन्न-भिन्न मानसिक क्रियाएँ (Mental Processes), जैसे—संवेदना (Sensation), प्रत्यक्षीकरण (Perception), ध्यान देना (Attending), स्मरण तथा विस्मरण (Remembering and Forgetting), चिन्तन (Thinking), संवेग तथा भाव (Emotion and Feeling) इत्यादि का अध्ययन कर उनके बारे मे सामान्य नियमो का पता, मानव के व्यवहारो को समझने (Understand), उनको नियन्त्रित (Control) करने तथा उनके बारे मे भविष्यवाणी (Predict) करने के हेतु किया जाता है। अस्तु, इसके दो प्रमुख उद्देश्य है—

(i) मानव के व्यवहारो का नियन्त्रण (Control of humrn behaviour) तथा (ii) मनुष्य मे भविष्यकाल से होने वाले व्यवहारो का अनुमान वर्तमान मे कर लेने का प्रयास (Prediction of human behaviour)।

संक्षेप मे हम कह सकते है कि सामान्य मनोविज्ञान सामान्य व्यक्तियो की सामान्य क्रियाओ (मानसिक तथा शारीरिक) का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान के मूल सिद्धान्तो (जो व्यक्तियो के सामान्य व्यवहारो से सम्बन्ध है) का पूर्ण रूप से ज्ञान होना मनोविज्ञान की अन्य शाखाओ को ठीक से समझने के लिए आवश्यक है। मनोविज्ञान-सम्बन्धी अन्य ज्ञान इसी पर आधारित हैं। यह अपने प्रस्तुत विषय का अध्ययन करने के लिए आत्मनिष्ठ (Subjective) तथा वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा दोनो प्रकार की विधियो का उपयोग करता है।

२ शारीरिक मनोविज्ञान (Physiological Psychology)—यह स्नायु-मण्डल और ज्ञानेन्द्रियो की बनावट (Structure) तथा उनके कार्यों (Functions) से सम्बन्ध रखता है। मन (Mind) और शरीर (Body) मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राणियो की क्रियाओ (मानसिक तथा शारीरिक) का ही सही-सही ज्ञान प्राप्त करने

लिए भिन्न भिन्न जीवन रक्षा-सम्बन्धी अवयवों तथा स्नायुमण्डल का अध्ययन करना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ—प्रकाश और ध्वनि की संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण कैसे होता है इसे ठीक-ठीक समझने के लिए क्रमशः आँख और कान नामक ज्ञानेन्द्रियों एवं स्नायुमण्डल की बनावट एवं उनके कार्यों की जानकारी अत्यावश्यक है। यह अनुभूतियों तथा व्यवहारों से सम्बन्धित प्राणियों के शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की बनावट तथा उनके कार्यों का विशिष्ट अध्ययन (Specific study) करता है।

सभी मानसिक क्रियाओं, जैसे—संवेदना प्रत्यक्षीकरण संवेग चिन्तन सीखना इत्यादि का सम्बन्ध प्राणी के शरीर के किसी-न किसी अंग विशेष से अवश्य रहता है। अस्तु, उनकी विभिन्न मानसिक क्रियाओं के समुचित ज्ञान के लिए उनसे सम्बन्धित शारीरिक अंगों का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है जैसा कि ऊपर के उदाहरण से भी स्पष्ट हो गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह प्राणी के शरीर के निम्नलिखित अंगों का अध्ययन उनकी क्रियाओं (मानसिक तथा शारीरिक) को ठीक सही सही रूप में समझने के हेतु करता है जैसे—स्नायुमण्डल केन्द्रीय और स्वतःसंचालित ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ अन्तःस्रावी पिंड (Endocrine glands) जिनका हमारे मानसिक जीवन से गहरा सम्बन्ध है इत्यादि का विशिष्ट अध्ययन करता है। इसकी विधि पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष है।

यहाँ पर शरीर-शास्त्र (Physiology) तथा शारीरिक मनोविज्ञान (Physiological psychology) के अन्तर को समझना आवश्यक है। जहाँ शरीर-शास्त्र के अध्ययन का विषय ही ज्ञानेन्द्रियाँ कर्मेन्द्रियाँ या स्नायुमण्डल (Nervous system) की बनावट तथा उनके कार्य हैं वहाँ शारीरिक मनोविज्ञान उनका अध्ययन इसलिए करता है कि उनसे सम्बन्धित हमारी मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओं को समझने में सहायता पहुँचती है।

हमारी मानसिक अथवा शारीरिक क्रियाएं बाह्येन्द्रियों अथवा स्नायुमण्डल की बनावट एवं विकास पर निर्भर करती हैं। शरीर शास्त्र में इन इन्द्रियों एवं स्नायु-मण्डल आदि का अध्ययन स्वयंसाध्य (End in itself) है। परन्तु शारीरिक मनोविज्ञान में यह साध्य न होकर मानसिक एवं शारीरिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में एक साधन मात्र (Means to an end) है। अर्थात् प्राणी की क्रियाएँ (मानसिक अथवा शारीरिक) मनोविज्ञान के अध्ययन के विषय हैं उनका एवं समुचित ज्ञान प्राप्त करने के हेतु शारीरिक मनोविज्ञान का अध्ययन करते हैं। प्राणी की क्रियाओं से अलग उनका हमारे मनोविज्ञान में कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है। अस्तु, हम कह सकते हैं कि शारीरिक मनोविज्ञान भी मानव-मनोविज्ञान की एक शाखा मात्र ही है।

३ प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental Psycyology)— प्रारम्भ में मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र के अन्तर्गत था। इसके अध्ययन का विषय 'आत्मा' या

'मन' था। इसके अध्ययन की विधि भी आत्मनिष्ठ तथा पक्षपातपूर्ण थी। इसे काल्पनिक मनोविज्ञान की संज्ञा भी दी गयी थी। इस प्रकार मनोविज्ञान के लिए प्रयोगात्मक मनोविज्ञान बिल्कुल ही भिन्न था (For this Psychology the world of Experimental psychology was alien world)। परन्तु लिपजिग (Leipzig) नामक स्थान मे सन् १८७९ मे ऊंट (Wundt) द्वारा मनोविज्ञान की सर्वप्रथम प्रयोगशाला की स्थापना के फलस्वरूप प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। इसके साथ-साथ दार्शनिक मनोवैज्ञानिको की सख्या घटते-घटते बिलकुल समाप्त हो गयी और उनकी जगह वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिको ने ले ली। वर्त्तमान के सामान्य मनोविज्ञान की उत्पत्ति भी काल्पनिक दर्शन से नही होती है, बल्कि अधिकाश रूप मे यह प्रयोगात्मक विषयो एव उनसे प्राप्त प्रयोगात्मक परिणामो पर ही आधारित है।

आजकल प्रयोगात्मक पहलू से रहित मनोविज्ञान का कोई विशेष स्थान नही है। *अर्थात्, आज प्रयोग के बिना मनोविज्ञान का कोई अस्तित्व नही रह जाता है।* अस्तु, अब सामान्य मनोविज्ञान तथा प्रयोगात्मक मनोविज्ञान मे कोई अन्तर नही रह गया है। इसे प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इसलिए कहा जाता है कि (१) यह प्राणियो की अनुभूतियो तथा व्यवहारो का अध्ययन पूर्व-निर्धारित तथा निश्चित अवस्थाओ मे करता है (Pre arranged and standard conditions), (२) प्रयोगात्मक अवस्थाओ की एक विशेषता यह है कि यहाँ निरीक्षण के विषय (Phenomenon of observation) का बार-बार अध्ययन किया जा सकता है। इसमे हेर-फेर भी किया जा सकता है तथा उनको नियन्त्रित भी किया जा सकता है। फलत प्रयोगो से प्राप्त परिणाम निश्चित तथा यथार्थ होते है। उनकी सत्यता की जाँच भी हम बाह्य रूप से कर सकते है, (३) यह प्रयोगात्मक विधि द्वारा प्राप्त परिणामो की सहायता से प्राणियो की क्रियाओ (मानसिक तथा शारीरिक) से सम्बद्ध सामान्य नियमो की व्यवस्था करने की चेष्टा करता है तथा (४) यह यन्त्रो तथा परिगणनात्मक रीतियो का भी उपयोग करता है।

इस तरह हम कह सकते है कि प्रयोगात्मक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान का ही प्रयोगात्मक अध्ययन है। अर्थात्, यह प्राणी की विभिन्न क्रियाओ (मानसिक तथा शारीरिक)—जैसे सवेदना, सवेग, चिन्तन, सीखना, प्रत्यक्षीकरण, भाव इत्यादि —का प्रयोगात्मक अध्ययन करता है।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, सामान्य वयस्क मानवो की क्रियाओ (मानसिक तथा शारीरिक) का एक वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अस्तु, इनमे प्राप्त सामान्य नियमो (General rules) को हम वैज्ञानिक मान सकते हैं तथा इनकी सत्यता और विश्वसनीयता पर पूर्ण रूप से विश्वास कर सकते है। हम इनकी मदद से प्राणी की क्रियाओ को नियन्त्रित कर सकते है तथा उनके बारे मे सही-सही भविष्यवाणी भी कर सकते है।

वस्तुतः शारीरिक (Physiological) तथा प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental Psychology) उस सामान्य शाखा (General branch) के ही अंगस्वरूप हैं जिसे हम 'मानव-मनोविज्ञान' की संज्ञा दे सकते हैं। हमलोग उन्हें सिर्फ विशिष्ट अध्ययन (Specific study) के लिए अलग करते हैं। इसके अध्ययन के लिए विशिष्ट यन्त्रों (Specific instruments) का उपयोग करना पड़ता है तथा विशिष्ट शिक्षण (Special training) की भी आवश्यकता है।

४ बाल मनोविज्ञान (Child Psychology)— यह मनोविज्ञान की एक प्रमुख शाखा है। बाल्यावस्था व्यक्ति के जीवन की सबसे मुख्य अवस्था है। फ्रायड (Freud) जसे मनोविश्लेषकों ने बालकों के 'जीवन के प्रथम पाँच वर्ष (First five years of life) के विकास का सम्बन्ध, उनमें भविष्य में होने वाली मानसिक बीमारियों के कारण से बतलाया है। मानव एक विकासात्मक जीव (Developmental being) है। बाल्यावस्था व्यक्तित्व के निर्माण का समय है। यही समय है जिनके विकास के आधार पर भविष्य में चलकर वह व्यक्ति अच्छा या बुरा नागरिक बनता है। सामान्य मनोविज्ञान (जो सामान्य प्रौढ़ व्यक्तियों का अध्ययन करता है) का समुचित ज्ञान प्राप्त करने में बाल मनोविज्ञान मदद पहुँचाता है। बालक के सामान्य विकास की जानकारी के लिए बाल्यावस्था का अध्ययन आवश्यक है जिससे यदि किसी बालक के विकास में किसी प्रकार की रुकावट आ जाय तो उनमें सुधार लाने के लिए आवश्यक साधनों का पता लगाया जाय और उसका पालन पोषण उपयुक्त हो जिसके फलस्वरूप वह एक अच्छी तरह अभियोजित व्यक्ति बन सके (Happily adjusted individual)। अन्यथा वह अपने माता पिता शिक्षक तथा सारे समाज के लिए समस्या या कुलांगार (Curse) सिद्ध होगा। उदाहरणार्थ— हम समस्या बालकों (Problem children) पिछड़े हुए (Backward) अथवा अपराधी (Delinquent) बालकों को ले लें। वे सभी न सिर्फ अपने-अपने माता-पिता तथा शिक्षक के लिए ही एक समस्या है बल्कि वे जब वयस्क (Adult) होंगे तो सारे समाज के लिए भी कुलांगार सिद्ध होंगे।

बाल मनोविज्ञान बालक की गर्भावस्था से प्रौढ़ावस्था तक का एक वैज्ञानिक अध्ययन विकासात्मक दृष्टिकोण (Developmental point of view) से करता है। यह बालक के ज्ञानवाही तथा क्रियावाही विकास (Sensory motor development) भाषा विकास (Language development) संवेगात्मक विकास (Emotional development) सामाजिक (Social) इत्यादि विकासों का अध्ययन कर इसकी तुलना एक प्रौढ़ व्यक्ति से करता है और दोनों में कैसे और क्यों भिन्नता होती है, इस पर प्रकाश डालता है। विभिन्न क्रियाओं में परिपक्वता तथा सीखने (Maturation and learning) का क्या स्थान है इनका भी पता वह लगाता है। संक्षेप में यह बालकों के जीवन के शारीरिक मानसिक सामाजिक तथा संवेगात्मक विकासों का अध्ययन उनके जन्मकाल से प्रौढ़ावस्था तक करता है। ज[illegible]र में

कौन-कौन सी शक्तियाँ (Capacities) उनमे वर्त्तमान रहती हैं तथा उनके विकास मे वशानुक्रम तथा वातावरण (Heredity and Environment) का क्या असर पडता है, इसका भी अध्ययन करता है। इन सभी का अध्ययन उनकी क्रियाओ (आन्तरिक तथा शारीरिक) का नियन्त्रण करने, उनका निर्देशन करने तथा उनके बारे मे सही-सही भविष्यवाणी करने के हेतु किया जाता है, जिससे कि उनका भावी जीवन सफल हो।

अत बाल-मनोविज्ञान द्वारा अर्जित ज्ञान हमे प्रौढावस्था मे होने वाली क्रियाओ को ठीक-ठीक से समझने तथा उनके सही-सही विकास के सम्बन्ध मे समुचित ज्ञान प्राप्त करने में सहायक है।

पशु-मनोविज्ञान (Animal Psychology)— डार्विन (Darwin) महोदय के विकासवाद के सिद्धान्त ने यह साबित कर दिया है कि सबसे छोटे जीव, जैसे— अमीबा (Amoeba) जो सबसे सरल तथा निम्नकोटि के जीव है तथा मनुष्य जो विकासवाद की दृष्टि से सबसे ऊपर की सीढी पर है, दोनो के बीच एक अविच्छिन्न सम्बन्ध (Community) है। अत पशुओ के शरीर तथा मन (Body and mind) की बनावट (Structure) और उनके कार्यों (Functions) तथा उनके व्यवहारो का अध्ययन मानव-स्वभाव को अच्छी तरह समझने मे बहुत ही सहायता पहुँचाता है। दोनो मे विकासवाद की दृष्टि से सिर्फ विकास की मात्रा का ही अन्तर है। यानी विकासवाद की दृष्टि से निम्नकोटि के जीव सरल है तो उच्च कोटि के जीव जटिल। अस्तु, विकासवाद के जटिल प्राणियो का अध्ययन सरल रूप के प्राणियो की अपेक्षा अधिक कठिन है।

यही कारण है कि मनुष्य का अध्ययन पशुओ के अध्ययन से अधिक जटिल है। पशुओ की क्रियाएँ सरल तथा मनुष्यो की क्रियाएँ अत्यन्त ही जटिल होती हैं। पशुओं तथा मानवो मे सिर्फ विकास की मात्रा का ही अन्तर होने के कारण मनुष्यो की क्रियाओ का सरल रूप ही पशुओ मे पाया जाता है। यही कारण है कि पशुओं के व्यवहार का नियन्त्रण मानव के व्यवहारो के नियन्त्रण से सदा अधिक आसान है (Always easy to control the animal than human being)।

फलस्वरूप, मनोविज्ञान मे अधिकाश प्रयोग मानव पर न हो कर पशुओ पर किये गये है। उदाहरणार्थ, सीखने की क्रिया (learning) तथा मूल-प्रवृत्ति (Instincts) आदि के क्षेत्रो मे जो भी मनोवैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किये गये है वे अधिकतर पशुओ पर ही किये गये प्रयोगो के परिणामस्वरूप है। पशुओ पर किये गये अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो से मानवो के सीखने की क्रिया को समझने मे बहुत हद तक सहायता पहुँची है।

सवेग तथा मानसिक क्रियाओ का मस्तिष्क मे स्थान-निरूपण आदि से सम्बन्धित प्राप्त निष्कर्ष भी बहुत कुछ पशुओ के ऊपर किये गये प्रयोगो पर ही

आधारित हैं। यहाँ मानव-स्वभाव (Human nature) का एक समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए पशुओं तथा मानव व्यवहारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। अस्तु 'तुलनात्मक मनोविज्ञान (Comparative psychology) की संज्ञा भी दी जाती है। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि पशु-मनोविज्ञान पशुओं तथा मानव स्वभावों का एक तुलनात्मक अध्ययन मानव स्वभाव को भली भाँति समझने के हेतु करता है।

६. सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology)—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता है। वह अपने जन्मकाल से मृत्यु तक दूसरों के साथ रहता है। यह पाया गया है कि मनुष्यों के प्रत्यक्षीकरण चिन्तन, भाव संवेग इत्यादि प्रक्रियाओं में जब वह अकेला रहता है और जब वह दूसरों के साथ रहता है, बहुत भिन्नता पायी जाती है। अतः सामाजिक मनोविज्ञान मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन उन परिस्थितियों में करता है जब मनुष्य दूसरों के साथ रहता है या कहा जा सकता है कि जब वह किसी समाज या समुदाय का सदस्य रहता है उस समय उसके व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है कि कोई भी मनुष्य अकेला नहीं रह सकता है उसे समाज में रहना ही पड़ता है और जब वह समाज में रहेगा तो समाज का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। हालाँकि कुछ समय तक हम किसी व्यक्ति को शारीरिक रूप से (Pysically) दूसरों से बिल्कुल अलग रख सकते हैं पर उसको मानसिक रूप से (Psychologically) वैसा करना संभव नहीं। अतः सामाजिक वातावरण उसके प्रत्यक्षीकरण चिन्तन आदि क्रियाओं को प्रभावित (Influence) करता है। यही कारण है कि आजकल लोगों का विचार है कि सामान्य मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान में अन्तर करना उचित नहीं बल्कि दोनों में परस्पर सम्बन्ध है। दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते चूँकि दोनों का ध्येय मानव-स्वभाव का सही सही ज्ञान प्राप्त करना ही है।

मानव स्वभाव को ठीक-ठीक समझने (Understand) उसको नियन्त्रित करने (Control) तथा उसके बारे में सही-सही भविष्यवाणी (Predict) करने के लिए सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन अनिवार्य है। फिर भी ध्यान से देखने पर हम सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन के विषय को निम्नांकित प्रकार से बाँट सकते हैं—

(क) एक व्यक्ति का सम्बन्ध दूसरे व्यक्ति के साथ (Relation of one individual with another individual)।

(ख) एक व्यक्ति का सम्बन्ध समुदाय के साथ (Relation of one individual with the group or community)।

(ग) एक समुदाय का सम्बन्ध दूसरे समुदाय के साथ (Relation of one Community with another community)।

इसके अन्तर्गत हम बालक के सामाजीकरण (Socialisation of the child), नेतृत्व (Leadership), प्रचार (Propaganda), जनमत (Public opinion), सामाजिक क्रान्ति (Social revolution), सामाजिक सघर्ष (Social conflict), जातीय सघर्ष (Class conflict or Racial rivalry), मनोवृत्ति (Attitude), भिन्न-भिन्न प्रकार के सघ या समुदाय (Associations and groups) इत्यादि की समस्याओ तथा उन तथ्यो का विशेष रूप से अध्ययन करते है जो सामाजिक व्यवहार को ठीक-ठीक समझने मे मदद पहुँचाते हैं। अन्त मे यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त समस्या के अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान मानव-स्वभाव की सही-सही जानकारी मे सहायक सिद्ध होते है, चूँकि उपर्युक्त सभी बातें किसी-न-किसी रूप मे मनुष्य की अनुभूति तथा व्यवहार को प्रभावित करती है। इन सभी घटनाओ के ज्ञान की अनुपस्थिति मे मानव-स्वभाव (Human nature) का ज्ञान अधूरा रह जायगा तथा मानव-समाज के बारे मे की गयी भविष्यवाणी भी विश्वसनीय नही हो पायगी। अत हम कह सकते हैं कि सामाजिक मनोविज्ञान मनोवैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि मे बहुत मदद करता है।

७. असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology)—सामान्य मनोविज्ञान सामान्य प्रौढ (वयस्क) व्यक्तियो का अध्ययन करता है। सामान्य व्यक्ति उसे कहते है जिसका व्यवहार औसत व्यक्तियो के व्यवहार से मिलता-जुलता है। असामान्य मनोविज्ञान असामान्य वयस्को का अध्ययन करता है। असामान्य वयस्को का अध्ययन सामान्य वयस्को को अच्छी तरह समझने मे सहायता पहुँचाता है।

पहले यह समझा जाता था कि सामान्य और असामान्य मे गुण सम्बन्धी अन्तर है और जो असामान्य हो गया है वह सामान्य नही हो सकता है। पर शॉर्कों (Carcot), फ्रायड (Freud) आदि दूसरे मनोविश्लेषको ने यह साबित कर दिया है कि यह धारणा बिल्कुल गलत है, चूँकि दोनो मे, गुण-सम्बन्धी नही, बल्कि सिर्फ परिमाण-सम्बन्धी अन्तर है। असामान्य उसे ही हम कह सकते है जो कि सचमुच या तो सामान्य से कम है या अधिक।

उदाहरणार्थ—

घर बन्द करते वक्त ताला लगा चुकने के बाद सामान्य व्यक्ति ताले को एकाधबार हिला-डुलाकर देख लेता है कि ताला ठीक से बन्द हुआ था नही। परन्तु यदि कोई व्यक्ति यह समझने के लिए कि ताला ठीक से बन्द हो गया या नही, उस ताले को सैकडो बार हिला-डुलाकर देखता रहे, ताला लगाकर आगे बढे और फिर बार-बार लौट कर झकझोर कर देखे कि ताला खुला तो नही रह गया, तो इस प्रकार के व्यवहार को असामान्य व्यवहार कहेगे।

इसी प्रकार इसके कई एक अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते है, जैसे—सोने के वक्त बार-बार बिछावन के नीचे झाँकना कि कोई छिप कर घुसा हुआ तो नही है। हाथ गन्दा होने पर पानी से उसे साफ करना स्वाभाविक है। परन्तु यदि कोई

विधियाँ उपस्थित करता है जिनके फलस्वरूप उनका शिक्षण उचित और स्थायी हो पाता है। शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यक्तियों के लिए उचित शिक्षण प्रणाली की व्यवस्था से है। परन्तु उचित शिक्षण प्रणाली की व्यवस्था करने के लिए वंशानुक्रम के कारण बालकों की योग्यता तथा मानसिक शक्तियों में होने वाली वैयक्तिक विभिन्नता (Individual differences) पर भी विचार करना आवश्यक है।

शिक्षण का प्रभाव बाल्यकाल के प्रारम्भ में पड़ता है। इसलिए बाल मनोविज्ञान का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान के लिए आवश्यक है।

किस हद तक मानव-स्वभाव शिक्षण से प्रभावित हो सकता है, इसका पता लगाना शिक्षा मनोविज्ञान का एक मुख्य काम है। जीवन के हर क्षेत्र में अधिक कुशलता तथा सन्तोष होने के लिए उचित प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा-मनोविज्ञान का क्षेत्र करीब करीब मनोविज्ञान के ही क्षेत्र के इतना विस्तृत है फिर भी सुविधा के लिए इसके पूरे क्षेत्र कई अलग-अलग भागों में बाँट दिया गया है जैसे—वे सभी समस्याएँ जिनकी जानकारी शिक्षण कला (Art of teaching) के लिए प्रधान है, मनुष्य के कौन-कौन विशिष्ट गुण अथवा विशेषताएँ उनके माता पिता से प्राप्त होते हैं और उनमें से कितने उनको शिक्षण प्रणाली से मिलते हैं यहाँ इन सभी का पता-लगाना होता है। मनुष्य के प्रत्येक गुण चाहे उनकी उत्पत्ति का स्वरूप कुछ भी हो किसी-न किसी रूप में शिक्षण से परिमार्जित अवश्य होती है।

इसकी दूसरी समस्या शिक्षा को किसी तरह सबसे ज्यादा लाभदायक बनाने से सम्बन्ध रखती है। शिक्षा मनोविज्ञान की उपर्युक्त सामान्य समस्याओं (General problems) के अतिरिक्त इसकी अनेक विशिष्ट समस्याएँ (Specified problems) भी हैं जैसे—विशिष्ट प्रकार के बालकों के लिए शिक्षण विधि का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है अर्थात् विभिन्न प्रकार के बालकों के समक्ष विभिन्न प्रकार के तथ्यों को किस तरह रखा जाय, जिससे वे उनके लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हों इसकी जानकारी रखना भी शिक्षण मनोविज्ञान की एक प्रमुख समस्या है जैसे—मन्दबुद्धि (Dull) तीव्र बुद्धि (Bright) पिछड़े (Backward) तथा विभिन्न प्रकार की शारीरिक असुविधाओं से पीड़ित बालकों को किसी तरह शिक्षित किया जाय आदि। बालकों में शारीरिक तथा मानसिक भिन्नता के कारण उनको उपयुक्त प्रकार की शिक्षा देने के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का उपयोग करना आवश्यक है। यहाँ एक प्रकार के शिक्षण का दूसरे प्रकार के शिक्षण पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका अध्ययन भी किया जाता है।

इसके अतिरिक्त शिक्षा मनोविज्ञान की मदद से बालकों के ज्ञानार्जन की मात्रा को सही-सही रूप से मापने के लिए वैज्ञानिक विधियों को प्रस्तुत किया गया है। बहुत से टेस्ट (Tests) बालकों के ज्ञानार्जन की मात्रा को ठीक ठीक मापने के लिए बनाये गये हैं जिनकी सरलता एवं विश्वसनीयता पर हम भरोसा कर सकते हैं। इनकी जानकारी इस बात को जानने के लिए भी आवश्यक है कि कहाँ तक

विशेष प्रकार की शिक्षण-विधि (Method of teaching) विशिष्ट क्षेत्रो मे ज्ञानार्जन के लिए सफल सिद्ध हो पायी है।

यहाँ न सिर्फ बालको के ही व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है, बल्कि शिक्षको के भी व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा-मनोविज्ञान द्वारा किये गये अध्ययनो से पता चलता है कि किसी भी शिक्षण-प्रणाली को सफलता न सिर्फ बालको के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है, बल्कि बहुत अशो मे शिक्षक के अपने व्यक्तित्व पर भी निर्भर करती है।

सक्षेप मे हम कह सकते है कि शिक्षा-मनोविज्ञान व्यक्ति को शिक्षित करने मे मनोवैज्ञानिक नियमो का उपयोग करता है। इस उपयोग के फलस्वरूप जीवन के विविध पहलुओ मे व्यक्ति का उचित अभियोजन हो पाता है तथा वह एक सफल नागरिक भी बन सकता है। वर्त्तमान शिक्षण-प्रणाली दोषपूर्ण है, चूँकि आजकल उपयोग मे लायी गयी शिक्षण विधियाँ बालको के शारीरिक तथा मानसिक शक्तियाँ पर आधारित नही है। फलत वे उनके लिए उपयोगी सिद्ध नही होती है। लेकिन इस क्षेत्र मे अब शिक्षा-मनोवैज्ञानिको के सफल प्रयास के कारण काफी सुधार होता जा रहा है।

यह शिक्षा-मनोविज्ञान की ही देन है कि आज हम बालको मे पढना (Reading), लिखना (Writing) तथा तर्क-शक्ति (Reasoning) की शिक्षा उनकी उम्र (Age), योग्यता (Ability) तथा झुकाव (Attitude) के आधार पर देने का प्रयास करते है। शिक्षा-मनोविज्ञान की सहायता से उनके मस्तिष्क (Brain) तथा हाथ (Hand) का एक साथ सर्वोचित, सम्यक् एव सन्तुलित विकास करने का प्रयास सफल हो रहा है।

एक सफल शिक्षण-प्रणाली हम उसे कहेंगे जिसमे शिक्षा का कार्यक्रम बालको मे वर्त्तमान शारीरिक तथा मानसिक शक्तियो, उनके झुकाव, अभिरुचि मे विभिन्नता तथा उन सभी बातो को ध्यान मे रखे, जिन पर किसी भी शिक्षा प्रणाली की सफलता निर्भर करती है। ऐसी शिक्षण-प्रणाली के लिए मनोविज्ञान के क्षेत्र मे किये गये विभिन्न अन्वेषणो एव प्रयोगो पर आधारित निष्कर्षों की मदद से बने सामान्य नियमो का उपयोग करना आवश्यक है।

२ **औद्योगिक तथा व्यावसायिक मनोविज्ञान** (Industrial and Vocational Psychology) —(क) **औद्योगिक मनोविज्ञान** (Industrial Psychology) — पहले जब मनोविज्ञान का उपयोग उद्योग-धन्धो के क्षेत्र मे नही किया गया था तो लोगो का यह विचार था कि जिस तरह एक मशीन से काम लिया जा सकता है, उसी तरह एक मजदूर से भी काम लिया जा सकता है। उनका यह भी विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति सभी कार्य को सफलतापूर्वक कर सकता है। पर व्यावहारिक जीवन (Practical life) मे ये दो धारणाएँ बिलकुल गलत साबित हुई। इसके फलस्वरूप काफी मात्रा मे श्रम-बर्बादी (Labour wastage), कार्य अकुशलता

विधियाँ उपस्थित करता है जिनके फलस्वरूप उनका शिक्षण उत्तम और स्थायी हो जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यक्तियों के लिए उचित शिक्षण प्रणाली की व्यवस्था से है। परन्तु उचित शिक्षण प्रणाली की व्यवस्था करने के लिए वंशानुक्रम के कारण बालकों की योग्यता तथा मानसिक शक्तियों में होने वाली वैयक्तिक विभिन्नता (Individual differences) पर भी विचार करना आवश्यक है।

शिक्षण का प्रभाव बाल्यकाल के प्रारम्भ में पड़ता है। इसलिए बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान के लिए आवश्यक है।

किस हद तक मानव-स्वभाव शिक्षण से प्रभावित हो सकता है इसका पता लगाना शिक्षा मनोविज्ञान का एक मुख्य काम है। जीवन के हर क्षेत्र में अधिक सुगमता तथा सन्तोष होने के लिए उचित प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा-मनोविज्ञान का क्षेत्र करीब-करीब मनोविज्ञान के ही क्षेत्र के इतना विस्तृत है फिर भी सुविधा के लिए इसके पूरे क्षेत्र को कई अलग-अलग भागों में बाँट लिया गया है जैसे—वे तमाम समस्याएँ जिनकी जानकारी शिक्षण कला (Art of teaching) के लिए प्रधान है, मनुष्य के कौन-कौन विशिष्ट गुण अथवा विशेषताएँ उनके माता पिता से प्राप्त होते हैं और उनमें से कितने उनकी शिक्षण प्रणाली से मिलते हैं यहाँ इन सभी का पता-लगाना होता है। मनुष्य के प्रत्येक गुण, चाहे उनकी उत्पत्ति का स्वरूप कुछ भी हो किसी-न किसी रूप में शिक्षण से परिमार्जित अवश्य होता है।

इसकी दूसरी समस्या शिक्षा को किसी तरह सबसे ज्यादा लाभदायक बनाने से सम्बन्ध रखती है। शिक्षा-मनोविज्ञान की उपर्युक्त सामान्य समस्याओं (General problems) के अतिरिक्त इसकी अनेक विशिष्ट समस्याएँ (Specified problems) भी हैं जैसे—विशिष्ट प्रकार के बालकों के लिए शिक्षण विधि का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है अर्थात विभिन्न प्रकार के बालकों के समक्ष विभिन्न प्रकार के तथ्यों को किस तरह रखा जाय, जिससे वे उनके लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हों इसकी जानकारी रखना भी शिक्षण मनोविज्ञान की एक प्रमुख समस्या है, जैसे—मन्दबुद्धि (Dull) तीव्र बुद्धि (Bright) पिछड़े (Backward) तथा विशेष प्रकार की शारीरिक असुविधाओं से पीड़ित बालकों को किस तरह शिक्षित किया जाय आदि। बालकों में शारीरिक तथा मानसिक भिन्नता के कारण उनको उपर्युक्त प्रकार की शिक्षा देने के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का उपयोग करना आवश्यक है। यहाँ एक प्रकार के शिक्षण का दूसरे प्रकार के शिक्षण पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका अध्ययन भी किया जाता है।

इसके अतिरिक्त शिक्षा-मनोविज्ञान की मदद से बालकों के ज्ञानार्जन की मात्रा को सही-सही रूप में मापने के लिए वैज्ञानिक विधियों को प्रस्तुत किया गया है। बहुत से टेस्ट (Tests) बालकों के ज्ञानार्जन की मात्रा को ठीक ठीक मापने के लिए बनाये गये हैं जिनकी सत्यता एवं विश्वसनीयता पर हम भरोसा कर सकते हैं। इनकी जानकारी इस बात को जानने के लिए भी आवश्यक है कि कहाँ तक

विशेष प्रकार की शिक्षण-विधि (Method of teaching) विशिष्ट क्षेत्रो मे ज्ञानार्जन के लिए सफल सिद्ध हो पायी है।

यहाँ न सिर्फ बालको के ही व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है, बल्कि शिक्षको के भी व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा-मनोविज्ञान द्वारा किये गये अध्ययनो से पता चलता है कि किसी भी शिक्षण-प्रणाली की सफलता न सिर्फ बालको के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है, बल्कि बहुत अशो मे शिक्षक के अपने व्यक्तित्व पर भी निर्भर करती है।

सक्षेप मे हम कह सकते है कि शिक्षा-मनोविज्ञान व्यक्ति को शिक्षित करने मे मनोवैज्ञानिक नियमो का उपयोग करता है। इस उपयोग के फलस्वरूप जीवन के विविध पहलुओ मे व्यक्ति का उचित अभियोजन हो पाता है तथा वह एक सफल नागरिक भी बन सकता है। वर्त्तमान शिक्षण-प्रणाली दोषपूर्ण है, चूँकि आजकल उपयोग मे लायी गयी शिक्षण विधियाँ बालको के शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों पर आधारित नही है। फलत वे उनके लिए उपयोगी सिद्ध नही होती है। लेकिन इस क्षेत्र मे अब शिक्षा-मनोवैज्ञानिको के सफल प्रयास के कारण काफी सुधार होता जा रहा है।

यह शिक्षा-मनोविज्ञान की ही देन है कि आज हम बालको मे पढना (Reading), लिखना (Writing) तथा तर्क-शक्ति (Reasoning) की शिक्षा उनकी उम्र (Age), योग्यता (Ability) तथा झुकाव (Attitude) के आधार पर देने का प्रयास करते है। शिक्षा-मनोविज्ञान की सहायता से उनके मस्तिष्क (Brain) तथा हाथ (Hand) का एक साथ समुचित, सम्यक् एव सन्तुलित विकास करने का प्रयास सफल हो रहा है।

एक सफल शिक्षण-प्रणाली हम उसे कहेंगे जिसमे शिक्षा का कार्यक्रम बालको मे वर्त्तमान शारीरिक तथा मानसिक शक्तियो, उनके झुकाव, अभिरुचि मे विभिन्नता तथा उन सभी बातो को ध्यान मे रखे, जिन पर किसी भी शिक्षा प्रणाली की सफलता निर्भर करती है। ऐसी शिक्षण-प्रणाली के लिए मनोविज्ञान के क्षेत्र मे किये गये विभिन्न अन्वेषणो एव प्रयोगो पर आधारित निष्कर्षो की मदद से बने सामान्य नियमो का उपयोग करना आवश्यक है।

२ **औद्योगिक तथा व्यावसायिक मनोविज्ञान** (Industrial and Vocational Psychology) —(क) **औद्योगिक मनोविज्ञान** (Industrial Psychology) — पहले जब मनोविज्ञान का उपयोग उद्योग-धन्धो के क्षेत्र मे नही किया गया था तो लोगो का यह विचार था कि जिस तरह एक मशीन से काम लिया जा सकता है, उसी तरह एक मजदूर से भी काम लिया जा सकता है। उनका यह भी विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति सभी कार्य को सफलतापूर्वक कर सकता है। पर व्यावहारिक जीवन (Practical life) मे ये दो धारणाएँ बिलकुल गलत साबित हुई। इसके फलस्वरूप काफी मात्रा मे श्रम-बर्बादी (Labour wastage), कार्य अकुशलता

(Inefficiecy in work), दुर्घटना (Accidents) तथा मजदूरों में हेर-फेर (Labour turn-over) इत्यादि होते रहते थे। इन सभी का बहुत बुरा वयक्तिक (Individual) आर्थिक (Economic) और सामाजिक (Social) असर पड़ता था। पर धीरे धीरे लोगों में जागृति हुई और सरकार भी इस ओर ध्यान देने लगी जिसके फलस्वरूप कारखानों के मालिकों को एक ऐसे तरीके का पता लगाना आवश्यक हो गया जिससे उसको अधिक-से-अधिक आर्थिक लाभ होने के साथ साथ ज्यादा से-ज्यादा श्रम कल्याण (Labour welfare) भी हो। इसी समय मनोवैज्ञानिको ने उनकी मदद की और यह पता लगाया कि उद्योग धन्धों के क्षेत्र में विभिन्न मनोवैज्ञानिक नियम (Psychological principles) का उपयोग कर हम कारखाना सम्बन्धी सभी समस्याओं को हल कर सकते है जिसके फलस्वरूप कारखानों के मालिक तथा मजदूर दोनों अधिक-से-अधिक लाभान्वित होंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि औद्योगिक मनोविज्ञान के विशेष रूप से दो ध्येय हैं—(१) उद्योग धन्धो के क्षेत्र में मनोविज्ञान का उपयोग कर कारखानों के मालिकों को अधिक-से-अधिक आर्थिक लाभ पहुँचाना तथा (२) इसके साथ साथ अधिक-से अधिक श्रम-कल्याण करना।

जब उद्योग धन्धों के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का उपयोग नही किया गया था, तब इन दोनों बातों की कमी थी, पर विशेषकर दूसरी बात की कमी अधिक थी। उपर्युक्त दोनों ध्येयों की प्राप्ति के लिए औद्योगिक कुशलता (Industrial efficiency का होना आवश्यक है। औद्योगिक कुशलता निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है— किसी भी काम के लिए उचित व्यक्ति का चुनाव करना (Selection of the right person for the Job)। मनोविज्ञान ने वैयक्तिक विभिन्नता (Individual difference) को सिद्ध कर दिया है और यह भी पता लगाया है कि प्रत्येक व्यक्ति हर काम को सफलतापूर्वक नही कर सकता है। इसलिए काम-कुशलता के लिए उन्ही व्यक्तियों को चुनना चाहिए जिसमे उस काम को सफलतापूर्वक करने के लिए आवश्यक शारीरिक तथा मानसिक शक्तियां गुण, झुकाव तथा अभिरुचि सभी उपयुक्त मात्रा में वर्त्तमान हों। इसके लिए कार्य विश्लेषण की बहुत-सी विधियाँ (Methods of job-analysis) प्रस्तुत की गयी हैं। इनकी मदद से कार्य की आवश्यकताओं (Requirment of the job) का पता लगाया जाता है। नौकरी के लिए आवेदन-पत्र दिये हुए व्यक्तियों में वर्त्तमान शारीरिक और मानसिक शक्तियों गुणो झुकाव और अभिरुचियों का सही-सही तथा विश्वसनीय रूप में पता लगाने के लिए वस्तुनिष्ठ विधियाँ जैसे—साक्षात्कार का तरीका (Interview) सही और विश्वसनीय टेस्ट (Valid and Reliable Tests) आदि का निर्माण कर उनका उपयोग किया जाता है। कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए जिन जिन बातों की आवश्यकताए हैं यदि व्यक्ति मे उपयुक्त मात्रा में वर्त्तमान हैं तो उनका चुनाव उस कार्य के लिए किया जाता है। फिर उचित चुनाव के बाद चुने हुए व्यक्तियों को उपयुक्त प्रशिक्षण (Training) देना भी आव

श्यक है जिससे वे उस कार्य विशेष को ठीक से करने के तरीको को जल्द-से-जल्द सीख ले। इस पर भी औद्योगिक कुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है।

औद्योगिक कुशलता के लिए उपयुक्त भौतिक वातावरण (Physical environment) का होना आवश्यक है। भौतिक वातावरण के अन्तर्गत रोशनी (Light) एव वायुमण्डल-सम्बन्धी स्थितियो (Atmospheric conditions) जैसे—तापक्रम (Temperature), हवा की गति (Air movement) और आर्द्रता (Humidity), शोरगुल (Noise), कार्य करने की अवधि (Hours of work) तथा विश्राम (Rest) इत्यादि पर विचार किया जाता है। ये सभी बहुत हद तक कार्य-कुशलता को प्रभावित करते हैं।

प्रयोगात्मक अध्ययनो से पता चलता है कि कार्यकुशलता के लिए न सिर्फ उपयुक्त भौतिक वातावरण का ही होना काफी है, बल्कि मानसिक वातावरण का भी होना उतना ही आवश्यक है। कुछ मनोवैज्ञानिको का तो कहना है कि औद्योगिक कुशलता के लिए मानसिक वातावरण का महत्त्व भौतिक वातावरण से कही अधिक है। इसमे उद्योग-धन्धो के सामाजिक पहलुओ (Social aspects) पर ध्यान दिया जाता है। जैसे—(i) एक मजदूर के साथ दूसरे मजदूर का सम्बन्ध, (ii) एक मजदूर समुदाय का दूसरे मजदूर-समुदाय के साथ सम्बन्ध, (iii) मजदूरो का मालिको के साथ और (iv) मालिको का मजदूरो के साथ सम्बन्ध। इन विभिन्न सम्बन्धो की जानकारी मजदूरो और मालिको के आपसी सम्बन्ध को सन्तोषजनक बनाने के लिए आवश्यक है। मजदूरो एव मालिको को आपसी सन्तोषजनक सम्बन्ध पर भी कार्य-कुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है।

आरम्भ-काल मे मजदूरो के आपसी सम्बन्ध तथा मजदूरो और मालिको के बीच के सम्बन्ध पर ध्यान नही दिया जाता था जिससे मजदूर बहुत असन्तुष्ट रहते थे। इसके फलस्वरूप मजदूरो से हेर-फेर (Labour turn-over), हड़ताल (Strikes) आदि बहुत होते थे। यहाँ तक की कारखाना मे ताला (Lock-out) भी लग जाता था। इससे कारखानो के मालिको को तो हानि होती ही थी, मजदूरो को भी कुछ कम हानि नही होती थी। इसका सारे समाज पर भी बहुत बुरा असर पड़ता है।

मानसिक वातावरण के अन्तर्गत हम विशेषकर दो बातो का ध्यान रखते है पहला, मानसिक थकावट (Boredom) और दूसरा, मालिको एव मजदूरो का आपसी सम्बन्ध जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

उपर्युक्त समस्याओ के अतिरिक्त निम्नलिखित समस्याओ का भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर उनको हल करने की यथासम्भव चेष्टा औद्योगिक मनोविज्ञान करता है, जैसे—(१) कारखानो मे दुर्घटनाएँ (Accidents), (२) शारीरिक थकावट (Fatigue), (३) पारिश्रमिक की विभिन्न पद्धतियो की उपयोगिता (Effecti-

veness of different methods of payment) तथा (४) मजदूरो की सन्तुष्टि से सम्बन्धित बातें (Facts related to satisfation of workers)।

सक्षप मे हम कह सकते हैं कि औद्योगिक मनोविज्ञान उन सभी समस्याओ का जिनके ऊपर औद्योगिक कुशलता बहुत हद तक निभर करती ह एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन (वज्ञानिक विधियों द्वारा) उनको हल करने के हेतु करता है। इसके अध्ययन की विधियाँ प्रयोगात्मक तथा क्षेत्रीय अध्ययन (Field study) है। इसके फलस्वरूप उत्पादन के परिमाण (Quantity) तथा गुण (Quality) दोनो मे काफी वृद्धि हुई और मजदूर भी प्राय पहले से अधिक सन्तुष्ट हो गये।

अत हम कह सकते है कि मनोविज्ञान का उपयोग उद्योग धन्धो के क्षत्र मे मजदूर तथा मालिक दोनो के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ।

१ व्यावसायिक मनोविज्ञान (Vocational Psychology)—व्यवसाय सम्बन्धी बातों में भी मनोविज्ञान का उपयोग गत कुछ वर्षों से होने लगा है। इस क्षेत्र मे मनोविज्ञान का उपयोग होने के पहले लोगों का विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति सभी काम को कुशलतापूवक कर सकता है। पर मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनो द्वारा साबित कर दिया है कि यह बिल्कुल ही गलत धारणा है। उन्होंने बतलाया कि हम वयक्तिक विभिन्नता को कभी स्वीकार नही कर सकते है। यहाँ पर निम्न लिखित दो बातों पर ध्यान देना चाहिये। पहली किसी भी दो व्यक्तियों की शारीरिक मानसिक तथा सवेगात्मक बनावट समान नहीं होती है। दूसरी प्रत्येक काम को भली भाँति करने क लिए विभिन्न प्रकार की शारीरिक एव मानसिक बनावट की आवश्यकता है। इन दोनों से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक व्यक्ति सभी कार्यों को नही कर सकता है और यदि कर भी सकता है तो उसकी कार्य-कुशलता मे काफी वयक्तिक विभिन्नता होगी। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता मानसिक शक्ति रूचि काम तथा अभिरुचि के अनुकूल ही काय सौंपा जाय अन्यथा वह अपने व्यावसायिक अभियोजन (vocational adjustment) मे असफल होगा तथा उसका अपने काम मे मन नही लगेगा और इसका उसके सारे जीवन पर बहुत बुरा असर पडेगा जिसका प्रभाव समाज पर भी पडे बिना नही रहेगा।

इसे एक उदाहरण से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है—यदि कोई व्यक्ति जिसमे एक सफल टाइपिस्ट होने के गुण नही है—एक टाइपिस्ट के पद पर बहाल हो जाता है तो इस काम को वह सफलतापूवक नही कर पायगा। सम्भवत वह कुछ समय के बाद अपने विषय मे यह भी सोचने लग सकता ह कि वह किसी भी काम के लायक नही है। वह जिवन से निराश हो सकता है। इस निराशा और असफलता की भावना के फलस्वरूप वह एक अपराधी अथवा पागल बन जा सकता है। ऐसा व्यक्ति प्राय आत्महत्या करते भी पाया गया ह। इस तरह वह समाज के लिए भी हानिकारक सिद्ध होगा। अर्थात व्यवसाय मे असफल अभियोजन न सिर्फ व्यक्ति विशेष के लिए ही हानिकारक ह बल्कि सारे समाज के लिए हानिकारक सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों दृष्टिकोणों से यह अत्यावश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता, मानसिक शक्ति, झुकाव तथा अभिरुचि के अनुसार ही काम दिया जाय।

व्यावसायिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यावसायिक निर्देशन (Vocational-guidance) से सम्बन्धित है, अर्थात् इसका ध्येय व्यक्ति के लिए एक सर्वोत्तम व्यवसाय का पता लगाना है जिसमे व्यक्ति अपना सफल अभियोजन कर सके। सफल अभियोजन के लिए दो बातो की आवश्यकता है (1) व्यक्ति की योग्यता, मानसिक शक्ति, झुकाव तथा अभिरुचि का सही-सही पता लगाया जाय।

(ii) प्रत्येक कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए उपर्युक्त बातें किस मात्रा मे व्यक्ति मे होनी चाहिए—इसकी जानकारी की जाय। अर्थात् व्यावसायिक निर्देशन मे दो बातो की आवश्यकता पड़ती है— (१) व्यक्ति विश्लेषण (Workers analysis) को तथा (२) कार्य-विश्लेषण (Work analysis) की। इन दोनो कार्यो को ठीक-ठीक करने के लिए मनोवैज्ञानिको ने व्यक्ति की योग्यताओ, मानसिक शक्तियो, झुकाव और अभिरुचियो की सही-सही जाँच करने के लिए बहुत से वैज्ञानिक मापन-विधियो का निर्माण किया है। कार्य-विश्लेषण की बहुत सी विधियो का उपयोग मनोवैज्ञानिको ने कार्य की आवश्यकताओ की एक सूची तैयार करने के लिए किया है। इस तरह व्यावसायिक मनोविज्ञान द्वारा व्यक्तियो के लिए सर्वोत्तम व्यवसाय का पता लगाकर उन्हे उचित व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन दिया जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि व्यावसायिक मनोविज्ञान का ध्येय व्यवसाय के लिए सर्वोचित व्यक्ति के चुनाव (Vocational selection) करने से भिन्न है जो औद्योगिक मनोविज्ञान की एक प्रमुख समस्या है। जहाँ औद्योगिक मनोविज्ञान किसी व्यवसाय के लिए सर्वोचित व्यक्ति का चुनाव करता है वहाँ व्यावसायिक मनोविज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए सर्वोत्तम व्यवसाय का पता लगाता है। अर्थात् व्यावसायिक मनोविज्ञान का उद्देश्य केवल व्यवसाय-निर्देशन (Vocational guidance) है।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य एक बहुत ही मुख्य बात यह है कि बालको के वयस्क हो जाने पर व्यावसायिक निर्देशन करना अधिकांश रूप मे लाभदायक सिद्ध नही होता है, जैसे — यदि किसी व्यक्ति मे एक अभिनेता होने की जितनी भी आवश्यक विशेषताएँ है, सभी वर्तमान हो पर उसे कला (Art) की शिक्षा न दी गयी हो तो यह कहना कि वह एक सफल अभिनेता हो सकता है, सर्वथा निरर्थक ही नही वल्कि हानिकारक भी होगा। अस्तु, बाल्यावस्था मे ही बालको के झुकाव, योग्यता तथा अभिरुचि का पता लगाना आवश्यक है। इससे उन्हे उचित दिशा मे प्रारम्भ से ही शिक्षा दी जा सकेगी। फल यह होगा कि वे अपने जीवन मे अपनी योग्यता के अनुसार उपयुक्त धन्धा प्राप्त कर सुखी हो सकेंगे। पाश्चात्य देशो मे तो इस दिशा मे काफी प्रगति हुई है। पर अब हमारा देश भी इस ओर ध्यान दे रहा है। विहार राज्य की राजधानी पटना (Patna) मे स्थित शिक्षा एव व्यावसायिक मार्ग-दर्शन

कार्यालय (Educational and Vocational Guidance Bureau) इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है।

३ औपचारिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology)—शार्को (Charcot) मेसमर (Mesmer) फ्रायड (Freud) इत्यादि मनोविश्लेषकों ने अपने अध्ययन के आधार पर यह साबित कर दिया कि सामान्य और असामान्य व्यवहारों में सिर्फ परिमाण-सम्बन्धी अन्तर है। साथ ही-साथ जो असामान्य है उन्हें सुधार कर सामान्य भी बनाया जा सकता है।

औपचारिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध निम्नलिखित विभिन्न प्रकार की मानसिक असामान्यताओं जैसे (क) मानसिक बीमारियाँ (Mental diseases) (ख) लैंगिक विकृतियाँ (Sexual perversions) चारित्रिक व्याधि (Character disorder) इत्यादि से है। इन सब असामान्यताओं को दूर करने के हेतु यह सामान्य तथा असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त तथ्यों का उपयोग करता है। इन असामान्यताओं को दूर करने के लिए यह इन मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग करता है—सजेशन (Suggestion) सम्मोहन (Hypnosis) मनोविश्लेषण (Psycho analysis) अनियन्त्रित साहचर्य (Uncontrolled association) स्वप्न विश्लेषण (Dream analysis) पुन शिक्षण (Re-education) विश्राम विधि (Relaxation) आघात चिकित्सा (Shock therapy) शल्य चिकित्सा (Surgical therapy), सामूहिक चिकित्सा (Group therapy) व्यावसायिक चिकित्सा (Occupational therapy) जल चिकित्सा (Hydro-therapy) तथा मनोअभिनय (Psycho-drama) इत्यादि।

इसका एक मानध्येय सभी व्यक्तियों को एक सफलतापूर्वक अभियोजित व्यक्ति बनाना है, इसलिए यह केवल असामान्य व्यक्तियों की ही चिकित्सा पर ध्यान नहीं देता है बल्कि सभी की पूरी-पूरी जाँच (शारीरिक तथा मानसिक) कर उनके मानसिक स्वास्थ्य (Mental hygiene) को ठीक रखने के हेतु निर्देशन करता है। यह मानसिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए लोगों को उचित वातावरण भी देता है जिससे कि उनमें मानसिक असामान्यता की शिकायत हो ही नहीं।

इसका ध्येय यह भी है कि चिकित्सा से संयम उत्तम है (Prevention is always better than cure)। संयम तथा चिकित्सा दोनों कार्यों के लिए पाश्चात्य देशों में जगह जगह औपचार-गृह (Clinic) भी खोले गये हैं पर दुर्भाग्यवश इस ओर हमारा देश बिलकुल ही पिछड़ा है।

४ चिकित्सा-मनोविज्ञान (Medical Psychology)—डाक्टरों के पास आने वाले शारीरिक रोगों से पीड़ित अधिकांश लोग वस्तुतः किसी-न किसी मानसिक बीमारी से पीड़ित पाये जाते हैं अर्थात् उनकी शारीरिक बीमारियों का मानसिक आधार पाया जाता है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। शारीरिक रोगों में भी मन (Mind) का प्रभाव रहता है जैसे—पेट की

बीमारियाँ (Gastric trouble), पाचन-क्रिया सम्बन्धी बीमारियाँ, अँतडी मे घाव (Peptic ulcer), रक्तचाप का काफी अधिक हो जाना (Increase in blood-Pressure) इत्यादि रोग बहुत हद तक शक की बीमारियाँ हैं जो मानसिक चिन्ता रहने के कारण होता है अर्थात् उनका मानसिक आधार रहता है। ये बीमारियाँ सवेगात्मक असन्तुलन (Emotional unbalance) के कारण भी होती हैं। यहाँ तक देखा गया है कि प्रत्येक बीमारी जिसका उद्गम शारीरिक आधार (Organic origin) है, वे सब मानसिक चिन्ता (Mental anxiety) होने से बढ जाती है और यदि मनुष्य खुश रहे, चिन्ता कम करे, तो ये बीमारियाँ जल्द अच्छी हो जाती है।

अत मनोविज्ञान की सहायता से इन बीमारियो की चिकित्सा करने का प्रयास किया गया है और इसमे बहुत हद तक सफलता भी मिली है। इस तरह शारीरिक बीमारियो की चिकित्सा मे भी मनोविज्ञान बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अपराध-सम्बन्धी मनोविज्ञान (Criminal Psychology)—इस क्षेत्र मे मनोविज्ञान के पूर्व लोगो की धारणा थी कि जो अपराध करता है वह कभी भी अपने को समाज मे अभियोजित नही कर सकता है, चूँकि ऐसे व्यक्ति जन्म से ही अपराधी होते है। उनका विचार था कि समाज के लिए ये लोग खतरनाक होते है। अत उन्हे समाज से अलग ही रखना उचित है। इसी धारणा के अनुसार जितने भी लोग अपराध करते है प्राय जेल जाने कि सजा दी जाती है। पर इस क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिको द्वारा किये गये अध्यायनो से प्राप्त तथ्यो ने यह साबित कर दिया है कि शारीरिक बीमारियो की तरह अपराध करना भी एक प्रकार की असामान्यता (Abnormality) है, जिसका सर्वदा एक मानसिक आधार होता है। अपने जन्म-काल से ही कोई अपराधी नही रहता वल्कि आगे चलकर वह वैसा हो जाता है। उसे अपराधी बनाने मे उसके वशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण का अधिक हाथ रहता है। कोई एक दिन मे समाज-विरोधी (Anti-social) नही हो जाता है वल्कि धीरे-धीरे निम्नलिखित कारणो से अपराधी हो जाता है—(क) बुरे माता-पिता होने से (Bad Parents), (ख) खराब आर्थिक स्थिति से (Bad economic condition) (ग) दूषित वातावरण से (Bad environment), (घ) सवेगात्मक (Emotional) तथा मानसिक (Mental) असन्तुलन इत्यादि से। अर्थात् असन्तुलित व्यक्तित्व (Unblanced personality) के कारण ही कोई अपराधी बन जाता है। अस्तु, सिर्फ अपराधियो का पता लगाकर उनको यथोचित सजा देने मे अपराधियो का कल्याण सभव नही है, वल्कि अपराधो के सही-सही कारणो का पता लगाकर उन्हे दूर करना आवश्यक है।

आजकल अपराधो का पाश्चात्य देशो मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर उनके निवारण का प्रयास किया जा रहा है। अपराध न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि अपराध-सम्बन्धी सभी कारणो का सही-सही वैज्ञानिक रूप से पता लगाकर उन्हे दूर किया जाय। किसी को अपराध करने पर, जेल मे भेजकर उसमे अपराध करने

के कारण को दूर नहीं किया जा सकता है बल्कि कुछ समय तक उसे वसा करने से रोका जाता है। उन्हें स्थायी रूप से सुधार के लिए तो मनोविज्ञान की सहायता लेना ही आवश्यक है। हमारा देश भी इस दिशा में प्रगति कर रहा है। इसके फलस्वरूप बाल अपराध योजना-सम्बन्धी न्यायालय (Juvenile Courts) तथा बाल अपराध-सुधार केन्द्र (Reformatory Centres) की स्थापना हुई है जहाँ मनोवैज्ञानिक अध्ययन द्वारा प्राप्त तथ्यों का उपयोग कर बाल अपराधियों को दण्ड दिया जाता है अथवा उनकी चिकित्सा की जाती है। इस प्रकार उन्हें एक सफल अभियोजित व्यक्ति बनाने की चेष्टा की जाती है।

हमारे बिहार राज्य के हजारीबाग में स्थित बाल-अपराध-सुधार-केन्द्र (Reformatory Centre) इसका एक जीता-जागता उदाहरण है।

६. कानून-सम्बन्धी मनोविज्ञान (Legal Psychology)—आज मनोविज्ञान का उपयोग कानून एवं न्याय-सम्बन्धी क्षेत्र में भी किया जाने लगा है। मनोवैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग के फलस्वरूप अपराधियों का सही-सही पता लगाने में बहुत ही सहायता मिली है जैसे—झूठ का पता लगाने की मापन विधि और यन्त्र आदि का उपयोग अपराधियों का सही-सही पता लगाने में किया जाता है, जैसे—Lie detection Test Psycho-galvanometer आदि।

इन मनोवैज्ञानिक नियमों एवं अपराधों का पता लगाने की विधि के उपयोग के कारण कानून सम्बन्धी बातों में भी काफी परिवर्तन हुआ है। आज अपराधियों को भी अन्य मानसिक असामान्यताओं की तरह एक असामान्यता (Abnormality) से पीड़ित व्यक्ति समझा जाता है। इसलिए उन्हें जेल की सजा न देकर उनकी चिकित्सा मनोवैज्ञानिक रूप से करने की कोशिश भी जा रही है।

मनोविज्ञान की उपयोगिता
(Uses of Psychology)

अन्य विज्ञान की तरह मनोविज्ञान का अपना एक ध्येय है। मनोविज्ञान का ध्येय मनुष्यों की अनुभूतियों तथा व्यवहारों का उचित अध्ययन कर उसका सही रूप में समझना तथा उनको नियन्त्रण करना है। इसी तरह यह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान की सहायता से हमें मनुष्यों के बारे में सही-सही ज्ञान मिल जाता है। हम इसकी मदद से न सिर्फ दूसरों का ही समझ... [illegible] ...रि अपने आपको भी समझने में समर्थ होते हैं। अपने तथा दूसरों के... [illegible] ...ों का ज्ञान हमें इसकी म... से मिल पाता है। क्यों... [illegible] ...तथा दूसरों के बारे में ज्ञान इसके द्वारा [illegible] ...२१४। को आवश्यकतानुसार नियन्त्रण क... तथा दूसरे के बारे में ज्ञान प्राप्त ... पूर्वक अभियोजन करने में समर्थ

सुखी हो पाता है बल्कि सम्पूर्ण समाज का जीवन सुखमय होता है। समाज मनोविज्ञान का उल्लेख करते समय यह स्पष्ट कर दिया गया है कि किस प्रकार मनोविज्ञान की सहायता से केवल व्यक्तिगत जीवन ही नही बल्कि सामाजिक जीवन (Social life) भी सुखी हो पाता है।

असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology) की मदद से अब असामान्य व्यक्तियो का इलाज हो रहा है। मनोविज्ञान की इस शाखा के प्रादुर्भाव के पूर्व लोगो का यह विचार था कि जो एक बार असामान्य हो गया है वह आजीवन सामान्य नही हो सकता है। परन्तु अब यह धारणा बिल्कुल ही गलत साबित हो चुकी है और बहुत हद तक असामान्य का सुधार हो पाया है।

बाल-मनोविज्ञान (Child Psychology) की सहायता से बालको मे सही-सही विकास लाने मे मदद मिलती है। इसकी मदद से बालको के गुण एवं दोष दोनो का पता चल जाता है और जब बालको का उचित विकास नही होता है तो उसके कारणो (Causes) का पता लगाकर यही विज्ञान उनके उचित विकास मे सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार यह बालको को एक सफल नागरिक बनने मे मदद पहुँचाता है।

शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology) द्वारा शिक्षा के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक ज्ञान (Psychological knowledge) का उपयोग होने के कारण अब बालको को उनकी योग्यताएँ तथा अभिरुचियो के अनुकूल शिक्षा दी जाती है। फलत. अब उनकी योग्यताओ का सदुपयोग हो पा रहा है। मनोविज्ञान की मदद से अब मनोवैज्ञानिक विभिन्न प्रकार के मानसिक तथा शारीरिक त्रुटियो से पीडित बालको को उचित शिक्षा दे पा रहा है जिससे उनका जीवन भी सफल हो पाया है।

आज मनोविज्ञान की ही देन है कि उद्योग-धन्धो (Industries) के क्षेत्र मे भी काफी उन्नति हो पायी है। कारखानो के मालिक तथा मजदूर दोनो इससे लाभान्वित हुए हैं। मनोविज्ञान की मदद से ही व्यक्तियो को उनकी योग्यताएँ तथा अभिरुचियो के अनुकूल उचित कार्य-निर्देशन (Vocational guidance) मिल पा रहा है जिसके फलस्वरूप उनका जीवन सुखी हो पाया है।

व्यापार (Trade) के कुछ क्षेत्र मे भी प्रतिदिन हम मनोविज्ञान का उपयोग होते देखते हैं। सफल विज्ञापन (Advertisement) तथा प्रचार (Propaganda) व्यापार की उन्नति के लिए आवश्यक है। परन्तु यह मनोवैज्ञानिक ज्ञान के अभाव मे सम्भव नही है। अत व्यापार की उन्नति मे भी मनोविज्ञान की उपयोगिता काफी है।

न्यायालयो (Courts) मे भी मनोविज्ञान की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। आज इसकी मदद से अपराधियो का सही-सही पता लगाने मे काफी मदद मिल रही है। मनोविज्ञान की सहायता से न सिर्फ अपराधियो का सही-सही पता लगता है-

बल्कि इसकी मदद से उनके अपराध करने के कारण का भी समुचित ज्ञान मिल पाता है। इसकी मदद से इस बात का पता चलता है कि अन्य बीमारियों की तरह अपराधी लोग (Criminals) भी एक प्रकार की मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति है। अतः उनका सुधार सिर्फ उनको जेल की सजा देने से नहीं हो सकता बल्कि उनके अपराध करने के कारणों का सही-सही पता लगाकर उनको दूर करने की चेष्टा करने से ही हो सकता है। यह कार्य मनोविज्ञान की मदद के बिना असम्भव है। इस प्रकार हम देखते है कि यह अपराधियों का उचित सुधार करने मे भी सहायक सिद्ध हो रहा है। इसकी मदद से समाज में शांति स्थापित होने की बहुत ही अधिक सम्भावना दीख पड़ रही है।

युद्ध के समय मनोविज्ञान की मदद लोगों ने ली है (War Psychology)।

यदि हम मनोविज्ञान की शाखाओं पर दृष्टिपात करें, जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है तो हम निस्सन्देह कह सकते है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो मनोविज्ञान के प्रसाद से वंचित है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसकी उपयोगिता पूर्णतः सिद्ध हो चुकी है।

तीसरा अध्याय

मनोविज्ञान की विधियां

(Methods of Psychology)

भूमिका—आत्मनिष्ठ विधियाँ—वि-प्रयोग—कल्पना—इसकी आलोचना।

अन्तर्निरीक्षण—अन्तर्निरीक्षण के दोष एवं गुण।

वस्तुनिष्ठ विधियाँ-बाह्य निरीक्षण की विधि—बाह्य निरीक्षण के गुण और दोष। अन्तर्निरीक्षण तथा बाह्य निरीक्षण में सम्बन्ध।

प्रयोगात्मक विधि—प्रयोग कैसे किया जाता है?—प्रयोगात्मक विधि के गुण या विशेषताएँ तथा दोष।

परिगणनात्मक या स्टैटिस्टिकल विधि।

मनोविज्ञान की विधियाँ-सम्बन्धी निष्कर्ष।

अन्य विज्ञानों की तरह, मनोविज्ञान का भी अपना अध्ययन-विषय (Subject-matter) है और इसके अध्ययन के हेतु यह विशिष्ट विधियों का उपयोग करता है। प्रत्येक ध्येय की प्राप्ति के लिए कुछ-न-कुछ विधियों का उपयोग किया जाता है (Means to an end)। साधारणतः मनोविज्ञान द्वारा उपयोग की गयी विधियों की आलोचना यह कह कर की गयी है कि वे भौतिक विज्ञानों की विधियों (Methods of physical sciences) के समान निश्चित तथा यथार्थ (Definite and accurate) नहीं हैं। पर यह विचारधारा बिलकुल ही गलत है, चूँकि मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय ही ऐसा है कि इसकी विधियाँ भौतिक विज्ञान की विधियों के समान निश्चित तथा यथार्थ नहीं हो सकती है। किसी भी विधि का स्वरूप (Nature) उनके अध्ययन-विषय के स्वरूप पर ही निर्भर करती है। यहाँ पर मानवों पर अध्ययन किया जाता है जिनको भौतिक-शास्त्र और रसायन-शास्त्र (Physics and Chemistry) में अणु तथा तत्वों (Atoms and elements) की तरह नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है। यह पहले अध्याय में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि मनोविज्ञान अपनी विधियों के वैज्ञानिक होने के कारण ही एक विज्ञान है। इसमें सन्देह नहीं कि मनोविज्ञान की कुछ विधियों की आलोचना उन्हें अवैज्ञानिक तथा आत्मनिष्ठ (Unscientific and Subjective) बतला कर की गयी है।

यह आलोचना उस समय ठीक थी जब आरम्भ में मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत था और इसे काल्पनिक दर्शन (Speculative philosophy) की संज्ञा

दी जाती थी तथा इसके अध्ययन की विधि भी वि प्रयोग-कल्पना (Armchair speculation) थी जिसकी सत्यता की जाँच नही हो सकती थी। पर यह एक बहुत ही पुरानी बात है। अब मनोविज्ञान के क्षेत्र में बहुत ही प्रगति हो गयी है। हमने पहले अध्याय में मनोविज्ञान की परिभाषा देते समय कहा है कि ज्यो-ज्यों मनोविज्ञान की परिभाषा मे परिवर्तन हुआ त्यों त्यो इसके अध्ययन की विधियाँ भी बदलती गयी और आज वे पूर्णत वस्तुनिष्ठ तथा वैज्ञानिक (Objective and scientific) हो गयी हैं। प्रारम्भ में जब मनोविज्ञान को आत्मा और मन का विज्ञान समझा जाता था तो इसके अध्ययन की विधि कल्पना (Speculation) ही थी पर आगे चलकर वुंट टीचनर आदि मनोविज्ञानिकों ने इसे चेतन अनुभूति का विज्ञान (Science of conscious experience) माना तो इसकी विधि अन्त निरीक्षण (Introspection) थी और जब व्यवहारवादियो (Behaviourists) ने इसे व्यवहार का विज्ञान (Science of Behaviour) कहकर पुकारा तो उन्होंने बाह्य निरीक्षण (Objective observation) को ही उसके अध्ययन की एकमात्र विधि बतलायी। सन् १८७९ ई० मे वुंट (Wundt) द्वारा लिपजिग में मनोविज्ञान की सर्वप्रथम प्रयोगशाला की स्थापना के उपरान्त मनोविज्ञान मे प्रयोग भी होने लगा और इस प्रकार प्रयोगात्मक विधि (Experimental method) का प्रादुर्भाव हुआ। पर चू कि मनोविज्ञान चेतन अनुभूति तथा व्यवहार दोनों का अध्ययन करता है इसलिए इसके अध्ययन की विधियाँ अन्तर्निरीक्षण तथा बाह्य निरीक्षण दोनो ही हैं। पर अब तो प्रयोगात्मक विधि का भी प्रयोग किया जा रहा है। प्रयोगात्मक विधि मे अन्तर्निरीक्षण तथा बाह्य निरीक्षण मे दोनों विधियो का उपयोग किया गया है। प्रत्येक विधि की अपनी-अपनी विशेषताएँ तथा त्रुटियाँ (Merits and Demerits) होती हैं जिन पर हम एक-एक कर विस्तार मे प्रकाश डालेंगे।

साधारणत: हम मनोविज्ञान की विधियों को दो भागों मे बाँट सकते हैं। पर इन दोनों को फिर अलग अलग भागों मे बाँटा जा सकता है जो आगे की तालिका से स्पष्ट होगा।

मनोविज्ञान की विधियाँ
(Methods of Psychology)

- (क) आत्मनिष्ठ (Subjective)
  - १ वि प्रयोग कल्पना (Arm chair Speculation) या
  - २ अन्तर्निरीक्षण (Introspection) या अनुनिरीक्षण (Retrospection or Subjective observation)
- (ख) वस्तुनिष्ठ (Objective)
  - १ बाह्यनिरीक्षण (Objective observation)
  - २ प्रयोगात्मक (Experimental)
  - ३ स्टैटिस्टिकल (Statistical) परिगणनात्मक

(क) आत्मनिष्ठ विधियाँ (Subjective Methods)

१ वि-प्रयोग कल्पना की विधि (Arm-chair Speculation Method)—जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि प्रारम्भ मे मनोविज्ञान दर्शन-शास्त्र के अन्तर्गत था और इसे काल्पनिक दर्शन (Speculation Philosophy) की सज्ञा दी जाती थी । इसे आत्मा तथा मन का विज्ञान माना जाता था । अस्तु, इसके अध्ययन की विधि भी वि-प्रयोग कल्पना ही थी । बैठे-बैठे किसी विषय के बारे मे सोचना तथा सोचकर उस पर प्रकाश डालने की विधि को वि-प्रयोग कल्पना-विधि कहते हे । इससे प्राप्त सामग्रियो (Data) की सत्यता की जाँच सम्भव नही थी तथा यह पूर्णत आत्मनिष्ठ (Subjective) थी । अत इस विधि को आत्मनिष्ठ तथा अवैज्ञानिक (Subjective and unscientific) कहा गया है ।

२ अन्तर्निरीक्षण (Introspection) की विधि—आगे चलकर स्ट्रक्चरलिस्ट (Structuralist) लोगो ने मनोविज्ञान को चेतना अनुभूति का विज्ञान (Science of conscious experience) कहकर परिभाषित किया और अन्तर्निरीक्षण को ही इसके अध्ययन को मात्र विधि माना । 'Introspection' शब्द 'to introspect' क्रिया से बना है । 'To introspect' का अर्थ होता है 'To look within' अर्थात् अपने अन्दर स्वय झाँकना' । यह आन्तरिक निरीक्षण (Internal observation) की क्रिया है, अर्थात् अपनी ही मानसिक क्रियाओ को स्वय अध्ययन करने तथा उनके बारे मे रिपोर्ट देने की विधि को अन्तर्निरीक्षण का सज्ञा दी जाती है । उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति किसी सुन्दर फूल को देखने के पश्चात् अपने अन्दर होने वाली मानसिक प्रक्रियाओ का स्वय अध्ययन कर उसके बारे मे बतलाता है तो इस विधि को हम अन्तर्निरीक्षण विधि कहेंगे । अस्तित्ववादियो (Structuralist) का कहना था कि मन (Mind) की पूरा जानकारी के लिए इस विधि का उपयोग अत्यन्त ही आवश्यक (Indispensible) है । उनका तर्क यह था कि चूँकि हम सभी के पास मन है, हम सभी की पहुँच उपयुक्त तथ्यो तक है । इन तथ्यो का क्रमबद्ध अन्तर्निरीक्षण (Systematic introspection) कर उससे निष्कर्ष निकालने मात्र की ही आवश्यकता है लेकिन व्यवहार मे उससे मनोवैज्ञानिको को बहुत-सी बाधाओ का सामना करना पड़ा और यह साबित हो गया कि वैज्ञानिक मनोविज्ञान (Scientific Psychology) को पूर्णत सिर्फ अन्तर्निरीक्षण की विधि पर आधारित नही किया जा सकता है । पर इसका यह अर्थ नही हुआ कि मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए अन्तर्निरीक्षण की विधि की उपयोगिता बिलकुल ही नही है । इसमे गुण तथा दोष दोनो है ।

अन्तर्निरीक्षण की विधि के दोष (Demerits of Introspection Methods)—अन्तर्निरीक्षण की विधि मे इन दोनो को बतला कर इसकी आलोचना की गयी है ।

(1) अन्तर्निरीक्षण निरीक्षित क्रिया को ही बदल देता है । उदाहरण के f

हम क्रोधित हो गये हैं। क्रोध की अवस्था में यदि हम अपने अन्दर होने वाली सारी प्रतिक्रियाओं का अन्तर्निरीक्षण करने लगें तो इसका परिणाम होगा कि हमारा क्रोध समाप्त हो जायगा और हम क्रोध करना भूल कर कोई दूसरा ही भिन्न व्यावहार करने लगेंगे। ठीक उसी प्रकार भय अथवा प्रेम की अवस्था में यदि व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण करने लगे तो भय या प्रेम के संवेग का उससे उस समय सर्वथा लोप हो जायगा। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अन्तर्निरीक्षण करने के समय मन (Mind) दो भागों में विभाजित रहता है—(क) जिस वस्तु या क्रिया का अन्तर्निरीक्षण किया जा रहा है उसकी जानकारी प्राप्त करना तथा (ख) उस क्रिया की जानकारी हासिल करना (Knowing the knowing of a thing)। इन दोनों क्रियाओं को एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। चूंकि मन एक इकाई की तरह कार्य करता है (Mind acts as one unit)। अतः इसे उपर्युक्त दो विभिन्न भागों में बाँटा जा सकता है। अस्तु उनका कहना है कि अन्तर्निरीक्षण सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ अपनी क्रोधावस्था का अन्तर्निरीक्षण करना तथा उसी समय उसके बारे में रिपोर्ट देना कदापि सम्भव नहीं है, चूंकि ऐसा करने से क्रोध का संवेग ही लुप्त हो जायगा। पर अनुनिरीक्षण (Retrospection) सम्भव है। इसलिए इसे अन्तर्निरीक्षण की विधि न कहकर अनुनिरीक्षण की विधि कहना अधिक उपयुक्त होगा। अनुनिरीक्षण की विधि में व्यक्ति मानसिक प्रक्रियाओं का वर्णन जब वे क्रियाशील रहती है तब नहीं करता है बल्कि उनके समाप्त हो जाने के बाद ही उनका निरीक्षण कर उनके बारे में रिपोर्ट देता है। इसे ही अनुनिरीक्षण की संज्ञा दी जाती है जैसे —क्रोध की अवस्था में अन्तर्निरीक्षण न कर क्रोध समाप्त हो जाने के बाद अनुनिरीक्षण करना। परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अनुनिरीक्षण में भी निम्नलिखित कठिनाइयाँ है—

(क) यहाँ पर व्यक्ति द्वारा उसकी एक विशेष अवस्था में होने वाली मानसिक क्रियाओं के बारे में दी हुए रिपोर्ट की सत्यता पर विश्वास करने के लिए उनकी स्मरण क्रिया की विश्वसनता (Reliability) पर भरोसा करना होगा। मानसिक क्रियाओं का हूबहू वर्णन सर्वदा सम्भव नहीं है। अतः हो सकता है कि मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं का क्रम कुछ और ही हो और वह उसका वर्णन उसी ढंग से प्रस्तुत न कर किसी दूसरे ढंग से ही करे। अस्तु मानसिक क्रियाओं का यथार्थ वर्णन मिलना कठिन हो जाता है। इस तरह इनसे प्राप्त सामग्रियों पर आधारित निष्कर्ष सर्वदा सही एवं विश्वसनीय (Valid and Reliable) नहीं होता। परन्तु यदि व्यक्ति अनुनिरीक्षण का काफी अभ्यास करे तो उसकी अपनी मानसिक अवस्थाओं की रिपोर्ट की सार्थकता बढ़ जायगी।

(ख) हमारी कुछ मानसिक क्रियाएँ तो अपेक्षाकृत चंचल है तथा बहुत ही कम समय तक प्राणी में ठहरने वाली होती हैं। उतने कम समय के अन्दर उसका ठीक ठीक ढंग से अन्तर्निरीक्षण कर सकना एक बहुत ही कठिन समस्या हो जाता है।

साधारण व्यक्ति इनका अन्तर्निरीक्षण नही कर सकता है। परन्तु यहाँ हमे यह नही भूलना चाहिए कि यदि व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण का अभ्यास करे तो उसे बहुत कुछ सफलता मिल सकती है।

(ग) हमारी कुछ मानसिक क्रियाएँ, जैसे—प्रेरणा का पक्षपातरहित अन्तर्निरीक्षण भी सम्भव नही है। प्रेरणाएँ जो अर्द्धचेतनावस्था मे रहती है उसका अन्तर्निरीक्षण तो बिल्कुल ही सम्भव नही है।

उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ नही कि अन्तर्निरीक्षण की विधि बिल्कुल ही उपयोगी नही है। इसके द्वारा अनेक मानसिक प्रक्रियाओ का समुचित ज्ञान प्राप्त हो पाया है। मनोविज्ञान के आलोच्य विषय का अध्ययन करने मे इनकी उपयोगिता को अस्वीकार नही किया जा सकता है।

(ii) अन्तर्निरीक्षण विधि पर आरोपित दूसरी आपत्ति यह है कि यह आत्मनिष्ठ (Subjective) तथा व्यक्तिगत (Personal) है। अन्तर्निरीक्षण द्वारा सग्रह की गयी सामग्रियो मे असुविधा यह है कि इनका निरीक्षण अन्तर्निरीक्षक के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति नही कर सकता है। (It is private to the observer)। उदाहरणार्थ, हमलोग अपनी सवेदना या प्रतिभा के सिवा दूसरो की सवेदना तथा प्रतिभा का निरीक्षण नही कर सकते है। अस्तु, कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि इस पर आधारित निष्कर्ष सही (Valid) तथा विश्वसनीय (Reliable) नही होगे और इससे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर मनोविज्ञान के सामान्य नियमों की रचना करना भ्रामक सिद्ध होगा। अत इस विधि को वैज्ञानिक नही माना जा सकता।

पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट होगा कि अन्तर्निरीक्षण पर आरोपित यह आपत्ति ठीक नही है। चूँकि हम दूसरो की मानसिक क्रियाओ का निरीक्षण नही कर सकते, इसलिए स्वय अन्तर्निरीक्षण द्वारा उसकी अपनी मानसिक क्रियाओ के बारे मे दी गयी रिपोर्ट बिलकुल अविश्वसनीय तथा असत्य होगी, मानना युक्तसगत नही मालूम पडता। यदि एक से अधिक अन्तर्निरीक्षण एक ही तरह की स्थिति मे एक ही प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओ का वर्णन करें तो उनपर आधारित निष्कर्षों को हम निस्सन्देह विश्वसनीय तथा सही (Reliable and Valid) मान सकते है। इन निष्कर्षों को हम वैज्ञानिक भी कह सकते है। उदाहरणार्थ, यदि भय की अवस्था मे अनेक सामान्य अन्तर्निरीक्षक प्राय दुख, तनाव, हतोत्साह इत्यादि का अनुभव करने का वर्णन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि भय की अवस्था मे प्राय व्यक्ति एक प्रकार के दुख, तनाव, हतोत्साह इत्यादि का अनुभव करता है तथा इस सामान्य नियम की सत्यता एव विश्वसनीयता तो हम निस्सन्देह स्वीकार कर सकते है।

(iii) अन्तर्निरीक्षण पर आरोपित तीसरी आपत्ति यह है कि यहाँ एक ही व्यक्ति अनुभवकर्ता या निरीक्षक (Experiencer and Observer) दोनो ही का

प्राय करता है जो परस्पर विरोधी कार्य है। अर्थात् अन्तर्निरीक्षण की अवस्था में एक ही व्यक्ति ज्ञाता तथा ज्ञेय दोनों हो जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में प्राय तर्करहित मालूम पड़ता है। परन्तु वास्तविक जीवन में ये बातें प्राय एक साथ होती दिखाई पड़ती है। इसे ठीक-ठीक रूप में करने के लिए सिर्फ अभ्यास की आवश्यकता है। अस्तु इसे अन्तर्निरीक्षण की एक ऐसी त्रुटि नहीं कहेंगे जिसके आधार पर अन्तर्निरीक्षण की विधि का तिरस्कार किया जाय।

(iv) इसके द्वारा प्रस्तुत सामग्रियाँ (Rate) निश्चित (Definite) नहीं हैं तथा इसको ठीक ठीक मापा (Measure) भी नहीं जा सकता है जैसे—संवेदना की शक्ति (Strength of sensation) का परिमाण-सम्बन्धी मापन (Quantitative Measurement) सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि दृष्टि प्रतिमा (Visual Image) श्रवण प्रतिमा (Auditory Image) तथा घ्राण प्रतिमा (Olfactory image) से साधारणत अधिक स्पष्ट (Clear) है पर इसकी परिगणनात्मक अभिव्यक्ति (Statistical Description) सम्भव नहीं है। अस्तु, यह परिमाण सम्बन्धी नहीं बल्कि गुण सम्बन्धी सामग्रियाँ (Qualitative data) को प्रस्तुत करता है। पर इस पर आरोपित यह आपत्ति गलत है। अब तो अन्तर्निरीक्षण की सहायता से संवेदना प्रतिमा आदि का भी मनोदैहिक विधियों (Psycho-physical methods) के द्वारा परिमाणात्मक वर्णन किया जाने लगा है।

(v) इसी पर आरोपित पाँचवीं आपत्ति यह है कि इसका व्यवहार (Application) सभी प्रकार के अध्ययनों में सम्भव नहीं है। यह सिर्फ प्रौढ व्यक्तियों के अध्ययन (Study of adult beings) तक ही सीमित है। बालकों या पशुओं का अध्ययन (Study of the children and animals) इस विधि द्वारा सम्भव नहीं है क्योंकि वे अन्तर्निरीक्षण नहीं कर सकते हैं।

(vi) अन्तर्निरीक्षण पर आरोपित सबसे अन्तिम आपत्ति यह है कि बहुत सी अनुभूतियाँ ऐसी हैं जिनकी अभिव्यक्ति उपयुक्त शब्दों के अभाव (For want of appropriate words) के कारण ठीक-ठीक नहीं कर सकते हैं। परन्तु इस इसे अन्तर्निरीक्षण विधि का दोष न कह कर भाषा का दोष कहेंगे।

हालाँकि इस विधि के उपयोग के विरुद्ध उपर्युक्त आपत्तियाँ आरोपित की गयी हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए अन्तर्निरीक्षण विधि बिलकुल ही उपयोगी नहीं है। किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों का यह विचार बहुत कुछ उपयुक्त है कि सिर्फ अन्तर्निरीक्षण पर आधारित विज्ञान की असफलता निश्चित ही थी। इससे यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त कारणों से अन्तर्निरीक्षण मनोविज्ञान की एक मात्र विधि नहीं माना जा सकता है। फिर भी इसका उपयोग अत्यावश्यक है चूँकि इसके द्वारा मनोविज्ञान की समस्याओं के अध्ययन में सहायता पहुँचती है। मानसिक प्रक्रियाएँ जैसे—संवेदना प्रत्यभिज्ञान चिन्तन, कल्पना,

संवेग, भाव इत्यादि का समुचित अध्ययन अन्तर्निरीक्षण द्वारा प्राप्त सामग्रियो (Introspective data) अभाव मे सम्भव नही है। उपर्युक्त मानसिक प्रक्रियाओ के अध्ययन के समय व्यक्ति द्वारा दी गयी रिपोर्ट की समानता ने इन मानसिक क्रियाओ के सम्बन्ध मे सामान्य नियमो की रचना करने मे बहुत ही मदद पहुँचायी है। रिपोर्टो मे वास्तविकता के अभाव (Possible distortion) को भी अन्तर्निरीक्षण अपने अभ्यास द्वारा दूर कर सकता है। कभी-कभी तो अन्तर्निरीक्षण, व्यक्ति के व्यवहारो का सही-सही स्वरूप (Nature) तथा उनकी उत्पत्ति के कारणो का पता लगाने मे अत्यन्त ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। जैसे, हँसने की क्रिया को ही ले लिया जाय, यह कई कारणो से हो सकती है। सही कारण का पता व्यक्ति के अन्तर्निरीक्षण पर आधारित वर्णनो द्वारा लगाया जा सकता है।

सामान्यत व्यक्ति की मानसिक अनुभूतियो तथा उनके प्रकट व्यवहारो मे परस्पर सम्बन्ध अवश्य ही रहता है। अस्तु, प्रकट व्यवहारो को देखकर उनसे सबधित, मानसिक अवस्थाओ का समुचित अध्ययन सम्भव है। इसलिए अन्तर्निरीक्षण की शेषपूर्ति (Supplement) वस्तुनिष्ठ निरीक्षण द्वारा भी सम्भव है। इस विधि के द्वारा मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यवहारो का निष्पक्ष अध्ययन (Unbiased study), करते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ ऐसी है जहाँ अन्तर्निरीक्षण से अधिक लाभदायक वस्तुनिष्ठ निरीक्षण (Objective observation) की विधि ही प्रमाणित हुई है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान के समुचित अध्ययन के लिए अन्तर्निरीक्षण की विधि की शेषपूर्ति वस्तुनिष्ठ विधियो द्वारा की जानी चाहिए। फिर भी दूसरो के व्यवहारो को सही-सही रूप मे समझने तथा इनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने के लिए अपनी अनुभूतियो का अन्तर्निरीक्षण करना भी परम आवश्यक है। इसके अभाव मे तो हम दूसरो के व्यवहारो को ठीक-ठीक समझ ही नही सकते हैं। इस बात का स्पष्टीकरण तो मनोविज्ञान की परिभाषा देते समय पहले अध्याय मे ही कर दिया गया है।

(ख) वस्तुनिष्ठ विधियाँ (Objective Methods)

(क) वस्तुनिष्ठ वाह्य निरीक्षण की विधि (Methods of objective observation) — यहाँ पर विशेष रूप से निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना आवश्यक है— (१) वाह्यनिरीक्षण किसे कहते है (२) मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए यह क्यो आवश्यक है, अर्थात् वाह्य निरीक्षण-विधि के गुण तथा (३) इसके दोष और (४) किस प्रकार यह अन्तर्निरीक्षण की शेषपूर्ति करता है। अर्थात् वाह्य निरीक्षण एव अन्तर्निरीक्षण की विधियो मे सम्बन्ध।

१ वाह्य निरीक्षण किसे कहते हैं ? (What is the objective observation ?)— यह आधुनिक मनोविज्ञान की दूसरी प्रमुख विधि है। इसमे प्राणी के

करना चाहिए न कि जैसी निरीक्षक की इच्छा हो। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राणी के व्यवहारों का वस्तुनिष्ठ तथा पक्षपातरहित अध्ययन करना अनिवार्य है।

(ii) इस विधि पर आरोपित दूसरी आपत्ति यह है कि साधारणत यह देखा जाता है कि निरीक्षक बालक पशुओं तथा असामान्यों के व्यवहारों का अध्ययन अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से करते है जिसके फलस्वरूप उनके सम्बन्ध में किए गये अध्ययन गलत होते हैं और उनपर आधारित निष्कर्षों की सत्यता तथा विश्वसनीयता भी नही के बराबर ही रहती है। उदाहरणार्थ यदि बच्चों के व्यवहारों का निरीक्षण यह समझ कर नहीं किया जाय कि वे बच्चे है वरन वयस्कों के दृष्टिकोण से किया जाय तो उनके व्यवहार असामान्य मालूम पड़ेंगे।

उपर्युक्त दोनों दोष बाह्य निरीक्षण की विधि में नहीं है बल्कि उस विधि के गलत उपयोग के कारण है। यदि उसका उपयोग ध्यानपूर्वक किया जा तो दोनों से इसे बिल्कुल वंचित रखा जा सकता है।

(iii) इस पर आरोपित तीसरी आपत्ति यह है कि सिर्फ किसी के व्यवहार के अध्ययन के उपरान्त ही उसके व्यवहारों से सम्बन्धित मानसिक स्थिति का सही सही पता नहीं लगाया जा सकता है, चूंकि एक ही शारीरिक क्रिया (Bodily activity) विभिन्न मानसिक स्थितियों का सूचक होती है जैसे—मनुष्य क्रोध तथा हर्ष दोनों ही अवस्था में विशेष प्रकार से उत्तेजित पाया जाता है। सिर्फ उसकी उत्तेजित अवस्था बाह्य निरीक्षण कर ही सही सही रूप में नहीं जाना जा सकता है कि उसकी यह उत्तेजित अवस्था उसके क्रोध अथवा हर्ष की स्थिति का सूचक है। अस्तु उसकी मानसिक स्थिति का सही सही पता लगाने के लिए यह सदा आवश्यक है कि निरीक्षक निरीक्षित व्यक्ति के वातावरण से पूर्णत भिज्ञ रहे। अत यह आवश्यक है कि बाह्य निरीक्षण सविस्तार (Detailed) हो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बाह्य निरीक्षण द्वारा प्राप्त सामग्रियों पर आधारित निष्कर्षों को सही तथा विश्वसनीय होने के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—वे पक्षपातरहित (Unbiased) क्रमबद्ध (Systematic) धैर्यपूर्ण (Patient) तथा विस्तार (D tailed) हों। ऐसा करने से इनके उपर्युक्त तीनों दोषों को दूर किया जा सकता है। वस्तुत इस विधि पर आरोपित सभी दोष इस विधि विशेष में नहीं हैं बल्कि इस गलत उपयोग के कारण हैं। अस्तु बाह्य निरीक्षण की विधि मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए बहुत ही उपयोगी है।

४ अन्तर्निरीक्षण तथा बाह्य निरीक्षण की विधियों में सम्बन्ध (Relation between Methods of Introspection and Objective observation)—ऊपर अन्तर्निरीक्षण तथा बाह्य निरीक्षण दोनों विधियों के गुण तथा दोष पर ध्यान दिया गया है। यह भी स्पष्ट हो गया है कि ये दोनों विधियाँ एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं वरन् एक-दूसरे के पूरक (Complem ntary) हैं। मनोविज्ञान के आलोच्य

विषय (Subject-matter) के अध्ययन के लिए ये दोनो विधियाँ समान रूप से आवश्यक हैं। दूसरे के व्यवहारो का निरीक्षण एव उनकी समुचित व्याख्या निरीक्षक की निजी अनुभूति के बिना सम्भव नही। यह अन्तर्निरीक्षण की विधि द्वारा ही की जाती है।

एक ही प्रकार के व्यवहार का अर्थ एक सस्कृति (Culture) से दूसरी सस्कृति मे भिन्न होता है तथा एक ही सस्कृति मे समय-समय पर यह बदलता भी रहता है। अर्थात्, व्यवहार का सही व्याख्या के लिए उस व्यवहार का निरीक्षण सस्कृति तथा समय को ध्यान मे रखकर करना चाहिए, फिर व्यवहार सदा हृदय के भावो अथवा ठीक मानसिक स्थिति का सही-सही सूचक नही रहता है, जैसे—आदमी अन्दर से बहुत दुखी होकर भी बाहर-बाहर दूसरो के सामने मुस्कुराता रह सकता है। अत वाह्य निरीक्षण की शेषपूर्त्ति (supplement) अन्तर्निरीक्षण द्वारा आवश्यक है। उसी तरह अन्तर्निरीक्षण द्वारा दिया हुआ रिपोर्ट सदा उसके वास्तविक मानसिक स्थिति का परिचायक (Index) नही रहता है, इसलिए उसकी मानसिक स्थिति की वास्तविकता की जानकारी के हेतु वाह्य निरीक्षण की विधि का उपयोग अन्तर्निरीक्षण के पूरक के समान करना चाहिए। दोनो विधियो मे सम्भव होनेवाली त्रुटियो को हम एक दूसरे के उपयोग से दूर कर सकते है। इस तरह हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान के आलोच्य विषय के उचित अध्ययन तथा उनसे प्राप्त निष्कर्षो पर विश्वास करने के लिए अन्तर्निरीक्षण तथा वाह्य निरीक्षण दोनो विधियो का उपयोग करना अत्यावश्यक है।

(ख) प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)—इस अध्ययन के आरम्भ मे ही बतला दिया गया है कि मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियाँ अन्तर्निरीक्षण तथा वाह्य निरीक्षण तक ही सीमित नही, वरन् उट (Wundt) नामक मनोवैज्ञानिक द्वारा लिपजिग नामक स्थान मे सन् १८७९ ई० मे मनोविज्ञान की सर्वप्रथम प्रयोगशाला की स्थापना के फलस्वरूप मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए प्रयोगात्मक विधि का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रयोगात्मक विधि मे कई अन्य विधियो की सहायता ली जाती है। इसमे निम्नलिखित अन्य तीन विधियो का भी समावेश रहता है—(क) अन्तर्निरीक्षण, (ख) वाह्य निरीक्षण तथा (ग) स्टैटिस्टिकल या परिगणनात्मक विधि।

इस विधि के गुण तथा दोष के ऊपर प्रकाश डालने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि प्रयोग किसे कहते है और यह कैसे किया जाता है (What is an experiment ? and How it is conducted ?)।

प्रयोगशाला मे पूर्व-निश्चित एव पूर्व-निर्धारित स्थिति मे किसी विशेष स्वतन्त्र परिवर्त्य (Independent variable) का प्रयोज्य (Subject) की अनुभूतियो एव व्यवहारो के ऊपर पडने वाले प्रभावो का वस्तुनिष्ठ तथा अवैयक्तिक निरीक्षण विशिष्ट यन्त्रो तथा सामग्रियो (Apparatus and materials) की

सहायता से प्रयोगकर्ता (Experimenter) करता है और उनसे वह निष्कर्ष निकलता है। जो प्रयोग करता है उसे प्रयोगकर्ता (Experimenter) तथा जिस पर प्रयोग किया जाता है उसे प्रयोज्य (Subject) कहते है।

वातावरण की स्थिति प्रतिक्षण बदलती रहती है, जैसे—प्रकाश ताप आर्द्रता इत्यादि। जो क्षण क्षण बदलता जाय उसे हम परिवर्त्य (Variable) कहते है।

कुछ परिवर्त्य प्राणी के अन्दर रहते है तो कुछ बाहर। इन्हें क्रमशः आन्तरिक परिवर्त्य (Internal variable) एवं बाह्य परिवर्त्य (External variable) कहते हैं। प्राणी के अन्दर होने वाले परिवर्त्यों में प्राणी की मानसिक स्थिति जैसे-पीड़ा शोक आनन्द इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। प्राणी के बाहर वातावरण मे होने वाले परिवर्तन बाह्य परिवर्त्य के कारण ही होते हैं। एक समय वातावरण में जितनी गर्मी है दूसरे क्षण में कम हो जा सकती है। इसी प्रकार आर्द्रता प्रकाश आदि में परिवर्तन होते रहते हैं। आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के परिवर्त्य प्राणी के व्यवहार पर निरन्तर प्रभाव डालते है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों मे हम परिवर्त्यों का वर्गीकरण निम्नलिखित दो भागों में करते हैं—

१ स्वतन्त्र परिवर्त्य (Independent variable)—जिस परिवर्त्य का प्रभाव हम किसी क्रिया विशेष पर देखते है उसे स्वतन्त्र परिवर्त्य कहा जाता है। किसी भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग में एक समय एक से अधिक स्वतन्त्र परिवर्त्य कभी भी नहीं हो सकता है। प्रयोग करने के समय स्वतन्त्र परिवर्त्य के अतिरिक्त एक क्रिया विशेष को प्रभावित करनेवाले अन्य परिवर्त्यों को जिन्हे उस समय नियमित किया जाता है जिससे कि उनका क्रिया पर कोई प्रभाव न पड सके उन्हे नियन्त्रित परिवर्त्य (Controlled variable) के नाम से पुकारते हैं।

२ आश्रित परिवर्त्य (Dependent variable)—स्वतन्त्र परिवर्त्य द्वारा किसी क्रिया विशेष पर पड़े प्रभावों को आश्रित परिवर्त्य की संज्ञा दी गयी है।

इसे हम एक उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं। मान लीजिये कि हमें प्रयोग द्वारा यह जानना है कि अभ्यास का मनुष्य के सीखने की क्रिया पर क्या प्रभाव पड़ता है। क्या अभ्यास द्वारा सीखने की क्रिया सचमुच अधिक शीघ्रता से सम्पादित होती है ?

यह प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से होगा। सबसे पहले यह सोचना होगा कि अभ्यास के अतिरिक्त सीखने की क्रिया पर किन किन परिवर्त्यों का प्रभाव पड़ता है। ध्यान देने पर मालूम होगा कि अभ्यास के अतिरिक्त थकावट, स्वास्थ्य किये हुए कार्यों के फल का ज्ञान पुरस्कार अथवा दण्ड इत्यादि का भी प्रभाव सीखने की क्रिया पर पड़ता है।

इस प्रयोग में हम सिर्फ अभ्यास नामक परिवर्त्य का ही प्रभाव सीखने की क्रिया पर जानना चाहते हैं। अस्तु, अभ्यास के अतिरिक्त उपर्युक्त लिए गये अन्य

परिवर्त्यों को नियन्त्रित कर देंगे ताकि उन परिवर्त्यों का यथासम्भव प्रभाव सीखने की क्रिया पर न पड़े। यहां हमे सिर्फ अभ्यास का प्रभाव देखना है। इस हेतु हम किसी एक कार्य-विशेष के प्रयोज्य को बार-बार करने देंगे। जिस परिवर्त्य के प्रभाव को हमे जानना है उसे हम स्वतन्त्र परिवर्त्य (Independent variable) कहते है। अस्तु, यहां 'अभ्यास' एक स्वतन्त्र परिवर्त्य है जिसका प्रभाव हमे सीखने की क्रिया पर देखना है। इसके अतिरिक्त अन्य परिवर्त्यों, जिनका प्रभाव हम यहां नही देखना चाहते है, उन्हे हम नियन्त्रित रखते है। इस प्रकार के परिवर्त्यों को हम **नियन्त्रित परिवर्त्य** (Controlled varible) कहते है। ये नियन्त्रित परिवर्त्य प्रयोगात्मक परिस्थितियो मे स्थिर रखे जाते हैं। अस्तु, उन्हे **स्थिर परिवर्त्य** (Constant variable) की सज्ञा दी जाती है।

स्वतन्त्र परिवर्त्य से उत्पन्न प्रभावो को हम **आश्रित परिवर्त्य** (Dependent variable) कहते हैं। यदि हम अपने प्रयोग के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि अभ्यास के फलस्वरूप सीखने मे अत्यधिक निपुणता आ जाती है, तो हम कहेंगे कि सीखने मे निपुणता का आना अभ्यास पर निर्भर करता है। अर्थात्, सीखने मे निपुणता व्यक्ति द्वारा किये अभ्यास पर आश्रित है। अस्तु 'यहां सीखने मे प्राप्त निपुणता को आश्रित परिवर्त्य कहेंगे।'

'अभ्यास का सीखने की क्रिया पर प्रभाव वाले' प्रयोग का सक्षिप्त विवरण—प्रयोग की क्रिया का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। अभ्यास (Practice) के अतिरिक्त अन्य परिवर्त्यों को स्थिर एव नियन्त्रित किया जायगा। प्रयोज्य को एक कार्य (Task), जो उसके लिए न्यूनतम (New) होगा, करने को दिया जायगा। अभ्यास के हेतु उसी काम को उसे बार-बार करने को दिया जायगा। मान लिया जाय १२ बार। थकावट (Fatigue) के अवसर को दूर करने के लिए कुछ प्रयासो (Trials) के बाद उसे थोडा आराम दिया जायगा। हर प्रयासो (Trials) के बाद उसके द्वारा लिये गये समय, की गयी भूलें तथा उसके व्यवहारो का वस्तुनिष्ठ निरीक्षण कर इन सबो को 'नोट' किया जायगा। निश्चित प्रयासो के पश्चात् उसके **अन्तर्निरीक्षण का रिपोर्ट** (Introspective report) भी लिया जायगा।

इस तरह दो प्रकार की सामग्रियां प्राप्त होगी—(१) **वस्तुनिष्ठ सामग्रियां** (Object data) तथा (२) **आत्मनिष्ठ सामग्रियां** (Subjective data)।

'वस्तुनिष्ठ सामग्री उस सामग्री को कहते है जिसका हम वाह्य रूप से निरीक्षण कर सकते है, जैसे—यहां पर प्रत्येक प्रयास मे प्रयोज्य द्वारा लिये गये समय, की गयी भूलें एव उसके निरीक्षित व्यवहार (observed behaviour) इत्यादि।

पर 'आत्मनिष्ठ सामग्री' उसे कहते हैं जिसका निरीक्षण सिर्फ प्रयोज्य तक ही सीमित है, जैसे—उसके अन्तर्निरीक्षण का रिपोर्ट। अर्थात् प्रयोग के समय प्रयोज्य की मानसिक स्थिति (Mental condition) किस प्रकार की थी, उसके बारे मे अन्तर्निरीक्षण पर आधारित रिपोर्ट को ही आत्मनिष्ठ सामग्री कहते हैं।

इन प्राप्त सामग्रियों की सहायता से सीखने की क्रिया पर अभ्यास का क्या प्रभाव पड़ता है इसकी जानकारी के लिए यह आवश्यक है कि इन सामग्रियों का निरूपण (Treatment of the data) किया जाय। निरूपण भी दो प्रकार से होता है—(१) गुण सम्बन्धी (Qualitative) तथा (२) परिमाण सम्बन्धी (Quantitative)। गुण सम्बन्धी निरूपण विशेषकर अन्तर्निरीक्षण के रिपोर्ट पर आधारित रहता है। परन्तु परिमाण सम्बन्धी निरूपण वस्तुनिष्ठ (objective) सामग्रियों पर परिगणनात्मक निरूपण (Statistical treatment) कर किया जाता है। यहाँ पर परिगणनात्मक विधि (Statistical method) का उपयोग किया जाता है जिनपर विस्तार में आगे प्रकाश डालेंगे। इन दो प्रकार के निरूपणों के पश्चात् ही हम किसी निश्चय निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अभ्यास से सीखने की क्रिया में मदद मिलती है अथवा नहीं। पर सही-सही तथा विश्वसनीय निष्कर्ष सिर्फ एक ही प्रयोज्य पर किये गये प्रयोग से प्राप्त परिणामों (Results) पर आधारित नहीं हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उसी प्रयोग को अनेक प्रयोज्य पर किया जाय और यदि सभी में प्राप्त परिणाम समान हों तभी हम अपने निष्कर्ष की सत्यता तथा विश्वसनीयता पर भरोसा कर सकते हैं।

एक दूसरा उदाहरण—किसी काम के कुशल सम्पादन पर शोरगुल का प्रभाव (effect of noise upon performance)—प्रयोगात्मक विधि को एक दूसरे उदाहरण से हम और भी अधिक स्पष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं। मान लिया कि हमें प्रयोग द्वारा यह जानना है कि किसी काम के कुशल सम्पादन पर शोरगुल (Noise) का क्या प्रभाव पड़ता है। यहाँ शोरगुल स्वतन्त्र परिवर्त्य है। यहाँ भी हम ध्यान से देखने पर पता चलेगा की कार्य-कुशलता पर शोरगुल के अतिरिक्त अन्य परिवर्त्यों का भी प्रभाव पड़ता है जैसे—काम की अवधि कार्य का स्वरूप कार्यकर्त्ता की बुद्धि काम करने की सुविधा प्रयोगशाला में प्रकाश का प्रबन्ध और थकावट इत्यादि। चूँकि यहाँ हम सिर्फ शोरगुल का ही प्रभाव काम कुशलता पर जानना है इसलिए हम शोरगुल के परिवर्त्य के अतिरिक्त अन्य परिवर्त्यों को यहाँ इस प्रयोग में नियन्त्रण कर देंगे और इन्हें हम स्थिर या नियन्त्रित परिवर्त्य कह सकते हैं।

अभ्यास के प्रभाव वाली समस्या में तो प्रयोग एक ही अवस्था में किया गया था चूँकि वहाँ दूसरी अवस्था की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु यहाँ शोरगुल की समस्या में निम्नलिखित दो परिस्थितियों की आवश्यकता हो जाती है—

(१) पहली अवस्था—सामान्य अवस्था में काम-सम्पादन (अर्थात् जब शोरगुल न हो रहा हो)। (२) दूसरी अवस्था—शोरगुल में साथ काम सम्पादन।

इन अवस्थाओं को क्रमशः हम 'नियन्त्रित तथा प्रयोगात्मक अवस्था (Controlled and exper condition) की संज्ञा देते हैं। पहली अवस्था को नियन्त्रित अवस्था इस अवस्था में स्वतन्त्र परिवर्त्य (शोरगुल) देते हैं। दूसरी अवस्था को प्रयोगा-

त्मक अवस्था इसलिए कहते है कि यहाँ हम स्वन्त्र परिवर्त्य का प्रभाव उस परिस्थिति-विशेष मे देखते है ।

इस प्रयोग की डिजाइन (Design) निम्न तालिका (Table) से स्पष्ट होगी—

१	पहली एव नियन्त्रित या सामान्य अवस्था (Controlled condition)	१५ मिनटो तक सामान्य (शान्ति की अवस्था मे कार्य-सम्पादन) (15 minutes work under quiet condition)
	विश्राम आधा घण्टा (Rest half an hour)	
२	दूसरी एव प्रयोगात्मक अवस्था (Experimental condition)	१५ मिनटो तक पहली अवस्था के समान कार्य का शोरगल की अवस्था मे सम्पादन (15 minutes work under noisy condition)

चूँकि यहाँ सिर्फ शोरगुल का ही प्रभाव कार्य पर जानना था, निम्नलिखित परिवर्त्य उपर्युक्त दोनो अवस्थाओ मे नियन्त्रित किये गये—

(क) दोनो अवस्थाओ मे समान कार्य, (ख) दोनो ही अवस्थाओ मे कार्य की समान अवधि, (ग) दोनो ही अवस्थाओ मे एक ही व्यक्ति पर प्रयोग का होना, तथा (ग) दोनो अवस्थाओ मे प्रयोगशाला के प्रकाश, तापमान, कार्य की सुविधा इत्यादि सभी परिवर्त्यों को यथासम्भव समान एव स्थिर रखा गया। अत इन्हें हम स्थिर परिवर्त्य (Constant variable) कहते है ।

आजकल इसी प्रयोगात्मक विधि के कारण ही मनोविज्ञान अपने को एक पूर्ण विज्ञान बना सका है ।

प्रयोगात्मक विधि के गुण (Merits of Experimental Method)—सक्षेप मे हम कह सकते है कि विधि के निम्नलिखित लक्षण या गुण है—

१ प्रयोगशाला मे ऐसी परिस्थितियो को उत्पन्न करना कि एक विशेष प्रकार का व्यवहार हो, तो उन व्यवहारो का वस्तुनिष्ठ एव अवैयक्तिक निरीक्षण कर उनसे निष्कर्ष निकालना ।

२ प्रयोग विशेष की सभी नियन्त्रित अवस्थाओं से भली भांति परिचित रहना, जिससे कि उस प्रयोग को इच्छानुसार ज्यों-का त्यों दुहराया जा सके तथा पूर्व निष्कर्षों की सत्यता की जाँच हो सके। इतना ही नहीं बल्कि प्रयोग की इन सारी नियन्त्रित अवस्थाओं को कोई दूसरा प्रयोगकर्त्ता भी ज्यों का-त्यों दुहरा सकता है।

३ किसी एक ही परिवर्त्य को क्रमबद्ध रूप से परिवर्तित कर प्रयोज्य पर होने वाले उसके प्रभावों की जाँच करना तथा उस क्रिया विशेष को प्रभावित करने वाले अन्य परिवर्त्यों को सामान्य एवं स्थिर रखना। इससे एक परिवर्त्य विशेष का प्रयोज्य पर पड़ने वाले प्रभावों का निश्चित तथा यथार्थ ज्ञान सम्भव है। उपर्युक्त दो प्रकार के परिवर्त्यों को क्रमशः स्वतन्त्र परिवर्त्य तथा नियन्त्रित या स्थिर परिवर्त्य (Controlled or constant variable) कहा जाता है। स्वतन्त्र परिवर्त्य (Independent variable) को परिवर्तित करने के फलस्वरूप उसका जो प्रभाव प्रयोज्य पर पड़ता है उसे आश्रित परिवर्त्य (Dependent variable) की संज्ञा दी जाती है।

४ प्रयोग से प्राप्त सामग्रियों (Data) का गुण एवं परिमाण सम्बन्धी निरूपण (Qualitative and Quantitative treatment) कर एक निष्कर्ष पर पहुँचना और उनके सम्बन्ध में सामान्य नियमों को बनाना।

५ निष्कर्ष को सही तथा विश्वसनीय (Valid and Reliable) होने के लिए ही प्रयोज्य पर किये गये प्रयोग से प्राप्त सामग्रियों पर ही आधारित नहीं रहना बल्कि अनेक प्रयोज्यों पर किये गये उन्हीं प्रयोगों के फलस्वरूप प्राप्त सामान्य सामग्रियों (Common data) पर विश्वास करना।

फिर भी कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि में भी कई दोष बतलाये हैं।

१ प्रयोगात्मक विधि के दोष (Defect or Demerits of Experimental method)— (१) प्रयोगशाला में उत्पन्न की गयी अवस्थाएँ अस्वाभाविक (Unnatural) रहती हैं। अस्तु, प्रयोग द्वारा किये गये व्यवहार भी बनावटी रहते हैं। चूँकि प्रयोगशाला की परिस्थितियों तथा उनमें की गयी क्रियाओं का वास्तविक जीवन से यथेष्ट सम्बन्ध नहीं रहता है इसलिए इन्हें कृत्रिम (Artificial) कहा जाता है। परन्तु इसपर कृत्रिमता का दोष लगाना उचित नहीं क्योंकि प्रयोग इस प्रकार से किया जाता है कि प्रयोज्य को इस बात का पता नहीं लगता कि प्रयोगशाला की अवस्थाएँ कृत्रिम अर्थात् बनावटी हैं। यदि प्रयोगकर्त्ता प्रयोग करने की कला में बहुत ही दक्ष (Expert) हो तो इस त्रुटि को आसानी से दूर कर सकता है। अतः इस प्रकार से प्रयोगों पर आधारित निष्कर्षों की सत्यता, विश्वसनीयता तथा मनोवैज्ञानिकता में नाममात्र भी हम इन पर भरोसा कर सकते हैं।

२ इस विधि पर आरोपित दूसरी आपत्ति यह है कि सभी प्रकार के प्रयोग मनुष्यों पर सम्भव नहीं अतः इसकी उपयोगिता सीमित (Limited value) है।

पर ऐसा कहना उचित नही है, चूँकि पशुओ पर किये गये विभिन्न प्रकार के प्रयोगो ने मनुष्यो के बारे मे समुचित ज्ञान प्राप्त करने मे बहुत ही मदद पहुँचायी है। जैसे—'सीखने की क्रिया पर मस्तिष्क के विभिन्न भागो के प्रभाव को मानसिक क्रियाओ का मस्तिष्क में स्थान-निरूपण तथा सवेग' मे स्नायुमण्डल के विभिन्न अगो का क्या प्रभाव पडता है, इत्यादि की जानकारी के लिए किये गये अधिकाश प्रयोग चूहे, बिल्ली, बन्दर, इत्यादि पशुओ पर ही प्रसिद्ध शरीर-शास्त्रज्ञो (Physiologists फ्रेंज (Franz) तथा लश्ले (Lashley) द्वारा किये गये है, चूँकि इस प्रकार प्रयोग प्राय मनुष्य पर सम्भव नही है। फिर भी उनसे प्राप्त निष्कर्षों को मनुष्य पर लागू कर मनुष्य के सम्बन्ध मे इन बातो से सम्बन्धित सामान्य नियमो की रचना की गयी है जो सही सिद्ध हुई है। कारण यह है कि विकासवाद (Evolutionist) के दृष्टिकोण से उपर्युक्त सभी पशुओ तथा मनुष्यो मे एक अविच्छिन्न सम्बन्ध है। इन पशुओ तथा मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट और उनके कार्य करीब-करीब समान होते है। सिर्फ उनके परिमाण (Degree) मे अन्तर है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रयोगात्मक विधि का क्षेत्र सिर्फ पशुओ तक ही सीमित नही है। अत इस पर आरोपित इस दोष को हम युक्तिसगत नही मान सकते है।

३ कुछ मनोवैज्ञानिको ने तो यह अविश्वास भी प्रकट किया है कि प्रत्येक प्रकार की मानसिक क्रियाओ का प्रयोगात्मक अध्ययन सम्भव नही है। इस प्रकार क्रियाओ मे अचेतन मानसिक प्रक्रियाओ (Unconscious mental activities) का उदाहरण दिया जाता है। आरम्भ मे सिर्फ सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण आदि मानसिक प्रतिक्रियाओ का ही प्रयोगात्मक अध्ययन हो पाता था, पर अब तो मनोवैज्ञानिको ने करीब-करीब सभी मानसिक प्रक्रियाओ पर प्रयोग कर दिखाया है। चेतन प्रक्रियाओ को कौन कहे अब तो अचेतन प्रक्रियाओ का भी प्रयोगात्मक अध्ययन किया गया है।

४ हर प्रकार की अवस्थाओ को प्रयोगशाला मे सृजन (Create) नही किया जा सकता है। अस्तु, उनका प्रयोगात्मक अध्ययन सम्भव नही है। खास कर यह बात सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology) तथा औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) के क्षेत्र मे लागू है। उदाहरणार्थ, हम भीड-भाड मे व्यक्तियो द्वारा किये गये व्यवहार (Crowd behaviour) आदि समस्याओ का प्रयोगात्मक अध्ययन नही कर सकते, चूँकि इन परिस्थितियो का प्रयोगशाला मे सृजन करना असम्भव सा है। अत हर प्रकार की अवस्थाओ के अध्ययन के लिए दूसरी विधि का प्रादुर्भाव हुआ है जिसे क्षेत्रीय अध्ययन (Field study) की सज्ञा दी गयी है। इस विधि को स्वाभाविक परिस्थिति मे निरीक्षण करने की विधि (Method of Naturalistic observation) भी कहा जाता है। इस विधि द्वारा प्रयोगशाला मे बाहर घटनास्थल पर ही जाकर उपर्युक्त समस्याओ का वस्तुनिष्ठ एवं क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार इसके द्वारा वास्तविक जीवन की सम-

स्याओं (Problems of Practical life) का उनकी स्वाभाविक अवस्था (Natural condition) में अध्ययन किया जाता है। यदि हमें 'दल (Group) अथवा 'गिरोह' (Gang) के व्यवहारों का अध्ययन करना होता है तो हम प्रयोगशाला से बाहर जाकर वास्तविक दलों के बीच रहकर उनके व्यवहारों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करते हैं।

आज के मनोवैज्ञानिक अब अपना अध्ययन प्रयोगशाला के अन्दर तथा उसके बाहर के वास्तविक जन-जीवन में करने में समर्थ हो पा रहे हैं। अस्तु हम पाते हैं कि इसके कुछ तथाकथित दोषों से कहीं अधिक इस विधि की वैज्ञानिक उपयोगिता हो चुकी है।

(ग) स्टैटिस्टिकल या परिमाणात्मक विधि (Statistical Method)—परिमाणात्मक विधि गणित का ही एक प्रयोग (Application) है जो मनोविज्ञान के अनुसन्धानों (Researches) को एक क्रम देने में सहायता करती है। यह विधि उसके विशिष्ट झुकाव (Significant Trend) तथा इसके विभिन्न तथ्यों के आपसी सम्बन्ध की खोज करने में मदद पहुँचाती है। प्रयोगात्मक सामग्रियों (Experimental data) की व्यवस्था करने में यह बहुत सहायक सिद्ध हुई है। यह विधि सिर्फ प्रयोगात्मक विधि का ही पूरक है। प्रयोगात्मक विधि के बारे में वर्णन करते समय यह पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रयोगात्मक विधि द्वारा प्राप्त सामग्रियों के आधार पर कोई निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना उसके परिमाणात्मक निरूपणों के बिना पूर्णत वैज्ञानिक नहीं है। इसके अतिरिक्त, किसी भी निष्कर्ष को सही तथा विश्वसनीय होने के लिए यह आवश्यक है कि उसके सम्बन्ध में किये गये प्रयोग एक से अधिक व्यक्तियों पर किये जायें तथा उनसे प्राप्त सामग्रियों के परिमाणात्मक निरूपण के आधार पर ही किसी सामान्य नियम का प्रतिपादन किया जाय जैसे—बुद्धि की जाँच (measurement of intelligence) के लिए बनाये गये 'टेस्ट (Test) यदि बहुत से व्यक्तियों पर नहीं किये जाते तो आज हम वैज्ञानिक रूप से यह कह सकने में समर्थ नहीं होते कि जनसंख्या में अधिक लोग सामान्य या औसत बुद्धि (Average intelligence) के होते हैं।

किसी भी 'टस्ट' (test) का निर्माण (Construction) परिमाणात्मक विधि के बिना सम्भव नहीं है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में किसी भी अन्वेषण (Research) का होना परिमाणात्मक विधि के उपयोग के बिना असम्भव है। अत यह विधि मनोवैज्ञानिक ज्ञान (Psychological knowledge) की वृद्धि में बहुत ही लाभप्रद है।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त मनोविज्ञान की विधियों द्वारा प्राप्त सामग्रियों (Data) का विश्लेषण (Analysis) कर उनमें प्राप्त निष्कर्षों के महत्व का पता लगाने का भी यह महत्वपूर्ण साधन है। अत हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक अध्ययनों (Psychological studies) के लिए परिमाणात्मक विधि मनो

विज्ञान की अन्य विधियों से कोई कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखती । यह अन्य विधियों के पूरक के समान (As a supplement to other methods) है ।

मनोविज्ञान की विधियों के सम्बन्ध मे निष्कर्ष
(Conclusion regarding the Methods of Psychology)

अन्त मे हम यह कह सकते है कि मनोविज्ञान को विधियाँ वस्तुनिष्ठ (Objective), पक्षपातरहित (Unbiased) तथा क्रमबद्ध (Systematic) होती गयी है । सक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि वे अधिक वैज्ञानिक (Scientific) होती गयी है । पहले सिर्फ आत्मनिष्ठ विधियो (Subjective methods) जैसे विप्रयोग-कल्पना (Arm-chair speculation) तथा अन्तर्निरीक्षण (Introspection) का ही उपयोग किया जाता था, पर आगे चलकर अन्तर्निरीक्षण की विधि मे बहुत सुधार लाया गया और उसके दोषो को दूर करने की चेष्टा भी की गयी तथा वस्तुनिष्ठ विधियाँ, जैसे—बाह्य निरीक्षण की विधि (Methods of Objective observation), प्रयोगात्मक (Experimental) एव परिगणनात्मक (Statistical) विधियो का प्रादुर्भाव हुआ । फलस्वरूप मनोविज्ञान के क्षेत्र मे किये गये अध्ययन अधिक वैज्ञानिक (Scientific) होते गये । अस्तु, इनके प्राप्त निष्कर्षों की सत्यता, विश्वसनीयता तथा वैज्ञानिकता पर अब हम निस्सन्देह भरोसा कर सकते हैं । इसमे कोई सन्देह नही कि प्रत्येक विधि के अपने-अपने गुण (Merits) एव दोष (Demerits) दोनो है, पर यदि उसको ध्यानपूर्वक (Carefully) उपयोग मे लाया जाय, तो उसके दोषो को भी बहुत हद तक दूर किया जा सकता है, चूँकि उनपर आरोपित अधिकांश आपत्तियाँ किसी विधि-विशेष मे नही है वरन् उनके दोषपूर्ण उपयोग मे ही हैं (Defects do not lie with the methods themselves, rather in their defective use) ।

वस्तुत: आज मनोविज्ञान की एकमात्र विधि प्रयोगात्मक विधि (Experimental method) ही है, चूँकि इस विधि मे अन्तर्निरीक्षण (Introspection), बाह्य निरीक्षण (Objective observation) एव परिगणनात्मक (Statistical) सभी विधियो का उपयोग किया जाता है । आज मनोविज्ञान का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है जो प्रयोगात्मक विधि के उपयोग से वंचित हो ।

अस्तु, आज हम 'मनोविज्ञान' (Psychology) की जगह 'प्रयोगात्मक मनोविज्ञान' (Experimental Psychology) अधिक उपयोग करते है । वर्तमान युग मे प्रयोगात्मक पहलू से रहित मनोविज्ञान का अपना कोई अस्तित्व (Existence) ही नही रह जाता (Psychology without its experimental part to day is an anachronism) ।

स्नायु-मण्डल

(Nervous System)

भूमिका—स्नायु-कोषों की बनावट तथा इनके स्वभाव—स्नायु कोषों के प्रकार—स्नायु प्रवाह और सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं का नियम।

स्नायु मण्डल तथा इसके कार्य—इन्द्रियों के उत्तेजित होने की क्रिया—स्नायु-प्रवाह के प्रवहण की क्रिया—व्यवहार नियमन की क्रिया।

स्नायु मण्डल के उपविभाग—संयोजक स्नायु मण्डल—ज्ञानवाही एवं क्रियावाही संयोजक स्नायु-मण्डल—केन्द्रीय स्नायु-मण्डल—सुषुम्ना एवं मस्तिष्क—मस्तिष्क के भाग—पृष्ठ मध्य तथा अग्र मस्तिष्क—पृष्ठ मस्तिष्क—सुषुम्ना शीर्ष सेतु तथा लघु-मस्तिष्क—मध्य मस्तिष्क—प्रसार एवं ऊपरी उभार या स्कन्ध—अग्र मस्तिष्क—थैलमस हाइपोथैलमस आल-फैक्टरी बल्ब्स कमस वेसनीया सेरीब्रल हेमिस्फियर—वृहत् मस्तिष्कीय वल्क वृहत् मस्तिष्कीय वल्क की बनावट एवं क्रियाओं सम्बन्धी विस्तृत वर्णन तथा मस्तिष्क द्वारा संचालित क्रियाओं सम्बन्धी सिद्धान्त स्वतः संचालित स्नायु-मण्डल—इसके विभिन्न भागों की बनावट तथा कार्यवाही।

कर्मेन्द्रियाँ या प्रभावक—मांसपेशियाँ तथा पिण्ड—मांसपेशियाँ—धारीदार एवं चिकनी मांसपेशियाँ—पिण्ड या ग्रन्थि बहिःस्रावी तथा अन्तःस्रावी पिण्ड—मांसपेशियों तथा पिण्डों की बनावट और उनकी कार्यवाही।

स्नायु-को

St

केन्द्रीय स्नायु

प (Structure a

ना भाग होना

मनुष्य का शरीर अनेक जीवित कोशो (Living) का संग्रह है। पर सभी कोश एक तरह के नही होते और न उनकी क्रिया ही समान होती है। कुछ कोशो से माशपेशियां बनती है तो कुछ से हड्डियाँ, कुछ कोशो का काम स्नायु-प्रवाह का ढोना है। ये कोश जो स्नायु-प्रवाह को ढोते है उन्हे स्नायु कोश (Neurons) कहते है। स्नायुकोश मे एक जीवकोश (Cell body) होता है। इसके दोनो छोरो की बनावट विशेष प्रकार की होती है। एक तरफ मुख्यतन्तु (Axon) तथा दूसरी तरफ शिखातन्तु (Dendrites) होता है। इस प्रकार प्रत्येक स्नायुकोश (चित्र १ देखें) के तीन भाग होते है—

(१) **जीवकोश** (Cell body), (२) **मुख्यतन्तु** (Axon) **और** (३) **शिखा-तन्तु** (Dendrites)।

शिखातन्तु (Dendrites)



एण्डब्रश (Endbrush)

मुख्यतन्तु

जीवकोश (Cell body) (Axon)

(चित्र १—स्नायुकोश का चित्र)

१ **जीवकोश** (Cell body)—**बनावट**—इसके आकार का कोई निश्चित रूप नही होता है। यह प्राय गोलाकार होता है। एक कोश के चारो तरफ एक परत होती है जिसे "मेमब्रेन" (Membrane) कहते है। इस परत के नीचे "साइटोप्लाज्म" (Cytoplasm) नामक एक तरल पदार्थ होता है जिसके मध्य मे "कोश का केन्द्र" (Nucleus) होता है। इस केन्द्र के अन्दर एक और सूक्ष्म केन्द्र होता है जिसे "नुकलीआई" (Nucleoli) कहते है।

कार्य—शिखातन्तु द्वारा लाये गये स्नायु-प्रवाहो को केन्द्र मे ग्रहण करना तथा पुन मुख्यतन्तु की ओर जाने देना।

२ **मुख्यतन्तु** (Axon)—**बनावट**—यह जीवकोश की ओर से बहुत पतली दुम की तरह लम्बा निकला होता है। इसकी छोर पर बहुत पतले-पतले निकले झाड़ू की तरह के आधार को 'एण्डब्रश' (Endbrush) कहते हैं। मुख्यतन्तु का 'एण्डब्रश' दूसरे जीवकोश के 'शिखातन्तु' (Dendrites) से लगा होता है।

क्रिया—मुख्यतन्तु द्वारा जीवकोश मे आये हुए स्नायु-प्रवाह जीवकोश से बाहर निकलते हैं तथा मासपेशियो, पिण्डो अथवा स्नायुमण्डल के किसी केन्द्रविशेष की ओर जाते हैं।

३ **शिखातन्तु** (Dendrites)—**बनावट**—यह पेड की सघन टहनियो के समान फैला होता है।

कार्य—इसके दो काम हैं—एक स्नायु प्रवाह को ग्रहण करना तथा दूसरा उसे जीवनकोश में ले जाना।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि किसी उत्तेजना-विशेष से ग्राहककोशों के उत्तेजित होने से स्नायु प्रवाह उत्पन्न होता है। जैसे—मेज पर रखी कलम को देखकर दृष्टि स्नायु प्रवाह उत्पन्न होते हैं। इस स्नायु-प्रवाह को शिखातन्तु (Dendrites) ग्रहण कर जीवकोश (Cell body) तक ले जाता है। जीवकोश से दूर मांसपेशियों पिण्डों या स्नायु मण्डल के किसी केन्द्र विशेष की ओर ले जाता है।

स्नायु कोश के प्रकार
(Kinds of Neurons)

अनेक स्नायु (Neurons) सारे शरीर में फैले हुए हैं। जो स्नायुकोष स्नायु प्रवाह को ग्राहकेन्द्रियों से सुषुम्ना या मेरुदण्ड रज्जु (Spinal cord) अथवा मस्तिष्क (Brain) तक पहुँचाता है उसे ज्ञानवाही स्नायु कोश (Sensory or Afferent Neuron) कहते हैं। पर स्नायु प्रवाह को मांसपेशियों तथा पिण्डों तक पहुँचाने के लिए भी स्नायुकोश हैं। इन्हें बहिर्वाहक या गतिवाही स्नायु कोश (Efferent or Motor Neuron) कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी स्नायु-कोश हैं जिनका काम अन्तर्वाहक स्नायु कोश (Sensory Neuron) के स्नायु प्रवाह को बहिर्वाहक स्नायुकोश (Motor Neuron) से मिलाना होता है। ऐसे स्नायुकोश को साहचर्य स्नायु कोश (Association Neuron) कहते हैं [चित्र २ (क) देखें।]

स्नायु प्रवाह को ग्राहकेन्द्रियों से सुषुम्ना अथवा मस्तिष्क तक (Receptor organs to Spinal cord or Brain] या मस्तिष्क के मांसपेशियों तथा पिण्डों

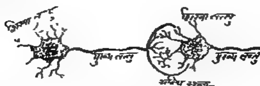


[चित्र २ (क) विभिन्न प्रकार के स्नायुओं का चित्र]

तक (Brain to muscles or glands) एवं स्नायु प्रवाह को ज्ञानवाही स्नायुकोष से लेकर गतिवाही स्नायुकोश (Nerve impulses from receptor cell to effector cells) में छोड़ने की क्रिया को करने के लिए अनेक स्नायु-कोश (Neurons) शरीर में हैं।

सन्धि स्थल (Synapse)—एक स्नायुकोश दूसरे स्नायुकोश से एकदम सटा नहीं होता वरन् एक स्नायुकोश का मुख्यतन्तु जहाँ दूसरे स्नायुकोश के शिखातन्तु से

सम्पर्क मे आता है वहाँ मुख्यतन्तु एव शिखातन्तु के बीच कुछ दुराव रह जाता है। इस स्थल को **सन्धि-स्थल** (Synapse) कहते हैं। [चित्र २ (ख) देखें] इस सन्धि-



[चित्र २ (ख) दोनो स्नायुकोशो का सन्धिस्थल]

स्थल को पार करने के क्रम मे स्नायु-प्रवाह पहले धीमा हो जाता है फिर समीप आकर एक छलाग ले पार करने की कोशिश करता है। कुछ स्नायु-प्रवाहो मे अपने ही मे इतनी ताकत होती है कि उस ताकत के सहारे इस सन्धि-स्थल को पार कर जाते है। पर ऐसे भी स्नायु प्रवाह होते है जिन्हे दूसरे स्नायु-प्रवाहो की सहायता सन्धि-स्थल (Synapse) को पार करने के लिए लेनी पड़ती है। सहायता दो तरह से मिल सकती है—(क) दो भिन्न स्थान मे आनेवाले स्नायु-प्रवाहो का सयोग सन्धि-स्थल मे होना, जिसे **स्थान-सयोग** (Spantial Summation) कहते है तथा (ख) एक ही मार्ग मे आने वाले भिन्न भिन्न समय पर चले हुए स्नायु-प्रवाहो का मिलन जिसे **समय-सयोग** (Temporal Summation) की सज्ञा दी जाती है।

इस सयोग के फलस्वरूप कमजोर स्नायु-प्रवाहो मे बल आ जाता है जिससे वे सन्धि-स्थल को पार करने मे समर्थ होते हैं। एक ही सन्धि-स्थल पर एक ही समय भिन्न-भिन्न दिशाओ से स्नायु-प्रवाह पहुँच सकते है। पहुँचने वाले इन विभिन्न स्नायु प्रवाहो मे जो स्नायु-प्रवाह जितना अधिक शक्तिशाली है वह उतनी शीघ्रता से अपेक्षाकृत कमजोर स्नायु-प्रवाह की शक्ति को रोक कर स्वय उस सन्धि-स्थल को पार कर आगे बढ जाता है जैसे—कभी-कभी खेलने मे व्यस्त होने पर थोडी चोट लग भी गयी हो तो उस चोट की जानकारी खेलते रहने तक नही होती। यहाँ पर खेलने की क्रिया का स्नायु-प्रवाह चोट लगने से उत्पन्न स्नायु-प्रवाह को आगे बढने से रोक देता है जिससे चोट की जानकारी नही हो पाती। सन्धि-स्थल पर हुए इस क्रिया को रुकावट-क्रिया (Synaptic inhibition) कहते है।

सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं का नियम
(All or None Law)

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, उत्तेजना के ज्ञानेन्द्रियो के सम्पर्क मे आने से ज्ञानेन्द्रियो मे एक प्रकार का वैद्युत् रासायनिक सक्षोभ (Electrochemical disturbance) उत्पन्न होती है जिसे **स्नायु-प्रवाह** (Nerve impulse) कहते है। समुचित उत्तेजना पाकर जब कोई स्नायु-कोश उत्तेजित होता है, तो वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ क्रियाशील हो उठता है। परन्तु दुर्बल उत्तेजना से स्नायुकोश बिल्कुल उत्तेजित नही होता है। अर्थात्, स्नायु-कोश यदि क्रियाशील होता है तो

पूर्ण रूप से क्रियाशील नहीं होता है और यदि क्रियाशील नहीं होता है तो एकदम नहीं होता है। आंशिक क्रियाशीलता की स्थिति उनमें एकदम नहीं देखी जाती है इसे सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं का नियम (All or None Law) कहते हैं। एक बार एक स्नायु-कोश उत्तेजित होने के बाद कुछ देर विश्राम करता है जिसे विश्रामावस्था (Refractory Period) कहते हैं। इस प्रकार विश्राम की अवस्था दो तरह की होती है—(क) पूर्ण विश्राम की अवस्था (Absolute Refractory Period) तथा (ख) सापेक्ष विश्राम की अवस्था (Relative Refratory Period)।

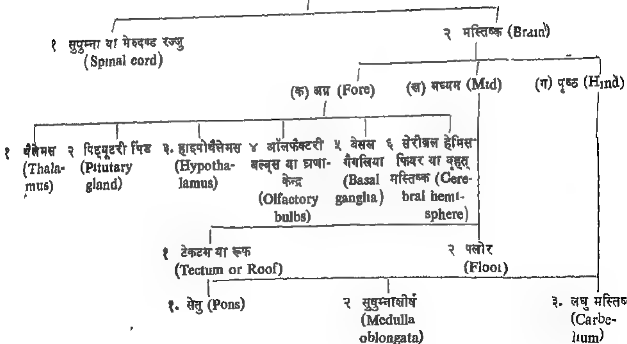
पूर्ण विश्राम की अवस्था में जब स्नायु-कोश होते हैं तो वहाँ तीव्र से तीव्र उत्तेजना भी उसे क्रियाशील नहीं कर पाती। परन्तु सापेक्ष विश्राम की अवस्था में एक अति तीव्र (Intense) उत्तेजना स्नायु-कोश में गति उत्पन्न कर सकती है।

केन्द्रीय स्नायुमण्डल
(Central Nervous system)

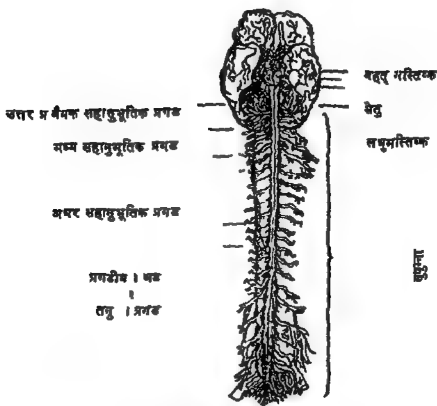
केन्द्रीय स्नायु मण्डल को दो प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है—(१) सुषुम्ना या मेरुदण्ड रज्जु (Spinal Cord) और (२) मस्तिष्क (Brain)। मस्तिष्क के तीन भाग किए जा सकते हैं—(क) अग्र-मस्तिष्क (ख) मध्य-मस्तिष्क और (ग) पश्च-मस्तिष्क। अग्र मस्तिष्क के निम्नलिखित भाग हैं—थैलेमस (Thalamus) पिट्यूटरी ग्लैंड या पिंड (Pituitary gland) हाइपोथैलेमस (Hopothalamus) ऑलफैक्टरी बल्बस (Olfactory bulbs) बेसल गैंगलिया (Basal gangalia) तथा सेरिब्रल हेमिस्फीयर (Cerebral Hemishpere)। मध्य मस्तिष्क (Mid brain) को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(क) टेक्टम या रूफ (Tectum or Roof) और (ख) फ्लोर (Floor)। पृष्ठ मस्तिष्क में जो आकृतियाँ (Structures) मिलती हैं वे हैं—सुषुम्नाशीर्ष (Medulla), सेतु (Pons) एवं लघु मस्तिष्क (Cerebellum) (पृष्ठ ९१ पर दी गयी तालिका को देखें)।

(१) सुषुम्ना या मेरुदण्ड रज्जु
(Spinal Cord)

एक हड्डी गर्दन से आरम्भ होकर पीठ से होती हुई पूँछ की हड्डी (Tail bone) तक चली गयी है। इस रीढ़ की हड्डी के भीतर केन्द्रीय स्नायुमण्डल का वह लम्बा भाग है जिसे सुषुम्ना या मेरुदण्ड रज्जु की संज्ञा दी गयी है। सुषुम्ना की लम्बाई लगभग अठारह इन्च है। इससे स्नायु-तन्तुओं (Nerve fibers) के इकतीस जोड़े निकलते हैं जो सुषुम्ना के दोनों ओर से इसमें जुड़े हुए हैं और वहीं से निकल कर ये सारे शरीर में फैले हैं।


केन्द्रीय स्नायुमण्डल (Central Nervous System)
१ सुषुम्ना या मेरुदण्ड रज्जु (Spinal cord)
२ मस्तिष्क (Brain)
(क) अग्र (Fore)
(ख) मध्यम (Mid)
(ग) पृष्ठ (Hind)
१ थैलेमस (Thalamus)
२ पिट्यूटरी पिंड (Pituitary gland)
३. हाइपोथैलेमस (Hypothalamus)
४ ऑलफैक्टरी बल्ब्स या घ्राणा-केन्द्र (Olfactory bulbs)
५ बेसल गैंगलिया (Basal ganglia)
६ सेरीब्रल हेमिसफियर या वृहत् मस्तिष्क (Cerebral hemisphere)
१ टेकटम या रूफ (Tectum or Roof)
२ फ्लोर (Floor)
१. सेतु (Pons)
२ सुषुम्नाशीर्ष (Medulla oblongata)
३. लघु मस्तिष्क (Carbelum)

प्रतिसर्पों (Reflexes) का संचालन एवं नियन्त्रण सुषुम्ना द्वारा ही होता है। प्रतिक्षेप एक सरलतम मानसिक क्रिया है जिसके संचालन एवं नियन्त्रण के लिए केवल ज्ञानवाही स्नायुओं (Afferent or sensory nerves), गतिवाही-स्नायुओं (Efferent or Moter nerves) मेरुदण्ड रज्जु या सुषुम्ना (Spinal cord) तथा मांसपेशियों एवं पिंडों (Muscles and glands) की आवश्यकता पड़ती है। स्नायु प्रवाह ज्ञानवाही-स्नायुओं से होता हुआ सुषुम्ना एवं गतिवाही-स्नायु में

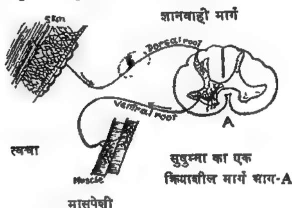


[चित्र ३—मानव-मस्तिष्क एवं सुषुम्ना का चित्र]

प्रवेश करता है तथा गतिवाही स्नायु प्रवाहों को मांसपेशियों एवं पिण्डों में लाती है जिससे वे क्रियाशील होते हैं। ज्ञानवाही सुषुम्ना तथा गतिवाही स्नायुओं से प्रशस्त मार्ग को प्रतिक्षेप चक्र (Reflex arc) की संज्ञा दी जाती है। इस मार्ग से होकर स्नायु प्रवाह मांसपेशियों एवं पिण्डों तक पहुंचता है जिससे वे क्रियाशील हो जाते हैं।

इसके क्रियाशील होने से उत्पन्न क्रिया को प्रतिक्षेप क्रिया (Reflex action)[१] कहते हैं (चित्र ४ देखें)।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रतिक्षेप धनु (Reflex-are) के पाँच आवश्यक अंग है—(क) ग्राह्यकेन्द्रियाँ, जो उत्त जनाओ को ग्रहण करती है। जैसे — आँख-कान आदि, (ख) ज्ञानवाही स्नायु-प्रवाह को सुषुम्ना तक ढोती है, (ग) सुषुम्ना, जहाँ ज्ञानवाही स्नायु प्रवाह पहुँचता है, (घ) गतिवाही स्नायु जो स्नायुप्रवाह को



[चित्र ४—प्रतिक्षेप-धनु का चित्र]

सुषुम्ना से मासपेशियो एव पिण्डो तक ढोता है तथा (च) मासपेशियाँ या पिण्ड जिन्हें गतिवाही स्नायु-प्रवाह कार्यशील करती हैं जिससे क्रिया की उत्पत्ति होती है।

प्रतिक्षेप-धनु के किसी भी एक अंग के अभाव मे प्रतिक्षेप-क्रिया की उत्पत्ति असम्भव है।

(२) मस्तिष्क
(Brain)

(क) पृष्ठ मस्तिष्क (Hind Brain)

१. सुषुम्नाशीर्ष (Medulla-oblonagata) बनावट—सुषुम्ना (Spinal cord) के ऊपरी भाग को सुषुम्नाशीर्ष कहते है। यह एक इन्च लम्बा है।

कार्य—यह सुषुम्ना और मस्तिष्क के उस भाग मे जो सुषुम्नाशीर्ष से ऊपर है एक सम्बन्ध स्थापित करता है, साथ-ही-साथ मस्तिष्क के अन्दर पाये जाने वाले स्नायु क्रेनियल नर्भ (Cranial nerve) या कापालिक नाडी के अन्दर तथा बाहर जाने का एक मार्ग है। यह 'नर्भ' मस्तिष्क के प्रमुख स्नायुओ से सम्बन्ध स्थापित

१ प्रतिक्षेप-क्रिया की विशद् व्याख्या के लिए द्वितीय भाग का छठा अध्याय देखे।

करता है। यह शरीर की प्राणरक्षा सम्बन्धी सभी क्रियाओं (All vital functions of the body) का सञ्चालन एवं नियंत्रण करता है। उदाहरण के लिए साँस लेने की क्रिया तथा शरीर के भीतर रक्त-वाह (Blood circulation) आदि क्रियाएं सुषुम्नाशीर्ष से सञ्चालित एवं नियमित होती हैं। इसकी सभी क्रियाएं अचेतन (Unconscious) होती हैं।

२ सेतु (Pons) बनावट—यह भाग सुषुम्ना शीर्ष के ठीक ऊपर है।

कार्य – लघु मस्तिष्क के दोनों भागों तथा वृहत मस्तिष्क के दोनों भागों का मिलाना और लघु एवं वृहत मस्तिष्क को मस्तिष्क के अन्य भागों से मिलाना इसका प्रमुख कार्य है।

१ लघु मस्तिष्क (Cerebellum)— बनावट—इसका स्थान मस्तिष्क में वृहत् मस्तिष्क (Cerebellum) के नीचे है। यह दो अर्द्ध खण्डों में विभक्त है। एक ओर अनेक स्नायु-तन्तुओं (Nerve fibres) द्वारा इसका सम्बन्ध सुषुम्ना शीर्ष से रहता है तथा दूसरी ओर सेतु के द्वारा इसका सम्बन्ध वृहत मस्तिष्क से है। यह वेस्टिबुलर नामक ग्राहकेन्द्रिय जो कान में है (Vestibular receptor in ear) उससे स्नायु तन्तुओं के द्वारा सम्बन्ध स्थापित करता है।

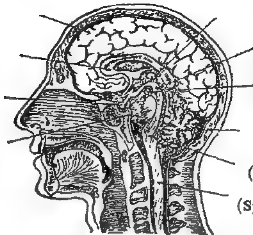
कार्य—शारीरिक सन्तुलन (Equilibrium) का ग्राहकेन्द्रिय वेस्टिबुलर (Vestibular) ही है। अतः स्पष्ट है कि सन्तुलन का ज्ञान होना लघु मस्तिष्क पर निर्भर है। यह सभी प्रकार की शारीरिक गतियों का समठित रूप से सचालित एवं नियन्त्रित करता है। फलस्वरूप शरीर की विभिन्न क्रियाओं में सन्तुलन स्थापित हो जाता है। इस प्रकार शरीर को सन्तुलित रखने का भार लघु मस्तिष्क पर ही है। लघु मस्तिष्क के अभाव या उसमें क्षति पहुंचने के कारण प्राय यह देखा जाता है कि प्राणी अपना शारीरिक सन्तुलन (Bodily balance) ही खो बैठता है।

जिन क्रियाओं का संचालन अनेक मांसपेशियों (Muscles) के सहयोग से होता है, उनको नियंत्रित भी लघुमस्तिष्क करता पाया जाता है। जैसे—आदतजन्य क्रियाएं (Habitual actions)। पशुओं के मस्तिष्क का जब यह भाग निकाल दिया गया तो उनका व्यवहार अत्यन्त असन्तुलित हो गया। चलना फिरना उनके लिए असम्भव हो गया। ऐसे प्रयोगों से स्पष्ट है कि लघु मस्तिष्क कुशल एवं जटिल क्रियात्मक क्रियाओं को (Skilled and complex motor activities) को व्यवस्थापूर्वक क्रम में रखता है।

(ख) मध्य मस्तिष्क (Mid brain)

१ फ्लोर (Floor)—निचली सतह जिसे फ्लोर (Floor) कहते है, एक रास्ता है जहाँ से ज्ञानवाही (Sensory) स्नायु प्रवाह मस्तिष्क के ऊँचे केन्द्रों की ओर जाता है। गतिवाही (Motor) स्नायु प्रवाह इसी रास्ते से होकर मस्तिष्क के निचले केन्द्रों में पहुँच पाता है।

२ ऊपरी सतह (Roof) या टेक्टम (Tectum)—**बनावट**—टेक्टम को दो जोड़े ज्ञानवाही केन्द्रों (Two pairs of sensory centres) में विभक्त किया



[चित्र ५—मानव-मस्तिष्क के दाहिने वृहत्मस्तिष्कीय अर्द्धखण्ड का चित्र जिनमे इसके मुख्य अगो का स्थान दिखलाया गया है]

गया है। एक का नाम 'सुपीरियर कोलीकुली' (Superior colliculi) तथा दूसरे का नाम 'इनफीरियर कोलीकूली, (Inferior colliculi) है।

कार्य—'सुपीरियर कोलीकुली' द्वारा देखने की क्रिया सम्पन्न होती है। देखने की क्रिया को सम्पन्न करने का प्रधान मस्तिष्कि केन्द्र 'औक्सीपीटल लोब' (Occipital lobe) है। इस प्रधान-केन्द्र के अभाव मे देखने की क्रिया को सचालित एव नियन्त्रित सुपीरियर कोलीकुली (Superior colliculi) करता है। 'इनफीरिर 'कोलीकली' (Inferior colliculi) पर सुनने की क्रिया आश्रित है।[१]

(ख) अग्रमस्तिष्क (Fore brain)

१ थॅलेमस (Thalamus)—लघु मस्तिष्क के सामने तथा वृहत् मस्तिष्क के नीचे के भाग को थॅलेमस की सज्ञा दी गयी है। स्नायु-प्रवाहों को अपने-अपने नियत स्थान मे भेजने का कार्य-भार थॅलेमस पर ही है। साथ-ही-साथ प्रयोगो ने स्पष्टतया दिखला दिया है कि साधारण प्रकार के सीखने की क्रिया (Simple forms of learning) थॅलेमस पर ही निर्भर करती है।

२ हाइपोथॅलेमस (Hypothalamus)—**बनावट**—इसे दो भागो मे विभाजित किया गया है—पहला, पीछे तथा बगल का भाग (Posterior and lateral

---

१ "It is a primitive centre for hearing"

portion) और दूसरा अगला तथा बीच का भाग (Anterior and the central portion)।

कार्य — पीछे तथा बगल का भाग सहानुभूतिक मण्डल (Sympathetic system) के कार्यों के सम्पन्न होने में सहयोग देता है। बिजली के करेंट द्वारा इस भाग को उत्तेजित करने से तदुपरान्त व्यक्ति में दिल की धड़कन का बढ़ना (Increase in Heart beat) रक्त-चाप में वृद्धि (Rise in blood pressure) आमाशय का सिकुड़ना (Stomach contaction) इत्यादि परिवर्तन हुए। इससे स्पष्ट है कि हाइपोथैलेमस का यह भाग सहानुभूतिक मण्डल की क्रियाओं को सम्पन्न करने में सहयोग देता है। हाइपोथैलेमस का दूसरा भाग उपसहानुभूतिक (Para sympathetic) मण्डल के कार्यों को सम्पन्न करता है। इस तरह हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) स्वतः सचालित क्रियाओं के सम्पन्न करने मे सहयोग देता है। इसके अतिरिक्त और भी अन्य क्रियाएँ इसके द्वारा सम्पादित होती हैं वे निम्नांकित है—(क) स्नायु-तन्तुओं को सुषुम्नाशीर्ष (Medulla oblongata) की ओर भेजकर सांस लेने की क्रिया (Respiration) के सचालन में सहयोग देना (ख) शरीर के ताप (Body Temperature) को ठीक रखना (ग) शारीरिक पाक क्रिया का सचालन विशेषकर चर्बी (Fat) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) तथा जल की पाचन क्रियाओं की व्यवस्था (Regulation of metabolims particularly of Fat Carbohydrate and Water) (घ) यौन-समागम की प्रवृत्ति एव क्रियाओं का नियन्त्रण (ङ) सवेगात्मक व्यवहारों के सचालन का यह प्रमुख केन्द्र है तथा (च) हाइपोथैलेमस पिट्यूटरी पिण्ड (Pituitary gland) से भी सम्बन्धित है। पिट्यूटरी पिण्ड के सहारे हाइपोथैलेमस हमारे शरीर के अन्दर के अन्तःस्रावी पिण्डों (Endocrine glands) की क्रिया को भी बहुत कुछ नियन्त्रित करता है।

३ ऑलफैक्टरी बल्ब्स या घ्राण-केन्द्र (Olfactory bulbs) —यह नाक के ठीक ऊपर स्थित है। जो प्राणी विकास की सीढ़ी पर अधिक दूर तक नही बढे हैं उनमें इसकी गिनती मस्तिष्क के ऊँचे केन्द्रों मे होती है। पर विकास के फलस्वरूप वृहत् मस्तिष्क इसका स्थान ले लेता है। अतः अधिक विकसित प्राणी मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान नही है।

४ बेसल गगलिया (Basal gangila)—बनावट—विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार प्राणियों मे यह भाग बहुत पहले विकसित हुआ था। इसके दो भाग हैं। पहला तो वह जो धारीदार है और दूसरा जिसमे धारी नही है।

कार्य—धारीवाले भाग को कारपस स्ट्रीएटम (Corpus Striatum) कहते हैं। मस्तिष्क के इस भाग का कार्य शारीरिक मुद्राओं या स्थितियों का नियन्त्रण करना (To maintain the dosture of the organism) है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के

व्यवहारो का सम्यक् सन्तुलन बनाये रखना (Co-ordination of movement) भी इसका काम है।

५ सेरीब्रल हेमिसफियर (Cerebral Hemisphere)— बनावट—इनके प्रमुख भाग क्रमश — (क) सेरीब्रल कौर्टेक्स (Cerebral cortex)— यह मस्तिष्क का ऊपरी भाग है तथा इस भाग मे धसर द्रव्य (Grey matter) देखने को मिलता है, (ख) उजले स्नायु तन्तु के समूह कौर्टेक्स (Cortex) के निचले भाग मे है, (ग) कोर्पस कैलोसम (Corpus Callosum) उन स्नायु तन्तुवो का समूह है जो कोर्टेक्स (Cortex) के दो भागो के बीच स्थित है।

बृहत्मस्तिष्कीय वल्क या सेरीब्रल कौर्टेक्स (Cerebral cortex) — बनावट— जटिल मानसिक क्रियाओ का उद्गम स्थान है। ऊपर सतह को देखने से मस्तिष्क का यह भाग कही दबा हुआ तो कही उभरा हुआ मालूम होता है। दबे हुए भाग को दरार या फीसर या सलकस (Fissure or Sulcus) कहते है। इस तरह के दो दबे हुए भागो के बीच के भागो को 'गोइरस' (Gyrus) की सज्ञा दी जाती है। उभरे हुए भागो को रीजेज (Ridges) कहते है। 'कौर्टेक्स' (Cortex) की दरारें या फीसर (Fissure) दो भागो मे बाँटती है। दो भागो मे बाँटने वाली लम्बी दरार का नाम रोलडो या मध्य (Rolando or Central) दरार है। एक दूसरी दरार या फीसर भी है जिसे सीलभीयस (Fissure of sylvius) की दरार कहते हैं। इन दरारो द्वारा कौर्टेक्स (Cortex) चार भागो मे विभक्त है (चित्र ६ देखें)।

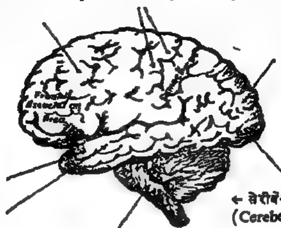
१ अग्रखंड या फ्राटल लोब (Frontal lobic), पार्श्व कपाल खंड या पैरीटल लोब (Parietal lobe), (३) शख-खड या टेमपोरल लोब (Temporal lobe), तथा (४) पृष्ठ-कपाल खड या ऑक्सीपीटल लोब (Occipital lobe)।

कार्य— भिन्न-भिन्न भागो द्वारा विभिन्न क्रियाएँ सम्पादित होती है। जैसे —ऑक्सीपीटल लोब (Occipital lobe) द्वारा देखने की क्रिया, पैरीटल लोब (Parietal lobe) द्वारा स्पर्श तथा 'फ्राटल लोब' (Frontal lobe) बोलने-चालने आदि की क्रियाएँ तथा 'टैम्पोरल लोब' (Temporal lobe) सुनने की क्रिया को नियन्त्रित करता है।

स्नायु-तन्तु 'सेरीब्रल हेमिसफेयर' (Cerebral hemisphere) मे पाये जाते हैं। उनका प्रधान कार्य मस्तिष्क के एक भाग को दूसरे भाग के साथ मिलना है। इस सम्बन्ध के फलस्वरूप ही स्नायु-प्रवाह अपने नियत स्थान पर पहुँच पाते हैं।

बृहद् मस्तिष्क (Cerebrum) दो अर्द्धखण्डो मे बँटा है— (१) दायाँ और (२) बायाँ। शरीर के बाये भाग की सभी चेतन तथा अचेतन क्रियाओ का सचालन एव नियन्त्रण करना बृहत् मस्तिष्क के दाहिने अर्द्धखण्ड पर निर्भर है। ठीक इसी प्रकार शरीर के दाहिने भाग की सभी क्रियाओ का सचालन तथा नियन्त्रण बायाँ अर्द्धखण्ड करता है। इसके दो भाग किये गये है। वे है —ऊपरी भाग एव निचला भाग

ऊपरी भाग शरीर में गर्दन से नीचे की शारीरिक अवयवों म होने वाली क्रियाओं का नियन्त्रण करता है जैसे पैर का पंजा अँगूठा हाथ की अगुलियाँ आंख इत्यादि की मांसपेशियों की क्रियाओं का नियन्त्रण करता है। निचला भाग गर्दन से ऊपर की



[चित्र ६—मानव-मस्तिष्क का बायाँ बृहद्‌मस्तिष्कीय अर्द्धखण्ड जिसमें इसके विभिन्न भाग तथा उनकी क्रियाओं का क्षेत्र दिखलाया गया है।]

शारीरिक अवयवों की क्रियाओं का संचालन करता है जैसे आँख नाक कान इत्यादि की क्रियाएं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है बृहद् मस्तिष्क का विशिष्ट भाग विशेष प्रकार की क्रियाओं को सम्पन्न करता है अतः इसके किसी एक विशेष भाग को क्षति पहुँचाने से उस भाग पर आश्रित क्रियाओं को भी क्षति पहुँचती है। मन (Munn) ने अपनी पुस्तक साइकोलोजी (Psychology) में इसकी व्याख्या करते हुए स्पष्ट रूप से बतलाया है कि ज्ञानात्मक क्रियाओं के नियन्त्रण एवं सम्पादन के लिए मस्तिष्क में पैरीटल या पार्श्व कपाल-खण्ड (Parietal), टैम्पोरल या शंख कपाल-खण्ड (Temporal) एवं ऑक्सीपीटल या पृष्ठ कपाल-खण्ड (Occipital obe) हैं। इसी प्रकार मनिवाही (Motor) क्रियाओं के संचालन एवं नियन्त्रण के लिए रोलण्डो (Rolando) के फीशर या दरार के अग्र भाग से लगे हुए कुछ पिरामिड (Pyramid) की शक्ल ( ) के कोष (Cells) हैं। इन कोशों (Cells) को पिरामिडल कोष (Pyramidal cells) और यह स्थान जहाँ ये विशेष रूप से पाये जाते हैं उसे पिरामिडल ट्रैक (Pyramidal Track) कहते हैं। साहचर्य क्रियाएँ (Associative functions) जैसे सोचना चलना सीखना इत्यादि के

नियन्त्रण एव सचालन के हेतु मस्तिष्क मे विशेष भाग है जिसे **ज्ञानवाही** (Sensory), **गतिवाही** (Motor) एव **अग्र-साहचर्य भाग** (Frontal association area), की सज्ञा दी जाती है। मस्तिष्क के इन तीनो भागो द्वारा क्रमश ज्ञानवाही क्रियाएँ (Sensory functions), गतिवाही क्रियाएँ (Motor functions) तथा साहचर्य क्रियाएँ (Association functions), ज्ञानवाही, गतिवाही तथा साहचर्य स्नायुकोशो (Sensory, Motor and Association Neurons) द्वारा सम्पन्न होती है।

*बृहन्मस्तिष्कीय वल्क की बनावट एव क्रिया-सम्बन्धी विस्तृत वर्णन

(Detailed discription of the structure and functions of the Cerebral Cortex)

मस्तिष्क द्वारा सचालित नियन्त्रित क्रियाओ के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ (Methods of obtaining knowledge of Cortical functions)--

सेरीब्रल कोर्टेक्स (Cerebral Cortex) या बृहन्मस्तिष्कीय वल्क द्वारा सचालित एव नियन्त्रित क्रियाओ के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने के निम्नलिखित आधार है—

(क) स्नायुमण्डल की एक छोर से दूसरी छोर तक के स्नायुतन्तुओ के आपसी सम्बन्ध को स्थापित करना। उदाहरणार्थ, अगर शरीर के किसी अग-विशेष मे चोट लग जाती है तो इस चोट के फलस्वरूप स्नायु-तन्तु धीरे-धीरे मरने (Degenerate) लगते हैं और एक अग-विशेष मे क्षति पहुँचने पर कहाँ-कहाँ के स्नायु क्षति-ग्रसित होते हैं, आसानी से जाना जा सकता है। इस प्रकार चोट से ग्रसित स्थान का सम्बन्ध उस स्थान एव उस स्थान के तन्तु से स्थापित किया जा सकता है जहाँ के तन्तु क्षति-ग्रसित होते है। इस प्रकार के अनेक अध्ययन हुए है जहाँ मस्तिष्क के किसी विशेष भाग के स्नायुकोश को नष्ट कर दिया गया है और यह देखा गया है कि इसके नष्ट किये जाने पर किन-किन अगो के स्नायुतन्तु मरे पड़े है।

(ख) बृहन्मस्तिष्कीय वल्क द्वारा सचालित एव नियन्त्रित क्रियाओ के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त करने की दूसरी विधि है जानवरो के बृहन्मस्तिष्कीय वल्क के विशेष भागों को नष्ट करना और यह देखना कि उनके निकास से किन-किन क्रियाओ (ज्ञानात्मक-कारक एव साहचर्य) का विनाश होता है। एक विशेष भाग के विनाश के फलस्वरूप विनष्ट विशेष व्यवहार का सम्बन्ध मस्तिष्क के उस विनष्ट स्थान से स्थापित किया जाता है।

(ग) मनुष्यो के मस्तिष्क द्वारा सचालित एव नियन्त्रित क्रियाओ के सम्बन्ध मे जानने का आधार शल्य चिकित्सा है। कभी-कभी अचानक चोट लग जाने पर या मस्तिष्क मे किसी प्रकार के दोष के आ जाने पर शल्य-चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार चीर-फाड द्वारा मस्तिष्क के कुछ हिस्सो को हटाये जाने पर

व्यवहारों में आये हुए परिवर्तनों का निरीक्षण किया जाता है और ऐसे निरीक्षणों के आधार पर मस्तिष्क के विशेष भाग का सम्बन्ध उस परिवर्तित व्यवहार से स्थापित किया जाता है।

(घ) शल्य चिकित्सा के अतिरिक्त मनुष्यों के मस्तिष्क द्वारा सम्पादित क्रिया के सम्बन्ध में जानकारी का आधार मस्तिष्क को बिजली द्वारा उत्तेजित (Electrical Stimulation) करना है। मस्तिष्क के विभिन्न भागों को बिजली द्वारा उत्तेजित किये जाने पर विभिन्न अंग में क्रियाओं के होने का अनुभव प्राप्त हुआ है। इस प्रकार के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यहाँ मस्तिष्क के उत्तेजित स्थान का सम्बन्ध उस अंग विशेष से बतलाया जाता है जहाँ क्रिया हो रही हो।

उपर्युक्त विधियों के उपयोग के आधार पर ही ज्ञानात्मक (Sensory) क्रियात्मक (Motor) एवं साहचर्य क्रिया के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इन क्रियाओं के सम्बन्ध में हम नीचे विशद् विवरण उपस्थित करेंगे।

१ मस्तिष्क द्वारा सचालित एवं नियन्त्रित ज्ञानात्मक क्रियाएं (Sensory functions of the cortex)—प्राणी में वर्तमान सम्पूर्ण ज्ञानात्मक अनुभवों को तीन वर्गों में रखा गया है—(क) शारीरिक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न अनुभव (Body feeling or Somesthetic sensitivity) जिसके अन्तर्गत ताप स्पर्श एवं शारीरिक गति का अनुभव रखा जाता है।

(ख) दृष्टि-सम्बन्धी अनुभव (Visual sensitivity) जैसे— रंगों का देखना या रंगों को ठीक से नहीं पहचानना आदि।

(ग) श्रवण-सम्बन्धी अनुभव (Auditory sensitivity), जैसे—ठीक से सुनना या सुनने में कमजोरी आदि।

इन तीन वर्गों के ज्ञानात्मक अनुभव या आधार स्थान भी मस्तिष्क में अलग अलग पाया गया है। उदाहरणार्थ शारीरिक परिवर्तन से उत्पन्न अनुभव का आधार मस्तिष्क का वह भाग है जो रोलंडो के फीसर के ठीक पीछे पैरिटल कोर्टेक्स में स्थित है। शरीर के विभिन्न भागों के त्वचा में स्थित ग्राहक-कोषों से चलकर जो स्नायु प्रवाह मस्तिष्क के इस भाग में पहुंचते हैं वे हममें ताप एवं स्पर्श के अनुभव को उत्पन्न करते हैं। साथ-ही-साथ शारीरिक अंगों के संचालन से उत्पन्न गति अनुभवों का भी आधारशिला पैरिटल-कोर्टेक्स का वही भाग है जो रालैंडो के ठीक पीछे है। पैरिटल कोर्टेक्स के इस भाग को हम सोमेसथेटिक भाग (Somesthetic area) कहते हैं। मनुष्यों पर फाउल्डीग महोदय ने एक प्रयोग किया जिसमें यह जानने का प्रयास किया कि सोमेसथेटिक भाग द्वारा कौन-कौन सी क्रियाओं का सचालन एवं नियन्त्रण होता है। बिजली द्वारा सोमेसथेटिक भाग को उत्तेजित किये जाने पर अग्रलिखित परिणाम पाये गये—

(क) उंगलियों मे गर्मी, सर्दी से उनमे सिकुड़न एव अ गो मे गति के अनुभव का होना।

(ख) दाहिने कोर्टेक्स के सोमेसथेटिक भाग को उत्तेजित किये जाने पर विभिन्न सवेदनाएं शरीर के बाँये भाग मे उत्पन्न हुई। और बायें कोर्टेक्स के सोमेसथेटिक भाग को उत्तेजित किये जाने पर शरीर के दाये भाग मे विभिन्न प्रकार की सवेदनाओ की उत्पत्ति हुई।

(ग) पैरिटल-कोर्टेक्स के हटाये जाने पर भी मनुष्यो मे ताप एव स्पर्श का अनुभव वर्तमान पाया गया।

(घ) सोमेसथेटिक भाग के किसी भी स्थान को उत्तेजित किये जाने पर पीडा की संवेदना नही प्राप्त हुई।

उपर्युक्त परिणामो के आधार पर काडसीग महोदय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला—

(i) सोमेसथेटिक भाग द्वारा ताप एवं स्पर्श की सवेदनाओ का नियन्त्रण एव सचालन होता है। पीडा के अनुभव के लिए कोर्टेक्स की आवश्यकता नही है। यह अनुभव थैलेमस पर ही निर्भर है।

(ii) दाहिने सोमेसथेटिक भाग द्वारा शरीर के बायें भाग मे उत्पन्न ताप एव गति अनुभव नियन्त्रित एव संचालित होते हैं और बाये सोमेसथेटिक भाग का सम्बन्ध शरीर के दायें भाग से रहता है।

(iii) त्वचा-सम्बन्धी सवेदनाओ की उत्पत्ति के लिए मनुष्यो मे कोर्टेक्स का रहना आवश्यक नही है। कारण इसके अभाव मे थैलेमस त्वचा-सम्बन्धी सवेदनाओ को उत्पन्न, नियन्त्रण एव सचालन करने मे समर्थ पाया जाता है। अतएव, साधारण स्थिति मे कोर्टेक्स का सहयोग त्वचा-सम्बन्धी सवेदना की उत्पत्ति एव नियन्त्रण मे रहते हुये भी इसके अभाव से उनकी उत्पत्ति एवं नियन्त्रण मे किसी भी प्रकार की क्षति नही होती है।

(iv) दृष्टि-सम्बन्धी अनुभव (visual sensitivity) के लिये आवश्यक है कि दृष्टि ग्राहक कोण दड या सूचि से उत्पन्न स्नायु-प्रवाह मस्तिस्क के ऑक्सीपीटल लोब मे पहुंचे। दोनो आँखो के दाहिने भाग मे उत्पन्न स्नायु-प्रवाह दाहिने कोर्टेक्स के दृष्टि-क्षेत्र (visual area) मे पहुँचती है और दोनों आँखो के बायें भाग मे उत्पन्न स्नायु-प्रवाह बायें कोर्टेक्स के दृष्टि-भाग मे पहुंचाती है जिससे दृष्टि सवेदना की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार दोनो आँखो का सम्बन्ध कोर्टेक्स के दोनो हिस्सो से रहता है। अत किसी भी प्राणी का पूर्ण रूप से अन्दा होना दृष्टि-क्षेत्र (Visual area) का पूरा विनाश है। कोर्टेक्स के किसी एक भाग दाहिने या बायें के नष्ट होने पर आंशिक अंधता ही प्राणी मे उत्पन्न हो सकता है। पेनफील्ड एव इरोक्सन महोदयो ने अपने

प्रयोगों द्वारा मस्तिष्क के दृष्टि भाग और दृष्टि सम्बन्धी अनुभवों के बीच स्पष्ट सम्बन्ध दिखलाया है। एक औरत जिसकी दृष्टि कोर्टेक्स को चीर फाड़ के लिए खोला गया था उसके इस दृष्टि-भाग के विभिन्न हिस्सों पर बिजली से उत्तेजनाएँ दी गयी। इस प्रकार उन हिस्सों को बिजली द्वारा उत्तेजित किये जाने पर औरत ने लाल नीले आदि रंगों के अनुभवों को प्राप्त किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि कोर्टेक्स के दृष्टि-भाग का सम्बन्ध दृष्टि सम्बन्धी अनुभवों से है।

(४) श्रवण सम्बन्धी अनुभवों का आधार मस्तिष्क का टेम्पोरल खंड है। दायें और बायें दोनो ही अर्द्धखण्डों में वर्तमान टेम्पोरल खंड का सम्बन्ध श्रवण सबंधी अनुभवों से है। कान में वर्तमान ग्राहक-कोष से उत्पन्न स्नायु प्रवाह टेम्पोरल खंडों में पहुँचते हैं जिससे हमें श्रवण-सम्बन्धी अनुभव होते हैं। दोनों का सम्बन्ध दोनों ही अर्द्धखण्डों से है। अतः किसी एक खण्ड के विनाश के फलस्वरूप श्रवण संवेदना में थोड़ी त्रुटि भले ही आ जाय परन्तु श्रवण संवेदना का पूर्ण रूप से ह्रास नहीं होता है। इस संवेदना के रूप से ह्रास होने के लिए दोनों अर्द्धखण्डों में वर्तमान श्रवण-क्षेत्र (Auditory area) के विनाश होने की आवश्यकता है अन्यथा श्रवण-संवेदना का कभी भी पूर्ण ह्रास सम्भव नहीं है।

२ कोर्टेक्स द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित गतिवाही क्रियाएं (Motor functions of the cortex)—मनुष्यों में गतिवाही क्रियाओं का संचालन एवं नियन्त्रण रोलैंड दरार (Fissure of Ralando) के अग्रभाग में पाये जाने से अग्रे भाग द्वारा होता है। कोर्टेक्स के इस हिस्से में अनेक पिरामिड की शक्ल के कोष पाये जाते हैं। इन कोषों से लगे हुये मुख्य तन्तु (Axon) होते हैं। पिरामिड की शक्ल के बीच कोष को नष्ट किए जाने पर इनसे सटे मुख्य तन्तु (Axon) मरने लगते हैं। ऐसे मरे स्नायु-तन्तु सुषुम्ना एवं सुषुम्नाशीर्ष में भी पाये गये हैं। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पिरामिड (pyramid) शक्ल के जीवकोषों का सम्बन्ध सुषुम्ना एवं सुषुम्नाशीर्ष में पाये जाने वाले स्नायु-तन्तुओं से भी है। मस्तिष्क के दायें अर्द्धखण्ड में स्थित गतिवाही क्षेत्र (Motor area) के नष्ट होने के फलस्वरूप शरीर के बायें अंगों में होने वाली ऐच्छिक क्रियाओं में ह्रास देखा जाता है। इसी प्रकार दायें अंगों में होने वाली ऐच्छिक क्रियाओं का संचालन एवं नियंत्रण मस्तिष्क के बायें अर्द्धखण्ड द्वारा होता पाया गया है। कभी-कभी तो मस्तिष्क के गतिवाही क्षेत्र (Motor area) को नष्ट किये जाने पर भी तीव्र उत्तेजना द्वारा अंगों में क्रियाएँ उत्पन्न होती पायी जाती है। इस प्रकार की क्रियाओं का संचालन सहज-धनु (Reflex arc) द्वारा ही सम्पन्न होता है जिसके लिये वर्तमान सभी शारीरिक अवयव जैसे ग्राहक इन्द्रिय ज्ञानवाही स्नायुकोष सुषुम्ना गतिवाही स्नायुकोष एवं मांसपेशियाँ एवं पिण्ड अपना कार्य बिना किसी रुकावट के करते पायी जाती हैं। बहुधा ऐसा भी देखा जाता है कि मस्तिष्क के गतिवाही क्षेत्र (Motor area) के नष्ट किये जाने से कुछ क्रियाओं का सम्पन्न होना असम्भव सा हो जाता है परन्तु

व्यक्ति मे ऐसी अवस्था अधिक दिनो तक नही रहती। धीरे-धीरे विनष्ट भाग के निकट के जीवकोश नष्ट हुए जीवकोशो के कार्य-भार को स्वय ग्रहण कर लेते है जिससे वे क्रियाएँ जिन्हे मनुष्य सम्पन्न करने मे असफल था, पुन सम्पन्न करने लगता है।

मस्तिष्क के गतिवाही क्षेत्र (Motor area) को बिजली द्वारा उत्तेजित (Electrically Stimulate) किये जाने पर निम्नलिखित परिणाम एव निष्कर्ष निकाले गये है—

(क) मस्तिष्क के ऊपरी गतिवाही क्षेत्र के उत्तेजित किये जाने पर शरीर के निचले अंग मे क्रियाएँ होती पायी जाती है। दाहिने अर्द्ध मस्तिष्क के ऊपरी भाग द्वारा शरीर के बाये हिस्से के निचले अगो की क्रियाओ का सचालन होता है तथा बायें अर्द्ध-मस्तिष्क के ऊपरी भाग द्वारा शरीर के दाहिने भाग के निचले अगो की क्रियाओ का सचालन एव नियन्त्रण होता है।

(ख) मस्तिष्क के नीचे के गतिवाही क्षेत्र (Motor area) का सम्बन्ध चेहरे से रहता है। अत इसके उत्तेजित किये जाने पर चेहरा का फडकना, मुँह का खुलना और बन्द होना आदि क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दाहिने गतिवाही क्षेत्र (Motor area) का सम्बन्ध शरीर के बायें अगो से है और बायें अर्द्ध गतिवाही क्षेत्र (Motor area) का सम्बन्ध शरीर के दायें हिस्से से रहता है। साथ ही साथ ऊपरी गतिवाही क्षेत्रो का सम्बन्ध शरीर के निचले अगो से रहता है तथा निचले गतिवाही क्षेत्रो से चेहरा, मुँह, नाक इत्यादि सम्बन्धित रहते है।

२ **कोर्टेक्स द्वारा सम्पादित एव नियन्त्रित साहचर्य क्रियाएँ** (Associative fuctions of the cortex)—कोर्टेक्स का कार्य मात्र ज्ञानवाही स्नायु-प्रवाह को ग्रहण करना एव गतिवाही स्नायु-प्रवाह को उत्पन्न करना ही नही है वरन् इसका विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य स्नायु-प्रवाहो को एक दूसरे से मिलाना, मिलाकर निश्चित स्थान मे भेजना है। विभिन्न स्नायु-प्रवाहो के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के फल-स्वरूप ही सीखने, प्रत्याह्वान और चिन्तन-क्रियाएँ प्राणी मे सभव हो पाती हैं। भाषा चिन्तन, प्रत्याह्वान इत्यादि जैसी जटिल मानसिक क्रियाओ के सम्पादन एवं नियन्त्रण के लिए कोर्टेक्स मे विशेष साहचर्य भाग हैं जिन्हे ज्ञानवाही भाग (Sensory area) गतिवाही क्षेत्र (Motor area), अग्र साहचर्य भाग (Frontal association area), कहते है।

ज्ञानवाही एव कारक साहचर्य भागो मे वर्त्तमान स्नायु के विनाश के फल-स्वरूप मनुष्य अलग-अलग अक्षरो की सवेदनाएँ जैसे 'क' 'बु' 'त' 'र' प्राप्त करता है, परन्तु इन अक्षर-समूहो से बने अर्थ के प्रत्यक्षीकरण मे असमर्थ ही रह जाता है। इसी प्रकार ऐसे व्यक्ति अक्षरो को पढ सकते है दूसरे क्या बोल रहे है, सुन लेते हैं

भाग के नष्ट किये जाने पर उस पर आश्रित क्रिया का ह्रास हो जाता है और उस क्रिया का पुन सम्पादन मस्तिष्क द्वारा कभी भी सम्भव नही है।

दूसरे वर्ग के विचारक वे है जो उपर्युक्त विचार के विरोध मे अपना मत रखते हैं। इनका मत है कि किसी भी क्रिया के सम्पादन मे समग्र मस्तिष्क सहयोग देता है। अत किसी क्रिया का ह्रास उसी अनुपात मे होता है जिस अनुपात मे मस्तिष्क के भागो को नष्ट किया जाता है। साथ ही साथ ऐसा भी कभी-कभी देखा गया है कि एक विशेष भाग के नष्ट किये जाने पर कुछ समय के लिए एक विशेष प्रकार के व्यवहार सम्पादन प्राणी द्वारा असभव हो जाता है। परन्तु अभ्यास के फलस्वरूप यह विनष्ट व्यवहार प्राणी मे पुन लौट आता है, उदाहरणार्थ, मस्तिष्क के गतिवाही क्षेत्र (Motor area) को नष्ट किये जाने के फलस्वरूप प्राणी हाथ, पाँव आदि नही चला पाता है। परन्तु इस क्रिया का ह्रास प्राणी मे सदा के लिए नही होता बल्कि इस क्रिया का पुन विकास अभ्यास के फलस्वरूप पाया गया है। एक औरत जिसकी बाँहो मे लकवा (Paralysis) हो गया था वह अभ्यास के फलस्वरूप अपनी बाँहो से कपडे सीने की मशीन को चलाने मे समर्थ हो सकी। इस प्रकार एक मर्द जो अपने हाथो से कोई भी कार्य लकवा के कारण नही कर सकता था अभ्यास के उपरान्त टेनिस खेलने लगा। इस प्रकार के उदाहरणो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मस्तिष्क के विशेष भाग पर विशेष प्रकार की क्रियाओ का आश्रित होना ठीक नही जँचता। इसके विपरीत ऐसा जान पडता है कि क्रियाओ के सपादन मे मस्तिष्क के सभी भाग सहयोग देते हैं। अब प्रश्न है कि यह सहयोग कैसे दिया जाता है? इस सम्बन्ध मे तीन प्रकार के विचार पाये गये है—

(क) एक भाग के विनाश के फलस्वरूप दूसरा मस्तिष्क का कोई भाग उस क्रिया को अपना लेता है और उसका सपादन करता है।

(ख) क्रिया की दृष्टि से मस्तिष्क को विभिन्न भागो मे विभाजित किया जा सकता है। मस्तिष्क के एक भाग के अन्दर अनेक आकृतियाँ पायी जाती है। इन अनेक आकृतियो मे से किसी एकाध के नष्ट किये जाने पर उनपर आश्रित क्रिया का विनाश कुछ समय के लिए तो हो जाता है परन्तु इसके बाद यह पाया जाता है कि विनष्ट आकृति के अतिरिक्त जो सचेत आकृति हैं वे विनष्ट भाग के कार्यों के सम्पादन का भार अपने ऊपर ले लेते है। विनष्ट क्रिया के पुन विकास के इस नियम की व्याख्या सम-क्षमता (Equi potentiality) के आधार पर की गयी है। सम-क्षमता (Equi-potentiality), का यहाँ अर्थ है कि मस्तिष्क के एक विशेष भाग के अन्दर पायी जाने वाली आकृतियो मे कार्य करने की समान क्षमता है। अर्थात् एक विशेष भाग के अन्दर जितनी भी आकृतियाँ है उन सबो मे समान रूप से कार्य करने की क्षमता पायी जाती है। अत उस विशेष भाग के किसी एकाध आकृति (Structure) नष्ट होने से कुछ समय के लिए क्रियाओ का ह्रास देखा जाता है, परन्तु वे क्रियाएँ उस भाग की अन्य आकृतियों द्वारा संपादित एव नियन्त्रित किये जाने के फलस्वरूप पुन लौट आती है।

मस्तिष्क के समग्र रूप से कार्य करने की क्षमता के विश्लेषण का आधार हानजिक (Hanzik) महोदय का प्रतीकों के ह्रास (Reduced cue Hypothesis) का सिद्धान्त भी है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी क्रिया के सीखने के लिए हम अनेक प्रकार के प्रतीकों का सहारा लेना पड़ता है। ये प्रतीक दृष्टि-सम्बन्धी स्पर्श-सम्बन्धी घ्राण-सम्बन्धी श्रवण-सम्बन्धी इत्यादि हो सकते हैं जो किसी चीज के सीखने में एक ही समय उपयोग में लगाये गये हैं। इन विभिन्न प्रतीकों का निरूपण मस्तिष्क के विभिन्न भागों में होता है। अतः मस्तिष्क के किसी एक भाग में नष्ट किये जाने पर उस विशेष भाग में निरूपित प्रतीक नष्ट हो जाता है और वह क्रिया के सम्पादन में सहयोग देने में असमर्थ हो जाता है। ऐसी असमर्थता के फलस्वरूप कार्य के सम्पादन में गड़बड़ी आती है परन्तु मस्तिष्क के अन्य भाग चूंकि विनष्ट नहीं किये गये हैं, अतः अन्य प्रतीकों में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी नहीं हुई है और वे उस क्रिया के सम्पादन में समर्थ होते हैं जिससे क्रिया का सम्पादन होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रिया के सम्पादन में कुछ समय तक गड़बड़ी देखी जाती है परन्तु अन्य प्रतीकों के आधार पर उसके सम्पादन में पुनः क्षमता आ जाती है। हॉनजिक के उस सिद्धान्त के द्वारा भी मस्तिष्क के समग्र रूप में कार्य करने की क्षमता की व्याख्या की गयी है।

मस्तिष्क का विशेष भाग विशेष प्रकार की क्रियाओं का संपादन एवं नियमण करता है या क्रियाओं के सम्पादन एवं नियन्त्रण में सम्पूर्ण मस्तिष्क कार्यशील रहता है, जानने के लिए अनेक प्रयोग किये गये हैं। ये प्रयोग विशेष कर जानवरों पर हुए हैं। प्रयोगकर्ता जिनका नाम यहाँ विशेष रूप से लेना आवश्यक है वे हैं लैशले, हमीम हॉनजिक इत्यादि। लैशले महोदय ने अपने सारे प्रयोग उजले चूहों पर किया है। इन प्रयोगों में से एकाध को यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। लैशले महोदय ने चूहों को तीन प्रकार से भूलभुलैया (Maze) को सिखलाया। इन भूलभुलयो में क्रमशः एक तीन और आठ अन्धपथ थे। अन्धपथ के अधिक होने के साथ-साथ समस्या की कठिनाई भी बढ़ती गयी। पहले तो चूहों को भूलभुलैया से बाहर आने की क्रिया को सिखलाया गया। इसके पश्चात् कौर्टेक्स के विभिन्न भागों को अलग किया जाने लगा। इस प्रकार कौर्टेक्स के हिस्सों को अलग किये जाने पर निम्नलिखित परिणाम पाये गये—

(क) कौर्टेक्स से हटाये गये हिस्सों और सीखी गयी क्रिया के भूलने के बीच एक आनुपातिक सम्बन्ध पाया गया (A definite relationship between size of the damage and impairment of learning)।

(ख) कौर्टेक्स से हटाये गये स्थान और सीखी गयी क्रिया के बीच कोई विशेष सम्बन्ध नहीं पाया गया। परन्तु कौर्टेक्स से हटाये गये भाग के परिमाण (Amount) और सीखी गयी क्रिया के ह्रास के बीच सम्बन्ध पाया गया। यह सम्बन्ध समस्या की कठिनाई के साथ-साथ और भी घनिष्ठ होता गया। अर्थात् एक अन्धपथ वाले

भूलभुलैया मे हटाये गये भाग के परिमाण और सीखी गयी क्रिया के ह्रास के बीच अनुबन्ध गुणक (r) २०, तीन अधपथ वाले भूलभुलैया मे अनुबंध गुणक (r) ·५८ और आठ अधपथ मे अनुबन्ध गुणक (r) ७५ पाया। इसका तात्पर्य यह कि कठिन समस्याओ के सीखने मे मस्तिष्क विशेष समग्र रूप से कार्यशील पाया जाता है बनिस्बत साधारण समस्याओ के। कठिन समस्याओ के सीखने की क्षमता का ह्रास सदा उसी अनुपात मे होता है जिस अनुपात मे मस्तिष्क के हिस्सो को हटाया जाना है। इस प्रकार यहाँ मस्तिष्क के समग्र रूप से कार्य करने की क्षमता का परिचय मिलता है।

लैशले महोदय ने एक दूसरा प्रयोग किया जिसमे चूहे को अधकार और रोशनी के अन्तर को पहचान कर भूलभूलैया की समस्या का समाधान करना था।[1] इस प्रकार की समस्याओ का समाधान स्ट्रीयट भाग (Striate area) के नष्ट किये जाने पर चूहे कुछ समय तक नही कर पाते थे यद्यपि स्ट्रीयट भाग के यथास्थान पर रहने पर उन्हे इस समस्या के समाधान की शिक्षा दी जा चुकी थी और वे इसमे पारगत भी हो गये थे। इससे यह जान पडता है कि भिन्नता के आधार पर सीखना स्ट्रीयट (Striate) भाग पर निर्भर है। परन्तु कुछ समय के उपरान्त स्ट्रीयट भाग के अभाव मे भी चूहे उस समस्या के समाधान मे सफल होने लगे। इससे पता चलता है कि स्ट्रीयट भाग उन समस्याओ के समाधान के लिए आवश्यक तो है परन्तु इसके अभाव मे कौर्टेक्स के अन्य भाग उस क्रिया को सफल रूप से सम्पादित करने मे समर्थ हो जाते है। अत स्पष्ट है कि समग्र मस्तिष्क द्वारा क्रियाओ का सम्पादन होता है। कुछ कठिन समस्याओ के समाधान मे पाया गया है कि स्ट्रीयट भाग के विनाश के उपरान्त कौर्टेक्स का अन्य भाग उस समस्या का समाधान करता है पर पूर्ण रूप मे नही, आशिक रूप से ही। ऐसी परिस्थिति मे विशेष भाग द्वारा विशेष क्रियाओ के सम्पादन के मत की पुष्टि मिलती है। परन्तु इन परिणामो के आधार पर निश्चत रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कुछ क्रियाओ के सपादन मे विशेष मस्तिष्क भाग अधिक कार्यशील पाये जाते है परन्तु उस विशेष भाग को क्षतिग्रस्त किये जाने पर जो क्रिया मे क्षति होती है वह सदा के लिए नही, कारण अगर साधारण समस्या का समाधान हो तो मस्तिष्क के अन्य भाग उस समस्या का समाधान पूर्ण रूप से कर लेते है, परन्तु एक कठिन समस्या के उपस्थित होने पर क्षतिग्रस्त क्रियाओ का पुन विकास आशिक रूप मे ही हो पाता है। अत यहाँ भी मस्तिष्क के समग्र रूप से कार्य करने के प्रमाव हमे मिलते हैं यद्यपि इस कार्य मे विशेष सफलता नही मिलती।

स्वत सचालित स्नायु-मडल (Autonomic Nervous System)

स्वत सचालित स्नायु मण्डल के विभाजन का आधार बनावट या उसकी कार्यवाही हो सकती है। 'बनावट की दृष्टि से' इसे चार भागो मे विभक्त किया गया

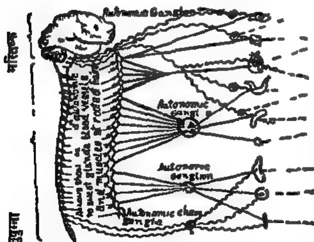
---

[1] "Maze learning by discrimination between light and dark by Lashly

है—(क) कनियल (Cranial) (ख) थोरकिक (Thoracic) (ग) लम्बर (Lumber) तथा (घ) सकल (Sacral)।

कार्यवाही की दृष्टि से इसे दो भागों में विभक्त किया गया है—

(१) क्रेनियो सैक्रल (Cranio Sacral) जिसे उपसहानुभूतिक भाग (Para sympathetic) तथा (२) थोरकिक लम्बर (Thoracic Lumber) जिसे सहानुभूतिक भाग (Sympathetic system) कहते हैं। सहानुभूतिक भाग के अन्तर्गत निम्नांकित अवयवों का उल्लेख किया जाता है—(१) यकृत (Liver) (२) हृदय (Heart) (३) आमाशय (Stomatch) (४) प्लीहा (Spleen), (५) एड्रीनल पिण्ड (Adrenal gland)। उपसहानुभूतिक भाग के अन्तर्गत जिन अवयवों का समावेश होता है वे है आँख की उपतारा (Iris of the eye) लार ग्रन्थि Salivary gland) स्वेद-ग्रन्थि (Sweat gland) अँतड़ियाँ (Intestine) मूत्राशय (Bladder) इत्यादि। कुछ ऐसे भी अवयव है जिनका सम्बन्ध स्वत संचालित स्नायु मण्डल के दोनों भागो से है—जैसे हृदय, स्वेद-ग्रन्थि आदि। इन दोनों भागों के



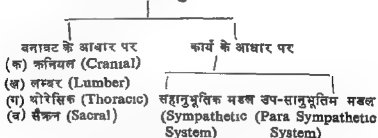
चित्र ७—स्वत संचालित स्नायु मण्डल के विभिन्न अंगो का चित्र
[Autonomic ganglion—स्वत संचालित प्रग्रन्थे—Autonamic chain ganglion—स्वत संचालित प्रग्रन्थो का समूह]

कार्यों की प्रधान विशेषता है कि जब एक के कार्य में वृद्धि होती है तो दूसरा भाग अपेक्षाकृत शिथिल पड जाता है। अतः कहा गया है कि एक भाग दूसरे भाग का विरोधी है। सहानुभूतिक भाग की कार्यवाही में तीव्रता आने के फलस्वरूप मनुष्यों के निम्नांकित परिवर्तन पाये जाते हैं—दिल की धड़कन का बढ़ना [लहू की दौरान

का अधिक होना, सांस की गति का अधिक होना इत्यादि । उपर्युक्त परिवर्तनो के अतिरिक्त उप-सहानुभूतिक भाग की कार्यवाही शिथिल पड जाती है जिससे पाचन-क्रिया मे गडबडी आ जाती है, ब्लैडी एव किडनी या गुर्दा (Kidney) के भी कार्यों मे शिथिलता आ जाती है । सवेग की अवस्था मे सहानुभूतिक के कार्यों मे तीव्रता तथा उपसहानुभूतिक भाग के कार्यों मे शिथिलता आ जाती है। इसका विशेष उल्लेख सवेग की चर्चा करते समय आगे किया जायगा ।

स्वत सचालित स्नायु-मण्डल पूर्ण रूप से मस्तिष्क से प्रभावो से वचित नही है । मस्तिष्क मे स्थित हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) स्वत सचालित कार्यों को सगठित (Integrate) एव पृथक् (Differentiate) करता है ।

नीचे की तालिका से स्वत. सचालित स्नायु-मण्डल (Autonomic nervous system) के विभागो को अत्यधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है ।



कर्मेन्द्रियाँ या प्रभावक

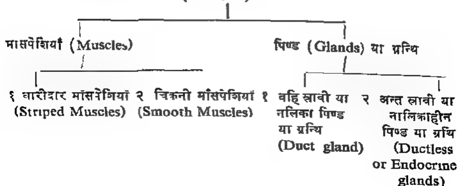
(Motor organs or Effectors)

शरीर के प्रत्येक कार्य को सपादित करने के लिए कर्मेन्द्रियाँ है जिन्हे प्रभावक (Effectors) भी कहते हैं । प्रभावक प्रधानत दो है—

(क) मॉसपेशियाँ (Muscles) तथा (ख) पिण्ड (Glands) या ग्रन्थि ।

कर्मेन्द्रियाँ

(Effectors)



(क) मांसपेशियाँ (Muscles)—मांसपेशियाँ (Muscles) को भी दो भागों में विभक्त किया गया है—एक धारीदार मांसपेशियाँ (Striated or Striped or Skelteal or Voluntary muscles) तथा दूसरी चिकनी मांसपेशियाँ (Smooth or Unstriated or Involuntary or Visceral muscles)। इन दोनों मांसपेशियों द्वारा दो भिन्न कार्य सम्पादित एवं नियमित होते हैं। आत्म प्रेरित या ऐच्छिक गतियों (Voluntary movements) का संचालन और नियन्त्रण धारीदार मांसपेशियाँ करती हैं। धारीदार मांसपेशियाँ बाँह पैर गर्दन इत्यादि जगहों में मिलती हैं। चिकनी मांसपेशियाँ आत्मप्रेरित अथवा अनैच्छिक गतियों (Voluntary movements) का संचालन एवं नियन्त्रण करती हैं। चिकनी मांसपेशियाँ कण्ठ पेट अन्तड़ी, मूत्राशय श्वास लेने की इन्द्रिय रुधिर वाहिनी (Blood vessel) के अन्दर के भाग, सिलीयरी मांसपेशियाँ जो आँख में स्थित हैं, शरीर के भागों में पायी जाती हैं।

चिकनी मांसपेशियों के मात्र दो प्रधान कार्य हैं—(क) अन्तरावयवों के भार को सम्भालना (To support the walls of the viscera)। (ख) अन्तरावयवों का संचालन (To move the content of the visceraz object)।

खाद्य-पदार्थ जो मुँह के रास्ते से आमाशय में प्रवेश करता है उसे पेट में ले जाने का काम मात्र चिकनी मांसपेशियों पर ही है। इसके अतिरिक्त श्वास क्रिया पाचन तथा रक्त प्रवाह इत्यादि अनैच्छिक क्रियाओं का नियमण एवं संचालन चिकनी मांसपेशियाँ ही करती हैं। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि चिकनी मांसपेशियों द्वारा उन कार्यों का सम्पादन होता है जिन पर मनुष्यों का अपना नियंत्रण (Control) नहीं होता है। पर यह विचार सम्यक एवं यथार्थ नहीं है। प्रयास के द्वारा अनैच्छिक गतियों पर भी नियंत्रण (Control) पाया जा सकता है। जैसे—मल-मूत्र त्यागने की क्रिया। यह चिकनी मांसपेशियों द्वारा सम्पादित अनैच्छिक क्रिया है। परन्तु इस क्रिया का बालकों में शिक्षा द्वारा नियन्त्रित होते देखा जाता है।

अतः यह स्पष्ट है कि दोनों प्रकार की मांसपेशियाँ वातावरण से सफल अभियोजन एवं जीवन रक्षा के लिए आवश्यक हैं।

(ख) पिण्ड या ग्रन्थि (Glands)—पिण्डों का प्रधान कार्य स्राव (Secretion) बहाना है। इन स्रावों द्वारा ऐसे अनेक कार्य सम्पादित होते हैं जो शरीर को ठीक (In order) रखने में मदद देते हैं अर्थात् यह कहा जा सकता है कि ये वातावरण से सफल अभियोजन करने में मदद पहुँचाते हैं। पिण्ड दो प्रकार के होते हैं।

१ बहिःस्रावी पिण्ड या ग्रन्थि (Duct gland)—शरीर के अन्दर कुछ ऐसे पिण्ड हैं जिनके स्राव एक नलिका (Duct) द्वारा पिण्ड से बाहर निकलकर शरीर की सतह पर आ जाते हैं। अश्रु, लार तथा पसीना इत्यादि क्रमशः अश्रु, लार स्वेद-ग्रन्थि के ही स्राव हैं जो बहिःस्रावी या नलिका पिण्ड के सुन्दर उदाहरण हैं। इन पिण्डों का स्राव रुधिर में जाकर नहीं मिलता है।

२. अन्त स्रावी या नलिकाहीन पिंड (Endocrine or Ductless gland)— ये शरीर के अन्दर स्थित ऐसे पिंड है जिनका स्राव इनसे मिलकर सीधा रुधिर मे मिल जाता है। वहि स्रावी की तरह यह किसी नलिका द्वारा नही गुजरता है। ऐसे पिण्डो के स्रावो को 'हॉरमोन्स' (Hormones) की सज्ञा दी गयी है। अन्त.स्रावी पिण्डो के अन्तर्गत आनेवाले पिण्ड निम्नलिखित है —

(क) चुल्लिका-ग्रन्थि (Thyroid), (ख) पियूष-ग्रन्थि (Pituitary), (ग) उपचुल्लिका (Parathyroid), (घ) थाइमस (Thymus), (ङ) एड्रीनल (Adrenal), (च) यौन-ग्रन्थि (Gonads), (छ) पिनेल (Pineal) तथा (ज) क्लोम (Pancreas) या पैंक्रीएस।

इन पिण्डो या ग्रन्थियो का प्राणी के मानसिक क्रियाओ एव व्यवहारो पर अत्यधिक प्रभाव पडता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनो द्वारा स्पष्ट है कि मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके सवेग पर इन पिण्डो के स्राव हॉरमोन्स का प्रभाव विशेष पडता है।

पाचवाँ अध्याय

संवेदना
(Sensation)

संवेदना की परिभाषा—संवेदना की विशेषताएं अथवा उसके गुण—

गुण क्या है ? संवेदना के गुण—प्रकार, तीव्रता स्पष्टता, सत्ताकाल व्याप्ति या विस्तार तथा स्थानीय चिह्न ।

संवेदना के प्रकार—विशिष्ट संवेदनाएं अन्तरावयव की संवेदनाएँ तथा गति या स्नायविक संवेदनाएं ।

विशिष्ट संवेदनाऐं—दृष्टि संवेदना—आँख की बनावट तथा इसकी कार्यवाही—रंग एवं रंगहीन संवेदना तथा दृष्टि संवेदना के उद्दीपक—श्रवण संवेदना—कान की बनावट तथा उसकी कार्यवाही—स्वाद गन्ध तथा त्वक् संवेदना अन्तरावयी तथा गति या स्नायविक संवेदनाएं ।

उत्तेजना के बाह्यकेन्द्रियों के सम्पर्क मे आने से स्नायु प्रवाह (Nerve impulse) उत्पन्न होता है । यह स्नायु प्रवाह सुषुम्ना से होता हुआ मस्तिष्क के विशेष भाग मे पहुँचता है जिससे एक मानसिक प्रक्रिया की उत्पत्ति होती है । यह प्रक्रिया अत्यन्त सरल होती है । उत्तेजना के इस प्रारम्भिक एवं सरलतम ज्ञान को ही जो एक मानसिक प्रक्रिया है मनोवैज्ञानिकों ने संवेदना की संज्ञा दी है । संवेदना की निम्नलिखित विशेषताएँ (Characteristics of Sensation) बतलायी गयी है—(क) यह एक प्रारम्भिक ज्ञान है (ख) यह ज्ञान सरल होता है और उत्तेजना का यहाँ आभासमात्र या परिचयमात्र ही मिल पाता तथा (ग) उत्तेजना का अर्थ पूर्ण ज्ञान का यहाँ अभाव होता है ।

संवेदना के स्वरूप पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि संवेदना भी ज्ञान है जिसमे जिस वस्तु की जानकारी होती है वह जानकारी अर्थहीन है । पर प्रश्न है—क्या किसी वस्तु की जानकारी अर्थहीन हो सकती है ? प्रश्न विवादास्पद है । कुछ, लोगों ने तो परिचयमात्र (Simple awareness) को ही अर्थ की संज्ञा दी है । इन लोगो के अनुसार संवेदना अर्थहीन नही हो सकती । व्यक्ति जब भी किसी रंग को देखता है तो वह रंग जिस वस्तु पर चढ़ा होता है उससे अलग एक संवेदना के रूप मे उपस्थित नही होता । अगर वस्तु से रंग की संवेदना सम्भव होती तो हम कह सकते थे कि रंग की संवेदना अर्थहीन है । पर यहाँ हमारा परिचय उस वस्तु से

होता है जिसमे एक प्रकार का रग चढा होता है। इस प्रकार सवेदनाओ से भी हमे अर्थ या ज्ञान प्राप्त होता है। अतएव, जिसे सवेदना की सज्ञा दी जाती है वह पूर्णत कल्पना-मात्र (Pure myth) है। सचमुच ऐसी सवेदना का आभास कभी भी नही होता जिसमे अर्थ का परिचय न हो। परन्तु ज्ञानात्मक मानसिक अवस्था (Cognitive mental state) के विश्लेषण की सहूलियत के लिए सवेदना की चर्चा की जाती है। अत सवेदना के अध्ययन का महत्त्व सैद्धान्तिक (Theoretical) ही अधिक है। आजकल 'जेस्टाल्टवादी' मनोवैज्ञानिक सवेदना के अध्ययन का सैद्धान्तिक मूल्य (Theoretical value) भी कुछ नही आंकते।

सवेदना ज्ञानेन्द्रियो के क्रियाशील होने से होती है। यह जन्मजात होती है। अत बालको की आँखो मे प्रकाश-लहरो को ग्रहण करने, कानो को ध्वनि तरंगो को ग्रहण करने इत्यादि की क्षमता जन्मकाल से ही रहती है। एक प्रश्न जो प्राय उठता है वह यह है कि क्या विशुद्ध सवेदना (Pure sensation) जिसमे उत्तेजना का परिचयमात्र ही हो, उसका अर्थ बिल्कुल न हो, सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर सवेदना की परिभाषा पर निर्भर है। सवेदना का अर्थ अगर उत्तेजना की जानकारी या परिचयमात्र (Awareness) से हो तो विशुद्ध सवेदना नाम की कोई चीज नही होती है। ऐसी चीज न तो शिशु मे पायी जाती है और न उस बच्चे मे हा जिसने अभी-अभी जन्म लिया है। पर सवेदना का अर्थ समुचित ज्ञान के अभाव से लिया जाय तो कहा जा सकता है कि विशुद्ध सवेदना शिशु मे होती है। शिशु वातावरण मे उपस्थित उत्तेजनाओ की बाहरी रूप-रेखा से भिज्ञ तो हो जाता है परन्तु उनके अन्य पहलुओ तथा भीतरी गुण एव अवगुणो से वह अनभिज्ञ रहता है। स्पष्ट है कि यह होते हुए भी बच्चो मे, जैसा कि कुछ मनोवैज्ञानिको का विचार है, अर्थरहित विशुद्ध सवेदना होती है। यहाँ विशुद्ध सवेदना के सम्बन्ध मे ध्यान देने योग्य दो बातें है—(१) उत्तेजना की नवीनता और (२) व्यक्ति की उत्तेजना से अनभिज्ञता।

सवेदना की विशेषताएँ अथवा उसके गुण
(Attributes of Sensation)

गुण क्या है? (What is an attribute?) वस्तु की जिस विशेषता के अभाव मे वस्तु की सत्ता कायम नही रह सकती उसे वस्तु का गुण कहते है। प्रत्येक वस्तु का अपना निजी गुण होता है जो वस्तुओ का एक-दूसरे से अलग करने मे सहायक होता है। वस्तु के इस गुण को विशिष्ट गुण (Special quality) की सज्ञा दी जाती है। उदाहरणार्थ सूर्य का गुण है ताप, चाँद का गुण शीतलता है। ताप के अभाव मे सूर्य तथा शीतलता के अभाव मे चाँद का कोई अस्तित्व ही नही। मनुष्य मे उसकी चिन्तनशीलता का रहना (Rationality) उसका गुण है जिसके अभाव मे मनुष्य मनुष्य नही रह जाता है।

सवेदना के गुण (Attributes of sensation)—सवेदना के अपने कुछ

विशिष्ट गुण हैं जिनके अभाव मे संवेदना सम्भव नहीं। टिचेनर (Titchener) ने संवेदना के चार गुणों का उल्लेख किया है— (क) प्रकार (Quality), (ख) तीव्रता (Intensity), (ग) स्पष्टता (Clearness) तथा (घ) सत्ताकाल (Duration)। इन चार गुणों के अतिरिक्त स्टाउट (Stout) ने दो और गुणो की चर्चा की है। वे हैं— (क) व्याप्ति विस्तार (Spreadoutness or Extensity) तथा (ख) स्थानीय चिह्न (Local sign)।

(क) प्रकार (Quality)— दो संवेदनाओं में विभिन्नता उनके विशिष्ट गुण के कारण होती है जैसे— घ्राण-संवेदनाओं (Cutaneous sensation) दृष्टि संवेदना से भिन्न होती है। ऐसी भिन्नता को जातीय या सामान्य भिन्नता (Generic difference) कहते हैं। पर एक ही वर्ग की संवेदनाओं में भिन्न भिन्न तरह की संवेदनाएँ होती हैं। जैसे—'दृष्टि संवेदना के अन्तर्गत लाल या हरे रंग की संवेदनाओं में अन्तर है। लाल में गहरे फीके हल्के इत्यादि अनेक प्रकार के लाल रंगों की संवेदना हो सकती है। एक ही वर्ग की संवेदनाओं के अन्तर्गत [illegible] विभिन्नता को विशिष्ट भिन्नता (Specific difference) की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार संवेदना में अन्तर या तो सामान्य गुण (General quality) या विशिष्ट गुण (Specific quality) के कारण होता है। सामान्य गुणों से अन्तर का मूल आधार उत्तेजित ज्ञानेन्द्रियों (Stimulated Sense organs) का अन्तर है। सामान्य गुण के आभास के लिए कम-से-कम दो ज्ञानेन्द्रियों के उत्तेजित होने की आवश्यकता पड़ती है जैसे—कानों के उत्तेजित होने से श्रवण संवेदना तथा आँखों के उत्तेजित होने से दृष्टि-संवेदना होती है। परन्तु विशिष्ट गुणों के आभास के लिए ही ज्ञानेन्द्रिय की संवेदनशीलता (Sensitivity) की आवश्यकता पड़ती है। जैसे--फीका साधारण एवं गाढ़े नीले रंग से उत्पन्न संवेदनाएं आंखो में ही होती हैं। परन्तु इन भिन्न भिन्न मात्राओं के एक ही रंग से उत्पन्न संवेदनाओं के आपस में विशिष्ट गुण का अन्तर होता है।

(ख) तीव्रता (Intensity)— संवेदना का दूसरा गुण तीव्रता है। कुछ संवेदना अधिक तीव्र होती है तो कुछ अधिक मन्द। रंग की संवेदना तीव्र या मन्द (Bright or dull) हो सकती है। श्रवण-संवेदना तेज या धीमी (Loud or faint) हो सकती है। स्वाद की संवेदनाओं में भी अन्तर पाया जा सकता है। उदाहरणार्थ एक गिलास पानी में चार चम्मच चीनी मिलाकर उसके स्वाद को चखने से उत्पन्न संवेदना अवश्य ही भिन्न होगी। अगर उतने ही पानी में आठ चम्मच चीनी मिलाई जाय और उसे चखकर देखा जाय तो दोनों गिलासों के पानी मीठे लगेंगे परन्तु उनकी मिठास की संवेदना में अन्तर होगा। संवेदना में उत्पन्न ऐसे अन्तर को तीव्रता की भिन्नता कहते हैं। इसी प्रकार दृष्टि-संवेदना को देखें। मान लें कि आप एक कमरे में बैठे हैं। कमरे में एक ५ कैंडल पावर' (Five candle power) का बल्ब जलाया जाता है। बल्ब के जलने से उत्पन्न प्रकाश-लहरें आप में दृष्टि

सवेदना उत्पन्न करेंगी। फिर उसी कमरे मे और आप से उतनी ही दूरी पर एक '२५ कैंडल पावर' (Twenty-five candle power) का बल्ब जलाया जाता है। इस दूसरे बल्ब के जलने से भी आप मे दृष्टि-सवेदना होगी। यहाँ सवेदना दृष्टि-सम्बन्धी है परन्तु दोनो संवेदनाओ मे अन्तर है। यह अन्तर तीव्रता के गुण के अन्तर के कारण है।

सवेदना मे तीव्रता के विशिष्ट गुण का अन्तर दो बातो पर निर्भर है। (१) उत्तेजना के स्वरूप और (२) उत्तेजित ज्ञानेन्द्रिय। एक तीव्र उत्तेजना क्षीण उत्तेजना के अपेक्षाकृत ज्ञानेन्द्रिय-विशेष के अधिक ग्राहक-कोशो (Receptor cells) को उत्तेजित करती है। अत एक क्षीण उत्तेजना से उत्पन्न सवेदना एक तीव्र उत्तेजना से उत्पन्न सवेदना से भिन्न होती है।

एक ही ज्ञानेन्द्रिय के अन्दर स्थित ग्राहक-कोशो (Receptor cells) की सवेदनशीलता (Sensitivity) मे अन्तर पाया जाता है। यही कारण है कि यदि समान तीव्रता की एक उत्तेजना का स्पर्श, एक बार व्यक्ति के होठ पर और दूसरी बार व्यक्ति की पीठ की त्वचा पर समान दबाव से किया जाय तो व्यक्ति दोनो समान तीव्रता की उत्तेजनाओ से उत्पन्न स्पर्श-सवेदना मे अन्तर पाता है। यहाँ सवेदनाओ का यह अन्तर उत्तेजनाओं की तीव्रता पर निर्भर नहीं करता वरम् यह त्वचा-ग्राहकेन्द्रिय के भिन्न-भिन्न भागो मे स्थित ग्राहक-कोशो की सवेदनशीलता के अन्तर पर निर्भर करता है।

(ग) स्पष्टता (Clearness)— यहाँ ध्यान मे रखना आवश्यक है कि स्पष्टता (Clearness) नामक कोई स्वतन्त्र गुण संवेदना मे नही पाया जाता है। यह गुण तीव्रता के गुण का ही एक अग है, जैसे आलपीन का स्पर्श मात्र अगर त्वचा पर किया जाय तो इससे उत्पन्न सवेदना अधिक तीव्रता से किये गये त्वचा पर स्पर्श प्राप्त सवेदना से कम स्पष्ट होगा। यहाँ स्पष्टता मे भिन्नता का एकमात्र कारण तीव्रता की भिन्नता है।

(घ) सत्ताकाल (Duration) सभी सवेदनाओ मे सत्ताकाल का गुण निहित है। सवेदना या तो थोडी देर के लिए हो सकती है या बहुत देर तक। एक क्षण ही टिकने वाली सवेदना देर तक रहने वाली सवेदना से भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, एक घडी की घण्टी (Alarm) एक मिनट तक बजायी जाय और फिर इसी घडी को व्यक्ति से पहली अवस्था मे इतनी ही दूरी पर रख कर दो मिनट तक बजायी जाय तो जो व्यक्ति दोनो तरह की आवाजो को सुन रहा है उसमे उत्पन्न सवेदना एक नही होती है। यद्यपि घण्टी वही है, सुनने वाला भी वही है फिर भी सवेदनाओ मे अन्तर है। जिस गुण के कारण यहाँ सवेदनाओ मे अन्तर देखने को मिलता है उसे सवेदना के सत्ताकाल का गुण कहते है। इसी प्रकार ललाट के अग्र भाग के एक वर्गइंच हिस्से का स्पर्श अंगुली से दस सेकेण्ड तक किया जाय, फिर उसी अग्र-

भाग को उतने ही दबाव के साथ उस अंगुली से बीस सेकेण्ड तक स्पर्श किया जाय तो उस व्यक्ति में उत्पन्न पहली अवस्था की संवेदना दूसरी अवस्था की संवेदना से जब कि अपक्षाकृत अधिक देर तक स्पर्श किया गया है भिन्न होती है। संवेदनाओं के जिस गुण के कारण संवेदनाओं में ऐसी भिन्नता दिखाई पड़ती है उसे सत्ताकाल का गुण कहते हैं।

गुलाब-छड़ी को आपकी जीभ से पाँच सेकेण्ड तक स्पर्श कराया जाय और फिर उसी गुलाब-छड़ी को दस सेकेण्ड तक जीभ के उसी भाग पर स्पर्श कराया जाय तो दो स्थितियों में किये गये स्पर्श से उत्पन्न संवेदनाओं में भिन्नता होती है। जिस गुण के आधार पर ये संवेदनाएं आपस में भिन्न प्रतीत होती हैं उस गुण को सत्ताकाल का गुण कहते हैं। अतः यह निष्कर्ष हुआ कि एक क्षण टिकने वाली संवेदना देर तक रहने वाली संवेदना से भिन्न होता है। संवेदनाओं की यह भिन्नता संवेदना के गुण पर निर्भर है। सत्ताकाल संवेदना का एक विशेष गुण है।

(ङ) व्याप्ति या विस्तार (Extensity or spreadoutness) का गुण— ललाट के अग्रभाग के एक वर्गसेंटीमीटर सतह का तथा फिर अग्रभाग के चार वर्ग सेंटीमीटर सतह का स्पर्श किसी चीज से किया जाय तो इन स्पर्शों से दो भिन्न संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं। ध्यान रहे कि एक वर्गसेंटीमीटर जगह को हम जिस चीज से स्पर्श करते हैं दूसरी अवस्था में भी उस वजन की दूसरी उसी प्रकार की चीज से स्पर्श करते हैं जो पहली चीज से सिर्फ आकार में बड़ी है। चार जगह के की सतह के स्पर्श से उत्पन्न संवेदना एक जगह के स्पर्श से उत्पन्न संवेदना से अधिक फैली हुई (Diffused or extensive) मालूम पड़ती है। संवेदनाओं की भिन्नता उनमें व्याप्ति के गुण के अन्तर के कारण है।

(च) स्थानीय चिह्न (Local sign)—प्रत्येक संवेदना शरीर के किसी-न किसी भाग में होती है। अतः संवेदना का शरीर में स्थान निरूपण सम्भव है। उदाहरणार्थ शरीर के भिन्न भिन्न भागों का स्पर्श व्यक्ति की आँखों को बन्द कर समान रूप से किया जाय तो इस स्पर्श से व्यक्ति में विभिन्न संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं जिनके फलस्वरूप व्यक्ति को तुरत इस बात का आभास हो जाता है कि उसके शरीर के कौन से अंग विशेष का स्पर्श किया गया है। जिस गुण के आधार पर उसे इन संवेदनाओं की भिन्नता का आभास मिलता है उस गुण को संवेदनाओं के स्थानीय चिह्न (Local sign) का गुण कहते हैं।

संवेदनाओं में स्थानीय चिह्न का गुण इसलिए होता है कि एक ही ज्ञानेन्द्रिय के भिन्न-भिन्न ग्राहक-कोषों का सम्बन्ध मनुष्य के बृहत् मस्तिष्क में बने उसके लिए विशिष्ट केन्द्र के भिन्न भिन्न भागों से होता है।

संवेदना भाव तथा मनोवेग से भिन्न है। भिन्नता लाने वाले विशिष्ट गुण स्थानीय चिह्न ही हैं। संवेदना में स्थान निरूपण सम्भव है पर भाव (Feeling)

तथा सवेग (Emotion) मे स्थानीय-निरूपण सम्भव नही। सुख या दुख के भावो का अनुभव शरीर का कोई विशेष भाग नही करता वरन् उसकी अनुभूति सारे शरीर मे समान रूप से होती है। इसी प्रकार क्रोध, भय अथवा प्रेम के सवेग को किसी एक अग-विशेष मे निरूपित नही किया जा सकता है। इनका अनुभव करते समय हमारा सारा शरीर उत्तेजित हो जाता है। सवेदना और भाव के सम्बन्ध पर आगे आठवे अध्याय मे भी प्रकाश डाला जायगा।

संवेदना के प्रकार
(Kinds of Sensation)

सवेदना ग्राहकेन्द्रियो पर निर्भर है। ग्राहकेन्द्रियो का स्थान शरीर के ऊपरी भाग, भीतरी हिस्सा या मांसपेशियो के अन्दर हो सकता है। इन ग्राहकेन्द्रियो को क्रमश एक्सटेरोसेप्टर (Exteroceptor), इन्टेरोसेप्टर (Interoceptor) एव प्रोप्रियोसेप्टर (Proprioceptor) की सज्ञा दी जाती है। बाह्य ग्राहकेन्द्रियो (Exteroceptor) पर दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्वाद एवं त्वक् सवेदनाएँ निर्भर है। आन्तरिक ग्राहकेन्द्रियो (Interoceptor) पर अन्तरावयवी सवेदना, जैसे भूख की सवेदना तथा दो मांसपेशियो के जोड पर जहाँ प्रोप्रियोसेप्टर (Proprioceptor) है, गति (Movement) या स्नायविक (Muscular or Kinesthetic) सवेदना निर्भर करती है।

सवेदनाओ को समझने के लिए ज्ञानेन्द्रियो की बनावट एव कार्यवाही (Structure and Function of the sense organs) का ज्ञान आवश्यक है। यहाँ प्रधानत दृष्टि-सवेदना एव श्रवण-सवेदना के ऊपर विचार करना अभिष्ट होगा।

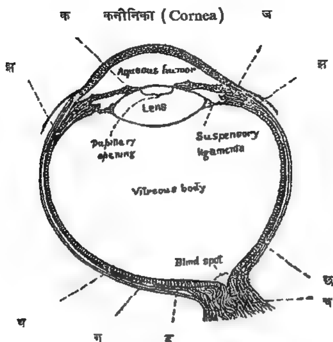
१. मानव आँख की बनावट तथा दृष्टि-सवेदना
(Structure of the Human Eye and Visual Sensation)

मानव आँख की बनावट (Structure of the Human Eye) — मनुष्य की आँखें एक कैमरा (Camera) की तरह होती है (चित्र ८ देखें)। कैमरा मे जिस प्रकार चित्र अकित करने के लिए प्लेट (Plate) होता है, उसी प्रकार आँखो मे प्रतिबिम्ब ग्रहण करने के लिए अक्षिपट होता है। अब प्रश्न है, प्रतिबिम्ब अक्षिपट तक कैसे पहुँच पाता है। प्रकाश आँख के उस खुले भाग से जिसे आँख की पुतली (Pupillary opening) कहते हैं, प्रवेश करती है। आँख की पुतली छोटी या बडी होती रहती है। पुतली का छोटा या बडा होना प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर है। तीव्र प्रकाश आँख की पुतली को छोटा कर देता है जिससे थोडा ही प्रकाश अन्दर प्रवेश कर पाता है। परन्तु प्रकाश के क्षीण होने पर पुतली बडी हो जाती है जिससे आँखो मे अधिक प्रकाश जा पाता है। आँखो की पुतली का छोटा या बडा होना 'उपतारा' (Iris) पर निर्भर है।

संवेदना के प्रकार
(Kinds of Sensation)

- १ बाह्य ग्राहकेन्द्रियों द्वारा प्राप्त संवेदनाएं (Sensations due to Exteroceptors) या विशिष्ट संवेदनाएं (Specific Sensation)
  - दृष्टि-संवेदना (Visual Sensation)
  - श्रवण-संवेदना (Auditory Sensation)
  - घ्राण-संवेदना (Olfactory Sensation)
  - स्वाद-संवेदना (Gustatory Sensation)
  - त्वक संवेदना (Cutaneous Sensation)
    - दबाव (pressure)
    - ताप (गर्म तथा ठंडा) (Temperature- Warm and Cold)
    - पीड़ा (Pain)
- २ आन्तरिक ग्राहेन्द्रियों द्वारा प्राप्त संवेदनाएं (Sensation due to Interoceptors)
  - (Viscreial Sensation) अन्तरावयवी संवेदना जैसे भूख की संवेदना या अन्तराङ्गिक संवेदना
- ३ प्रोप्रियोसेप्टर से प्राप्त संवेदनाएं (Sensation due to proprioceptors) या गति संवेदना या स्नायुविक संवेदनाएं (Muscular or Kinesthetic Sensation)

नेत्र-गोलक (Eye ball) मे निम्नलिखित तीन तहे होती है, जिनका नाम क्रमश श्वेत-पटल (Sclerotic), मध्य-पटल (Choroid) तथा अक्षिपट (Retina) है ।



[चित्र ८ — मानव आँख का चित्र]

(क) उपतारा (Iris), (ख) अक्षिपट की बाहरी सीमा (Outer boundry of Retina), (ग) श्वेत-पटल (Sclerotic coat), (घ) मध्यपटल (Choroid coat), (ङ) फोविया (Fovea), (च) दृष्टि-स्नायु (Optic nerve), (छ) अक्षिपट (Retina), (ज) सिलियरी पेशी (Ciliary muscle), (झ) अक्षिकला (Conjunctiva) ।

[Suspensary ligament – ससपेंसरी लिगामेंट, Lens—लेंस, Aqueous—humor – जलद्रव, Pupillary opening – पुतली का खुला भाग, Vitreous body – काँचद्रव, Blind spot—अन्ध-बिन्दु] ।

(क) श्वेत-पटल (Sclerotic)—यह आँख की सबसे बाहरी तह है। यह बाहर से देखने मे सफेद और कडा होता है। यह आँखो को चारो तरफ से घेरे हुए है। आँख के सामने वह भाग जिसे कनीनिका (Cornea) कहते हैं, पारदर्शी (Transparent) है। यह बाहर से देखने वाला नेत्र का उभरा भाग है। इसके

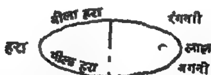
"दृष्टि सम्बन्धी घटनाएं"

(Phenomena of Vision)

रंग सम्मिश्रण और इसके नियम (Colour mixing) – दृष्टि संवेदना को दो वर्गों मे विभाजित करते है एक रंगों की संवेदना (Chromatic sensation) और दूसरे रंगविहीन संवेदना (Achromatic sensation)। रंगों की संवेदना के अन्तर्गत चार प्रधान रंगों की गणना करते है—लाल, हरा, नीला और पीला। रंगहीन संवेदना के अन्तर्गत उजले और काले या भूरे की संवेदना की चर्चा की जाती है। लाल हरा एवं नीला-पीला पूरक रंग (Complementary Colours) है। पूरक रंगों को अगर एक साथ विशेष अनुपात मे मिलाया जाय तो इसके मिलने से भूरा (Gray) की संवेदना होती है। इस उत्पन्न रंगहीन संवेदना की चमक (Brightness) सर्वदा उन दो पूरक रंगों की चमक (Brightness) का औसत होती है। उदाहरणार्थ लाल और हरे रंग को मिलायें।

(क) अगर लाल की चमक (Brightness) ५ हो और हरे की ७ तो लाल और हरे रंग के मिलने से उत्पन्न भूरे रंगहीन संवेदना की चमक (Brightness) $\frac{५ + ७}{२}$ या ६ होगी।

(ख) ऐसे रंग जो एक दूसरे के पूरक नहीं है (Non complementary colours जैसे लाल-नीला हरा-पीला इत्यादि उनको मिलाने से रंगहीन संवेदना उत्पन्न नहीं होती है बरन्, उन दो रंगो के बीच रंगवृत्त मे जो रंग आता है उसकी संवेदना होती है। रंगवृत्ति (Colour circle) पर रंगो को निम्नलिखित ढंग से रखा जाता है



[चित्र १]

उपर्युक्त रंगवृत्त से स्पष्ट है कि लाल और नीला के मिलने से नारंगी नीला और लाल के मिलाये जाने पर बैंगनी हरा-नीला के मिलाये जाने से नीला हरा (Blue-green) एवं हरा और पीला के मिलाये जाने पर पीला-हरा (Yellow green) की संवेदना होगी। परन्तु दो अपूरक (Non complementary) रंगों मे अगर एक का अनुपात दूसरे से अधिक हो तो अधिक अनुपात मे पाये जाने वाले रंग

नीला के साथ मिलाये जाने पर जो रग उत्पन्न होता है उसमे हरा अधिक अनुपात मे देखने को मिलता है। ऐसी अवस्था मे दो पूरक रगो (Non-complementary colour) के मिलाने से उत्पन्न रग-सवेदना के नामकरण मे विशेष ध्यान रखना पडता है। जो रंग अधिक अनुपात मे हो उसका नाम पहले और जो कम अनुपात मे हो उसका नाम बाद मे आता है। जैसे, अगर हरा नीला से अधिक हो तो इस उत्पन्न मिश्रित रग का नाम होगा हरा-नीला (Greenish blue) रग। दूसरी चीज उत्पन्न रगो की चमक (Brightness) है। यहाँ की चमक (Brightness) दोनो अपूरक रगो (Non-complementary Colour) की जो अपनी-अपनी चमक (Brightness) होती है उन दोनो का औसत चमक इस उत्पन्न रग की चमक (Brightness) होगी। अर्थात् अगर हरा की चमक १० हो तथा पीले की १२ तो हरा-पीला

के मिलाने से उत्पन्न रग की चमक ($\frac{१० + १२}{२}$) या '११' होगी।

(ग) रगो के मिलाने का तीसरा प्रधान नियम पूरक रगो से सम्बन्धित है। इस नियम के अनुसार पूरक रंगो के अनुपात को जो मिलने पर भूरे रंगो की सवेदना देती है उन्हे आपस मे एक अनुपात मे अगर मिलाया जाय तो इस तरह मिलाये गये लाल-हरा, पीला-नीला रगों से भी भूरे की ही सवेदना उत्पन्न होती है। इस उत्पन्न सम्वेदना की चमक (Brightness) सर्वदा लाल-हरा के मिलने से उत्पन्न भूरे की चमक एव पीला-नीला के मिलने से उत्पन्न भूरे की चमक (Brightness) का औसत होता है।

दो रगो के मिलने के समय देखा जाता है कि ये दो रग सूची (Cones) को एक के बाद दूसरे उत्तेजित करते है। अगर एक के बाद दूसरे द्वारा उत्तेजित किये जाने का क्रम अक्षिपट (Retina) पर धीरे रहा तो व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है जैसे कोई सवेदना कभी आती है तो वह कुछ क्षण के बाद चली जाती है। इस तरह के चचल या काँपते हुए रग सम्मिश्रण की सवेदना को 'फ्लीकर' (Flicker) की सज्ञा दी गयी है।

अक्षिपट पर रंग भाग (Retinal colour zones) — अक्षिपट (Retina) के किस भाग मे किस रग की सवेदना होती है, इसका ध्यान रख कर अक्षिपट (Retina) को तीन भागो मे बांटा गया है—(क) परिधि का भाग (Peripheral zone), (ख) मध्य भाग (The middle zone), (ग) केन्द्र का भाग (The central zone)।

(क) परिधि का भाग (Peripheral zone) —अक्षिपट की परिधि या बाहरी हिस्सो मे उत्तेजना नही होती है। अर्थात्, व्यक्ति के अक्षिपट के इस भाग मे

रंगो की उत्तेजना को पहुचाये जाने पर भी व्यक्ति किसी प्रकार का रग नही देखता ह।

(ख) मध्य भाग (The middle zone) — अक्षिपट (Retina) के मध्य भाग में केवल नीले एव पीले रगों की ही सवेदना उत्पन्न होती ह। मध्य भाग से तात्पर्य अक्षिपट क केन्द्र और परिधि के बीच के भागो से है।

(ग) केन्द्र भाग (The central zone) — अक्षिपट (Retina) केन्द्रीय भागो म सभी रगो की संवेदना प्राप्त होती है। इस प्रकार रगों के देखे जाने के आधार पर अक्षिपट को उपयुक्त तीन भागों मे विभक्त किया गया है।

रग दुबलता (Colour weakness) और रग अधता (Colour blindness) — कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते है जो सभा रगों की सम्वेदना तो प्राप्त करते हैं पर उन्हें एक रग को दूसरे से अलग करने मे कठिनाई होती ह। ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है कि उन्हें रग की पहचान में कमजोरी (Colour weakness) है अर्थात वे रंग दुबल होते हैं।

ऐसे व्यक्ति जिन्हें रगों की पहचान मे कोई दिक्कत नही होती है वे तीन दृष्टि-तरगो (Wave lengths) लाल (700 mk) हरा-लाल (546 1 mk) और नीला (435 8 mk) के आधार पर सभी रगो की पहचान कर लेते है। यद्यपि चार प्रधान रग होते हैं परन्तु यही तीन ही तरगों (Wave lengths) से सभी रगो की उत्पत्ति होती है। इसका कारण 546 1 mk. की तरगों (Wave lengths) म हरे और पीले दोनो रगो को उत्पन्न करने की क्षमता ह। तीन तरगो (Wave lengths) द्वारा प्राप्त प्रधान रगो के नियम को दृष्टि के तीन रंगो का सिद्धान्त (Trichromatic theory of colour vision) कहते हैं।

रगो की पहचान में कुछ लोगों को दिक्कत होती है। इन दिक्कतों को दो श्रेणी मे रखा जा सकता है। एक प्रकार की दिक्कत तो वह है जिसके रहने के कारण व्यक्ति रगों की पहचान में एकदम असमथ होता है। ऐसे व्यक्ति जिन्हें रगो की पहचान एकदम नहीं होती ह उन्हें पूण रंग सूर (Total colour blind) कहते हैं। परन्तु कुछ व्यक्ति म कुछ रगों की पहचान तो हो जाती है पर कुछ रगों की पहचान नही हो पाती है ऐसे व्यक्ति को आंशिक रग सूर (Partial colour blind) के अन्तगत रखा जाता ह।

साधारण व्यक्ति रंगों की पहचान तीन तरंगो (Wave lengths) के आधार पर करता है। परन्तु जिन्हें रंगा का एकदम पहचान नहा होती है उन्हे सभी प्रकार की तरगें (Wave lengths) एक ही समान मालूम होती है। भिन्न भिन्न तरगों (Wave lengths) का उनके सम्मुख प्रस्तुत किये जाने पर उन्हें काला या भूरे की सम्वेदना होती है। ऐसे व्यक्ति को पूण रग सूर (Total colour blind) कहते हैं।

दूसरी श्रेणी क लोग वे है जिन्हें सभी रगों की पहचान म दो तरंगों (Wave lengths) की ही आवश्यकता पड़ती है। ऐसे व्यक्ति का दो तरगी व्यक्ति (Dich-

romates) की संज्ञा दी जाती है। दो तरंगी व्यक्ति (Dichromates) भी अनेक तरह के होते हैं।

(क) प्रोटोनोप्स (Protonopes)—ऐसे व्यक्ति लाल और हरे की ठीक पहचान नही कर पाते (Red-green blind) है। इनमे लाल रग के ग्राहक कोशो (Receptors) का अभाव होता है। इस अभाव के फलस्वरूप इन्हे लाल-हरे तथा उजले की पहचान मे दिक्कत होती है। ऐसे व्यक्तियो को उजला प्रकाश-तरग हरा-सा दीखता है।

(ख) ड्यूटरानोप्स (Deuteranopes)—इन्हे भी लाल और हरे रगो की पहचान मे दिक्कत होती है पर इस दिक्कत का कारण कुछ और ही होता है। इनमे न तो लाल ग्राहक-कोशो का अभाव होता है और न हरे का ही। कुछ लोगो का अनुमान है कि लाल और हरे के पूरक सम्बन्धो (Complementary relationship) मे गडबडी हो जाती है। लाल का स्नायु (Neural) सम्बन्ध हरे से खत्म हो दण्डो (Rods) से हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति हरा-उजला की पहचान नही कर पाता है।

(ग) ट्रीटानोप्स (Tritanopes)—इन्हे नीला और हरे रग की पहचान मे कठिनाइयाँ होती हैं। बैंगनी (Violet) और नीला (Blue) उन्हे कोई अलग रग नही मालूम होता है। पीला रग उजला दीखता है। ऐसा होने का एकमात्र कारण नीला रग के ग्राहक-कोष (Blue receptor) का अभाव एव पीले रग के ग्राहक-कोषा (Receptor) की दुर्बलता है।

(घ) टेटारटानोप्स (Tetartanopes)—इन्हें सभी रग या तो लाल दीखते हैं या हरा। 470 mk के नीचे की तरग (Wave lengths) जो कि साधारण व्यक्ति को देखने मे बैंगनी (Violet) लगती है वह इन्हे लाल लगती है। 470 और 580 mk के बीच की तरगो (Wave lengths) स्वस्थ्य व्यक्ति मे नीला-हरा, हरा एव पीला रगो की सवेदना प्रदान करती है पर टेटारटानोप्स को ये सभी रग हरे प्रतीत होते हैं। 580 mk से बडी तरगो (Wave lengths) को उनके सम्मुख प्रस्तुत करने पर उन्हे लाल रंग की सवेदना होती है। लाल और हरा रगो की सवेदना होने का एक मात्र कारण व्यक्ति मे पीले और नीले रगो के ग्राहक-कोश की दुर्बलता है। कुछ लोगो का तो मत है कि पीले और नीले रगो के ग्राहक-कोष लाल रग के ग्राहक-कोप (Receptors) के साथ जुड जाते है। अत पीले एव नीले रगो के गाहक-कोशो (Receptors) के क्रियाशील होने पर लाल रग के कोश भी उत्तेजित हो जाते है जिससे मस्तिष्क मे पहुँचने वाली स्नायु-प्रवाह लाल की सवेदना उत्पन्न करती है और व्यक्ति लाल रग का ही प्रत्यक्षीकरण कर पाते है। व्यक्ति मे पीले एव नीले रगो की सवेदना के नही होने के ठीक-ठीक कारण का उल्लेख अभी तक कोई नही कर पाया है। अत इस क्षेत्र मे कुछ ऐसे प्रयोगो की आवश्यकता है जिनके आधार पर कुछ कहा जा सके।

क्रमबद्ध विरोध (Successive contrast)—उत्तेजना के हटाये जाने के तुरत बाद व्यक्ति को प्राप्त विरोधानुभव को क्रमबद्ध विरोध कहते है।[१] एक व्यक्ति जो एक उत्तेजना (लाल कलम) का प्रत्यक्षीकरण कर रहा हो उसके सामने से अगर उसे (लाल कलम को) हटा दिया जाय तो कुछ देर तक वह उस वस्तु को देखता रह जाता है। व्यक्ति में उत्पन्न इस मानसिक क्रिया को अनुबिम्ब (After image) की संज्ञा दी जाती है। रंगीन उत्तेजना के हटाये जाने के पश्चात् या तो व्यक्ति उस रंग को उतनी ही चमक के साथ देखता रह जाता है या उस रंगीन उत्तेजना के हटाये जाने पर जिस रंग की उत्तेजना होती है उसका पूरक (Complementary) रंग उसे नजर आता है। व्यक्ति में उत्पन्न पहली अवस्था अर्थात् उत्तेजना को ज्यों का त्यों देखते रहने की अवस्था को यथार्थ अनुबिम्ब (Positive after image) की संज्ञा दी जाती है। यह रंग और उसकी चमक दोनों उत्तेजना के रंगों की ही तरह होती है। दूसरी अवस्था में जब कि उत्तेजना को हटाया जाता है तो व्यक्ति कुछ देर के लिए उत्तेजना के पूरक रंगों को देखता है जिसे अयथार्थ अनुबिम्ब (Negative after-image) की संज्ञा दी जाती है। उदाहरणार्थ लाल रंग को सामने से हटाये जाने पर हरे रंग की संवेदना एवं नील को हटाने पर पीले रंग की संवेदना तथा काले को हटाने पर उजले की संवेदना को व्यक्ति अयथार्थ अनुबिम्ब (Negative after image) की अवस्था में प्राप्त करता है।

समकालीन विरोध (Simultaneous contrast)—उपर्युक्त क्रमबद्ध विरोध के अतिरिक्त भी कुछ विरोध दृष्टि-संवेदना के अन्दर पाये जाते हैं। ये विरोध उत्तेजना के सामने उपस्थित रहने पर ही होते हैं। अतः इन्हें समकालीन विरोध (Simultaneous contrast) की संज्ञा दी जाती है। ऐसे विरोध दो तरह के होते हैं –

(क) रंग विरोध (Colour contrast)

(ख) चमक विरोध (Brightness contrast)।

(क) रंग विरोध (Colour contrast)—वातावरण ... अपने समीप के वातावरण पर अपने पूरक रंगों की छाप डालत... जो रंगहीन पृष्ठभूमि पर स्थित है उसे अगर देखा जाय तो स्पष्ट... है कि पीले रंग के किनारे किनारे नीला रंग भी है। इस प्रक... भूमि में कोई दूसरा रंग हो सकता है। पृष्ठभूमि का रंग या तो ... mentary) रंग होगा या अपूरक (Non complementary ... रंग की पृष्ठभूमि में इसका पूरक रंग नीला हो तो ऐसी हालत ... पूरक रंग नीले को पृष्ठभूमि पर फेंकता है जिससे नीला पृष्ठभूमि ... नीला लगती है। साथ ही साथ पीले रंग पर भी पृष्ठ-भूमि ...

[१] Contrast effect has occurred after the ...mulus Hence it is termed successive contrast

पूरक रंग पीला का प्रभाव पड़ता है, अतः बीच का रंग और अधिक पीला लगने लगता है।

अगर एक रंग की पृष्ठभूमि मे कोई अपूरक (Non-complementary) रंग रहा तो ऐसी हालत मे बीच का रंग अपने पूरक रंग द्वारा पृष्ठभूमि को प्रभावित करता है और पृष्ठभूमि का रंग अपने पूरक रंग द्वारा बीच के रंग को प्रभावित करता पाया जा सकता है। जैसे, लाल रंग की पृष्ठभूमि मे पीला रंग हो तो बीच का लाल रंग देखने मे नीला-लाल (Bluish-red) नीला रंग (पृष्ठभूमि के पीले रंग का पूरक है) लिए हुए तथा पृष्ठभूमि मे स्थित पीला रंग देखने में 'हरा पीला' (Greenish-yellow) (हरा बीच के लाल रंग का पूरक है) लगेगा।

(ख) चमक विरोध (Brightness contrast) — रंग जिस प्रकार अपने वातावरण के रंगो को अपने पूरक रंग द्वारा प्रभावित करता है उसी प्रकार रंगो की चमक (Brightness) भी अपने निकट के रंगो की चमक को प्रभावित करती है जिससे निकट की रंगो की चमक अधिक हो जाती है। दृष्टि-संवेदना मे उत्पन्न इस क्रिया को चमक विरोध (Brightness contrast) कहते है। चमक-विरोध के कारण ही कम चमकने वाला कोई रंग अगर अधिक चमकने वाले रंग की पृष्ठभूमि पर स्थित है तो कम चमकने वाले रंग की चमक पृष्ठभूमि के प्रवाह से अधिक हो जाती है।

दृष्टि के सिद्धान्त
(Theories of Vision)

१ यंग हेल्महोज का सिद्धान्त (The Young-Helmholtz theory)— इस सिद्धान्त के अनुसार तीन प्रधान रंग, लाल (Carmine red), नीला (Ultra-merine blue) और पीलापन लिए हुए हरा (Yellowish green) होता है। इन तीनो रंगो द्वारा ही सभी रंग एवं रंगहीन संवेदनाएं व्यक्ति मे उत्पन्न होती है। इन तीनो रंगो के लिए अक्षिपट (Retina) मे तीन भिन्न स्नायु-तन्तु (Nerve fibers) है। इन स्नायु-तन्तुओ (Nerve fibers) को सभी तरगें (Wave lengths) क्रियाशील करती है पर सबसे ज्यादा किसी एक ही तरगें (Wave lengths) द्वारा क्रियाशील हो सकती है। अत इन तीन स्नायु-तन्तुओ (Nerve firbers) को अत्यधिक उत्तेजित करने के लिए तीन अलग-अलग तरंग (Wave lengths) है। आजकल स्नायु तन्तु (Nerve fibers) के स्थान पर लोगो ने तीन तरह के Photo-chemical substances का स्थान अक्षिपट (Retina) मे दिया है। अगर ये तीनो Photo chemical substances समान रूप मे क्रियाशील हो जायें तो इनके समान रूप मे क्रियाशील होने के फलस्वरूप व्यक्ति मे रंगहीन संवेदना (Achromatic sensation) उजला (White) उत्पन्न होता है। परन्तु इन पदार्थों (Substances) के विभिन्न अनुपात मे क्रियाशील होने पर व्यक्ति मे रंगो की संवेदना (Chroma-

tic sensation) होती है। उन पदार्थों (Substances) के उत्तेजित नहीं होने पर भी व्यक्ति को कुछ अनुभव होता है और वह अनुभव है काले की संवेदना।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रंगों की संवेदना की उत्पत्ति विभिन्न अनुपात में Photo-chemical substances को उत्तेजित करने पर निर्भर है। यहाँ रंगों की अनुभूति के लिए स्नायु प्रवाह (Nerve impulse) का अक्षिपट (Retina) में बनकर आगे जाना आवश्यक है। प्रत्येक रंग के लिए स्नायु प्रवाह एक ही तरह की होती है पर मस्तिष्क के विभिन्न स्थानों में ये स्नायु प्रवाह जाती है। विभिन्न स्नायु प्रवाह मस्तिष्क में पहुँच कर भिन्न भिन्न स्थानों को उत्तेजित करती हैं। इस प्रकार मस्तिष्क के उत्तेजित स्थान में अन्तर होने के फलस्वरूप रंगों की संवेदनाओं में भी अन्तर होता है। अतः रंगों की संवेदना का आधार मस्तिष्क में उत्तेजित स्थान है न कि अक्षिपट (Retina) में उत्पन्न स्नायु प्रवाह।

इस सिद्धान्त के अनुसार पीले (Yellow) रंग की उत्पत्ति लाल और हरे रंग के ग्राहक-कोषों (Receptors) के समान रूप में उत्तेजित होने से उत्पन्न स्नायु प्रवाह के मस्तिष्क में एक विशेष स्थान पर पहुँचने से सम्भव होता है। अतः पीले रंग की संवेदना के लिए आवश्यक है कि लाल और हरा एक साथ समान रूप से उत्तेजित हों।

विरोध (Contrast)—क्रमबद्ध यथार्थ अनुबिम्ब (Successive positive after image)—एक उत्तेजित ग्राहक-कोश को उत्तेजित करती है। ग्राहक कोषों के क्रियाशील होने पर स्नायु प्रवाह बनते हैं जो मस्तिष्क में अपना स्थान ग्रहण करते हैं। मस्तिष्क में स्थान ग्रहण करने के फलस्वरूप ही व्यक्ति को रंगों की संवेदना होती है। उत्तेजना के हटाये जाने के बाद ग्राहक कोषों एवं मस्तिष्क में स्नायु प्रवाह पहुँचने का क्रम समाप्त नहीं होता है। वरन् स्नायु प्रवाह अक्षिपट (Retina) में बनते हैं और मस्तिष्क की ओर जाते हैं। इस प्रकार उत्तेजना के अभाव में जब ग्राहक कोष एवं मस्तिष्क अपनी क्रियाएँ करती ही रह जाती हैं तो व्यक्ति को यथार्थ अनुबिम्ब (Positive after-image) होता है।

क्षय अनुबिम्ब (Negative after image)—अक्षिपट (Retina) का कोई एक पदार्थ (Photo-chemical substance) जब कार्य करता हुआ थक जाता है तो इस थकान (Retina fatigue) के फलस्वरूप व्यक्ति को क्षय अनुबिम्ब (Negative after image) का अनुभव होता है। उदाहरणार्थ लाल (Red) पदार्थ (Substance) जब अपनी थकान के कारण कार्य करना छोड़ देता है तो बचे हुए दो पदार्थों (Substances) जिनमें विशेष रूप से हरा अधिक कार्य करता है जिसके फलस्वरूप लाल उत्तेजना के हटाये जाने के पश्चात व्यक्ति लाल के पूरक रंग हरा की संवेदना प्राप्त करता है।

(ख) समकालीन विरोध (Simultaneous contrast)—उत्तेजना के उपस्थित रहते हुए जो विरोध (Contrast) व्यक्ति अनुभव करता है उसका आधार

व्यक्ति का अपना अनुभव है। व्यक्ति अपने पूर्व के अनुभव को इन विरोधो के प्रत्यक्षीकरण मे अनजाने (Unconsciously) प्रयोग करता है जैसे, अगर लाल रग को भूरे पृष्ठभूमि मे रखा जाय तो जैसा कि हमलोगो का अनुभव है, भूरे को देखने के पहले लाल रंग के किनारे-किनारे हरा रग देखेंगे। इस पूर्व-अनुभूति के आधार पर ही समकालीन विरोध (Simultaneous contrasts) की व्याख्या की गयी है। पूर्व-अनुभूति के आधार पर की गयी यह व्याख्या समुचित नही जँचती, कारण पूर्व अनुभूति तो विरोध को दूर करने मे सहायक पाया जाता है न कि उसकी उत्पत्ति मे।

(ग) रग-अधता (Colour blindness)—(i) पूर्ण (Total)—व्यक्ति मे अगर प्रकाश से उत्तेजित होने वाले पदार्थों (Photo-chemical substances) का पूर्ण रूप से अभाव हो तो व्यक्ति रगो की पहचान नही कर पाता है। अत पूर्ण (Total) अधता (Colour blindness) का कारण व्यक्ति में प्रकाश से उत्तेजित होने वाले पदार्थों (Photo-chemical substances) का पूर्ण अभाव है।

(ii) आंशिक (Partial)—रगो की पहचान मे गड़बड़ी का कारण तीन प्रकार के प्रकाश उत्तेजित होनेवाले पदार्थों (Photo-chemical substances) मे से किसी एक या दो का अभाव है। अगर लाल रग के लिए जो पदार्थ (Substance) आवश्यक है वह अक्षिपट (Retina) मे नही रहा तो व्यक्ति लाल रग की पहचान नही कर सकेगा (Protonopes)। इसी प्रकार दूसरे पदार्थों (Substance) के अभाव मे अन्य रगो की पहचान असम्भव हो जाती है। यग एव हेल्महोज (Young-Helmholtz) के सिद्धान्त की अनेक त्रुटियाँ है। इनका सिद्धान्त विरोध, रग-पहचान की दुर्बलता आदि जैसी दृष्टि के अन्तर्गत उत्पन्न घटनाओ की व्याख्या ठीक-ठीक नही कर पाता है। अत कुछ लोगो ने इनके सिद्धान्त मे परिवर्तन लाने की चेष्टा की है। यग एव हेल्महोज के विचार मे परिवर्तन लाने मे मैकडूगल (Mc Dougall) का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इनके अनुसार रगहीन सवेदनाओ की उत्पत्ति के लिये दण्ड (Rods) है जो उपर्युक्त तीन प्रकार से उत्तेजित होनेवाले पदार्थों (Photo-chemical substances) से भिन्न है। इस प्रकार रगो की सवेदना एव रगहीन सवेदना की उत्पत्ति दो भिन्न ग्राहक कोशो (Receptors) से होता है।

यग एव हेल्महोज (Young-Helmholtz) के सिद्धान्त के अतिरिक्त भी अनेक सिद्धान्त है, जैसे (क) हेरीग का सिद्धान्त (The Hering Theory) (ख) लैड-फ्रैंकलीन (The Ladd-Frankling Theory) का सिद्धान्त, (ग) एडरीज-ग्रीन (The Edrige-Grean Theory) का सिद्धान्त इत्यादि। इन सभी सिद्धान्तो मे लैड-फ्रैंकलीन का सिद्धान्त दृष्टि की अनेक घटनाओ (Facts) की व्याख्या सफलतापूर्वक करता है। अत लैड-फ्रैंकलीन के सिद्धान्त की चर्चा की जा रही है।

२ लैडफ्रैंकलीन का सिद्धान्त (Ladd Frankline's Theory)—लैड फ्रैंक-लीन के सिद्धान्त के अनुसार रंगों की संवेदना का क्रमशः विकास हुआ है। इसकी तीन प्रमुख अवस्थाएं (Stages) हैं।

(क) पहली अवस्था जब कि प्राणी को केवल रंगहीन संवेदनाएं होती थीं। आज भी अक्षिपट में इसके चिह्न दण्ड (Rods) के रूप में वर्तमान हैं। दण्डों (Rods) के द्वारा रंगहीन संवेदनाएं संचालित होती हैं। रंगहीन संवेदनाओं का आधार अणु (Atom) के चारों ओर फैला हुआ भूरा परमाणु (Gray molecule) है। जब कि यह अपने मौलिक पदार्थों से पृथक (Decompose) हो जाता है तो इसके पृथक्करण से एक रासायनिक पदार्थ (Chemical substance) की उत्पत्ति होती है। यह रासायनिक पदार्थ अक्षिपट में स्थित स्नायु छोरों (Nerve endings) को उत्तेजित करता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति में रंगहीन संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं।

(ख) विकास (Evolution) की दूसरी अवस्था वह है जब कि व्यक्ति में दो नये रंगों की संवेदना के ग्राहक-कोष का विकास होता है—एक तो नीले रंग की और दूसरा पीले रंग की संवेदना के ग्राहक कोष का। नये ग्राहक-कोष (Receptor) पहली अवस्था में विकसित ग्राहक-कोष से भिन्न होते हैं। विकास की दूसरी अवस्था में पहुंचे प्राणियों में दो तरह के ग्राहक-कोष पाये जाते हैं एक वह जिसमें भूरे की संवेदना होती है और दूसरा वह जिससे नीले और पीले रंगों की संवेदना होती है।

(ग) विकास की तीसरी अवस्था में पीले से दो रंगों के ग्राहक-कोषों का विकास होता है एक लाल रंग की और दूसरा हरे रंग की संवेदना का।

मनुष्यों में विकास अपनी तीसरी अवस्था को प्राप्त कर चुकी होती है। इस प्रकार लाल पीले नीले एवं हरे रंगों की संवेदनाओं के लिये चार भिन्न ग्राहक कोष हैं। लाल और हरा रंग एक दूसरे का पूरक नहीं है। अब लाल और हरे के अणु (Atoms) को अगर एक ही साथ मौलिक पदार्थों से पृथक्करण (Decompose) कराया जाय तो व्यक्ति को पीले रंग की संवेदना होती है। इसी प्रकार अगर पीले और नीले रंग के अणु (Atoms) को एक साथ मौलिक पदार्थों से पृथक्करण (Decompose) कराया जाने पर उनसे या भूरे रंग की संवेदना होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि तीसरी अवस्था के अणु (Atoms) का पृथक्करण (Decompose) कराने पर दूसरी अवस्था में होने वाली संवेदनाएं प्राप्त होंगी तथा दूसरी अवस्था के अणु (Atoms) को मौलिक पदार्थ से पृथक्करण (Decompose) कराये जाने पर पहली अवस्था में उत्पन्न संवेदनाएं ही प्राप्त होती हैं। रंगों के सभी अणु (Atoms) को एक साथ उत्तेजित करने पर भूरे की संवेदना प्राप्त होती है।

रंग अंधता (Colour blindness)—व्यक्ति में रंगों की पहचान का अभाव दो कारणों से होता है—

(i) आँखो के ग्राहक-कोशो के विकास का अभाव।

(ii) ग्राहक-कोशो का कोई रोग होने के कारण विनाश।

(i) कुछ व्यक्ति मे रगो की सवेदना के उपर्युक्त कोशो के विकास का एकदम अभाव पाया जाता है जिसके फलस्वरूप वह केवल भूरे की ही सवेदना प्राप्त कर पाता है। ऐसे लोगो को रगो की सवेदना एकदम नही होती है। ये विकास की पहली ही सीढी पर रुक जाते हैं जिससे रगो के ग्राहक-कोशो का विकास नही हो पाता है।

दूसरी तरह के लोग वे होते हैं जो विकास की दूसरी सीढी तक तो पहुँच जाते हैं, परन्तु विकास की तीसरी सीढी तक नही पहुँच पाते है जिससे लाल और हरे रगो के अणु (Atoms) का विकास नही हो पाता है। अत ये लाल और हरे रगो की पहचान करने मे असफल रहते है। ऐसे व्यक्ति को लाल-हरा रगान्ध (Red-Green colour blind) की सज्ञा देते है।

(ii) रग-अधता (Colour blindness) का दूसरा कारण ग्राहक-कोश का किसी रोग के कारण विनाश होना है। विशेषत नये विकसित ग्राहक-कोश के रोग-ग्रस्त होने की सम्भावना अधिक होती है। अत नये विकसित लाल-हरे रग की पहचान मे कमजोर व्यक्तियो (Red-Green colour blind) की सख्या अधिक पायी जाती है।

रग-सम्मिश्रण (Colour mixing)—जब कि दो रगो को एक साथ मिलाया जाता है तो इनके मिलाने से दोनो ही रगो के ग्राहक-कोश (Receptors) उत्तेजित हो जाते है। ऐसी अवस्था मे रगो की पहचान कठिन हो जाती है, व्यक्ति इस कठिनाई को अपने विकास की पहली अवस्था मे ले जाकर दूर करता है। अत जब लाल और हरे रगो के ग्राहको को एक साथ उत्तेजित करते है तो व्यक्ति इनके मिश्रण को भूरे रग के रूप मे देखता है जिसका विकास पहली अवस्था मे हुआ है।

अक्षिपट के रग भाग (Retinal colour zones)—विकास के क्रम मे धीरे-धीरे एक प्रकार का अणु (Atom) दूसरे से अपने को अलग करता गया। अत जब यह अलगाव (Differentitation) नही हुआ था उस समय एक स्थान पर सभी तरह के अणु (Atoms) पाये जाते थे। जैसे, अक्षिपट के बीच (Centre) सभी तरह के रगो के अणु (Atoms) पाये जाते है। परन्तु विकास के साथ-साथ अलगाव के फलस्वरूप मध्य मे दो तरह के अणु (Atoms) नीले और पीले रगो के तथा किनारे पर (Periphery) केवल रगहीन सवेदनाओ को उत्पन्न करने वाले अणु (Atoms) ही रहे। इस प्रकार के अलगाव के नियम के आधार पर अक्षिपट के विभिन्न रग-भागो की व्याख्या की जा सकती है।

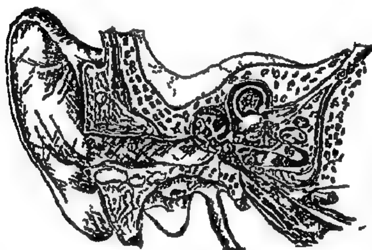
२ कान की बनावट तथा श्रवण सवेदना

(Structure of the Human Ear and Auditory Sensation)

श्रवण-सवेदना का उत्तेजक (Stimulus) ध्वनि-तरग (Sound waves)

है। यह उत्तेजना अन्तःकर्ण (Inner ear) में स्थित केशकोशिकाओं (Hair cells) को प्रकम्पित करती है जिसके फलस्वरूप श्रवण स्नायु प्रवाह (Auditory nerve impulse) उत्पन्न होकर मस्तिष्क के टेम्पोरल लोब (Temporal lobe) या शंख खण्ड में पहुँचते हैं जिसके कारण श्रवण संवेदना होती है। इस प्रकार श्रवण-संवेदना की ग्राहकेन्द्रिय केशकोशिकायें (Hair cells) हैं जिन्हें कोर्टी का इन्द्रिय (Organ of corti) भी कहते हैं। श्रवण संवेदना को स्पष्टतया समझने के लिए कान की बनावट (Structure of the ear—चित्र १० देखें) तथा उसकी कार्यवाही (Function) की चर्चा आवश्यक है।

मनुष्य के कान को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है बाह्यकर्ण



[चित्र १० — मानव-कर्ण]

१ कान की नली
२ कान की झिल्ली
३ मुद्गर
४ निहाई
५ रकाब
६ गोलाकार खिड़की
७ अण्डाकार खिड़की
८ अर्द्धचक्राकार नालिकायें
९ कौक्लिया
१० श्रवण-स्नायु
११ कंठ कर्ण नली

(Outer ear), (ख) मध्यकर्ण (Middle ear) तथा (ग) अन्तःकर्ण (Inner ear)।

(क) बाह्य कर्ण (Outer ear) — बाह्यकर्ण के दो भाग हैं (१) वह जो बाहर की ओर निकला हुआ है। इसे पिन्ना (Pinna) या आरीकल (Auricle) या बाह्य-कोष्ठ भी कहते हैं। पहले यह विचार था कि पिन्ना ध्वनि तरंगों का संग्रहीत

कर ग्रहण करने मे सहायता पहुँचाता है, परन्तु बाद मे किये गये प्रयोगो से यह पता चला कि 'पिन्ना' को जोड से काट देने पर भी श्रवण-संवेदनाओ मे कोई क्षति नही पहुँचती है।

(३) बाह्यकर्ण का दूसरा भाग कर्णाजलि या बाह्य मियटस (External meatus) है। यह पिन्ना की जड से शुरू होकर **कर्ण-ढोल** (Ear drum or Tympanum) तक फैली है। इसे **कान की नली** (Auditory tube) भी कहते हैं। इसकी औसत लम्बाई पच्चीस मिलीमीटर है। यह बाहर से आये ध्वनि-प्रकम्प के कान के मध्य भाग मे जाने का मार्ग है।

(ख) मध्यकर्ण (Middle Ear) — कान के मध्य भाग की सीमा की शुरुआत कान की नली जहाँ जाकर रुक जाती है वहाँ से होती है। कर्ण-ढोल मध्यकर्ण का सबसे पतला भाग है जो मियटस से जुडा हुआ है। 'मियटस' ध्वनि को कर्ण-ढोल तक पहुँचाती है। कर्ण-ढोल एक बहुत ही झिल्लीदार (Membranic) पर्दा जैसा है। कर्ण-ढोल से सटी हड्डियाँ है। इन हड्डियो का नाम क्रमश **मुद्गर** (Hammer or Malleus), **निहाई** (Anvil or Incus) तथा **रकाब** (Stirrup or Stapes) है। ध्वनि-तरगें (Sound waves) **कर्ण-ढोल** को प्रकम्पित करती हैं। इसके प्रकम्पन के फलस्वरूप **इससे** सटी इन तीनो हड्डियो मे भी कम्पन शुरू होता है। मुद्गर प्रकम्पित होने से उसमे लगे हुए निहाई मे भी प्रकम्पन होता है जिसके परिणामस्वरूप रकाब जो निहाई से लगा हुआ है, वह भी प्रकम्पित हो उठता है। चूँकि रकाब मध्यकर्ण की दूसरी सीमा **अण्डाकार खिड़की** (Oval window) — **ओवल विण्डो** से लगा हुआ है अत यह प्रकम्पन है जो सबसे पहले कर्ण-ढोल मे उत्पन्न हुआ था। वह क्रमश मुद्गर, निहाई तथा रकाब से होता हुआ अण्डाकार खिड़की तक पहुँचता है।

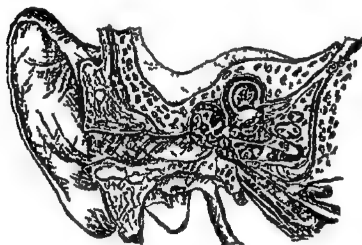
मध्यकर्ण ध्वनि-तरगो को श्रवण-सवेदना (Auditory sensation) के पर्याप्त उद्दीपक के रूप मे परिवर्तित करता है।

एक सँकरी नली, जिसके **कण्ठ-कर्णनली** (Eustachian Tube) **या यूस्टेकियन ट्यूब** कहते है, कान के मध्य भाग से कण्ठ तक गयी है। यह कान को कण्ठ से मिलाती है। इसका प्रमुख कार्य कर्ण-ढोल के बाहर एव भीतर की हवाओ के दबाव को सन्तुलित रखना है। यदि कण्ठ-कर्णनली से बाहर निकाल ली जाय तो तीव्र ध्वनि से कर्ण ढोल के फूट जाने की सम्भावना बढ जायगी।

(ग) अन्त कर्ण (Inner ear) — अण्डाकार खिडकी (Oval window) से शुरू होकर **कोर्टी-इन्द्रिय** (Organ of Corti) **एव अर्द्धचक्राकार नली** (Semicircular Canal) तक फैला है। यह कनपटी की हड्डी के भीतर स्थित है। अन्त कर्ण की दीवार एक पतली झिल्ली से ढकी रहती है जिसमे निरन्तर एक तरल पदार्थ भरा रहता है। इसके ऊपरी भाग मे पाये जाने वाले तरल पदार्थ का नाम **अन्तर्लसीका**

है। यह उत्तेजना अन्तःकर्ण (Inner ear) में स्थित केशकोशिकाओं (Hair cells) को प्रकम्पित करती है जिसके फलस्वरूप श्रवण स्नायु प्रवाह (Auditory nerve impulse) उत्पन्न होकर मस्तिष्क के टेम्पोरल लोब (Temporal lobe) या शंख खण्ड में पहुँचते हैं जिसके कारण श्रवण-संवेदना होती है। इस प्रकार श्रवण-संवेदना की ग्राहकेन्द्रिय केशकोशिकायें (Hair cells) हैं जिन्हें कोर्टी की इन्द्रिय (Organ of corti) भी कहते हैं। श्रवण संवेदना को स्पष्टतया समझने के लिए कान की बनावट (Structure of the ear—चित्र १० देखें) तथा उसकी कार्यवाही (Function) की चर्चा आवश्यक है।

मनुष्य के कान को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है– बाह्यकर्ण



[चित्र १०—मानव-कर्ण]

१ कान की नली   कान की ढाल   ६ गोलाकार खिड़की   १० श्रवण-स्नायु
३ मुद्गर   ७ अंडाकार खिड़की   ११ कंठ-कर्ण नली
४ निहाई   ८ अर्द्धचन्द्राकार नालियाँ
५ रकाब   ९ कोक्लिया

(Outer ear), (ख) मध्यकर्ण (Middle ear) तथा (ग) अन्तःकर्ण (Inner ear)।

(क) बाह्य कर्ण (Outer ear)—बाह्यकर्ण के दो भाग हैं (१) वह जो बाहर की ओर निकला हुआ है। इसे पिन्ना (Pinna) या आरीकल (Auricle) या ग्राहक-कोष्ठ भी कहते हैं। पहले यह विचार था कि पिन्ना ध्वनि तरंगों को संग्रहीत

कर ग्रहण करने मे सहायता पहुँचाता है, परन्तु बाद मे किये गये प्रयोगो से यह पता चला कि 'पिन्ना' को जोड से काट देने पर भी श्रवण-सवेदनाओ मे कोई क्षति नही पहुँचती है।

(२) वाह्यकर्ण का दूसरा भाग कर्णानलि या वाह्य मियटस (External meatus) है। यह पिन्ना की जड से शुरू होकर कर्ण-ढोल (Ear drum or Tympanum) तक फैली है। इसे कान की नली (Auditory tube) भी कहते हैं। इसकी औसत लम्बाई पच्चीस मिलीमीटर है। यह बाहर से आये ध्वनि-प्रकम्प के कान के मध्य भाग मे जाने का मार्ग है।

(ख) मध्यकर्ण (Middle Ear) — कान के मध्य भाग की सीमा की शुरुआत कान की नली जहाँ जाकर रुक जाती है वहाँ से होती है। कर्ण-ढोल मध्यकर्ण का सबसे पतला भाग है जो मियटस से जुडा हुआ है। 'मियटस' ध्वनि को कर्ण-ढोल तक पहुँचाती है। कर्ण-ढोल एक बहुत ही झिल्लीदार (Membranic) पर्दा जैसा है। कर्ण-ढोल से सटी हड्डियाँ है। इन हड्डियो का नाम क्रमश मुद्गर (Hammer or Malleus), निहाई (Anvil or Incus) तथा रकाब (Stirrup or Stapes) है। ध्वनि-तरगें (Sound waves) कर्ण-ढोल को प्रकम्पित करती है। इसके प्रकम्पन के फलस्वरूप इससे सटी इन तीनो हड्डियो मे भी कम्पन शुरू होता है। मुद्गर प्रकम्पित होने से उसमे लगे हुए निहाई मे भी प्रकम्पन होता है जिसके परिणामस्वरूप रकाब जो निहाई से लगा हुआ है, वह भी प्रकम्पित हो उठता है। चूँकि रकाब मध्यकर्ण की दूसरी सीमा अण्डाकार खिडकी (Oval window) — ओवल विण्डो से लगा हुआ है अत यह प्रकम्पन है जो सबसे पहले कर्ण-ढोल मे उत्पन्न हुआ था। वह क्रमश मुद्गर, निहाई तथा रकाब से होता हुआ अण्डाकार खिडकी तक पहुँचता है।

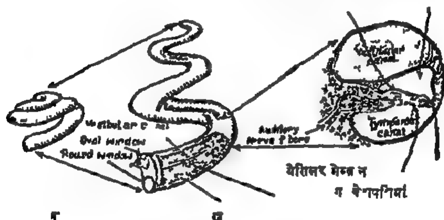
मध्यकर्ण ध्वनि-तरगो को श्रवण-सवेदना (Auditory sensation) के पर्याप्त उद्दीपक के रूप मे परिवर्तित करता है।

एक सँकरी नली, जिसके कण्ठ-कर्णनली (Eustachian Tube) या यूस्टेकियन ट्यूब कहते है, कान के मध्य भाग से कण्ठ तक गयी है। यह कान को कण्ठ से मिलाती है। इसका प्रमुख कार्य कर्ण-ढोल के बाहर एव भीतर की हवाओ के दबाव को सन्तुलित रखना है। यदि कण्ठ कर्णनली से बाहर निकाल ली जाय तो तीव्र ध्वनि से कर्ण ढोल के फूट जाने की सम्भावना बढ जायगी।

(ग) अन्त कर्ण (Inner ear) — अण्डाकार खिडकी (Oval window) से शुरू होकर कोर्टी-इन्द्रिय (Organ of Corti) एव अर्द्धचक्राकार नली (Semicircular Canal) तक फैला है। यह कनपटी की हड्डी के भीतर स्थित है। अन्त कर्ण की दीवार एक पतली झिल्ली से ढकी रहती है जिसमे निरन्तर एक तरल पदार्थ भरा रहता है। इसके ऊपरी भाग मे पाये जाने वाले तरल पदार्थ का नाम अन्तर्लसीका

या एण्डोलीम्फ (Endolymph) तथा जिस तरल पदार्थ पर 'एण्डोलिम्फ आश्रित है उस परिलसीका या परीलीम्फ (Perilymph) कहते हैं। अतः कर्ण के पूरे आकार (Structure) को झिल्लीदार लेबरीन्थ (Membraneous Labyrinth) तथा हड्डियों से बनी भीतरी भाग को हड्डीदार लेबरीन्थ (Bony Labyrinth) की संज्ञा दी जाती है। अन्तः कर्ण के दो प्रधान भाग है—(१) अर्द्धचक्राकार नालियाँ (Semi circular Canals) जिसका सम्बन्ध हमारे शारीरिक सन्तुलन (Static sence) से है और दूसरा कौक्लिया [Dochlea—चित्र ११ देखें] जो श्रवण संवेदना के लिए सबसे प्रमुख भाग है।

कौक्लिया घोंघे के आकार के जैसा है जिसमें ढाई लपेट देखने को मिलते हैं। इसे अत्यधिक रूप से स्पष्ट करने के हेतु इसका चित्र नीचे दिया जा रहा है।



[चित्र ११—कौक्लिया का चित्र]

क—कौक्लिया अन्तः कर्ण में ढाई लपेट के रूप में।

ख—कौक्लिया—का खुला रूप जिसमें इसके विभिन्न आन्तरिक अंगों को दिखलाया गया है।

ग—कौक्लिया का चित्र जिसमें कोर्टी इन्द्रिय तथा रक्तवाहिनियाँ दिखलायी गयी है।

[Vestibular canal—वेस्टिबुलर नाली Oval window—अण्डाकार खिड़की Round window—गोलाकार खिड़की Auditory nerve fibres—स्नायु तन्तु Tympanic canal—टिम्पैनिक नाली।]

कौक्लिया तरल पदार्थ से भरे रहता है। इसमें भी तीन प्रधान नालियाँ (Tubes) हैं—स्काला वेस्टिबुली [Scala vestibuli] जिसका शुरूआत अण्डाकार

खिड़की' (Oval window) से होती है। **एस्कालाभेस्टिबुल** अर्थात् भेस्टिबुलर **कनाल** या नाली (Vestibular canal) द्वारा अण्डाकार खिड़की तक आये हुए ध्वनि-प्रकम्पन ग्रहण किये जाते है। यह नली उस ध्वनि-प्रकम्पन को अण्डाकार खिड़की से लेकर कौक्लिया के शीर्ष तक पहुँचाती है। ऊपर पहुँचकर यह प्रकम्पन **भेस्टिबुलर नाली** से निकल कर **टिमपैनिक नली** (Tympanic canal) मे जाती है। यह कौक्लिया की दूसरी प्रमुख नाली है। यह नली कौक्लिया के शीर्ष से लेकर उसके आधार तक फैली है। भेस्टिबुलर एवं टिमपैनिक दोनो नालियो मे एक पदार्थ भरा हुआ है जिसे पेरीलिम्फ (Perilymph) या परिलसीका कहते है।

एक तीसरी नाली जिसे **कौक्लिया नाली** (Cochlea canal) कहते हैं, टिमपैनिक तथा भेस्टिबुलर नालियो के बीच स्थित है। इसमे भी तरल पदार्थ है जिसे एण्डोलिम्फ (Endolymph) या अन्तर्लसीका कहते है। कौक्लिया नाली को **बेसिलर-मेम्ब्रेन** (Basilar membrane) नामक एक झिल्लीदार परत, टिमपैनिक नाला से अलग करती है। **टिमपैनिक नाली को स्काला मिडिया** (Scala media) भी कहते है। वह झिल्लीदार परत जो भेस्टिबुलर नाली को टिमपैनिक नाली अर्थात् **स्काला मिडिया** (Scala media) से अलग करती है उसे **टेक्टोरियल मेम्ब्रेन या झिल्ली** (Tectorial membrane) कहते है। बीच वाली नाली मे 'बेसिलर मेम्ब्रेन' (Basilar membrane) के ऊपर 'एण्डोलिम्फ' (Endolymph) नामक तरल पदार्थ के अन्दर अनेक **केशपेशियाँ** (Hair cells) फैली हैं। ये केशपेशियाँ इस तरल पदार्थ के अन्दर इस प्रकार फैली है जैसे जल के अन्दर सेवार फैले होते हैं। इन केशपेशियो को **कोर्टी-इन्द्रिय** (Organ of Corti) कहते हैं। कोर्टी ही श्रवण-सवेदना की सबसे प्रमुख ग्राह्यइन्द्रिय है। कोर्टी मे प्रकम्पन की शुरुआत भेस्टिबुलर तथा टिमपैनिक नालियो मे प्रकम्पन होने से होती है। यह प्रकम्पन बीच की नाली मे पहुँच कर उनके अन्दर स्थित तरल पदार्थ 'एण्डोलिम्फ (Endolymph) मे प्रकम्पन उत्पन्न होने से उसके अन्दर फैले हुए सेवार मे भी प्रकम्पन होना स्वाभाविक है। एण्डोलिम्फ मे प्रकम्पन उत्पन्न होने से उसके अन्दर सेवार सी फैली हुई केशपेशियो (Hair cells) मे भी प्रकम्पन उत्पन्न होता है। इस प्रकम्पन के फलस्वरूप केशपेशियो मे एक स्नायु-प्रवाह (Nerve impulse) उत्पन्न होता है जो **श्रवण-स्नायु** (Auditory nerve) द्वारा निकल, वृहत् मस्तिष्क के विशिष्ट भाग **टेम्पोरल लोब** (Temporal lobe) या शख-खण्ड मे पहुँचता है। इसके पश्चात् ही व्यक्ति मे **श्रवण-सवेदना** (Auditory sensation) होती है।

वृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) दो भागो मे विभक्त है। प्रत्येक कान का सम्बन्ध इसके दोनो-भागो से है जिससे किसी एक भाग मे क्षति होने पर भी श्रवण-सवेदना का होना पूर्ण रूप से समाप्त नही होता। परन्तु दोनो भागो के विनष्ट हो जाने पर तो मनुष्य बहरा हो ही जायगा।

*श्रवण संवेदना कैसे होती है ?
(How Auditory sensation takes place)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ध्वनि-तरंगों (Sound waves) को बाह्यकर्ण (Outer ear) ग्रहण कर मियटस नली (Scala meatus) के रास्ते मध्यकर्ण (Middle ear) में स्थित कर्ण ढोल (Ear drum) तक पहुँचाता है। *कर्ण-ढोल (Hammer Anvil and Stirrup) में भी समान प्रकम्पन होता है। इन हड्डियों के प्रकम्पन के फलस्वरूप ध्वनि श्रवण-संवेदना के पर्याप्त उद्दीपक के रूप में परिणत हो जाती है। हड्डियों द्वारा यह प्रकम्पन भेस्टिबुलर एवं टिमपनिक नालियों (Vestibular and tympanic canal) आदि से होता हुआ कौक्लिया (Cochlea) के कोर्टी इंद्रिय (Organ of Corti) नामक भाग में पहुँचता है। इसके फलस्वरूप भेस्टिबुलर तथा टिमपैनिक नालियों में पाये जाने वाले तरल पदार्थ पेरिलिम्फ (Perilymph) में प्रकम्पन शुरू होता है जो कौक्लिया नली की दीवार पर धक्का पहुँचाता है। इस धक्के के फलस्वरूप कौक्लिया नली के अन्दर पाये जाने वाले तरल पदार्थ एण्डोलिम्फ (Endolymph) भी प्रकम्पित हो जाता है जिससे बेसिलर मेम्ब्रेन (Basilar membrane) पर स्थित सेवार के समान केशपेशियाँ (Hair cells) जिन्हें कोर्टी की केशपेशियाँ (Corti hair cell) की भी संज्ञा दी जाती है उत्तेजित होती हैं। इनके उत्तेजित होने से स्नायु प्रवाह श्रवण-स्नायु (Auditory nerve) द्वारा मस्तिष्क के श्रवण केन्द्र (Auditory centre) टम्पोरल लोब (Temporal Lobe) या शंख-खण्ड में पहुँचता है जिसके फल स्वरूप मनुष्य को सुनने की संवेदना होती है।

श्रवण-सम्बन्धी आवश्यक घटनाएँ और श्रवण सिद्धान्त
(Facts and theories of Audition)

सुनने की संवेदना की उत्पत्ति किसी चीज में कम्पन उत्पन्न करनेवाली वस्तु के सम्पर्क में आने से होती है। कम्पन-युक्त वस्तु जब एक वस्तु के सम्पर्क में आती है तो उस वस्तु में कम्पन शुरू हो जाती है जिसमें तरंगों (Waves) की उत्पत्ति होती है। इन तरंगों की दो विशेषताएँ होती हैं—

१ लहरों की ऊँचाई (Amplitude of Strength)

२ तीव्रता (Frequency)।

किसी कम्पन युक्त वस्तु के सम्पर्क में दूसरी वस्तु के आने से दो तरह की तरंगों (Sound waves) का निर्माण सम्भव है एक ऐसा समान गति में एक समय के अन्दर बना तरंगों (Regular waves) का निर्माण तथा दूसरा उन तरंगों का निर्माण जो एक समय के अन्दर बन रहा पर जिनमें तरंगों के बनने की गति विभिन्न हो। इस विभिन्नता के फलस्वरूप तरंगों की ऊँचाई में भी विभिन्नता आ जाती है।

अत एक तरग दूसरे से आकार मे भिन्न लगती है। तरग बनने की गति मे विभिन्नता होने के फलस्वरूप क्रमहीन या विषम तरग (Irregular waves) बनते है। इन



[चित्र १३]

विषम तरगो (Irregular waves) पर शोरगुल (Noise) का अनुभव आश्रित है। परन्तु कर्ण-मधुर आवाजो अर्थात् राग की अनुभूति के लिए आवश्यक है कि सम-तरगो (Regular waves) की उत्पत्ति कम्पनयुक्त वस्तु का सम्पर्क दूसरी वस्तु से होने मे हो।



[चित्र १३]

कोटि या पीच (Pitch) आवाज की सवेदना के लिए आवश्यक है कि तरगों की उत्पत्ति हो। जब ये वायुतरग (Air-waves) कान के ढोल पर नियमित रूप से एक के बाद दूसरी चोट पहुँचाती है तो ध्वनि (Tone) उत्पन्न होता है। कान के ढोल पर एक निश्चित समय (एक सेकेण्ड) के अन्दर बीस तरगो या आठ तरगो द्वारा चोट पहुँचायी जा सकती है। बीस एव आठ तरगो द्वारा चोट पहुँचाये जाने पर जो ध्वनि-उत्पन्न होती है, वह एक समान नही होती है, ध्वनि-सवेदनाओ मे पाये जाने वाले इस अन्तर को pitch की सज्ञा दी जाती है। अत एक सेकेण्ड के अन्दर कान के ढोल पर चोट पहुँचानेवाली तरगो की तीव्रता (Frequency) मे अन्तर होने के फलस्वरूप सवेदना मे उत्पन्न अन्तर को Pitch के अन्तर की सज्ञा दी जाती है। एक सेकेण्ड के अन्दर जितनी ही अधिक वायु-तरग नियमित रूप से कर्ण-ढोल को चोट पहुँचाती है उतनी ही अधिक ध्वनि भी ऊँची (Higher) होती है।

तीव्रता (Intensity or Loudness)—आवाज का दूसरा गुण उसकी तीव्रता (Loudness) है। कोई आवाज तो साफ-साफ, स्पष्ट होती है तो कोई अस्पष्ट जिसे सुनने मे भी कठिनाई होती है। आवाजो का स्पष्ट एव अस्पष्ट होना



[चित्र ४१ (क)]



चित्र ४१ (ख)]

तरगो की ऊँचाई (Amplitude) पर निर्भर है। दो तरगो के बीच जिस तरग की ऊँचाई अधिक होती है उससे उत्पन्न ध्वनि-सवेदना एक कम ऊँचे वायु-तरग से

उत्पन्न ध्वनि-संवेदना से अधिक स्पष्ट होती है। अतः तरंग के से उत्पन्न ध्वनि अथवा तरंग से से उत्पन्न ध्वनि संवेदना से अधिक स्पष्ट (Loud and audible) होगा।

नाद गुण या टीमबे (Timbre)— कुछ ध्वनि की संवेदनाएं तो ऐसी होती है जिनमें एक प्रधान ध्वनि (Fundamental tone) के अतिरिक्त अनेक अन्य गौण ध्वनियां (Over tones) भी होती हैं। एक प्रधान ध्वनि के साथ अनेक अन्य गौण ध्वनियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न ध्वनि को मिश्रित ध्वनि (Clang) का नाम दिया जाता है। हमलोग दूसरों को बोलते सुनते हैं। दूसरों के बोलने से जो ध्वनि संवेदना हमलोगों को होती है वह मिश्रित ध्वनि की ही संवेदना है। मिश्रित ध्वनि में एक प्रधान ध्वनि के अतिरिक्त जो ध्वनि पायी जाती है उसकी महत्ता कम नहीं। अतिरिक्त ध्वनि के रहने या न रहने के आधार पर ही हम दो व्यक्तियों की आवाज में अन्तर करते हैं। अन्य व्यक्तियों की आवाज को पहचान का एकमात्र आधार अतिरिक्त ध्वनि (Over tones) के उपस्थित या अभाव या बाहुल्यता ही होता है। एक अतिरिक्त ध्वनि (Over tones) के उपस्थित या अनुपस्थित या बाहुल्यता के कारण उत्पन्न ध्वनि के अन्तर को ('Timber') की संज्ञा दी जाती है।

बीट (Beat)—अगर दो ऐसे विभिन्न ध्वनि-तरंगों (Air waves) जिनकी तीव्रता (Frequency) बराबर हो एक ही समय में उत्पन्न किया जाय तो ऐसा उत्पन्न तरंगें आपस में मिल जाती हैं जिसमें संवेदना की तीव्रता (Loudness) बन जाता है और व्यक्ति एक ही ध्वनि की संवेदना प्राप्त करता है यद्यपि दो भिन्न ध्वनि तरंगों की उत्पत्ति होती है।



[चित्र १५]

यहाँ एक ही समय में उत्तेजित दो ध्वनि तरंग हैं
ency) भी बराबर है। व्यक्ति एक ध्वनि जिसकी
जाती है की संवेदना प्राप्त है।

मध्य ध्वनि (In[illegible] अगर दो ऐसी [illegible]
[illegible]त्पत्ति की जाय जिनमें [illegible] (Cycles) [illegible]
अवस्था में व्यक्ति को दा[illegible] प्राप्त
दो ध्वनि की संवेदना [illegible] नि का
[illegible] pitch होना [illegible] को मध्य
[illegible] जाती है। [illegible] उत्पत्ति

२६४ तरग एक सेकेण्ड मे बनता है। इन दो ध्वनियो के श्रवण करने मे व्यक्ति एक मध्य-ध्वनि की सवेदना प्राप्त करेंगे जिसमे $\left(\frac{२५६ + २६४}{२}\right)$ या २६० तरगें होगी।

अन्तर-ध्वनि (Difference tone)—अगर दो प्रधान ध्वनियो (Tones) के बीच पचास या पचास से अधिक तरंगो का अन्तर हो तो ऐसी अवस्था मे व्यक्ति इन दो प्रधान ध्वनियो के अतिरिक्त एक तीसरे ध्वनि की भी सवेदना प्राप्त करता है, जिसमे इन दो प्रधान ध्वनियो की त गो को एक से दूसरे को घटाकर जो तरग बचती है वह उसकी तरग होती है। उदाहरणार्थ, २५५ और ४०० प्रति सेकेण्ड बनने वाली तरगो के उत्पन्न करने के फलस्वरूप व्यक्ति २५५ dv की एक ध्वनि, ४०० dv की दूसरी ध्वनि तथा (४००—२५५) या १४५ dv की तीसरी ध्वनि की सवेदना प्राप्त करेगा। १४५ dv की तीसरी ध्वनि को अन्तर ध्वनि की सज्ञा दी जाती है।

योग-ध्वनि (Combination tone)—अगर दो ध्वनियो के बीच तरगो (Cycles) का अन्तर सौ या इससे अधिक होता जाय तो ऐसी अवस्था मे व्यक्ति दो प्रधान ध्वनियो के अतिरिक्त अन्तर ध्वनि एव एक और ध्वनि की सवेदना प्राप्त करता है जिसे योग-ध्वनि (Combination tone) की सज्ञा दी जाती है। योग ध्वनि मे दोनो प्रधान ध्वनियो मे जितनी तरगें (Cycles) होती हैं उनके योग से उत्पन्न तरग पायी जाती है। अत ८०० dv और १२०० dv वाली तरगो (Cycles) की प्रधान ध्वनियो के अतिरिक्त व्यक्ति इन ध्वनियो के उपस्थित होने पर (१२००—८००) या ४०० dv की अन्तर ध्वनि के साथ-साथ (८०० + १२००) या २००० dv की योग-ध्वनि की भी सवेदना प्राप्त करेगा।

मास्कींग (Masking)—अगर एक ही कान मे दो ऐसी भिन्न लहरो का प्रवेश हो जिनमे एक लहर की ऊँचाई दूसरी लहर से बहुत अधिक हो तो लहरो की ऊँचाई मे भिन्नता होने के फलस्वरूप ध्वनियो की तीव्रता मे भी अन्तर होगा। ऐसी दो भिन्न तीव्रता की ध्वनि-तरग जब एक ही कान से प्रवेश करती है तो ऐसी ध्वनि तरग जिसमे तरगो की सख्या अधिक होती है, वह अपने निकट की कम तरगो से बनायी ध्वनि की सवेदना व्यक्ति मे नही होने देती हैं। जैसे ८०० और ७० dv की दो ध्वनियो के उपस्थित होने पर ८०० dv की तरग ७० dv की तरग मे उत्पन्न होने वाली ध्वनि-सवेदना की उत्पत्ति व्यक्ति मे नही होने देती है। श्रवण-क्षेत्र मे उत्पन्न इस घटना को मास्कींग (Masking) की सज्ञा दी जाती है।

श्रवण-सिद्धान्त

(Theory of audition)

ध्वनि-सवेदनाओ की व्याख्या भिन्न-भिन्न व्यक्तियो ने भिन्न-भिन्न ढग से

की है। इन विभिन्न व्यक्तियों द्वारा की गयी व्याख्याओं में हेल्महोज (Helmholtz) रदरफोर्ड (Ruther Ford) एवं वैट (Watt) की व्याख्याओं का उल्लेख यहाँ किया जायगा।

(क) Thick place or Reasonance theory of Helmholtz—ध्वनि संवेदना के दो गुण हैं—(i) पीच (pitch) और (ii) Louddness

ध्वनि संवेदना में Pitch का अनुभव ध्वनि-लहरों की तरंगों (Cycles or frequenay) पर निर्भर करता है पर प्रश्न है ध्वनि लहरों की तरंगों पर पीच (Pitch) का अनुभव कैसे निर्भर करता है। हेल्महोज (Helmholtz) के अनुसार विभिन्न तरंग (Frequency) वाली ध्वनि-लहर कौक्लियर या ध्वनि-संवेदना से सम्बन्धित अन्य स्थानों को एक समान उत्तेजित नहीं करती पायी जाती हैं। एक प्रकार की तरंग (Frequency) वाली ध्वनि-लहर एक स्थान को अधिक उत्तेजित करती है तो दूसरे प्रकार की तरंग दूसरे स्थान को। इस प्रकार विभिन्न तरंग (Frequency) वाली ध्वनि लहरों के द्वारा उत्तेजित स्थानों में अन्तर होने के कारण उनसे प्राप्त संवेदनाओं में भी अन्तर पाया जाता है। उदाहरणार्थ कौक्लिया में स्थित बेसिलर मेम्ब्रेन (Basilar membrane) को ले लें। बेसिलर मेम्ब्रेन (Basilar membrane) के निचले भाग से जैसे जैसे हम ऊपर (Apex) की ओर जाते हैं वैसे-वैसे स्नायु-तन्तु लम्बे एवं ढीले होते जाते हैं। निचले भाग के तन्तु छोटे एवं कसे होते हैं।



[चित्र १६]

जिन ध्वनि लहरों की तरंग (Frequency) कम होती है वह बेसिलर मेम्ब्रेन (Basilar membrane) के ऊपरी भाग को अत्यधिक उत्तेजित करती पायी जाती है तथा अधिक तरंगों (Frequency) वाली ध्वनि लहर निचले भाग का ही अधिक उत्तेजित करती हैं। अतः ध्वनि लहरों में तरंगों (Frequency) की भिन्नता के कारण उत्पन्न अनुभव में अन्तर का कारण कौक्लिया में स्थित बेसिलर मेम्ब्रेन (Basilar membrane) के अत्यधिक उत्तेजित स्थान में अन्तर है।[1] भिन्न-भिन्न तरंग (Frequency) द्वारा भिन्न भिन्न स्थानों का विशेष रूप से उत्तेजित होने

[1] [illegible]

—Glabus and Davis

का परिचय कौक्लियर के अतिरिक्त (क) मेडुला (Medula), (ख) मिडब्रेन (Mid brain), (ग) थैलेमस (Thalamus) एवं (घ) मस्तिष्क मे भी मिलता है।

(ख) The Friquency theory—रदरफोर्ड (Ruther Ford) अपने सिद्धान्त मे दो ध्वनि-सवेदनाओ के बीच pitch के अन्तर का कारण तीव्रता (Frequency) मे अन्तर होने के फलस्वरूप श्रवण-स्नायु (Auditory nerve) द्वारा भेजे गये स्नायु प्रवाहो की गति (Rate of transmission of impulses) मे अन्तर बताया है। उनके अनुसार जिस ध्वनि-लहर मे अधिक तीव्रता (Frequency cycles) होगी वह श्रवण-स्नायु (Auditory nerve) मे अधिक मात्रा मे स्नायु-प्रवाह बनाकर भेज सकेगा। अत ऐसी ध्वनि-लहरो से उत्पन्न संवेदना उस सवेदना से, जिसमे तीव्रता (Frequency) होने के कारण स्नायु-प्रवाह कम मात्रा मे बनी हो, भिन्न होती है। सवेदना की इस भिन्नता को 'Pitch' के अनुभव की भिन्नता की सज्ञा दी जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तीव्रता (Frequency) का अन्तर श्रवण-स्नायु (Auditory nerves) मे स्नायु-प्रवाह बनने की मात्रा मे भी अन्तर लाता है जिनसे तीव्रता (Frequency) मे अन्तर होने के फलस्वरूप 'Pitch' के अनुभव मे भी अन्तर हो जाता है।

तीव्रता (Frequency) और स्नायु-प्रवाह के बनने की गति (Rate of discharge) दोनो ४००० dv तक सम्बन्धित पाये गये है। पर ४००० dv के ऊपर की तीव्रता (Frqueucy) स्नायु-प्रवाह के बनने की मात्रा मे किसी प्रवाह का अन्तर नही लाता है। अत Pitch के अनुभव का आधार स्नायु-प्रवाह के बनने की मात्रा नही हो सकता। इस आधार पर रदरफोर्ड के तीव्रता-सम्बन्धी सिद्धान्त को दोषपूर्ण प्रमाणित किया गया है।

३. स्वाद की संवेदना
(Gustatory sensation)

जीभ की ऊपरी सतह पर फैली हुई स्वाद-कलिकाओ (Taste buds) को उत्तेजित करने से ही स्वाद की सवेदना होती है। इन्हे उत्तेजित करने के लिए तरल पदार्थों (Liquid substances) का होना आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिको ने चार प्रकार के स्वादो की अनुभूति का पता लगाया है—मीठा, कडवा, खट्टा और नमकीन। जीभ के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न स्वादो को ग्रहण करते है। जीभ के अगले भाग के उत्तेजित होने से मीठे और नमकीन की सवेदना, जीभ की जड के उत्तेजित होने से कडवे की सवेदना तथा जीभ के दोनो किनारो के उत्तेजित होने से खट्टे की सवेदना का अनुभव होता है। उसका वर्णन यहाँ विस्तार से करना अभीष्ट नही है।

४. गन्ध या घ्राण सवेदना
(Olfactory Sensation)

गन्ध को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ नासिका-रन्ध्र (Nasal cavity) के

भाग में स्थित है जिन्हें घ्राण-कन्द (Olfactory bulbs) कहते हैं। गन्ध की संवेदना के लिए गैस (Gas) ही समुचित उत्तेजना है जो हवा द्वारा नासिका रन्ध्र से प्रवेश कर गन्ध की संवेदना उत्पन्न करती है। यहाँ इस पर विस्तार से प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है।

५ त्वक संवेदना
(Cutaneous Sensation)

व्यक्ति को निम्नलिखित तीन प्रकार की त्वक या त्वचा सम्बन्धी संवेदनाएँ होती हैं—(क) दबाव या स्पर्श (Pressure or Touch) संवेदना (ख) पीड़ा (Pain) की संवेदना तथा (ग) ताप (Temperature) की संवेदना।

ताप की संवेदना को दो भागों में विभक्त किया गया है। एक उष्णता (Warmth) की संवेदना और दूसरी शीत (Cold) की संवेदना।

(क) दबाव या स्पर्श की संवेदना मेसनर और पसिनी (Meissner and Pacini) नामक सूक्ष्म अंशों (Corpuscles) पर निर्भर त्वचा पर स्थित बालों (Hairs) की जड़ के साथ जो त्वचा के अन्दर होते हैं जुड़े हैं। अतः त्वचा या उस पर बालों के स्पर्श मात्र से ही दबाव या स्पर्श की संवेदना उत्पन्न होती है। दबाव के ग्राहक-कोषों मेसनर एवं पेसिनी का वितरण शरीर के सभी भागों में समान रूप से नहीं है। अंगुलियों की पोर (Finger tips) पर ये अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। अतः इस भाग में शरीर के अन्य भागों के अपेक्षाकृत दबाव की संवेदन शीलता अधिक होती है।

(ख) पीड़ा (Pain) के ग्राहक-कोषों को स्वतन्त्र या एपीडरमीस (Epidermis) कोष कहते हैं। इसे पीड़ा बिन्दु (pain spot) भी कहते हैं ये शरीर की त्वचा में अन्य त्वक बिन्दुओं जैसे—दबाव या स्पर्श एवं ताप बिन्दुओं (Cutaneous spot Pressure and Temperature spots) की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। पीड़ा बिन्दुओं को उत्तेजित करने से पीड़ा की संवेदना होती है। शरीर के विभिन्न अंगों में पीड़ा बिन्दुओं की मात्रा समान नहीं होती है उदाहरणार्थ आँख की कनीनिका (Cornea of the eye) में अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं। भीतर गाल में इनका बिल्कुल अभाव रहता है। फलतः पीड़ा की संवेदना सबसे अधिक आँखों में होती है, परन्तु गाल के भीतरी हिस्से में पीड़ा की संवेदना होती ही नहीं।

पीड़ा बिन्दुओं को उत्तेजित करने से पीड़ा की संवेदना होती है। पीड़ा बिन्दुओं को तीन प्रकार से उत्तेजित किया जाता है—(१) शरीर की त्वचा (Body skin) पर किसी नुकीली चीज का स्पर्श करने से (२) त्वचा को काटने तथा (३) अत्यधिक ठण्डे एवं गर्म पदार्थ का स्पर्श त्वचा से करने से।

पीड़ा की संवेदना अन्य त्वक-संवेदनाओं की अपेक्षा देर से उत्पन्न होती है और देर से समाप्त होती है।

(ग) ताप (Temperature) की संवेदना के अन्तर्गत उष्णता (Warmth) एवं शीत (Cold) की संवेदनाओं की चर्चा की जायगी। उष्णता की संवेदना का ग्राहक-कोश रफीनी को अंतिम शिखा (End organ of Ruffini) है। यह त्वचा के बहुत ही भीतरी सतह पर स्थित है। इसे उष्णता बिन्दु (Heat or Warmth spot) भी कहते हैं। गर्म पदार्थ का त्वचा के उष्णता-बिन्दु से स्पर्श होने पर रफनी की अन्तिम शिखा उत्तेजित हो जाती है, जिससे संवेदना होती है तथा त्वक्-बिन्दुओं की उष्णता की अपेक्षा उष्णता-बिन्दु की संख्या त्वचा में कम है। उष्णता की संवेदना भी पीड़ा की संवेदना की तरह धीरे-धीरे कम होती और देर से समाप्त होती है।

शीत की संवेदना का ग्राहक-कोश क्रौसे का बल्ब (The Bulb of Krause) है। इस ग्राहक-कोश को शीत-बिन्दु (Cold spot) भी कहते हैं। इनकी संख्या उष्णता की बिन्दुओं से अधिक है, दबाव-बिन्दु के करीब-करीब समान है तथा पीड़ा बिन्दु से कम है। किसी ठण्डे पदार्थ से त्वचा के सम्पर्क के फलस्वरूप शीत-बिन्दु उत्तेजित हो जाते है जिससे शीत की संवेदना होती है। शीत-बिन्दु शरीर में समान मात्रा में नहीं फैले हैं, कहीं इनकी मात्रा अधिक है तो कहीं कम। ये सबसे अधिक ललाट (Forehead) तथा आँखों की पलक के भीतरी भाग में पाये जाते हैं। शीत-संवेदना, दबाव की संवेदना की तरह उत्तेजनाओं के त्वचा के सम्पर्क में आने से तुरत उत्पन्न होती है और उत्तेजना के हट जाते ही प्रायः समाप्त हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि त्वक्-संवेदनाएँ विशिष्ट ग्राहक-कोशों के उत्तेजित होने पर निर्भर है। विशिष्ट ग्राहक-कोशों के उत्तेजित होने के फलस्वरूप स्नायु-प्रवाह उत्पन्न होकर ज्ञानवाही-स्नायु (Sensory nerve) मस्तिष्क के सोमेसथेटिक (Somesthetic) भाग में पहुँचते है। त्वक्-संवेदनाओं के मस्तिष्क का यह भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण है, चूँकि इसके अभाव में त्वक्-संवेदनाएँ प्रायः नहीं होती हैं।

६ अन्तरावयव-संवेदनाएँ
(Organic or Visceral Sensation)

अन्तरावयव-संवेदनाएँ, साँस लेने की इंद्रिय (Organ of respiration), हृदय (Heart) पाचन-क्रिया में संलग्न अवयवों में उत्पन्न होती हैं। इन संवेदनाओं को अन्तरावयव-संवेदना (Visceral Sensation) कहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनेक ग्राहक-कोश शरीर के भीतर पाये जाने वाले अवयवों (Internal organs) में भी पाये जाते हैं। उन अवयवों में पाये जाने वाले ग्राहक-कोशों के उत्तेजित होने के फलस्वरूप ज्ञानवाही स्नायु-प्रवाह निकल कर मस्तिष्क के विशेष भाग में जाता है। फलतः हमें अन्तरावयव-संवेदनाएँ होती हैं। इन ग्राहकेन्द्रियों को इन्ट्रोसेप्टर्स (Introceptors) कहते हैं।

७ गति संवेदना

(Kinesthetic Sensation)

कुछ संवेदनाएं मांसपेशियों जोड़ (Joint) टण्डन (Tendon) या मांसरज्जु इत्यादि के क्रियाशील होने पर होती हैं। ऐसी प्राप्त संवेदनाओं की उत्पत्ति मांस पेशियों एवं टण्डन्स (Tendons) या मांसरज्जु आदि में पाये जाने वाले ग्राहक-कोशों के उत्तेजित होने से होती है। इन ग्राहक-कोशों को प्रोप्रियोसेप्टर्स (Proprioceptors) भी कहते हैं। इन कोशों के उत्तेजित होने के फलस्वरूप ज्ञानवाही स्नायु प्रवाह मस्तिष्क के सोमेसथेटिक (Somesthetic) भाग या चक्र पेशी संवेदना-क्षेत्र में पहुंचता है। फलतः, व्यक्ति को गति संवेदना रहती है।

छठा अध्याय

प्रत्यक्षीकरण

(Perception)

प्रत्यक्षीकरण क्या है ? प्रत्यक्षीकरण तथा सवेदना मे अन्तर—प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप—प्रत्यक्षीकरण मे सलग्न क्रियाएँ—ग्राहक, प्रतीकात्मक, भावात्मक प्रक्रियाएँ तथा ललित अनुभव एव इकाईकरण की प्रक्रिया—पूर्व अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण मे स्थान – विपर्यय – विपर्यय और प्रत्यक्षीकरण मे अन्तर—विपर्यय और विभ्रम—विपर्यय के प्रकार—विपर्यय के कारण ।

प्रत्यक्षीकरण क्या है ?

(Definition of Perception)

प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक क्रिया है । यह प्राणी का किसी वर्तमान वस्तु या परिस्थितियो के प्रति एक ज्ञानात्मक प्रतिक्रिया है ।[1] इस क्रिया की उत्पत्ति के लिए उत्तेजना का होना आवश्यक है । उत्तेजना-विशेष ग्राहकेन्द्रिय के सम्पर्क मे आती है । फलस्वरूप इससे उत्पन्न स्नायु-प्रवाह मस्तिष्क मे पहुँचते है । स्नायु-प्रवाह उस वस्तु का सम्यक् ज्ञान कराता है । इस सम्यक् ज्ञान को प्रत्यक्षीकरण की सज्ञा दी जाती है । अर्थात् प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी मानसिक क्रिया है जो हमे वातावरण मे उपस्थित वस्तु तथा ज्ञानेन्द्रियो को उत्तेजित करने वाली परिस्थितियो का तत्कालीन ज्ञान (Immediate apprehension) प्राप्त कराता है ।[2]

ऊपर की परिभाषा से स्पष्ट है कि सवेदना प्रत्यक्षीकरण नही है । सवेदना मे प्रत्यक्षीकरण की तरह उत्तेजना का होना आवश्यक है । पर सवेदना एक सरल मानसिक प्रक्रिया मात्र है । उसमे उत्तेजना का आभासमात्र (Awareness) रहता है । पूर्ण ज्ञान का यहाँ सर्वथा अभाव होता है । इस पर प्रकाश डालते हुए मनो-

1 "Perception is the cognitive response to a present stimulus situation"

2 "Perception is the immediate apprehension of an object or situation affecting any or all of the sense-organs by way of sensation It is the most elementary form of cognition and indeed of experience"

वैज्ञानिकों ने संवेदना को प्रथम सरल ज्ञानात्मक प्रतिक्रिया (First cognitive response) की संज्ञा दी है। प्रत्यक्षीकरण को कुछ मनोवैज्ञानिकों ने दूसरे क्रम का सहकारी (Secondary) अर्थात् संवेदना के बाद होने वाली ज्ञानात्मक प्रक्रिया कहा है। यह प्रक्रिया प्राथमिक प्रक्रिया से भिन्न है। प्रत्यक्षीकरण अर्थपूर्ण होता है। परन्तु संवेदना अर्थहीन है। संवेदना मे अर्थ का अभाव रहता है तथा प्रत्यक्षीकरण में किसी उत्तेजना विशेष का पूर्ण ज्ञान मिलता है। प्रत्यक्षीकरण को इस आधार पर समझते हुए कुछ मनोवैज्ञानिको ने कहा है कि संवेदना और अर्थ के योग से उत्पन्न ज्ञान को ही प्रत्यक्षीकरण की संज्ञा दी जाती है। पर यह विचार सम्यक् नहीं है।

यदि संवेदना और अर्थ के योग को प्रत्यक्षीकरण माना जाय तो संवेदना को एक प्रथम सरल ज्ञानात्मक व्यवहार या अनुभव कहना भूल है। जब संवेदना स्वयं एक ज्ञानात्मक व्यवहार है तो इसके प्रत्यक्षीकरण मे परिणत होने के लिए अर्थ का योग कोई महत्व नहीं रखता क्योंकि प्रत्येक ज्ञानात्मक व्यवहार अर्थ-पूर्ण होता है। इसी आधार पर आधुनिक मनोवैज्ञानिको का विचार है कि विशुद्ध संवेदना एक मानसिक प्रक्रिया (Mental process) मात्र है जो प्रत्यक्षीकरण के पहले आता है तथा इस प्रक्रिया में सदा अर्थ का अभाव रहता है। संवेदना को प्रथम सरल ज्ञानात्मक अनुभव कहना भूल है। परन्तु वास्तविक जीवन में वयस्को मे, कभी भी विशुद्ध संवेदना नामक प्रक्रिया नहीं पायी जाती है। अस्तु, विशुद्ध संवेदना को आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने 'Psychological Myth'—अर्थात् एक मिथ्या या भ्रम माना है।

संवेदना को एक अति सरल मानसिक प्रक्रिया (Simplest mental process) समझना ही यथोचित होगा। परन्तु प्रत्यक्षीकरण एक जटिल (Complex) मानसिक प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण की मानसिक प्रक्रिया में निहित जटिलता को हम एक छोटे से उदाहरण द्वारा आसानीसे स्पष्ट कर सकते हैं। मान लीजिए कि मैं अपने घर में अपने भाई से कुछ बातें कर रहा हूं। इसी बीच हमारा कुत्ता दरवाजे पर भूंक उठता है, जिससे हमें इस बात का प्रत्यक्षीकरण होता है कि दरवाजे पर अवश्य ही कोई नवागन्तुक आया है। कुत्ते के भूँकने और मुझे इस बात का प्रत्यक्षीकरण होने के बीच प्रायः कुछ भी समय नहीं लगता। परन्तु यदि प्रत्यक्षीकरण की इस प्रक्रिया की व्याख्या की जाय तो इस मानसिक प्रक्रिया की जटिलता स्पष्ट हो जायगी। पहली बात तो यह है कि हम इस कुत्ते की आवाज की तुलना अपने मानसिक धरातल पर, बिल्ली, गदहे, मनुष्य इत्यादि की आवाजो से करते हैं। अन्य जानवरों की आवाजों से की गयी तुलना के आधार पर ही हमें इस बात का ज्ञान होता है कि यह कुत्ता बोल रहा है, कोई बिल्ली नहीं बोल रही है न गदहा ही रेंक रहा है। इसी प्रकार अन्य कुत्तों की आवाज से तुलना करने पर मालूम होता है कि यह हमारा ही कुत्ता है, पड़ोसी का नहीं।

भूतकाल में हमने अपने कुत्ते को घर के पीछे, बगल एवं सामने से बोलते हुए सुना है। अब इस बात का ज्ञान कि कुत्ता दरवाजे पर बोल रहा है, घर के पीछे से नहीं हमें स्थान निरूपण (Localization) के बाद ही पता चलता है।

इसी प्रकार कुत्ता भूख की अवस्था, भय की अवस्था, क्रोध की अवस्था इत्यादि मे भी बोलते सुना गया है। परन्तु भूतकाल के अनुभवो के आधार पर ही समझ पाते है कि बाहर किसी के आने से वह बोल रहा है, भय, क्रोध तथा भूख से नही।

अस्तु, हम देखते हैं कि बाहर कोई मिलने आया है, इस बात के प्रत्यक्षीकरण मे हमारे मस्तिष्क मे तुलना, विरोध, स्थान-निरूपण तथा भूतकाल मे प्राप्त अनुभवो की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। बिना इसकी सहायता के किसी वस्तु या स्थिति का पूर्ण परिज्ञान अथवा प्रत्यक्षीकरण सम्भव नही है। परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिको ने प्रत्यक्षीकरण को एक जटिल मानसिक क्रिया की संज्ञा दी है।

संवेदना और प्रत्यक्षीकरण में अन्तर
(Distinction between Sensation and Perception)

आजकल के मनोवैज्ञानिको के अनुसार संवेदना नाम की कोई भी मानसिक प्रक्रिया प्राणी मे नही होती है। उनके विचार से संवेदना एक मिथ्या या गप्प (Psychological Myth) है। मनुष्यो मे प्रथम एव साधारण (Elementary and Simple) होने वाली मानसिक प्रक्रिया प्रत्यक्षीकरण ही है। यह विचार यथोचित तो है पर मानसिक प्रक्रियाओ को समझने के लिए मनोवैज्ञानिको ने संवेदना एव प्रत्यक्षीकरण को भिन्न-प्रक्रियाओ का रूप दिया है।

इनलोगो के मतानुसार संवेदना और प्रत्यक्षीकरण मे निम्नलिखित अन्तर हैं—

१ संवेदना एक सरल मानसिक प्रक्रिया है, परन्तु प्रत्यक्षीकरण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। तात्पर्य यह है कि संवेदना द्वारा किसी उत्तेजना की विशेषता-विशेष की चेतनामात्र होती है, लेकिन प्रत्यक्षीकरण मे इसका ज्ञान होता है जिसमे अनेक मानसिक प्रक्रियाऐं शामिल है। इसकी विशद् व्याख्या प्रत्यक्षीकरण की परिभाषा का विश्लेषण करते समय की गयी है।

२ संवेदना को एक निरर्थक और प्रत्यक्षीकरण को एक सार्थक अनुभूति कह सकते है। इसका अर्थ यह हुआ कि संवेदना मे उत्तेजना की विशेषता की चेतनामात्र होती हैं, किन्तु प्रत्यक्षीकरण मे उस विशेषता के अर्थ से भी भिज्ञ हो जाते है। इसी दृष्टि से मनोवैज्ञानिको ने संवेदना को निरर्थक तथा प्रत्यक्षीकरण को सार्थक अनुभूति की संज्ञा दी है।

३ प्रौढ व्यक्तियो मे विशुद्ध संवेदना (Pure sensation) असम्भव है। कारण, प्रौढ मनुष्यो मे संवेदना के साथ-साथ वस्तु के अर्थ का भी ज्ञान होता जाता है। अत मनोवैज्ञानिको ने संवेदना को एक अमूर्त्त (Abstract) तथा प्रत्यक्षीकरण को मूर्त्त (Concrete) अनुभव कहा है। व्यावहारिक जीवन मे भी संवेदना की अनुभूति नही होती, किन्तु प्रत्यक्षीकरण का अनुभव तो सदा होता है।

४ प्रत्यक्षीकरण मे ग्राहक प्रक्रियाओं (Receptor processes) के अतिरिक्त प्रतीकात्मक प्रक्रियाएँ (Symbolic processes) भी रहती है। परन्तु संवेदना में इस प्रतीकात्मक प्रक्रियाओं (Symbolic processes) का सदा अभाव रहता है। अत संवदना को उपस्थितिकारी (Presentative) और प्रत्यक्षीकरण को उपस्थिति कारी प्रतिरूपक (Presentative Representative) प्रक्रिया कहा गया है।

प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप
(Nature of Perception)

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण म तात्कालिकता (Presentness) का विशेष गुण होता ह अर्थात वातावरण म उपस्थित वस्तु का ही प्रत्यक्षीकरण सम्भव है।[१] परन्तु वातावरण मे उपस्थित प्रत्येक वस्तु का प्रत्यक्षीकरण मनुष्य नही करता। यह ठीक है कि मनुष्यों पर वातावरण के प्रभाव लगातार पडते रहते हैं। पर वातावरण म उपस्थित सभी चीजों का प्रत्यक्षीकरण मनुष्य नही करता। गर्मी के दिनों मे पखे चलते रहते है फिर भी व चल रहे है, इसका ज्ञान नही रहता। पखा का चलना ज्योंही बन्द हो जाता है त्योंही बन्द हुए पखे का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। इसी प्रकार परिवर्त्तन (Change) प्राय प्रत्यक्षीकरण का आधार है। वातावरण में चलते हुए पखे का रुक जाना परिवर्त्तन है अत इस ओर ध्यान चला जाता है।[२]

वातावरण म उपस्थित प्रत्येक वस्तु का प्रत्यक्षीकरण मनुष्य द्वारा होना सम्भव ही नही मनुष्य केवल उन्ही वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करता है जो उसके अवधान परिधि (Span of attention) मे आते है। इस प्रकार वस्तुओं का जो अनुभव मनुष्य को होता रहता है उसे दो विभागों म रखा जा सकता है। एक मनुष्य को वह अनुभव जहाँ मनुष्य वस्तुओ को प्रत्यक्ष रूप से देखता रहता है। ऐसी वस्तुए मनुष्य के अवधान केन्द्र (Focus of Attention) मे रहती है। दूसरा उन वस्तुओं का अनुभव जो अवधान-केन्द्र में नही होतीं वरन् व अवधान परिधि से बाहर (Margin of Attention) होती है। प्रत्यक्षीकरण-अवधान केन्द्र मे रहने वाली वस्तुओं का ही होता है। अब प्रश्न यह है कि कौन-सी वस्तु अवधान-केन्द्र मे आती है। किसी वस्तु का अवधान-केन्द्र मे आना उत्तेजना विशेष एवं प्राणी पर निर्भर करता है। उत्तेजना-विषय के गुण भी उत्तेजना को अवधान केन्द्र में पहुँचाने मे मदद देते हैं। इन गुणों मे प्रमुख गुण जिसके बल पर उत्तेजना-अवधान-केन्द्र में पहुँच पाती है, वे निम्नलिखित हैं—

१ Presentness written across all perception —Bentley

२ Change is the basis of perception In other words perception is always a response to some change or difference in the environment

(क) उत्तेजना की तीव्रता (Intensity of the stimulus),

(ख) उत्तेजना की नवीनता (Novelty of the stimulus),

(ग) उत्तेजना की पुनरावृत्ति (Repetition of the stimulus)।

इन गुणो का वर्णन ध्यान (Attention) की चर्चा करते समय किया जायगा।

अतः प्राण के अन्दर वर्तमान आन्तरिक स्थितियो की ही चर्चा यहाँ अभीष्ट है। मनुष्य के अन्दर पाये जाने वाले गुणो मे अभिप्राय (Intention) एव प्रेरणा (Motivation) का प्रमुख स्थान है। ये गुण मनुष्यो का ध्यान किसी खास वस्तुविशेष की ओर ले जाते है, जिसका प्रत्यक्षीकरण मनुष्य अपने ढग से करता है। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि मनुष्य वातावरण में उपस्थित उत्तेजनाओ मे से किसी एक का ही प्रत्यक्षीकरण क्यो करता है? जैसा कि ऊपर कहा गया है मनुष्य की इच्छा, विचार आदि वस्तु के चुनाव (Selection) मे एक सहयोग देते है। पोस्टमैन तथा ब्रुनर (Postman and Bruner) ने एक प्रयोग किया जिसमे उन्होने स्पष्टतया दिखाया कि प्रत्यक्षीकरण मनुष्य का शारीरिक एव मानसिक स्थितियो पर निर्भर करता है। इन स्थितियो का ही यह परिणाम है कि प्रत्यक्षीकरण एक चयनात्मक (Selective) मानसिक प्रक्रिया है। इस चयनात्मकता (Selectivity) का आधार मनुष्य की आवश्यकता होती है। प्रयोग विद्यार्थियो पर किया गया था। दो वर्ग के लड़के थे। एक, जो भूखे थे और दूसरे जो भूखे नही थे। इन दोनो तरह के विद्यार्थियो को एक पारदर्शी पर्दे की दूसरी ओर रखी गयी चीजो के क्षणमात्र के लिए देख कर उनका वर्णन करने को कहा गया। पर्दे की दूसरी ओर कोई खाद्य-पदार्थ नही था, परन्तु कुछ अन्य चीजें (Ambiguous figure) रखी हुई थी। फिर भी वे विद्यार्थी जो भूखे थे उनलोगो को खाद्य-सामग्री का प्रत्यक्षीकरण हुआ। अर्थात्, उन्होने अन्य चीजो को खाद्य-सामग्री के रूप मे देखा। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य वातावरण से अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुओ की खोज उसका प्रत्यक्षीकरण करता है। अत प्रत्यक्षीकरण की क्रिया को मनुष्यो की आवश्यकताओ का व्यक्त रूप कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। मनुष्य की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती है। इन आवश्यकताओ मे भिन्नता होने के कारण एक ही वस्तु को दो मनुष्यो द्वारा देखने पर उनके प्रत्यक्षीकरण मे भिन्नता आ जाती है।

मनुष्य अपनी मनोवृत्ति, प्रेरणा, अभिप्राय, रुचि इत्यादि के अनुसार ही किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करता है। यही कारण है कि वस्तु, जो किसी को अधिक प्रिय लगती है, वही वस्तु दूसरे को अत्यन्त अप्रिय लगती है। अस्तु हम कह सकते है कि प्रत्यक्षीकरण की क्रिया वैयक्तिक एवं चयनात्मक होती है।[१]

प्रत्यक्षीकरण भिन्न-भिन्न सवेदनाओ का समूहमात्र नही है अर्थात् किसी वस्तु के भिन्न-भिन्न अवयवो को देखने से उत्पन्न सवेदनाओ के योग से प्रत्यक्षीकरण नही होता वरन् उस वस्तु का समग्र रूप (as a whole) से ज्ञान ही प्रत्यक्षीकरण

१ "Perception is selective and individualistic"

है। गुलाब के फूल को हम देखते है तो उसके देखने के समय उसकी पत्तियों की अलग-अलग संवेदना, रगो की एक-एक अलग संवेदना गन्ध एव स्पर्श की कोई अलग संवदना नही होती। उस गुलाब के फूल का समग्र के रूप में (as a whole) प्रत्यक्षीकरण संगठित (Organised) होता है। इस सगठन पर ही अर्थ (Meaning) निर्भर करता है।

प्रत्यक्षीकरण मे सलग्न क्रियाएँ
(Processes Involved in Perception)

किसी वस्तु को निम्नलिखित क्रियाएं सहयोग देती हैं—

१ ग्राहक प्रक्रियाएं (Receptor processes) २ प्रतिकात्मक प्रक्रियाएँ (Symbolic processes) ३ भावात्मक प्रक्रियाएं (Affective processes) और ललित अनुभव (Aesthetic experience) तथा ४ इकाईकरण की प्रक्रियाएं (Process of unification)।

१ ग्राहक प्रक्रियाएँ (Receptor processes)— जब कोई उत्तेजना ग्राहकेन्द्रियों के सम्पर्क में आती है तो स्नायु प्रवाह तैयार होकर ज्ञानवाही तन्तु (sensory nerve) द्वारा सुषुम्ना (Spinal cord) एवं मस्तिष्क (Brain) तक पहुँचता है। यहाँ साहचर्य स्नायु-कोष (Association Neurons) उन प्रवाहों को गतिवाही-तन्तुओं (Motor Nerves) मे छोड़ देता है जिससे ये प्रवाह मांसपेशियों तक पहुँचते हैं। इसके फलस्वरूप एक क्रिया उत्पन्न होती है जिससे प्रत्यक्षीकरण सम्भव होता है। ग्राहकेन्द्रियो से आरम्भ होकर मासपेशियों या पिंडों (Effectors) म विलीन होने वाली क्रिया को ग्राहक क्रिया (Receptor process) कहते हैं। इस प्रकार की क्रियाएं देखने, सुनने आदि सभी अनुभवों मे होती हैं।

२ प्रतीकात्मक क्रियाएं (Symbolic processes)— वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण मे जो अन्य क्रियाएं होती हैं उनमें प्रतीकात्मक प्रक्रियाओं (Symbolic processes) का भी प्रमुख स्थान है। मनुष्य को कभी-कभी एक वस्तु देखकर उससे सम्बन्धित वस्तु का स्मरण हो जाता है। मनुष्य में होने वाली ऐसी क्रियाओं को 'प्रतीकात्मक प्रक्रिया' कहते हैं जैसे—नारगी का चित्र देखकर उसकी गन्ध, स्वाद आदि की याद आना, जिसे पहले खाया हो। विवाह मे मिली अँगूठी विवाह की याद दिलाती है। फिर परीक्षा में प्रश्नों को देखकर याद किये हुए उत्तरों की याद को भी प्रतीकात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

३ भावात्मक प्रक्रियाएं (Affective processes) किसी वस्तु को देखने और सुनने के पश्चात प्राणी मे उस वस्तु के प्रति सुखद या दुखद भाव का उठना भी स्वाभाविक ही है। वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण के पश्चात् मनुष्य उस वस्तु के प्रत्यक्षीकरण से सतुष्टि (Pleasantness) असंतुष्टि (Unpleasantness) या तटस्थता (Indifference) की प्रक्रियाओं का प्रादुर्भाव अपने में पाता है। मनुष्य में होने वाली इस प्रतिक्रिया को भावात्मक प्रक्रिया की सज्ञा दी जाती है। उदाहर-

णार्य, घर मे एक प्रिय मित्र के आने से उन्हे देखकर खुशी होती है, दुश्मन को देखकार दु ख एव जिसे व्यक्ति रोज दिन देखता रहता है उसे देखकर न तो हर्ष ही होता है और न विषाद ही, वरन् मनुस्य तटस्थ-सा (Indifferent) रहता है। कभी-कभी वस्तुओ के प्रत्यक्षीकरण के पश्चात् उस वस्तु का मूल्याकन भी किया जाता है। मनुष्य प्रत्यक्षीकरण हुई वस्तु को तौलता है अर्थात् वह देखता है कि वस्तु कैसी है, सुन्दर (Beautiful) है या कुरूप (Ugly) या इन दोनो मे से कुछ भी नही है। मनुष्य का यह अनुभव भावात्मक प्रक्रियाओ एव पूर्व अनुभूतियो पर निर्भर है। जिस वस्तु के प्रत्यक्षीकरण से हर्ष होता है वह वस्तु दूसरे की नजरो मे कितनी भी कुरूप क्यो न हो पर देखने वाले व्यक्ति की नजरो मे सुन्दर ही निकलेगी। उस वस्तु को सुन्दर देखने मे उसकी पूर्व-अनुभूतियो का भी सहयोग रहता है। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। एक प्रेमिका जब अपने प्रेमी को देखती है तो वह सुन्दर ही लगता है। दूसरे के देखने मे वह कितना भी कुरूप क्यो न हो, पर, प्रेमिका की नजर मे तो वह सुन्दर ही मालूम होता है। इस प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओ को 'ललित अनुभव' (Aesthetic experience) की संज्ञा दी जाती है।

४. **इकाईकरण की प्रक्रिया (Process of unification)**—किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति एक इकाई तथा समष्टि के रूप मे करता है। गुलाब के फूल का प्रत्यक्षीकरण करते समय हम उसकी पखुडियो को अलग-अलग न देखकर एक इकाई के रूप मे देखते है और तब हम कहते हैं कि यह गुलाब का फूल है। इसी प्रकार एक पेड की भिन्न-भिन्न डालियो को अलग-अलग न देखकर हम एक सम्पूर्ण पेड को इकाई के रूप मे देखते है।

सुगन्ध-युक्त गुलाब के फूल के प्रत्यक्षीकरण मे सलग्न क्रियाएँ

अब प्रश्न है कि प्रत्यक्षीकरण के समय कौन-कौन-सी प्रक्रियाएँ शामिल रहती है। उदाहरण के लिए, सुगन्धयुक्त गुलाब के फूल के प्रत्यक्षीकरण की क्रिया को ले लें। मनुष्य गुलाब के फूल को देखता है। आँख इस देखने की क्रिया को करती है। आँख यहाँ ग्राह्यकेन्द्रिय है जहाँ से स्नायु-प्रवाह बनकर मस्तिष्क तक जाता है, जिससे दृष्टिसवेदना (Visual sensation) होता है। इसके अतिरिक्त, गध-सवेदना (Olfactory sensation) भी होती है। इस कार्य मे नाक ग्राह्यकेन्द्रिय है साथ-ही-साथ उसे छूने के कारण स्पर्श-सवेदना भी प्राप्त होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तीन ग्राह्यकेन्द्रियाँ कार्य सम्पन्न करने मे लगी है।

इस गुलाब के फूल को देखकर अगर मैसूर (Mysore) स्थित वृन्दावन की फुलवारी के गुलाब के फूलो का स्मरण आता है तो कहना यथोचित होगा कि यहाँ प्रतीकात्मक प्रतिक्रियाएँ (Symbolic processes) भी शामिल है। साथ-ही-साथ फूल देखने से एक भाव भी उत्पन्न होगा। वह भाव है सुखद भाव, दुःखद भाव एवं तटस्थता का (Pleasantness, Unpleasantness and Indifference)। फूल देखकर व्यक्ति मे सुखद भाव उत्पन्न हो सकता है। पर फूल देखकर दु ख का अनुभव करना कोई आश्चर्य नही। जिनकी प्रेमिका ने विदाई के समय फूल भेंट किया

उनके लिए फूल विषाद का प्रतीक हो जायगा। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जिन्हें फूल देखकर किसी भी भाव का अनुभव नहीं होता है। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण में भावात्मक क्रियाएं (Affective processes) भी शामिल हैं।

अन्त में कहना आवश्यक है कि वस्तुओं को प्रत्यक्षीकरण से उसे सुन्दर, कुरूप या कुछ भी नहीं आंकने की प्रवृत्ति मनुष्य में होती है। गुलाब का फूल सुन्दर लग सकता है। मनुष्य का यह अनुभव ललित अनुभव (Aesthetic experience)} के अन्तर्गत आता है।

ऊपर यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रत्यक्षीकरण समष्टि रूप मे होता है। अब गुलाब के फूल को व्यक्ति इकाई के रूप में देखता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण मे ग्राहक प्रतिक्रियाएं (Receptor processes) प्रतीकात्मक-प्रक्रियाएं (Symbolic processes) भावात्मक प्रक्रियाएं (Affective processes) तथा ललित अनुभव (Aesthetic experience) और इकाईकरण की प्रक्रिया (Processes of unification) शामिल हैं।

पूर्व अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण में स्थान
(Role of Past Experience in perception)

पूर्वअनुभूति का प्रत्यक्षीकरण मे क्या स्थान है कहना विवादास्पद है। फिर भी मनोवैज्ञानिकों के विचारों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक विचारक वे हैं जिनके अनुसार पूर्व अनुभूति मनुष्यों में एक मानसिक अवस्था (Set) को उत्पन्न (Induce) करता है। इसके फलस्वरूप मनुष्य पूर्व की देखी हुई वस्तुओं को पहले की ही तरह देखता है। प्रत्यक्षीकरण से उत्पन्न भावात्मक व्यवहार एवं अनुभव का आधार पूर्व अनुभूति होती है। दूसरी श्रेणी के मनोवैज्ञानिकों का तो विचार है कि मनुष्य पूर्व-अनुभूति के अभाव में किसी भी चीज का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर सकता है। इस विचार की पुष्टि के लिए प्रयोग भी किये गये हैं। थाउलस (Thouless)[1] महोदय ने एक प्रयोग किया है जिसमे उन्होंने एक व्यक्ति को कुर्सी दिखलायी। कुर्सी जिस व्यक्ति को दिखायी गयी उस व्यक्ति की आंखों में अक्षिपट (Retina) पर विशेष प्रबन्ध द्वारा उस कुर्सी का प्रतिबिम्ब (Image) इस प्रकार गिराया गया कि यह प्रतिबिम्ब कुर्सी उलटकर देखने पर होने वाली प्रतिबिम्ब की तरह था। ऐसी अवस्था में व्यक्ति को कुर्सी उलटी हुई नजर आना आवश्यक था, पर ऐसा न हुआ। कुर्सी उस व्यक्ति को सीधी ही रखी जान पड़ती थी। कुर्सी को सीधा रखा देखने का एकमात्र कारण मनुष्य की पूर्व अनुभूति थी जिसने मनुष्य में एक मानसिक स्थिति (Set) को उत्पन्न (Induce) कर पूर्व की देखी हुई वस्तु को पहले की ही तरह देखने की प्रवृत्ति (Tendency) को सफल किया। अर्थात् उसने कभी भी उलटी हुई कुर्सी का उस अवस्था में रखे जाने का अनुभव नहीं किया था, वरन् पूर्व का अनुभव कुर्सी को सीधा ही रखने का था। फलत उसने कुर्सी को सीधा

1 Thouless Phenomenal Regression To Real Object

ही रखा देखा। इस प्रयोग से स्पष्ट है कि पूर्व-अनुभूति के अभाव मे प्रत्यक्षीकरण सम्भव नही है । एक दूसरा प्रयोग एक जन्मान्ध व्यक्ति पर भी किया गया था। जन्मान्ध व्यक्ति की आंखो को ऑपरेशन से ठीक करने पर जब उनकी आंखो मे रोशनी आ गयी तो उसे त्रिभुज (△) और वृत्त (O) के आकार की दो भिन्न आकृतियां दिखलायी गयी। उस व्यक्ति ने कभी पहले इन आकृतियो को नही देखा था। फलत पूर्व अनुभूति का अभाव था। परिणामस्वरूप यह पाया गया कि वह व्यक्ति इन दोनो चीजो के आपसी अन्तर को पहचानने मे असमर्थ रहा। उसकी दृष्टि मे वृत्त एव त्रिभुज मे कोई अन्तर नही था। इस प्रयोग से भी पूर्व-अनुभूति की महत्ता स्पष्ट हो जाती है ।

दूसरे वर्ग के विचारक जेस्टाल्टवादी (Gestaltists) है ।[१] इनके अनुसार प्रत्येक प्रत्यक्षीकरण मे आकार (Figure) और पृष्ठभूमि (background) का सम्बन्ध रहता है। अर्थात्, मनुष्य के अनुभवो मे भी पृष्ठभूमि और आकार का सम्बन्ध देखने को मिलता है। मनुष्य जब किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करता है तो उस समय एक वस्तु अत्यन्त सामने साफ एक किसी पृष्ठभूमि पर दीखती है। कुछ समय बाद जब मनुष्य किसी और चीज का प्रत्यक्षीकरण करता है तो उस समय का उसका अनुभव बिल्कुल नवीन, तुरत पहले होने वाले अनुभव से भिन्न नही होता, वरन् पहले के अनुभव से कुछ परिवर्तित होता है। अर्थात् वर्त्तमान मे होने वाले अनुभव थोडी देर पहले अनुभवो से सम्बन्धित रहते है। इस सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए जेस्टाल्ट-वादियो[२] ने स्पष्ट बतलाया है कि पहले के अनुभव अभी प्राप्त अनुभवो की पृष्ठभूमि-

---

१ जेस्टाल्टिज्म या जेस्टाल्टवाद (Gestaltism) अथवा 'जेस्टाल्ट स्कूल' (Gestalt-school)—सन् १६१० ई० मे जर्मनी (Germany) मे स्ट्रक्चरलिज्म (Structuralism) के विरोध मे (as a protest) इस 'वाद' (ism) का जन्म हुआ। इस 'वाद' को मानने वालो मे 'वार्टहैमर' (Wertheimer), कोहलर (Kohler) और 'कोफ्फका' (Koffka) इत्यादि मनोवैज्ञानिको के नाम प्रमुख है जिन्हें जेस्टाल्टवादी (Gestaltist) मनोवैज्ञानिकों के नाम से भी पुकारा जाता है। इनके अनुसार मानसिक प्रक्रियाएँ (Mental processes) का मानसिक तत्वो (Mental elements) मे विश्लेषण (Analysis) कर, उनका अध्ययन करना जैसा कि स्ट्रक्चरलिस्ट (Structuralists) लोगो का विचार है, बिल्कुल गलत है। इनके मतानुसार मानसिक प्रक्रियाएँ मानसिक तत्वों (Mental elements) के योग (Sum or addition) से नहीं बनती है। ये मानसिक प्रक्रियाओ का अध्ययन समग्र रूप से (As a whole) करते है।

२"The experience of any one moment is a whole in which certain elements, it were, stand out The experience of the next moment does not emerge as an entirely new experience, but comes as a change in that of the previous moment Conequently, every object or situation apprehended is apprehended in relation to the whole experience of the moment, and to the experience of immediately preceding moments, Thus, from another point of view we see that there is always this relation of figure' and 'ground' in perceptual experience and that is a necessary characteristic of perceptuaak experience —Collins, M & Drever, J

(Background) के रूप में आते हैं। जेस्टाल्टवादियों के इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि पूर्व अनुभूति प्रत्यक्षीकरण मे पृष्ठभूमि का काम करती है।

जेस्टाल्टवादियों ने भी अपने विचार की पुष्टि के लिए अनेक प्रयोग किए हैं। इन प्रयोगो का उल्लेख यहाँ अभीष्ट नही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पूर्व-अनुभूति का स्थान प्रत्यक्षीकरण मे एक पृष्ठभूमि के रूप मे या मनुष्यो में विशेष मानसिक स्थिति (Set) उत्पन्न (Induce) करने के रूप में अवश्य रहता है। निश्चयात्मक रूप से तो यह कहा जा सकता है कि पूर्व अनुभूति का महत्व प्रत्यक्षीकरण में है।

* प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी जेस्टाल्टवादी विचार

(The Gestalt Approach of Perception)

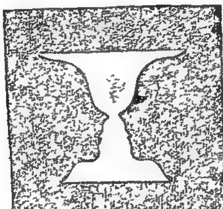
वातावरण मे उपस्थित उत्तेजनाओं का प्रत्यक्षीकरण जेस्टाल्टवादियों के अनुसार मस्तिष्क द्वारा वातावरण को सगठित करने पर आश्रित है। यह सत्य है कि उत्तेजनाओ के उपस्थित होने पर सवेदनाए प्राप्त होती है। परन्तु व्यक्ति इन संवेदनाओ के आधार मात्र पर प्रत्यक्षीकरण नही करता है। वह मस्तिष्क में स्थित सगठन करने की क्रिया के सहारे वातावरण को देखता है जिससे उसके सामने उपस्थित होने वाली उत्तेजनाएँ अखण्ड एवं सगठित होती हैं। जेस्टाल्टवादियों के इस विचार से स्पष्ट है कि व्यक्ति जो कुछ भी देखता है वह अपने पूर्व अनुभवो के आधार पर नही देखता वरन् उसके अन्दर सगठन की जो क्रिया है वह प्रत्येक प्रत्यक्षीकरण को संभव बनाती है। अत प्रत्यक्षीकरण एक जन्मजात क्रिया है। इस क्रिया का प्रमुख उद्देश्य सगठन है। इस सगठन पर ही वस्तु का ज्ञान आश्रित है।

अब प्रश्न है कि मस्तिष्क को प्राप्त सगठन की क्षमता का ज्ञान हमे कैसे होता है ? कुछ ऐसे प्रयोग किये गये हैं जिनसे मस्तिष्क की यह क्षमता प्रकाशित होती है। इन प्रयोगों में, गोल्डस्टाइल (Goldstile) का प्रयोग उल्लेखनीय है। इन्होंने एक सैनिक पर प्रयोग किया। सैनिक को मस्तिष्क मे गोली लगने से काफी चोट आयी थी। इस चोट के उपरान्त उसे JOHN शब्द दिखलाया गया। इसे दिखलाये जाने पर वह प्रत्येक अक्षर को अलग-अलग पढ सकता था परन्तु इन्हे एकत्र कर समग्र रूप से देखने की क्षमता नही रह गयी थी। इस प्रयोग से स्पष्ट है कि व्यक्ति जो कुछ भी प्रत्यक्षीकरण करता है उसके मस्तिष्क में वर्तमान सगठन करने की क्रिया पर निर्भर करता है। मस्तिष्क में चोट लग जाने के कारण मस्तिष्क की सगठन करने की क्रिया का ह्रास हो जाता है। सगठन की क्रिया के अभाव में व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण नही कर सकता है।

मस्तिष्क मे वर्तमान सगठन करने की क्रिया का कार्यशील होना उत्तेजना पर निर्भर है। वातावरण की उत्तेजनाएँ मस्तिष्क में संगठित करने की क्रिया को उत्पन्न करती है। मस्तिष्क में इस क्रिया के उत्पन्न होने के फलस्वरूप व्यक्ति का

मस्तिष्क एक खास अवस्था को प्राप्त करता है। व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण मस्तिष्क की इस अवस्था के ही अनुरूप होता है। अत जेस्टाल्टवादियो ने कहा है कि वातावरण से उपस्थित उत्तेजना एव प्रत्यक्षीकरण मे कोई अनुरूपता (Correspondence) नही रहती है। परन्तु व्यक्ति के अनुभव और मानसिक क्रियाओ (Mental Processes) मे काफी अनुरूपता (Correspondence) देखी जाती है।[७]

जेस्टाल्टवादियो के विचार मे पूर्ण स्पष्ट है कि भौतिक वातावरण मे उपस्थित उत्तेजनाएं हमारे अनुभवो से पूर्णरूपेण नही मिलती हैं। व्यक्ति का वातावरण



[चित्र १७]

सम्बन्धी ज्ञान का अनुभव स्नायुमण्डल के स्तर पर सगठन की देन है। इस सगठन के फलस्वरूप ही व्यक्ति सवेदनाओ के द्वारा प्राप्त प्रदत्तो (Data) को ज्यो-का-त्यो ग्रहण नही करता बल्कि उन प्रदत्तो का एक भिन्न अनुभव उसे होता है जिसकी अभिव्यक्ति वह अपने व्यवहारो मे करता है। स्नायुमण्डल के स्तर पर हुए सगठन के फलस्वरूप व्यक्ति वातावरण को सगठित अनुभव करता है तथा वातावरण की उत्तेजनाओ का प्रत्यक्षीकरण वह आकार (Figure) एव पृष्ठभूमि (Background) के रूप मे करता है।

अत्र प्रश्न यह है कि प्रत्यक्षीकरण मे आकार और पृष्ठभूमि के सम्बन्ध का

७ "Our experience do not correspond point for point with physical stimuli Rather they fall into coherent and meaningful patterns which cannot be readily separated into elementary sensation and images, therefore sensory elements are not the units with which the psychologists can most profitably work "

—Kohler "Isomorphism"

क्या तात्पर्य है। व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप वातावरण में उपस्थित अनेक उत्तेजनाओं में से किसी एक को अपने सामने (आकार के रूप में) रखता है और अन्य उत्तेजनाएं सामने आकार के रूप में रहनेवाली उत्तेजना की पृष्ठभूमि में रहती है। आकार और पृष्ठभूमि का सम्बन्ध वातावरण को संगठित करने में आवश्यक रूप से सहयोग देता है। रूबिन (Rubin) महोदय ने प्रत्यक्षीकरण की क्रिया के विश्लेषण के उपरान्त पाया कि उत्तेजना के उपस्थित होने पर प्रथम तो व्यक्ति को उत्तेजना की उपस्थिति का आभास होता है। इसके उपरान्त उत्तेजनाका अन्य वातावरण में उपस्थित उत्तेजनाओं के साथ का सम्बन्ध परिलक्षित होने लगता है। अर्थात व्यक्ति सामने वर्तमान एक उत्तेजना के अतिरिक्त अन्य उत्तेजनाओं को भी संबन्धित पाता है। प्रत्यक्षीकरण की इस दूसरी अवस्था के उपरान्त व्यक्ति इन अनेक उत्तेजनाओं को एक दूसरे से पृथक करने लगता है। इस पृथक्कीकरण (Differentiation) की क्रिया के फलस्वरूप एक उत्तेजना अत्यन्त स्पष्ट एवं सामने अन्य उत्तेजनाओं की पृष्ठभूमि में उपस्थित होती है। इस प्रकार का 'आकार और पृष्ठभूमि का सम्बन्ध प्रत्येक प्रत्यक्षीकरण में अनिवार्य रूप से देखा जाता है। एक साधारण सा अनुभव जब हम वर्ग में बैठे पढ़ रहे होते हैं तो होता है। सामने दीवाल से लगे ब्लैक बोर्ड को दीवाल से अलग नहीं देखते हैं। यहाँ तक बोर्ड पीछे फले दीवाल के ऊपर उभरा हुआ मालूम होता है। इस प्रकार दीवाल पृष्ठभूमि के रूप में और ब्लैक बोर्ड आकार के रूप में उपस्थित होता है। सेण्डर (Sender) महोदय ने आकार और पृष्ठभूमि के रूप में प्रत्यक्षीकरण करने की प्रवृत्ति को जन्मजात माना है। इन्होंने एक प्रयोग जन्मान्ध व्यक्ति पर किया। इस जन्मान्ध व्यक्ति की आँखें इलाज के उपरान्त ठीक हो जाने के पश्चात उसके सामने कुछ उत्तेजनाओं को उपस्थित किया गया। उत्तेजनाओं की उपस्थिति के उपरान्त व्यक्ति में 'आकार और पृष्ठभूमि का सम्बन्ध प्रत्यक्षीकरण के अंश में देखा गया। सेण्डर महोदय के इस प्रयोग से स्पष्ट है कि व्यक्ति में आकार और पृष्ठभूमि का अनुभव एक प्राथमिक अनुभव है जिसके अभाव में प्रत्यक्षीकरण असम्भव हो जायगा।

आकार और पृष्ठभूमि की विशेषताएँ (Characteristics of figure and ground)—रूबिन (Rubin) के अनुसार आकार और पृष्ठभूमि की अपनी अपनी विशेषताएं होती हैं। ये विशेषताएं क्रमश: ये हैं—

(क) आकार देखने में उभरा हुआ एवं निकलता (Stand out) मालूम होता है। परन्तु पृष्ठभूमि आकार के पीछे दूर तक फैली होती है।

(ख) आकार का स्थानीयकरण (Localization) सम्भव है परन्तु पृष्ठभूमि के फैले रहने के कारण इसका स्थान निरूपण नहीं कर सकते हैं।

(ग) आकार का अपना रंग होता है जो सतह पर केन्द्रीभूत रहता है परन्तु पृष्ठभूमि का रंग अस्पष्ट एवं परिवर्तनशील (Filmy soft and yielding) होता है।

(घ) आकार मध्य चेतना मे रहने के कारण अधिक दिनो तक स्मृति मे रहता है। परन्तु पृष्ठभूमि चेतना के मध्य मे नही होती, अत इनको स्मृति व्यक्ति को अधिक दिनो तक नही रहती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'आकार और पृष्ठभूमि' के अपने-अपने आवश्यक गुण होते है। दूसरी चीज जो ध्यान मे रखने योग्य है वह यह कि 'आकार और पृष्ठभूमि' के सम्बन्ध को सम्भव करने के कुछ नियमो का भी सहयोग होता है, जिन्हे सगठन के नियम (Laws of organization) की सज्ञा दी जाती है। इन नियमो मे कुछ प्रधान नियमो की चर्चा की जायगी।

सगठन का नियम
(Law of Organization)

(क) प्रैगनैन्ज का नियम (Law of Pragnanz)—व्यक्ति वातावरण को सगठित करते हुए सदा ध्यान रखता है कि आकार, जिसे वह पृष्ठभूमि से अलग कर रहा है वह स्पष्ट एव स्थायी हो। आकार की स्पष्टता एवं स्थिरता को ध्यान मे रखते हुए वातावरण को सगठित किया जाता है। कभी-कभी तो आकार एक सगठित वातावरण मे ही उपस्थित रहता है जहाँ किसी भी प्रकार के सगठन की आवश्यकता नही होती। ऐसे वातावरण मे पड़ी चीजो के प्रत्यक्षीकरण मे समय अत्यन्त ही कम लगता है। साथ-ही-साथ, प्रत्यक्षीकरण की हुई उत्तेजना अधिक दिनो तक स्मृति मे उपस्थित रहती है। वैज्ञानिक प्रयोगो से भी हमे इसका प्रमाण मिलता है। एक प्रयोग मे कुछ विद्यार्थियो को दो तरह के शब्दो को स्मरण करने के लिए दिया गया —(१) Authority, Plumpudding, Carpet, Scholar, (२) Child, Lake, Ball, Drowned

उपर्युक्त दो तरह के शब्दो मे श्रेणी (१) मे रखे गये शब्दो मे तारतम्य का अभाव था, परन्तु श्रेणी (२) मे रखे गये शब्दो मे आपसी सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव था। इन दोनो तरह के शब्दो को याद करने के दो सप्ताह के उपरान्त फिर विद्यार्थियो को उन पढे हुए शब्दो को दुहराने का आदेश दिया गया। इस आदेशानुसार विद्यार्थियो ने पहले के याद किये हुए शब्दो को दुहराने की कोशिश की। इस प्रयत्न मे वे (१) श्रेणी मे रखे गये शब्दो मे किसी एक को भी दुहरा न सके, परन्तु श्रेणी (२) मे रखे गये सभी शब्दो को उसी रूप मे दुहरा दिया। इस प्रयोग मे स्पष्ट है कि सगठित वातावरण के प्रत्यक्षीकरण के उपरान्त उसकी याद व्यक्ति को अधिक दिनो तक रहती है।

कुछ ऐसे भी वातावरण होते हैं जिनमे सगठन का अभाव होता है। सगठन के अभाव मे आकार को स्थिरता एव स्पष्टता वातावरण नही दे पाता है। ऐसी अवस्था म वातावरण सदा असगठित नही रहता है। यहाँ भी 'आकार और पृष्ठभूमि' का सम्बन्ध उपस्थित होता है। इस सम्बन्ध को कार्यान्वित करने मे स्नायु-मण्डल के

स्तर पर होने वाली क्रियाएं अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। मस्तिष्क अक्षिपट पर पडी उत्तेजनाओं के प्रभाव में परिवर्तन ला आकार को स्पष्ट एवं स्थिर बनाता है। उत्तेजना के प्रभावों में परिवर्तन लाने वाले नियमों में 'क्लोजर के नियम (Law of Closure) का नाम उल्लेखनीय है। कोफ्का (Koffka) महोदय ने अपने इस नियम में बतलाया है कि वातावरण की असम्बद्ध चीजों को एक दूसरे से सम्बद्ध करने की प्रवृत्ति में रहती है। अतः तीन अलग अलग बिन्दुओं को जिसमें एक ऊपर और दो उनके नीचे फैले हों उन्हें अगर व्यक्ति के सामने उपस्थित किया जाता है तो व्यक्ति इन तीन बिन्दुओं का प्रत्यक्षीकरण असम्बद्ध रूप में अलग-अलग नहीं करता है बरन उसे वह एक त्रिभुज के रूप में देखता है जैसे नीचे के चित्र में। जिस नियम



[चित्र १८ (क)]



[चित्र १८ (ख)]

के आधार पर एक बिन्दु दूसरे से सम्बन्धित हो संगठित होते हैं उस नियम को कोफ्का महोदय ने 'क्लोजर का नियम (Law of Closure) कहा है।

(ख) समानता का नियम (Law of Similarity)—वातावरण को संगठित कर आकार को स्पष्ट एवं स्थायी बनाने में समानता के नियम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। आपस में मिलती हुई चीजों का सम्बन्ध शीघ्र स्थापित हो जाता है। इस सम्बन्ध के स्थापित होने के फलस्वरूप वे अपने को वातावरण की अन्य चीजों से पृथक कर आकार के रूप में चेतना में उपस्थित होते हैं जैसे 'X' अपने को 'O'



(चित्र १९)

से समानता के आधार पर अलग कर लेता है और एक त्रिभुज का रूप ग्रहण कर लेता है।

(ग) समीपता का नियम—(Law of proximity)—एक दूसरे के समीप



(चित्र २०)

रहने वाली वस्तुएं अति शीघ्र आपस में सम्बद्ध हो जाती हैं। बनिस्बत उन चीजों के

१ If the objective qualities of the field—the external forces are not such as to give rise spontaneously to good configurations then there is a tendency for the internal forces within the individual to modify the pattern of retinal stimulation in the direction of a con...
...possessing more goodness —Koffka

जो एक-दूसरे से अधिक पृथक है। सगठन के इस नियम को समीपता के नियम की सज्ञा दी जाती है। अत पृष्ठ १३० पर दिये गये चित्र २० के ६ विन्दुओ मे चार, जो समीप के विन्दु है उनके बीच एकीकरण हो जाता है, जिससे वे वर्गाकार मालूम पडते हैं।

(घ) कामन फेट (Common Fate)—एक दिशा मे अग्रसर होने वाली चीजो का सम्बन्ध आपस मे शीघ्र हो जाता है जिससे उसका प्रत्यक्षीकरण सम्बद्ध रूप मे होता है। नीचे के विन्दुओ मे एक दिशा की ओर मुडी है उनका सगठन हो जाता है जिससे वे अर्द्धवृत्त की तरह देखने मे लगती है।



(चित्र २१)

गति का प्रत्यक्षीकरण

(Perception of Movement)

मनुष्य वातावरण मे दो प्रकार की गति का अनुभव करता है, एक तो वस्तु वास्तव मे चलायमान रहती है जिसे वह चलायमान समझता है, दूसरा, वस्तु मे गति नही रहने पर भी वह चलती-सी मालूम पडती है। पहले प्रकार की गति को वास्तविक (Real) गति कहते है तथा दूसरे को दीखौवा या प्रतीत होने वाली (Apparent) गति की सज्ञा दी जाती है।

वास्तविक गति के अनुभव का आधार स्नायविक सवेदना (Kinesthetic sensation) है। मासपेशियो या हड्डियो के जोड को अगर किसी ओर इधर-उधर घुमाया जाय तो इसके इधर-उधर घुमाने के फलस्वरूप व्यक्ति को खास प्रकार की सवेदना प्राप्त होती है। इस सवेदना को स्नायविक सवेदना (Kinesthetic sensation) की सज्ञा दी जाती है। इस प्राप्त सवेदना के आधार पर ही हम वास्तविक गति का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। उदाहरणार्थ, अगर आँख बन्द कर दायें पैर के अंगूठे को हिलाया जाय तो इसके हिलाने से अंगूठे के जोड पर एक गति उत्पन्न होती है जिससे एक प्रकार की सवेदना होती है। इस प्राप्त संवेदना के आधार पर हम गति का प्रत्यक्षीकरण करते हैं।

दूसरे प्रकार की गति, जिसका अनुमान व्यक्ति को होता है, उसे दिखौवा गति

या प्रतीत होने वाली गति (Apparent movement) कहते है। यहाँ यद्यपि उत्तेजना मे कोई गति नही रहती फिर भी व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तेजना में गति है। ऐसी प्रतीत होने वाली गति क्रमश तीन प्रकार की होती है।

(क) बिटा गति (Beta movement)—यहाँ दो स्थानो पर एक के बाद दूसरे स्थान में प्रकाश जलाया जाता है। पहला प्रकाश थोडी देर के लिए सामने आता है और इसके कुछ ही क्षण बाद दूसरा प्रकाश जल उठता है। इस तरह दो प्रकाशों के एक के बाद दूसरे जलने के फलस्वरूप व्यक्ति को प्रकाश मे गति का अनुभव होता है। व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है जैसे कि पहला प्रकाश दूसरे स्थान मे होने वाले प्रकाश की ओर बढ रहा है। इस प्रकार नीचे के क और ख दो स्थानो



में पहले क और फिर क प्रकाश को बुझाने के उपरान्त ख को प्रकाशमय किया जाय तो यहाँ प्रकाश क से ख की ओर दौडता हुआ दीखता है। ऐसी गति को बिटा (Beta) गति की सज्ञा दी जाती है।

(ख) डल्टा-गति (Delta movement)—यहाँ दो स्थानो मे अगर एक के बाद दूसरे को प्रकाशमय किया जाय तो व्यक्ति प्रकाश को पहले से दूसरे की ओर बढता न देखकर दूसरे स्थान से पहले स्थान की ओर ही जाता देखता है। इस प्रकार स्थान 'क' को प्रकाश करने के उपरान्त ख का प्रकाशमय किया जाय तो यहाँ प्रकाश 'क से ख की ओर न जाकर 'ख से क की ओर दौडता



नजर आता है। इस प्रकार की गति को डल्टा-गति (Delta movement) की सज्ञा दी जाती है।

(ग) गामा गति (Gamma Movement) एक स्थान को अचानक प्रकाशमय करने पर व्यक्ति उस स्थान के मध्य में प्रकाश देखता है। धीरे धीरे यह प्रकाश अन्य स्थानों मे भी फैलना-सा प्रतीत होता है। बाद मे यदि प्रकाश को बुझा दिया जाता है तो प्रकाश सिमटता हुआ दीखता है। व्यक्ति मे उत्पन्न फलाव एव सिमटाव के इस अनुभव को 'गामा गति' की सज्ञा दी जाती है।

उपर्युक्त प्रतीत होने वाल गतियो की व्याख्या बाटले (Bartley) महोदय ने किया है। उनके अनुसार इन गतियों का अनुभव अक्षिपट पर स्थित कोषों के स्वभाव पर निर्भर है। इनके अनुसार अक्षिपट के मध्य मे स्थित ग्राहक-कोष अक्षिपट के अन्य भागो के कोशो मे अधिक जल्द उत्तेजना के उपस्थित होने पर कार्यशील हो जाते हैं। अत प्रकाश के उपस्थित होने पर मध्यभाग प्रकाश पहले देखता है और बाद मे ज्यों ज्यों अक्षिपट के अन्य भाग प्रकाश-तरगों से उत्तेजित होते जाते हैं वैसे वैसे प्रकाश फैलता सा मालूम होता है। इस तरह बाटले महोदय ने फैलाव की गति

की व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त उत्तेजना के अधिक तीव्र रहने पर ग्राहक कोष अधिक जल्द क्रियाशील हो जाते है। अक्षिपट के स्वभाव के विषय मे चर्चा करते हुए उन्होने कहा है कि अक्षिपट के ऐसे स्थान जिन्हें उत्तेजना उत्तेजित नही करती वे भी उत्तेजित ग्राहक कोषो के समीप होने के कारण उत्तेजित हो जाते है। अत: दो स्थानो को एक के बाद दूसरे स्थान को उत्तेजित किये जाने पर इन दोनो स्थानो के बीच का भाग भी धीरे-धीरे उत्तेजित हो जाता है जिससे प्रकाश एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर, जो बाद मे प्रकाशमय किया गया है, बढता दीखता है। इस तरह बिटा (Beta) गति की व्याख्या उन्होने की है। उपर्युक्त व्याख्या कहाँ तक स्पष्ट है, कहना कठिन है। प्रयोग इस दिशा मे अगर किया जाय तो इन व्याख्याओ की सत्यता की जाँच की जा सकती है। अत हमे इस क्षेत्र मे कुछ ऐसे प्रयोगो की आवश्यकता है जो प्रतीत होने वाली गतियो की व्याख्या ठीक ठीक कर सके।

*समय का प्रत्यक्षीकरण

(The perception of time)

व्यक्ति को समय का भी प्रत्यक्षीकरण होता है। समय के ज्ञान का प्रमुख आधार सवेदना का विशेष गुण इस सत्ता-काल तथा व्यक्ति को प्राप्त परिवर्त्तन (Change) का अनुभव है। एक गुलाब को व्यक्ति दस सेकेण्ड तक देखे फिर उसी को पन्द्रह सेकेण्ड तक, तो इन दो अवस्थाओ मे वस्तु को देखने से उत्पन्न सवेदनाओ मे भी भिन्नता रहती है। जो गुण इस तरह सवेदनाओ मे अन्तर लाता है उसे सत्ता-काल (Duration) का गुण कहते है। व्यक्ति सवेदना के सत्ता-काल के गुण के आधार पर समय का प्रत्यक्षीकरण करता है।

सत्ता-काल के अतिरिक्त जब उत्तेजना व्यक्ति के सामने से हटा ली जाती है तो उसके हटाये जाने पर व्यक्ति को परिवर्तन (Change) का अनुभव होता है। इस परिवर्तन के पश्चात् ही वह किसी अन्य वस्तु की ओर अपना ध्यान ले जाता है। कुछ काल तक वह उत्तेजना इसके सामने रहती है जिससे उसे एक सवेदना प्राप्त होती है। व्यक्ति अपने परिवर्तन के पूर्व एव बाद के अनुभवो की सवेदनाओ के सत्ता-काल के आधार पर समय का ज्ञान प्राप्त करता है।

सत्ता-काल के गुण एव परिवर्तन के अनुभव के अतिरिक्त समय के प्रत्यक्षीकरण मे मासपेशियो के तनाव के अनुभव, श्वास लेने की क्रिया तथा दिल की गति का भी सहयोग रहता है।

मासपेशियो के तनाव का अनुभव— केवल दो मिनट तक उपस्थित उत्तेजना के साथ किये गये मासपेशियो के अभियोजन से उत्पन्न तनाव चार मिनट तक सामने उपस्थित रहने वाली उत्तेजना के साथ किये गये माशपेशियो के अभियोजन से उत्पन्न तनाव का अनुभव एक-सा नही होता है। अत मासपेशियो का उपस्थित उत्तेजना के साथ अभियोजन करने के फलस्वरूप उत्पन्न व्यक्ति मे तनाव का अनुभव समय के ज्ञान के लिए एव प्रतीक के रूप मे उपस्थित होता है।

श्वास एवं दिल की गति के आधार पर भी व्यक्ति समय का ज्ञान प्राप्त करता है। यद्यपि व्यक्ति को अपने दिल की गति एवं श्वास क्रिया की गति का पूर्ण ज्ञान नही होता फिर भी प्रयोगों से स्पष्ट मालूम होता है कि वह दिल की गति द्वारा समय का अनुमान लगाता है।

प्रत्यक्षीकरण के कर्त्ताओं (Factors in perception) का विवरण— व्यक्ति वातावरण मे उपस्थित अनेक उत्तेजनाओं मे से किस उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण करेगा यह दो कर्त्ताओं (Factors) पर निर्भर है। एक तो उत्तेजना की विशेषता और दूसरे व्यक्ति की अपनी अभिरुचि पर। जहाँ तक प्रत्यक्षीकरण मे उत्तेजना के अपने गुणों का प्रश्न है इसकी चर्चा पूर्ण रूप से ध्यान के अध्याय मे ध्यान किसी वस्तु पर क्यो जाती है की चर्चा करते हुए किया गया है। प्रत्यक्षीकरण मे व्यक्ति की अरुचि या इच्छा के सहयोग की चर्चा यहाँ की जायगी।

ब्रूनर और पोस्टमन (Bruner and Postman) महोदय ने अपने प्रयोग मे स्पष्टतया दिखलाया कि व्यक्ति की अपनी अभिरुचि या इच्छा वातावरण की अनेक उत्तेजनाओं मे से किसी एक को चुने उसके प्रत्यक्षीकरण के लिए बाध्य करता है। व्यक्ति की अपनी इच्छा इच्छित वस्तु के प्रत्यक्षीकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देती है जिससे व्यक्तिगत उत्तेजना प्रत्यक्षीकरण अतिशीघ्र करता है। पोस्टमैन एवं ब्रूनर साहब ने व्यक्तियो में उत्पन्न इस क्रिया को (Selective sensitisation) की संज्ञा दी है। व्यक्ति म इच्छित वस्तु को जल्द देखने की प्रवृत्ति रहने के कारण ही व्यक्ति भूख की अवस्था मे खाद्य पदार्थ को जल्दी देख लेता है। इसके विपरीत जिस वस्तु को देखने की इच्छा नही होती उस वस्तु की ओर व्यक्ति का ध्यान नही जाता है। ऐसे वस्तु को व्यक्ति देखना नही चाहता है अतः उसे सामने उपस्थित किये जाने पर भी अनदेखी कर देता है। वस्तु के प्रत्यक्षीकरण की इच्छा के अभाव मे देखने की प्रवृत्ति के अभाव को पोस्टमैन और ब्रूनर ने चेतन अवरोध (Perceptual defence) की संज्ञा दी है। इस प्रकार व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण अपनी इच्छा के अनुसार करता है। ब्रूनर और पोस्टमन के इस विचार को कुछ प्रयोगों द्वारा अत्यधिक स्पष्ट किया जा सकता है। उन्होंने एक प्रयोग किया। इस प्रयोग में व्यक्ति की इच्छा के अनुरूप कुछ चीजो का प्रदर्शन प्रदर्शक यन्त्र द्वारा ०१ सेकेण्ड तक हुआ। बाद मे इसी यन्त्र द्वारा कुछ ऐसे अनिच्छित शब्दों का प्रदर्शन जिसकी अवहेलना व्यक्ति सदा करता आया है १ सेकेण्ड से आरम्भ कर ३ ५ आदि क्रमशः बढ़ाते हुए प्रकाश की अवधि तक दिखा गया। अनिच्छित शब्दों को उस अवधि तक दिखाया गया जब तक कि वह देख न ले। इस प्रयोग से स्पष्ट हो गया कि व्यक्ति ऐसे शब्दों को जिन्हें वह देखना चाहता है कम ही समय में देख लेता है परन्तु ऐसे शब्द जिन्हें वह देखना नही चाहता अधिक अवधि के निकल जाने के बाद कभी कभी तो ठीक देख पाता है परन्तु कभी उस शब्द को परिवर्तित रूप में देखता है। उदाहरणार्थ सेक्रट (Secret) शब्द जिसके प्रत्यक्षीकरण की अनिच्छा व्यक्ति प्रकट

करता था उसे दिखलाये जाने पर पहली दफा तो उसने Sucked, दूसरी दफा Sucked, तीसरी दफा Shocked और चौथी दफा अधिक समय तक दिखलाये जाने के उपरान्त इस शब्द की सही पहिचान उसने की। एक ऐसे शब्द जिसके देखने की इच्छा व्यक्ति को थी, उस व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित किया गया-जैसे गर्ल (Girl)। इस शब्द के प्रत्यक्षीकरण मे उन्होंने ०१ सेकेण्ड ही समय लिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण की प्रवृत्ति रहने से व्यक्ति वस्तुओ का अतिशीघ्र प्रत्यक्षीकरण करता है (Lowering of perceptual threshold), परन्तु देखने की इच्छा के अभाव मे व्यक्ति उस वस्तु का प्रत्यक्षीकरण शीघ्र नही कर पाता। इसकी व्याख्या करते हुए पोस्टमैन और ब्रूनर ने बतलाया है कि इच्छा के अभाव मे प्रत्यक्षीकरण की तत्परता (Preceptual threshold) बहुत ही कम हो जाता है जिससे व्यक्ति के सम्मुख उत्तेजना के उपस्थित रहने पर भी व्यक्ति देख नही पाता है।

अब प्रश्न है कि व्यक्ति मे जिस चीज के प्रत्यक्षीकरण की इच्छा नही होती उसका प्रत्यक्षीकरण वह गलत रूप मे क्यो करता है? पोस्टमैन और ब्रूनर साहब ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि व्यक्ति अपने सामने उपस्थित उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण करता है, परन्तु उसके अचेतन (Unconscious) मे वस्तु को न प्रत्यक्षीकरण करने का विचार देखी हुई उत्तेजना को परिवर्तित रूप मे व्यक्त करता है। इस तरह उत्तेजना को परिवर्तित रूप मे व्यक्त करने के फलस्वरूप व्यक्ति उस उत्तेजना के नही प्रत्यक्षीकरण करने की अभिलाषा की भी पुष्टि कर लेता है। इस प्रकार व्यक्ति की चेतन एव अभिलाषाएँ प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है।

*प्रत्यक्षीकरण की स्थिरता
(Perceptual Constancy)

पहले की देखी हुई चीज मे हेर-फेर होने पर भी व्यक्ति पहले की देखी हुई चीजो को उसी रूप मे देखती है। वस्तुओ को पहले की तरह देखने को प्रत्यक्षीकरण की स्थिरता (Perceptual constancy) कहते है। प्रत्यक्षीकरण की यह स्थिरता वस्तु के आकार, परिमाण, रग एव चमक (Brightness) के प्रत्यक्षीकरण मे स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। थाउलेस (Thouless) महोदय ने अपनी पुस्तक * मे स्पष्टतया बतलाया है कि एक वर्गाकार कागज जिसकी प्रतिमा अक्षिपट पर गोलाकार पड़ी उसे व्यक्ति ने गोल आकार का न देखकर वर्गाकार ही देखा। व्यक्ति अपने अक्षिपट के प्रतिमा की अवहेलना कर वह वस्तु जिस प्रकार की पहले थी उसी प्रकार देखता है। विभिन्न लोगो ने प्रत्यक्षीकरण की स्थिरता की व्याख्या करते हुए विभिन्न मतो का प्रतिपादन किया है। कुछ लोगो के अनुसार व्यक्ति मे पहले की देखी हुई चीजों को पहले ही की तरह देखने की एक जन्मजात प्रवृत्ति रहती है। जेस्टाल्टवादियो ने व्यक्ति मे इस प्रवृत्ति की व्याख्या प्रैगनेज के नियम (Law of Pragnaz) द्वारा किया है। अत उत्तेजनाओ मे भिन्नता आने पर भी वह उत्तेजना को

* "Phenomenal Regression to Real object' —Thouless

पहले ही की तरह देखता है। दूसरे मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण की स्थिरता (Constancy Phenomena) को जन्मजात नहीं मानते, बल्कि व्यक्ति का अर्जित गुण मानते हैं। वस्तु में स्थिरता (Constancy) आने के कारण वस्तु के आकार प्रकार का पूर्ण पूर्वज्ञान है। व्यक्ति ने उस वस्तु को भिन्न भिन्न अवस्थाओं में देखा है। इसके देखने के फलस्वरूप वस्तु के पूरे आकार-प्रकार से व्यक्ति का परिचय हो जाता है अत वस्तु में कुछ एक परिवर्तन होने पर वस्तु में वर्त्तमान अन्य चीजें अपरिवर्तित रूप में व्यक्ति के सामने उपस्थित होती हैं जिसके आधार पर व्यक्ति उसका प्रत्यक्षीकरण करता है। अत परिवर्तित वस्तु अपने पुराने रूप म ही दीख पडती है।

आकार, रग परिमाण एव चमक के प्रत्यक्षीकरण मे स्थिरता की व्याख्या कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग की है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये आकार रग चमक इत्यादि की अलग-अलग व्याख्या का विवरण यहाँ उपस्थित करना आवश्यक नही हैं अत इसकी व्याख्या यहाँ नही दी जा रही है।

स्थान का प्रत्यक्षीकरण
(Space perception)

वातावरण में जब अनेक चीजें उपस्थित होती हैं तो हम उन वस्तुओं के आकार (Shape) परिमाण (Size) तथा उन वस्तुओं के आपस की दूरी एव वस्तु हमसे कितनी दूरी पर है इत्यादि का प्रत्यक्षीकरण करते है। इसके अतिरिक्त दिशा (Direction) का भी ज्ञान होता है। अब प्रश्न है कि विभिन्न दिशाओं एव दूरी पर स्थित वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण कसे होता है? विभिन्न दिशाओ एव दूरी पर स्थित वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण के लिए हम अपनी आँखो को इधर-उधर घुमाते हैं। आँखों को इधर-उधर घुमाने के फलस्वरूप स्नायविक या गति सवेदना (Kinesthetic sensation) उत्पन्न होता है। विभिन्न दूरी एव दिशाओ मे स्थित वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण के प्रयास म हम विभिन्न सवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। सवेदनाओं के इस विभिन्नता के आधार पर हम दूरी एव दिशा का ज्ञान प्राप्त करते है। प्रत्येक सवेदना मे पाये जाने वाले इस विशेष गुण को स्थानीय चिह्न (Local sign) का गुण कहते हैं। स्थानीय चिह्न (Local sign) के गुण पर दूरी एव दिशा का ज्ञान आश्रित है। उदाहरणार्थ व्यक्ति जब वातावरण म स्थित किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करता है तो इस प्रत्यक्षीकरण के लिए आवश्यक रहता है कि वह उत्त जना तरंगो द्वारा ग्राहक कोषों को उत्तेजित करे। अगर मे तरंगें फोविया (Fovea) से दूर स्थित ग्राहक कोषो को उत्तेजित करती है तो व्यक्ति अपनी आँखों को इस प्रकार घुमाता है जिससे उत्तजना की प्रतिमा (Image) फोविया पर पड़े। इस प्रकार व्यक्ति को फोविया पर प्रतिमा लाने के लिए आँखों को घुमाना पडता है। आँखो को इस प्रकार घुमाने स जो संवेदना प्राप्त होती है उसे स्थानीय चिह्न (Local sign) की सज्ञा दी जाती है। संवेदना के इस स्थानीय चिह्न के गुण के आधार पर हम दिशा एव दूरी का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

Visual space perception—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण अक्षिपट (Retina) के पर्दे प्रतिमा (Image) के आधार पर होता है। इस प्रतिमा (Image) की लम्बाई और चौड़ाई तो होती है, पर इसमे मोटाई (Depth) नही होती। इसके अतिरिक्त वह वस्तु कितनी दूरी पर स्थित है, उस प्रतिमा पर अंकित नही होता है। अब प्रश्न है कि प्रतिमा मे जब मोटाई और दूरी नही होती तो वस्तु की मोटाई और दूरी का ज्ञान कैसे होता है। यह तो ठीक है कि वातावरण के किसी वस्तु का स्थान-निरूपण वातावरण मे ही उपस्थित अन्य वस्तु के आधार पर या अपने शरीर की स्थिति के आधार पर किया जाता है। पर व्यक्ति अपने शरीर या वातावरण के किसी अन्य वस्तु के ज्ञान के आधार पर उत्तेजना की मोटाई एव दूरी का प्रत्यक्षीकरण नही करता है। इसके ज्ञान के आधार के विषय मे दो मत है। एक तो उनका विचार, जिनके अनुसार किसी वस्तु की दूरी एव मोटाई (Depth) का ज्ञान दृष्टि, स्पर्श एव गति तीनो के सहयोग के फलस्वरूप उपलब्ध है। परन्तु दूसरे विचारक इस मत का पुष्टिकरण नही करते है। दूसरे मतानुसार उत्तेजनाओ के प्रत्यक्षीकरण मे उस उत्तेजना की दूरी एव मोटाई (Depth) का प्रत्यक्षीकरण निहित होता है। वस्तु की मोटाई एव दूरी के प्रत्यक्षीकरण को व्यक्ति अपने जन्मकाल मे नही सीखते वरन् उसमे दूरी एव मोटाई देखने की क्षमता जन्म-जात होती है। इस जन्मजात क्षमता के कारण ही व्यक्ति जब किसी वस्तु का प्रत्यक्षी-करण करता है तो उसकी दोनो आँखो मे दो भिन्न-भिन्न प्रतिमाएँ उपस्थित होती है। इन दोनो प्रतिमाओ के एकीकरण के फलस्वरूप ही हमे दूरी एव मोटाई का ज्ञान होता है। दो प्रतिमाओ के एकीकरण की क्रिया प्रत्येक व्यक्ति मे जन्मकाल से ही वर्तमान रहती है। अत दूरी एव मोटाई (Distance and depth) के ज्ञान को लोगो ने जन्मजात (innate) माना है।

प्रतीमाओ के एकीकरण की क्रिया के अतिरिक्त कुछ ऐसी और चीजे है जिनके सहयोग से व्यक्ति वस्तुओ की मोटाई या ऊँचाई एव दूरी का ज्ञान प्राप्त करता है। उन प्रतीको या कारको (Factors) मे कुछ प्रधान कारक (Cues of factors) तो शारीरिक (Physiological) है जो आँख की बनावट एव इसकी क्रिया पर निर्भर है और कुछ मनोवैज्ञानिक है। कुछ कारक जिस पर दूरी एव मोटाई निर्भर है, वह एक ही आँख के उत्तेजित होने मे उपस्थित होता है। ऐसे प्रतीक, जिनकी उपस्थिति एक आँख के उत्तेजित होने पर निर्भर है, उसे एक-आंखीय प्रतीक (Monocular cue) की सज्ञा दी जाती है, परन्तु वह प्रतीक (Cue), जो दोनो आँखों के उत्तेजित होने पर निर्भर है, उसे दो आंखीय प्रतीक (Binocular cue) की सज्ञा दी जाती है। शारीरिक प्रतीक एक-आंखीय एव दो-आंखीय हो सकता है। एक आंखीय शारीरिक प्रतीक के अन्तर्गत आँख के लेन्स से लगी मासपेशियो के तनाव मे कमी-बेशी, अक्षिपट पर पड़ी प्रतिमा का आकार आदि आता है। दो-आंखीय शारीरिक प्रतीको के अन्तर्गत समवाय एव आंखो की प्रतिमा की आपसी भिन्नता की चर्चा की जाती है।

दूरी एवं मोटाई के शारीरिक प्रतीक

(Physiological Cue of Distance and Depth)

(क) आँख के लेन्स की मांसपेशियों के तनाव में कमी-बेसी (Accommodation of the lens)—वस्तु ज्यों-ज्यों आँखों के निकट आती जाती है, त्यों त्यों लेन्स (Lens) भी चपटा (Flat) होता जाता है। आँख के लेन्स का चपटा होना या न होना सीलियरी की मांसपेशियों एवं (Suspensory ligament) पर निर्भर है। इन मांसपेशियों के क्रियाशील होने के फलस्वरूप स्नायु प्रवाह (Nerve impulse) तैयार होते हैं, जो मस्तिष्क में पहुँच कर व्यक्ति को दूरी एवं मोटाई (Depth) के ज्ञान के लिए एक सहारा होती है। इस प्रकार आँख के लेन्स से सम्बन्धित मांसपेशियों के तनाव में कमी बेसी के आधार पर ही व्यक्ति वस्तु की दूरी एवं मुटाई का ज्ञान प्राप्त करता है।

(ख) अक्षिपट पर पड़े प्रतिमा का आकार (Size of the retinal image)—अक्षिपट (Retina) पर पड़े प्रतिमा (Image) का आकार (Size) छोटा या बड़ा होता है। प्रतिमा का छोटा या बड़ा होना वस्तु की दूरी पर निर्भर है। एक वस्तु जब वह आँख के निकट होती है तो उसकी प्रतिमा दूर स्थित वस्तु की प्रतिमा की अपेक्षा बड़ी होती है। अतः व्यक्ति किसी वस्तु की दूरी का ज्ञान अक्षिपट पर पड़ी प्रतिमा (Image) के आधार पर प्राप्त करता है।

(ग) समवाय (Convergence)—आँखों को नीचे-ऊपर अगल-बगल घुमाने के लिए प्रत्येक आँख में छः मांसपेशियाँ हैं। समीप की चीजों को देखने के लिये इन्हीं मांसपेशियों का एक जोड़ा आँख को भीतर (Inward) की ओर घुमाता है जिससे इस मांसपेशी का तनाव, जो आँखों को भीतर की ओर घुमाये हुए है अधिक हो जाता है। इसके साथ ही-साथ आँख को बाहर की ओर घुमाने वाली मांसपेशी के तनाव में कमी आ जाती है। मांसपेशियों के तनाव में यह परिवर्तन व्यक्ति को वस्तु की दूरी का ज्ञान कराने में सहायक होती है। दूर की वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण में आँख को भीतर की ओर घुमाने वाली मांसपेशियों के तनाव में कमी तथा आँख को बाहर की ओर घुमाने वाली मांसपेशी में तनाव अधिक हो जाता है। इस प्रकार की कमी या बेसी के आधार पर हममें वस्तु की दूरी का ज्ञान निर्भर करता है।

(घ) आँखों की प्रतिमा की आपसी भिन्नता (Retinal Disparity)—किसी वस्तु की मोटाई (Depth) या ऊँचाई या गहराई के ज्ञान का आधार दो आँखों में प्राप्त दो भिन्न प्रतिमाएं (image) हैं। इस भिन्न प्रतिमाओं (Retinal disparity) को व्यक्ति अलग-अलग अपने वातावरण में दो भिन्न प्रतिमा प्राप्त करता है। ये भिन्न प्रतिमाएं आपस में मिलकर व्यक्ति में मोटाई (Depth) का ज्ञान प्रदान करती है

मनोवैज्ञानिक प्रतीक (Psychological cues)—उपर्युक्त शारीरिक प्रतीकों

(Cues) के अतिरिक्त दूरी एवं गहराई के प्रत्यक्षीकरण मे सहायक कुछ ऐसे भी प्रतीक है जिन्हें व्यक्ति विभिन्न वस्तुओ के सम्पर्क मे आने के फलस्वरूप सीखता है। वातावरण के सम्पर्क मे आने से उपलब्ध ऐसे प्रतीक को मनोवैज्ञानिक प्रतीक को सज्ञा दी जाती है। ऐसे मनोवैज्ञानिक प्रतीको मे प्रधान निम्नलिखित है—

(क) एक के ऊपर दूसरे पदार्थों का बैठना या मध्यस्थता या व्यवधान (Superposition or interposition)—दो चीजो मे कौन-सी चीज अधिक दूरी पर स्थित है, इसका ज्ञान हमे व्यवधान या मध्यस्थता द्वारा मिलता है। एक घर और एक पेड़ दोनो एक ही दिशा में स्थित हो जिससे घर और व्यक्ति के बीच पेड़ खड़ा मालूम होता हो तो ऐसी दशा मे घर को पेड़ के सामने आ जाने के कारण ठीक-ठीक नहीं देख सकते है। इस प्रकार पेड़ घर को ठीक से देखने मे असुविधा या व्यवधान उपस्थित करता है। ऐसी स्थिति मे हम अनुमान करते हैं कि पेड़ की दूरी घर की दूरी से कम है। इस अनुमान का एकमात्र आधार हमारा भूत का अनुभव है जो हमें ज्ञान देता है कि दूसरी चीजो को छिपा देने वाली वस्तु व्यक्ति के उस वस्तु मे जो छिप चुका है, अधिक निकट होता है।

(ख) परिचित वस्तु का आकार (Relative size of the familiar object)—जानी-पहचानी चीजो के आकार के प्रत्यक्षीकरण के आधार पर भी व्यक्ति का वस्तु की दूरी का ज्ञान होता है। जैसे-जैसे वस्तु की दूरी अधिक होती जाती है, वैसे-वैसे वह वस्तु आकार मे छोटा दीखता है। मनुष्य वस्तु के आकार सम्बन्धी इस अनुभव के आधार पर दूरी का प्रत्यक्षीकरण करता है।

(ग) रेखा-सम्बन्धी दृश्य—दो रेखाओं के बीच के दुराव की कमी तथा उसके आकार की छोटाई (Linear perspective—the decrease in size and separation)—जैसे-जैसे वस्तुएं व्यक्ति से दूर होती जाती है, वैसे-वैसे आकार मे भी छोटी नजर आती हैं, जैसे रेलवे लाइन की पटरियाँ। पटरियो पर खड़ा होकर अगर हम अपने समीप की पटरियो से लेकर दूर स्थित पटरियो को देखें तो ऐसा अनुभव होगा कि पटरियो की लम्बाई दूरी बढने के साथ-ही-साथ कम होती जाती है। व्यक्ति अपने इस अनुभव का प्रयोग दूर का ज्ञान प्राप्त करने मे करता है। इसी आधार पर वह लम्बाई मे कम पटरी की दूरी, उस पटरी से जिसकी लम्बाई अधिक मालूम होती है, अधिक बतलाता है।

दूरी के ज्ञान का आधार दो वस्तुओ के बीच के अलगाव (Separation) मे कमी बेशी भी है। हम यह जानते है कि रेलवे लाइन की पटरियो की दूरी, एक-दूसरे से समान रहती है। पर ऐसा जानते हुए भी हमे दूर की पटरियाँ आपस मे सटी हुई दीखती हैं। इस प्रकार व्यक्ति वस्तुओ के सम्पर्क मे आने से यह अनुभव करता है कि जो वस्तुएं अधिक दूरी पर है उनका आपसी अलगाव कम मालूम होगा, उन दो वस्तुओ के जो व्यक्ति के निकट होगी। व्यक्ति अपने इस अनुभव के आधार पर दूरी का प्रत्यक्षीकरण करता है।

(घ) स्पष्टता एवं अस्पष्टता (Aerial perspective)—दो वस्तुओं की आपसी दूरी का अनुमान हम उन वस्तुओं के देखे जाने के स्वरूप के आधार पर लगाते है। दो वस्तुओं में वह वस्तु जो साफ-साफ एवं स्पष्ट दिखलाई पड़ती हो वह अस्पष्ट दीखने वाली वस्तु से दूरी में कम होती है। अतः स्पष्ट दिखलाई पड़ने वाली वस्तु की दूरी का अनुमान अस्पष्ट देखे जाने वाली वस्तु से कम लगाते है। इस प्रकार स्पष्टता एवं अस्पष्टता भी दूरी के अनुमान में सहयोगी होती हैं।

(ङ) लम्बन (Parallax)—दो वस्तुओं की आपसी गति भी व्यक्ति को दूरी का अनुमान लगाने में सहयोगी है। समीप की वस्तुएं अधिक तेजी से चलती नजर आती हैं। यद्यपि दूर की वस्तु की गति समीप की वस्तु की गति के समान ही है फिर भी उसकी गति कम मालूम होती है। इस प्रकार समान गति वाली दो चीजों में, जिसकी गति देखने में अधिक मालूम पड़ती है वह व्यक्ति के विशेष निकट समझी जाती है बनिस्बत उस वस्तु के जिसकी गति देखने में कम है।

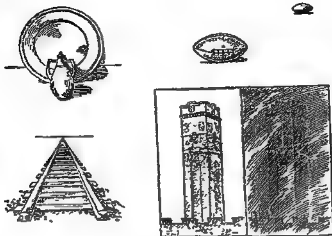
अगर व्यक्ति स्वयं चल रहा हो तो ऐसी परिस्थिति में नजदीक की चीज व्यक्ति जिस दिशा में चलता है उससे विपरीत दिशाएं चलती हुई नजर आती हैं। परन्तु दूरस्थित चीजें व्यक्ति के साथ ही चलती दिखलाई पड़ती हैं। व्यक्ति जब स्वयं चल रहा हो उस हालत में कौन-सी वस्तु उसके विपरीत दिशा में तथा कौन-सी उसके साथ चलती है सदा मालूम होता रहता है। जो वस्तुएँ उससे विपरीत चलती मालूम होती हैं उसे व्यक्ति निकट की चीजें समझता है और जो चीजें उसके साथ चलती हैं, उसे वह अधिक दूरी पर स्थित समझता है। उदाहरणार्थ, रेलगाड़ी पर चलते हुए व्यक्ति को रेलवे लाइन के समीप लगे पोल (खम्भे) उससे विपरीत भागते नजर आते हैं पर बहुत दूर स्थित पेड़-पौधे उसके साथ चलते दीखते हैं। अतः वह पोल को पेड़ पौधों से समीप समझता है।

प्रकाश परछाईं एवं छाया में अन्तर (Difference in lighting shadow and shade)—ऊँचाई या गहराई के प्रत्यक्षीकरण का आधार वस्तु पर पड़े धूप एवं छाया में अन्तर होता है। जिस वस्तु पर प्रकाश अधिक रहता है वह वस्तु उस वस्तु से जो अधिक प्रकाशमय नहीं दीखती अधिक ऊँचाई पर स्थिर-सी प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होने का एकमात्र कारण व्यक्ति का अनुभव है। वह अपने अनुभव से जानता है कि सूर्य की किरणें पहले ऊँची स्थित वस्तुओं को प्रकाशमय करती हैं और बाद में नीचे की चीजों पर प्रकाश पहुँच पाता है। अतः व्यक्ति अधिक रुका समय वस्तु को अधिक ऊँचाई पर स्थित समझता है।

गड्ढे में सूर्य की रोशनी नहीं पहुँचने के कारण देखने में वह अन्धकारमय लगता है। अतः समतल भूमि पर जहाँ प्रकाश नहीं होता उस स्थान का प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति गड्ढे के रूप में करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दूरी एवं गहराई या ऊँचाई का प्रत्यक्षीकरण मनोवैज्ञानिक एवं प्रतीकों पर निर्भर करता है। एक वस्तु के प्रत्यक्षीकरण में एक समय एक से अधिक प्रतीक भी सहायक हो सकते हैं। प्रत्यक्षीकरण में सहायक कुछ

प्रतीक तो व्यक्ति मे जन्मजात होते है, पर कुछ प्रतीको को व्यक्ति वातावरण के सम्पर्क मे आने से सीखता है। उपर्युक्त सारी बातें नीचे के चित्र २२ को देखने से अत्यधिक स्पष्ट हो जायेंगी।



[चित्र २२]

Auditory space perception—भिन्न-भिन्न आवाजो का दूरी एवं दिशा के ज्ञान का आधार व्यक्ति का अनुभव तथा उसके कान है। दूरी का प्रत्यक्षीकरण, व्यक्ति आवाजो की गम्भीरता (Loudness) एव उनकी जटिलता (Complexity) के आधार पर करता है। व्यक्ति को सदा अनुभव रहता है कि जैसे-जैसे दूरी अधिक होती जाती है, वैसे-वैसे आवाज क्षीण होती जाती है। इस अनुभव के आधार पर वह एक क्षीण आवाज को दूरस्थित समझता है, बनिस्बत उस आवाज के जो काफी तेज एव स्पष्ट रहता है।

निकट की आवाज मे भिन्न-भिन्न तरह की आवाजो का सम्मिश्रण पाया जाता है, परन्तु जब इसी आवाज की दूरी अधिक हो जाती है तो व्यक्ति मिश्रित (Complex) आवाज का प्रत्यक्षीकरण नही करता। ऐसी मिश्रित आवाजो मे से अनेक आवाजें दूरी के कारण व्यक्ति तक नहीं पहुँच पाती है तथा आवाजो की जटिलता (Complexity) के आधार पर भी दूसरी का ज्ञान निर्भर है। जो आवाज मिश्रित या जटिल नही होती, उनकी दूरी एक मिश्रित आवाज से अधिक समझी जाती है।

दिशा (Direction) के ज्ञान का आधार व्यक्ति की आँखें पहले का वातावरण-सम्बन्धित ज्ञान एव दोनो कानो के उत्तेजित होने मे विभिन्नता है। व्यक्ति अपनी आंखो से आवाज निकालती हुई वस्तु को देख उसकी दिशा का ज्ञान प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति को अपने वातावरण से पूर्ण परिचय रहता है। इस परिचय

के फलस्वरूप वह अच्छी तरह समझता है कि हवाई जहाज उसके सिर के ऊपर से जा रहा है। घर के दक्खिन एक रास्ता है, अतः कोई मोटर अगर आ रही हो तो वह उस रास्ते से ही आ रही है। इन स्थितियों में जहाँ दिशा का ज्ञान आँखों के सहारे या पूर्व-अनुभव के सहारे किया जा रहा हो, वहाँ दोनों कानों का होना एकदम आवश्यक नहीं है। ऐसी स्थिति में एक ही कान के सहारे व्यक्ति दिशा का प्रत्यक्षीकरण कर सकता है।

जब व्यक्ति को पहले के वातावरण से परिचय न हो और न उसे आँख ही हो तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति दोनों कानों की मदद से दिशा का ज्ञान करता है। एक ही उत्तेजना दोनों कानों को विभिन्न रूप से उत्तेजित करती है। दोनों कानों के विभिन्न रूप में उत्तेजित होने के तीन प्रमुख कारण हैं।

(क) ध्वनि-तरंगों के कान तक पहुँचने में समय का अन्तर (Difference in the time of arrival of the sound wave at the ear)—एक ही वस्तु से निकला हुआ ध्वनि-तरंग (Sound wave) दोनों कानों को एक ही साथ उत्तेजित नहीं कर सकता है। एक ही साथ उत्तेजित नहीं करने का प्रमुख कारण वस्तु से प्रत्येक कान की दूरी में विभिन्नता है। अतः एक ध्वनि-तरंग एक कान को कुछ पहले तथा दूसरे को कुछ बाद उत्तेजित करता है। वस्तु के निकट होने के कारण पहले उत्तेजित होने वाला कान दाहिना है या बायाँ, व्यक्ति जान लेता है जिसके आधार पर वह वस्तु व्यक्ति के दाहिने स्थित है या बायें, का प्रत्यक्षीकरण होता है।

(ख) Difference in Phase of Cycles—आवाज निकलने वाली वस्तु की दूरी कान से एक नहीं रहने के कारण कानों के उत्तेजित करने के समय ध्वनि तरंगों में एकरूपता नहीं रह पाती है। अतः कान को पहले उत्तेजित करने वाली तरंगों की लहरें भिन्न होती हैं दूसरे कान को बाद में उत्तेजित करने वाली तरंगों से लहरों की एकरूपता का अभाव व्यक्ति में दूरी एवं दिशा का ज्ञान दिलाती है।

(ग) तीव्रता का अन्तर (Difference in intensity)—दोनों कानों तक पहुँचने वाली ध्वनि-तरंगों की तीव्रता के अन्तर के आधार पर भी व्यक्ति दूरी का अनुमान लगाता है। समीप की आवाज तीव्र तथा दूर की क्षीण होती है। व्यक्ति अपने तीव्रता के अनुमान के आधार पर दूर का प्रत्यक्षीकरण करता है।

(घ) सिर की गति (Movement of the head)—सिर को इधर उधर घुमा कर भी व्यक्ति दिशा का ज्ञान प्राप्त करता है। आवाज निकलने वाली जगह की ओर व्यक्ति अपने कान को सिर की गति के आधार पर ले जाता है। ऐसी गति से व्यक्ति को वस्तु की दिशा का ज्ञान हो जाता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक उत्तेजना दोनों कानों को भिन्न रूप से उत्तेजित करती है। कानों के उत्तेजित होने से उत्पन्न विभिन्नता ही आवाज की दूरी एवं दिशा का प्रत्यक्षीकरण सम्भव करता है।

विपर्यय
(Illusion)

एक उत्तेजना के उपस्थित होने पर ज्ञानेन्द्रियो का सम्पर्क उत्तेजना-विशेष से होता है। इस सम्पर्क के फलस्वरूप ही उस उत्तेजना की जानकारी सम्भव है। उत्तेजनाओ का एक सर्वमान्य सामाजिक अर्थ होता है। पर कभी-कभी प्राणी उत्तेजनाओ के सम्पर्क मे आने के पश्चात् भी उसके सामाजिक एव सर्वमान्य अर्थ को व्यक्त करने या समझने मे भूल कर जाता है। ऐसी अवस्थाओ को विपर्यय (Illusion) की सज्ञा दी जाती है, जैसे —पीछे से, किसी आगे जाने वाले अन्य या अपरिचित व्यक्ति को अपना मित्र या परिचित समझ लेना। इसी प्रकार अँधेरे मे पडी रस्सी को देखकर साँप समझ लेना भी विपर्यय है। इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि अन्य या अपरिचित व्यक्ति को पीछे से अपरिचित समझना अर्थात् अपना मित्र या परिचित नही समझना तथा रस्सी को रस्सी ही समझना प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत आयेगा। पर एक उत्तेजना-विशेष को देखकर उसके सर्वमान्य अर्थ को ग्रहण न कर किसी अन्य विशेप एव वैयक्तिक अर्थ का समझना विपर्यय है। दूसरे शब्दो मे, कहा जा सकता है कि अयथार्थ ज्ञान या प्रत्यक्षीकरण (False perception) ही विपर्यय है, अयथार्थ ज्ञान का अर्थ वस्तु तथा परिस्थिति के गलत ज्ञान से है।

प्रत्यक्षीकरण तथा विपर्यय में अन्तर
(Distinction between perception and Illusion)

वस्तुत विपर्यय और प्रत्यक्षीकरण दोनो मे एक ही तरह की सवेदनाएँ वर्त्तमान रहती है। इस दृष्टिकोण से प्रत्यक्षीकरण एव विपर्यय दोनो मे कुछ समानताएँ है- किन्तु इस समानता के रहते हुए भी दोनो मे निम्नलिखित अन्तर है—(१) प्रत्यक्षीकरण मे भी सवेदनाओ का सही (समाज द्वारा निश्चित किया) अर्थ लगाते है, पर विपर्यय मे भी सवेदनाओ का अर्थ लगाया जाता है, परन्तु वह अर्थ समाज द्वारा लगाये अर्थो मे भिन्न होना है। अत उसे गलत अर्थ कहते है, क्योकि वह पूर्णत वैयक्तिक एव क्षणिक (Personal and Temporary) होता है।

(२) विपर्यय और प्रत्यक्षीकरण के स्वभाव मे भी भेद है। विपर्यय प्राय क्षणिक होता है, किन्तु प्रत्यक्षीकरण अपेक्षाकृत स्थायी होता है। अर्थात् उत्तेजना विशेप का ठीक-ठीक ज्ञान कुछ देर के बाद हो जाने पर विपर्यय खत्म हो जाता है जिससे इस क्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते है।

विपर्यय और विभ्रम मे अन्तर
(Distinction between Illusion and Hallucination)

किसी उत्तेजना-विशेष के रहने पर भी कभी-कभी मनुष्य उत्तेजनाओ का प्रत्यक्षीकरण करता है। ऐसी क्रिया को विभ्रम की सज्ञा दी जाती है। इस

विभ्रम भी अयथार्थ (Inaccurate) प्रत्यक्षीकरण है। पर विभ्रम एवं विपर्यय दोनों मे अन्तर है। विपय के लिए बाह्य उत्तेजना की उपस्थिति अनिवार्य है, परन्तु विभ्रम मे बाह्य उत्तेजना का अभाव रहता है। इस अभाव में कोई वस्तु नजर आती जैसे—रात में कभी-कभी जब नीद खुल जाती है तो सामने कोने में कोई खड़ा नजर आता है यद्यपि उस स्थान पर कुछ भी नही होता। ऐसी अवस्था के प्रत्यक्षीकरण को विभ्रम की संज्ञा दी जाती है। अत स्पष्टतया कह सकते है कि विभ्रम में उत्तेजना का अभाव होता है पर विपर्यय का आधार उत्तेजना होता है।

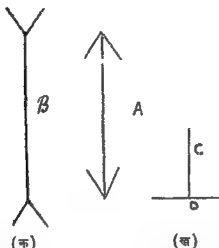
विभ्रम एव विपर्यय में दूसरा अन्तर यह है कि विपर्यय का अनुभव प्राय सभी व्यक्तियो को होता है परन्तु विभ्रम का अनुभव प्राय मानसिक रोगयुक्त तथा मन म चूर व्यक्तियों को ही होता है। प्राय सभी व्यक्तियो में समान परिस्थितियाँ एक ही तरह का विपर्यय उत्पन्न करती है किन्तु विभ्रम में ऐसा नही होता।

विपर्यय के प्रकार
(Kinds of Illusion)

विपयय को व्यक्ति या काल (Duration) के आधार पर विभिन्न भागों मे बाँटा गया है। कुछ विपर्यय कुछ व्यक्तियों मे ही होते है इन्हे व्यक्तिगत (Individual or personal) विपयय कहते है। जो सभी मे समान रूप से होते है, उन्हें विश्वव्यापक (Universal) विपयय कहते हैं। उदाहरणार्थ—लाल गमछा देखकर लाल दुपट्टा समझना व्यक्तिक विपयय (Personal Illusion) का उदाहरण है। ऐसे कुछ लोग भी होते है जिन्हें लाल गमछा दुपट्टा के रूप में नजर आता है। पर चलती गाड़ी से बाहर खड़े वृक्षों का दूसरी दिशा म दौड़ना या चलना विश्वव्यापक विपयय (Universal Illusion) का उदाहरण है। सभी को चलती गाडी से बाहर देखने पर बाहर की चीजें दूसरी दिशा मे भागती नजर आती हैं यद्यपि बाहर की चीजें स्थिर हैं। इसी प्रकार चलते हुए बादलों के पीछ का स्थित चाँद ही चलता प्रतीत होता है बादल नही।

काल के आधार पर विपर्यय को (क) क्षणिक तथा (ख) स्थायी दो वर्गों म विभक्त किया जा सकता है। रस्सी देखकर साँप समझ लेना एक क्षणिक विपर्यय है। कारण रस्सी का ठीक ज्ञान थोड़ी देर बाद हो जाने पर विपर्यय समाप्त हो जाता है। स्थायी विपर्यय के सुन्दर उदाहरण हमे रेखागणित सम्बन्धी दृष्टि विपर्ययो (Geometrical-optical illusion) में मिलती है। यदि किसी के सामने पख के निशान (B) और तीर के निशान (A) वाली रेखाओ (चित्र २१ क) को उपस्थित किया जाय और उससे इन रेखाओ की तुलना करने को कहा जाय तो सम्भवत इसका उत्तर होगा कि B रेखा A से बड़ी है यद्यपि दोनो रेखाओ की लम्बाई समान या बराबर है। इसे मूलर लायर विपयय (Muller Lyer Illusion) को

संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार दो समान लम्बाई की एक खडी (रेखा C) और दूसरी पडी (रेखा D) रेखाओ मे, खडी लकीर पडी लकीर से बडी जान पडती है



[चित्र २३ —(क) मूलर-लायर विपर्यय और (ख)—खडी-पडी रेखा—विपर्यय है।]

(चित्र २३ मे 'ख' को देखें)। इस प्रकार के विपर्यय सभी मे समान रूप से पाये जाते है। अत इन्हे विश्वव्यापक विपर्यय की संज्ञा दी जाती है।

विपर्यय के कारण
(Causes of Illusion)

भिन्न-भिन्न कारणो से विपर्यय उत्पन्न हो सकता है जिनमे कुछ कारणो का उल्लेख यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

१ विरोध (Contrast)—अनेक ऐसे विपर्यय है जो विरोध (Cantrast) के कारण होते है। यह विरोध किसी प्रकार का हो सकता है। यदि एक ही वस्तु छोटी वस्तुओ के मध्य मे हो और वही पुन समान आकार की बडी वस्तुओ के मध्य मे रख दी जाय तो पहली अवस्था मे वह दूसरी मे बडी मालूम होगी। एक चवन्नी को 'पुराने पैसो' के मध्य मे रखा जाय तो वह चवन्नी आकार मे छोटी मालूम पडती है, उसी आकार की चवन्नी से जो 'नये पैसो' के बीच मे पडा है। इसी प्रकार एक साधारण कद का व्यक्ति लम्बे व्यक्तियो के बीच मे रहने से ज्यादा छोटा दीखता है, उस समय की तुलना मे जब कि यह अपने कद से छोटे व्यक्तियो के मध्य मे खडा रहता हो। इस प्रकार विरोध मे अनेक विपर्यय उत्पन्न होते हैं।

२ मानस-वृत्ति एव प्रतीक्षा (Mental Set and Expectation)—अपनी विशेष प्रकार की मानस-वृत्ति के कारण भी मनुष्य प्राय विपर्यय का अनुभव करता है। सुनसान जगह मे जहाँ प्राय चोरो का भय रहता है वहाँ पत्तो की खडखडाहट से चोरो के पद-चाप की आशका हो जाती है। इसी प्रकार वर्ग मे बैठे बालक जो छुट्टी की घण्टी सुनने को आतुर रहते हैं, उन्हे बगल के मन्दिर के घडी-घण्ट की

आवाज अपने कालेज की घण्टी की आवाज-सी प्रतीत हो जाती है। इस प्रकार मानस वृत्ति के कारण भी विपयय उत्पन्न होते हैं।

प्रतीक्षा की अवस्था में प्राय विपयय का अनुभव होता है। एक पिता जो रात्रि म अपने पुत्र के आने की प्रतीक्षा कर रहा हो उसे किसी अन्य के भी पद चाप सुनन पर अपने पुत्र के आने का ही आभास मिलता है। यह प्रतीक्षा से उत्पन्न विपयय का उदाहरण मिलता है।

३ ज्ञानेन्द्रियों के दोष (Defect of the sense organs)—कुछ विपर्यय ज्ञानेन्द्रियों के दोप के कारण होते है। जिस मनुष्य को पाण्डु रोग रहता है उसे प्राय सभी चीजें पीली दिखाई देती हैं।

४ चिन्ता तथा भय (Anxiety and fear)—चिन्ता और भय भी विपयय के कारण होते है। वन मे शैतानी करते समय कभी-कभी वन के विद्यार्थियो के वन मे प्रवेश करने पर शरारती करने म व्यस्त लडको को अपन शिक्षक के अन्दर प्रवेश करने का अनुभव होता ह। ऐसे विपयय का एक मात्र कारण शिक्षक के अन्दर प्रवेश करन का भय तथा उनके द्वारा पकड जाने पर दण्डित किये जाने की चिन्ता ही ह।

५ परिचय (Familiarity)—प्रतिदिन के जीवन में परिचय के कारण भी अनेक विपयय देखने को मिलते है। प्राय सडक पर चलते समय कोई व्यक्ति पीछे से देखन पर हम अपने किसी परिचित या मित्र जैसा लगता है। उसकी चाल, पोशाक किसी ऐसे व्यक्ति से मिलती-जुलती है जो हमारा पूर्ण परिचित हो। परन्तु जब हम उसके नजदीक पहुचते हैं तो हमारा विपयय दूर हो जाता है। हम यह पाते है कि यह तो मेरा मित्र नही वरन् कोई दूसरा ही व्यक्ति ह।

६ आदत (Habit)—विशेषकर प्रूफ रीडर (Proof readers) मे इस प्रकार का विपर्यय देखने को मिलता है। शुद्ध शुद्ध पढने की आदत होने के कारण वह प्राय अशुद्ध पद लेता ह। जस—recive का receive अथवा intilligence का Intelligence पढ लेता ह।

७ नवीनता (Novelty)—यह अक्सर देखा जाता ह कि व्यक्ति जब किसी नय शहर अथवा नही जगह म चला जाता है तो उसे दिशाओं के विषय मे विपयय होता है। उसे उत्तर की दिशा पूरब दिशा प्रतीत होने लगती है अथवा इसी प्रकार कोई दक्षिण को पश्चिम समझने लगता ह।

८ प्रसग (Context) तथा किसी वस्तु को समष्टि रूप में देखने की प्रवृत्ति—प्रसग के कारण ही रेखागणित सम्बन्धी दृष्टि विपयय (Geometrical optical illusions) होते है। यह प्रसग का ही परिणाम है कि एक खडी रेखा समान लम्बाई की पडी रेखा से बडी मालूम पडती है अथवा पखो के निशान वाली लकीर (Feather headed line) तीर के निशान वाली लकीर (Arrow headed line) के बराबर होती हुई भी उसम बडी मालूम पडती है।

अस्तु हम देखत है कि विपयय के उपयुक्त कई कारण हैं।

ध्यान
(Attention)

ध्यान क्या है ? ध्यान की विशेषता—चयनात्मक—चचल—विस्तार मे सीमित—ध्यान देने से स्पष्टता का बढ जाना—सोद्देश्य शारीरिक अभियोजन का सम्मिलित होना ।

ध्यान के प्रकार—ऐच्छिक तथा अनैच्छिक—अनभिप्रेत तथा स्वाभाविक अनैच्छिक ध्यान ।

ध्यान के निर्धारक—बाह्य एव आन्तरिक निर्धारक ।

ध्यान के बाह्य निर्धारक—उत्तेजना मे परिवर्तन—उत्तेजना की अवधि—उत्तेजना का आकार—उत्तेजना के बीच विरोध—उत्तेजना की नवीनता एव तीव्रता—उत्तेजना मे गति—उत्तेजना की स्थिति—उत्तेजना की विभिन्नता तथा उत्तेजना का स्वरूप ।

ध्यान के आन्तरिक निर्धारक—अभिरुचि—जिज्ञासा—आदत—शिक्षण—उद्देश्य तथा अभिप्राय—मनोवृत्ति—अर्थ—मानस-वृत्ति अथवा मानसिक स्थिति ।

ध्यान क्या है ?
(What is Attention)

सावधान होने की शारीरिक मुद्रा को ही ध्यान समझना गलत है । ध्यान तो एक मानसिक क्रिया है जिसकी एक शारीरिक अभिव्यक्ति सावधान होने की मुद्रा भी है । इस मानसिक क्रिया को अधिक स्पष्ट करने के विचार से कुछ मनोवैज्ञानिको ने इसे 'ध्यान' न कहकर 'ध्यान देना' कहना अधिक उपयुक्त माना है । इस मानसिक क्रिया मे आने होने वाली सम्भावित क्रियाओ के लिए प्राणी मे सतर्क होने की एक स्थिति (State of Preparedness) पायी जाती है जिसके कारण प्राणी अपनी क्रियाओ का ठीक-ठीक समयानुकूल सम्पादन कर पाता है ।

दूसरी बात यह है कि ध्यान एक चयनात्मक (Selective) क्रिया है जिसके कारण मनुष्य वातावरण मे उपस्थित अनेक उत्तेजनाओं मे से किसी एक को चुन लेता है। तब उसे अपने प्रतीतिक्षेत्र के केन्द्र (Field of consciousness) में स्थापित कर देता है। जब किसी वस्तु से उत्पन्न उत्तेजना मनुष्य के प्रतीतिक्षेत्र के केन्द्र (Focus) म चली आती है तो वह पूर्ण स्पष्ट हो जाती है। उत्तेजना के इस चुनने की क्रिया मे मनुष्य की अभिरुचि (Interest) एव मनोवृत्ति (Attitude) का विशेष हाथ रहता है। जैसे—मान लीजिए की जाडे की रात है। सामने अँगीठी जल रही है और आप एक रुचिकर उपन्यास पढने म तल्लीन हो गये है। अभी आपके शरीर मे अगीठी से निकली गर्मी लग रही है। दूर मुहल्ले मे कुछ कोलाहल की आवाज आ रही है। अगीठी मे जलती हुई लकडियो से चिटचिट की धीमी ध्वनि निकल जाया करती है। आपके शरीर में पहने गये कपडो के कारण स्पर्श की सवेदना हो रही है। दीवार पर लगी घडी टिक टिक कर रही है। नौकर आता है और चाय रखकर चला जाता है परन्तु आपको इसका कुछ पता नही लगा। इन सभी उत्तेजनाओं के बीच उपन्यास पढ रहे है तथा उसे पढने मे तल्लीन हो गये हैं। तल्लीन हो जाने का अर्थ है कि आपका ध्यान पूर्ण रूप से उपन्यास के कथानक पर लगा है अर्थात् आप उपन्यास पर ध्यान दे रहे हैं। यही हम देखते है कि आपके प्रतीतिक्षेत्र के केन्द्र में सिर्फ उपन्यास का कथानक है और कुछ नही। इस कमरे के भीतर के अन्दर और जितनी भी अन्य उत्तेजनाएँ हैं वे आपके चेतन-केन्द्र मे नही आ पा रही हैं। घडी की टिक टिक मुहल्ले का कोलाहल, यहाँ तक कि नौकर का चाय लेकर आना और रख कर चले जाने का भी ज्ञान नही हो पाता। ध्यान देने की क्रिया को चयनात्मक (Selective) इसीलिए कहा गया है कि इसमे प्राणी वातावरण मे उपस्थित सारी उत्तेजनाओं मे से एक को छाटकर अन्य की उपेक्षा कर देता है तथा एक ही उत्तेजना जैसे उपन्यास के कथानक को चेतना केन्द्र (Focus of consciousness) मे रखता है। शेष उत्तेजनाएँ उसके मानस के उपचेतना (Sub-conscious) मे रहती हैं अर्थात् वे चेतना केन्द्र म न रहकर चेतना के प्रतीतिक्षेत्र की परिधि (Margin of consciousness) के बाहर चली जाती है।

ठीक इसी प्रकार क्लास म प्रोफेसर साहब के भाषण पर लडकों के ध्यान देने की क्रिया का भी उदाहरण दिया जा सकता है। जिन लडकों की अभिरुचि पढने म है वे वर्ग भवन स दूर अथवा समीप होने हुए भी सारे शोरगुल से उत्पन्न सारी उत्तेजनाओ की उपेक्षा कर अध्यापक के भाषण पर ध्यान देते हैं अर्थात् उसे अपनी चेतना के केन्द्र म बनाये रखते हैं। ध्यान का उद्देश्य ही होता है किसी उत्तेजना विशेष का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना।

अस्तु हिन्दी म दी गयी ध्यान की इस प्रकार की उपयुक्त परिभाषा अच्छी है। ध्यान देना एक ऐसी मानसिक क्रिया है जो व्यक्ति को वातावरण में उपस्थित अनेक उत्तेजनाओं मे से अपनी मनोवृत्ति एवं अभिरुचि के अनुसार अन्य उत्तेजनाओं की

उपेक्षा कर किसी एक उत्तेजना को चुन लेने तथा उसके प्रति प्रतिक्रिया करने को बाध्य करती है।[१] यहाँ व्यक्ति की मनोवृत्ति एव अभिरुचि आदि ध्यान देने के उत्तेजनाविशेष के चुनाव (Selection) मे प्रेरक-शक्ति (Motivating force) का कार्य करती है।

ध्यान की विशेषताएँ
(Characteristics of Attention)

१ **ध्यान एक चयनात्मक मानसिक क्रिया है** (Attention is a selective process)—जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पाठको ने देखा है कि ध्यान की क्रिया किस प्रकार चयनात्मक है। किसी भी वस्तु-विशेष पर जब व्यक्ति ध्यान देता है तो अन्य वस्तुओ मे से उस वस्तु-विशेष को चुन लेता है। जब मेले मे किसी खिलौने की दूकान की ओर कोई आकृष्ट हो जाता है तो अन्य दूकानो को छोडकर अपनी पसन्द की उस दूकान पर ध्यान देना पाया जाता है। इसी प्रकार उस दूकान के खिलौने मे से जब अपने मनपसन्द खिलौने पर वह ध्यान देता है तो उस दूकान मे सजाये गये अन्य खिलौने उसके चेतना केन्द्र से हट कर चेतना की परिधि से प्राय बाहर चले जाते है। इस प्रकार हम देखते है कि ध्यान की क्रिया मे सभी वर्तमान उत्तेजनाओ मे से प्राय किसी एक का चयन होता है।

२ **ध्यान स्वभावत चचल होता है** (Attention is always shifting)—हमारा ध्यान सदा एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर बदलता रहता है। अभी इस क्षण एक वस्तु हमारे ध्यान-केन्द्र (Focus of Attention) मे है तो दूसरे क्षण कोई दूसरी वस्तु ध्यान मे चली आती है। घर या बाहर सभी जगह हमारे दैनिक जीवन मे इसके उदाहरण भरे पडे है। यहाँ तक कि जब हम एकाग्रचित होकर अपनी पुस्तक भी पढते होते हैं तो भी हमारा ध्यान एक पक्ति से दूसरी पक्ति पर, एक शब्द से दूसरे शब्द पर और एक अक्षर से दूसरे अक्षर पर जाता रहता है। ध्यान-नियन्त्रण (Control of Attention) का यह अर्थ नही है कि किसी उत्तेजना अथवा वस्तु विशेष को जब तक जा चाहे अपने ध्यान-केन्द्र मे रखें। व्यक्ति इसमे सफल भी नही होता। इसी परिस्थिति मे ध्यान-विचलन (Fluctuation of Attention) अथवा ध्यान-विभाजन (Division) की क्रिया होती पायी जाती है। ध्यान-नियन्त्रण द्वारा हम ध्यान की चचलता को रोक नही सकते। हम सिर्फ इतना नियत्रण कर सकते है कि किस वस्तु के बाद हम किस वस्तु पर ध्यान देगे। ध्यान की वस्तु (Object of Attention) किसके बाद कौन होगी, ध्यान-नियन्त्रण द्वारा बस इतना ही सम्भव है। बालको का ध्यान वयस्को के बनिस्पत और भी अधिक चचल रहता है।

---

१ Attention is to attend and to attend is to get a set or state of readiness to perceive a certain object or to perform a certain act"
—Woodworth

यदि मनुष्य प्रयास करके किसी एक ही उत्तेजना पर लगातार थोड़ी देर के लिए ध्यान देता रहता है तो ऐसा भी पाया जाता है कि वह उत्तेजना कभी स्पष्ट प्रतीत होती है तो कभी धूमिल तो कभी उत्तेजना समग्र गायब हो गयी प्रतीत होती है। उत्तेजना विशेष की स्पष्टता की मात्रा घटते घटते एकदम समाप्त (Disappearance) हो जाती है और दूसरे ही क्षण बढ़ते बढ़ते फिर स्पष्ट (Appearance) हो जाती है। व्यक्ति की उत्तेजना की बदलती अवस्थाओं का प्रत्यक्षीकरण होता है जिसमे स्पष्टता का मात्रा भेद (*Difference in the degree of clearness*) होता है। ध्यान की इस अवस्था को मनोवैज्ञानिकों ने ध्यान विचलन अथवा ध्यान प्रखरता प्रवाह (Fluctuation of attention) की संज्ञा दी है। जैसे—किसी टिक टिक् करने वाली घड़ी को अपने से इतनी दूर पर रख आइये जहाँ से काफी ध्यान देने पर उसकी टिक टिक आपको सुनाई पड़े। फिर उस टिक् टिक पर आप अपने ध्यान को लगा दें और यह प्रयास करें कि आप हरेक टिक टिक ध्वनि को सुन सकें। ध्यान की इस अवस्था में आपको टिक टिक् ध्वनि स्पष्ट कभी कम स्पष्ट एवं कभी एकदम नहीं सुनाई पड़ती। टिक टिक ध्वनि का कभी प्रत्यक्षीकरण होना और कभी न होना—ध्यान की इसी विशेषता को ध्यान प्रखरताप्रवाह (Fluctuation of attention) की विशेषता कहते हैं।

जब हम ध्यान स्थानान्तरण (Shift in attention) की विशेषता की बात करते हैं तो इसका अर्थ होता है कि यहाँ एक नहीं वरन एक से अधिक उत्तेजनाएं हैं और हमारा ध्यान कभी इनमें से एक उत्तेजना पर जाता है तो कभी दूसरी पर।

अस्तु हम देखते हैं कि चाहे एक उत्तेजना के दृष्टिकोण से विचार किया जाय अथवा एक से अधिक उत्तेजनाओं के दृष्टिकोण से विचार किया जाय प्रत्येक दशा में ध्यान की क्रिया अस्थिर एवं चपल प्रतीत होती है।

९ किसी भी क्षण में ध्यान का विस्तार बहुत सीमित होता है (Attention at one moment is limited to a narrow range)—हम एक बार बहुत सी उपस्थित चीजों में से सिर्फ बहुत थोड़ी सी चीजों पर ध्यान दे पाते हैं। बहुत सी उत्तेजनाओं को व्यक्ति के सामने उपस्थित किये जाने पर उन्हें एक क्षणमात्र में देखकर वह व्यक्ति उनमे से जितनी उत्तेजनाओं को अपने चेतना-केन्द्र में ला पाता है उसी को उस व्यक्ति विशेष का ध्यान विस्तार (Span of attention) कहा जाता है। प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि व्यक्ति का ध्यान विस्तार किसी तरह की उत्तेजना के लिए सीमित ही होता है। खासकर बिन्दु अक्षर अथवा अंक इत्यादि के लिए मनुष्यों का ध्यान विस्तार प्राय ६ से ११ के बीच होता है। टचिस्टास्कोप (Tachistoscope) नामक यन्त्र के सहारे यह प्रयोग करके देखा गया है कि यदि व्यक्ति को क्षण भर के लिए बहुत से बिन्दु दिखलाये जायें तो वह एक क्षण में ६ से ११ बिन्दुओं पर ही अपना ध्यान दे पाता है। शेष बिन्दु उसके चेतना केन्द्र से बाहर रह जाते हैं। सार्थक पदार्थों (Meaningful materials) की दशा में निरर्थक पदार्थों की अपेक्षा ध्यान का विस्तार अधिक पाया जाता है।

४. ध्यान देने से उत्तेजना-विशेष की स्पष्टता बढ जाती है (Attention increases the clearness of stimulus)—ध्यान देने के कारण उत्तेजनाविशेष हमारे चेतना-केन्द्र मे चली आती है जिसके कारण उसकी स्पष्टता बहुत बढ जाती है। हम जिस वस्तु पर ध्यान देते है उनके छोटे-छोटे अवयवो अथवा भागो का भी हमे साफ साफ प्रत्यक्षीकरण होता है। मैं जिस टेबुल पर अभी लिख रहा हूँ, इस पर मेरी इस कापी के अलावा घडी, पेपरवेट, फोटोफ्रेम, लैम्प, दस्ती इत्यादि बहुत-सी चीजे रखी है। पर अभी चूँकी मेरा ध्यान लिखने के कागज पर है, अत टेबुल पर रखे फोटो को मैं नही देख पा रहा हूँ। टेबुल पर जो चीज मेरे लिखने के इस कागज से जितनी दूर है, वह मुझे उतनी ही कम स्पष्ट दिखाई देती है। लेकिन जब मैं अपना ध्यान कागज से हटा कर उस फोटो की ओर ले आता हूँ तो उस चित्र का एक-एक भाग पूर्ण स्पष्टता से देख पाता हूँ हालांकि जब मेरा ध्यान फोटो पर चला जाता है तो इस कागज की लिखावट मेरी दृष्टि मे या तो धुँधली हो जाती है या बिलकुल लुप्त-जैसी हो जाती है।

यही कारण है कि ध्यान से पुस्तक पढने अथवा अध्यापक की बात सुनने से लिखी गयी या कही गयी बातें अधिक स्पष्टता से समझ मे आती है।

५ ध्यान सोद्देश्य होता है (Attention is purposive)—साधारणत ध्यान देने की प्रतिक्रिया के पीछे कोई-न-कोई प्रेरक शक्ति (Motive) काम करती रहती है। अस्तु, व्यक्ति जब किसी उत्तेजना-विशेष पर अपनी-अपनी अभिलाषा के अनुसार ध्यान देता है तो उसके पीछे उसके किसी-न-किसी उद्देश्य की प्राप्ति का लक्ष्य छिपा रहता है। विद्यार्थी जब अपनी पुस्तको को पढने मे ध्यान देता है तो उसका उद्देश्य होता है परीक्षा मे अच्छी तरह उत्तीर्ण होकर प्रतिष्ठा प्राप्त करना। जब कोई विद्यार्थी पढाई से अधिक फैशन पर ध्यान देने लगता है तो उसका उद्देश्य होता है दूसरो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना।

परन्तु इसके अतिरिक्त, ऐसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो जाती है जब मनुष्य का ध्यान बिना किसी निश्चित उद्देश्य के भी किसी उत्तेजना-विशेष की ओर चला जाता है। ऐसी परिस्थितियो मे उत्तेजना-विशेष मे ऐसी विलक्षणता अथवा विशिष्ट गुण होते है कि हमारा ध्यान—बरबस उनकी ओर चला जाता है। जैसे—अभी अचानक अगर एक हवाई जहाज इस कमरे के ऊपर से उडता हुआ चला जाय तो उसकी ओर हमारा ध्यान अनायास चला जाता है। परिस्थिति की नवीनता की ओर हम ध्यान दिये बिना नही रहते। परन्तु ध्यान से देखा जाय तो यहाँ भी व्यक्ति मे उसकी जिज्ञासा की सतुष्टि देखी जाती है।

६ ध्यान की क्रिया मे शारीरिक अभियोजन सम्मिलित होता है (Attention involves bodily adjustment)—ध्यान की क्रिया मे मानसिक अभियोजन के अतिरिक्त शारीरिक अभियोजन भी पाया जाता है। जब हम किसी वस्तु को बहुत ध्यान मे देखते है तो केन्द्रीय स्नायुमण्डल के अभियोजन (Central nervous-

system s adjustment) के अतिरिक्त हमारे ग्राह्य केन्द्रीय (Receptors) शरीर की मुद्रा (Pose) मांसपेशियों इत्यादि में भी अभियोजन होते पाये जाते हैं। ये शारीरिक अभियोजन ध्यान के क्षेत्र में आयी हुई उत्तेजना विशेष की स्पष्टता को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। केन्द्रीय स्नायुमण्डल के अभियोजन के अलावा निम्नलिखित शारीरिक अभियोजन पाये जाते हैं।

१ ग्राह्य केन्द्रीय अभियोजन (Receptor adjustment) — जब हम किसी दृष्टि-उत्तेजना (Visual stimulus) पर ध्यान देते हैं तो हमारी आँखें उस उत्तेजना की ओर मुड़ जाती हैं। हम एकटक उसे देखते रहते हैं। आँखों की पलकों का उठना गिरना कम हो जाता है। इसी प्रकार किसी ध्वनि की ओर ध्यान देने के समय हमारे कान उसपर लग जाते हैं तथा उसके अन्दर की पेशियों में ध्वनि विशेष को ग्रहण करने के लिए विशेष तत्परता (Readiness) उत्पन्न हो जाती है। ठीक इसी प्रकार जब हम किसी सुगन्धि पर ध्यान देते हैं तो अपनी नाक को सुगन्धित पदार्थ की ओर कर देते हैं अथवा उसके समीप ले जाने का प्रयास करते हैं।

२ शरीर की मुद्राओं द्वारा किया गया अभियोजन (Postural adjustment) — कक्षा में अध्यापक के भाषण को ध्यान से सुनते समय छात्रों का शरीर कुछ न कुछ अध्यापक की ओर झुक जाता है। गरदन हाथ पर इत्यादि सब-के-सब एक मुद्रा विशेष में हो जाते हैं। कोई अध्यापक की ओर गरदन उठाये एकटक अध्यापक को देखता होता है। उसके कान अध्यापक की आवाज की ओर कुछ मुड़ रहते हैं। कुछ तो हथेली पर गाल रखे भाषण पर ध्यान देते रहते हैं। ध्यान के समय शरीर शान्त रहता है। हिलना-डुलना भी बहुत कम हो जाता है। साँस की गति एवं रक्त संचार में भी परिवर्तन पाये गये हैं। अत्यधिक ध्यान की अवस्था में श्वास अत्यन्त धीमी हो जाती है। अस्तु इसे श्वासान्त ध्यान (Breathless attention) या श्वास रहित ध्यान कहते हैं। यह बात कोई प्रभावोत्पादक भाषण हाल समय व्यक्ति की मुद्राओं का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो सकेगी। ध्यान की अवस्था म मांसपेशियों मे कुछ तनाव भी (Muscle tension) उत्पन्न हो जाता है। तनाव की तीव्रता अधिकतर उत्तेजना से सम्बन्धित ग्राह्यकेन्द्रीय म अधिक पायी जाती है। अस्तु हम देखते हैं कि ध्यान देने की क्रिया में शरीर में बाहरी एवं भीतरी (External and Internal) दोनों प्रकार के परिवर्तन (Change) एवं अभियोजन होते ह।

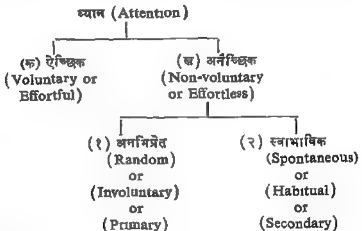
ध्यान के प्रकार
(Kinds of Attention)

ध्यान देन की क्रिया मनुष्य म जन्म से लेकर मरण तक पायी जाती है वातावरण स उचित अभियोजन क दृष्टिकोण स भिन्न परिस्थितियों म उत्पन्न भिन्न भिन्न उत्तेजनाओं पर ध्यान देना प्राणी के लिए आवश्यक होता है। मनुष्यों

के ध्यान की सारी क्रियाओ को मनोवैज्ञानिको ने निम्नलिखित प्रमुख प्रकारो मे बाँटा है—

(क) ऐच्छिक ध्यान (Voluntary Attention)—ऐच्छिक ध्यान बालको से अधिक व्यस्को मे पाया जाता है। इस प्रकार के ध्यान के तीन प्रमुख तत्त्व है—(१) व्यक्ति की इच्छा (Desire), (२) व्यक्ति के सामने कोई लक्ष्य (Aim) या ध्येय तथा (३) व्यक्ति का प्रयास (Attempt or Endeavour)।

इसमे मनुष्य अपनी इच्छा अभिरुचि के अनुकूल किसी उत्तेजना-विशेष पर ध्यान देता है। इस प्रकार के ध्यान की क्रिया मे कोई बाधक उत्तेजना (Distraction) क्रियाशील हो जाती है तो व्यक्ति उस बाधक उत्तेजना की उपेक्षा करने



का भरपूर प्रयास करता है और अपने ध्यान की क्रिया को भग (Break of attention) नही होने देता।

मान लीजिए कि मनोविज्ञान पढने मे किसी छात्र का जी नही लगता। फिर भी, परीक्षा नजदीक आने पर वह खेलना, घूमना-फिरना, सिनेमा, ताश इत्यादि को छोडकर मनोविज्ञान पढने मे ध्यान लगाता है।

अगर घर के आस-पास के शोरगुल से बाधा भी पहुँचती है तो परीक्षा पास करने के ध्येय से इच्छापूर्ण वह पाठ्य-विषय पर ध्यान लगाये रहने का प्रयास करता है। इस प्रकार के ध्यान को ऐच्छिक ध्यान (Voluntary or Effortful attention) कहते है।

(ख) अनैच्छिक ध्यान (Non voluntary attention)—अनैच्छिक ध्यान की क्रिया मे मनुष्य जानबूझ कर ध्यान नही देता, बल्कि उत्तेजना-विशेष मे कुछ ऐसे गुण होते हैं जिनके कारण हमारा ध्यान अनायास उस उत्तेजना-विशेष की ओर चला जाता है। मनोवैज्ञानिको ने इसे 'निष्प्रयास ध्यान' (Effortless attention)

कह कर पुकारा है। अनिच्छित ध्यान को मनोवैज्ञानिकों ने दो भागों में बाँटा है—पहला है अनभिप्रेत ध्यान और दूसरा स्वाभाविक ध्यान।

१ अनभिप्रेत अनैच्छिक ध्यान (Random or Involuntary attention)—उत्तेजना विशेष कुछ इतनी प्रबल एवं आकर्षक होती है कि हम अपने ध्यान को उस ओर जाने देने से रोक नहीं पाते। कभी-कभी तो हम रोकने की भरपूर कोशिश अगर करते भी हैं तो हमारा ध्यान उस उत्तेजना विशेष की ओर चला ही जाता है। यहाँ हमारी इच्छा तथा अभिरुचियों का स्थान गौण रहता है जैसे—बादल की गड़गड़ाहट पर हमारा ध्यान तुरन्त चला जाता है। अगर कमरे के बरामदे पर कोई गदहा चलता नजर आये तो हमारा ध्यान, हमारी इच्छा रहे या नहीं उस ओर चला ही जाता है। मनुष्य के जीवन के आरम्भ में अनैच्छिक ध्यानों की ही प्रधानता रहती है। पर इस ध्यान की शक्ति मनुष्य में धीरे धीरे परिपक्वता के साथ-साथ घटती जाती है। बच्चों का ध्यान चमकीली चीजों तथा नये खिलौने अथवा भिन्न भिन्न आवाजों पर तुरत चला जाता है। इसमें बच्चे की इच्छा से अधिक उत्तेजना की नवीनता सामीप्य तीव्रता चमक इत्यादि का महत्त्व रहता है। विकासीय दृष्टिकोण से अनैच्छिक ध्यान का विकास मनुष्यों में पहले होता है। अस्तु इस प्रकार के ध्यान को कुछ मनोवैज्ञानिकों ने प्रारम्भिक ध्यान (Primary attention) की संज्ञा दी है।

अगर हम ध्यान से देखें तो इस प्रकार के ध्यान में मनुष्य की इच्छाओं की अवहेलना ही होती है। कभी कभी तो हम अपनी इच्छा के प्रतिकूल भी उत्तेजना पर ध्यान देना पड़ता है। इस रूप में हमारा ध्यान पूर्ण अनैच्छिक होता है। जैसे—अभी मैं लिख रहा हूँ और अगर कोई मित्र महोदय आकर दरवाजे पर बार-बार खट खट करें तो भी एक देर के बाद मुझे पूर्ण अनिच्छा रहने पर भी उधर ध्यान देना ही पड़ेगा। अतः कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे अनभिप्रेत ध्यान की संज्ञा देना अधिक उचित समझा है।

स्वाभाविक अनैच्छिक ध्यान (Spontaneous or Habitual nonvoluntary attention)— स्वाभाविक ध्यान भी एक प्रकार का अनैच्छिक ध्यान ही होता है। ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब किसी उत्तेजना विशेष की ओर हमारा ध्यान सहसा चला जाता है। उत्तेजनाओं का हमारी अभिरुचि शिक्षा अभ्यास मनोवृत्ति इत्यादि से कुछ इतना निकट का सम्बन्ध होता है कि हमारा ध्यान खींच कर चला जाता है। एक विद्वान् का ध्यान उसकी रुचि से सम्बन्धित किसी भी नयी पुस्तक पर सहसा चला ही जाता है। संगीत प्रेमियों का ध्यान संगीत की ओर गये बिना नहीं रह सकता। एक सिविल इंजिनियर का ध्यान सड़क अथवा मकानों की बनावट की ओर एक हजाम का ध्यान आपके बालों की ओर सड़क पर दूकान खोले मोची का ध्यान आपके जूतों की ओर अथवा किसी युवक का ध्यान किसी युवती की ओर जाना स्वाभाविक अनैच्छिक ध्यान के अच्छे उदाहरण हैं। इसी प्रकार एक चित्रकार

का ध्यान किसी चित्र, पेंटिंग या रँगाई (Painting) पर चला जाता है। यहाँ ध्यान जाने के लिए चित्रकार की अपनी रुचि, अभ्यास, शिक्षा, स्वभाव इत्यादि का हाथ रहता है। अर्जित (Aquired), प्रेरक-शक्तियो (Motivating forces) तथा जन्म-जात (Inborn) शक्तियो का प्रभाव भी ध्यान देने की क्रिया पर स्पष्ट देखा जाता है। अत भूख की अवस्था मे भोजन पर, प्यास की अवस्था मे पानी पर, कामोद्दीपन की अवस्था मे विपरीत योनि के व्यक्तियो पर ध्यान गये बिना नही रहता।

किसी उत्तेजना की ओर दिये गये ऐच्छिक ध्यान को व्यक्ति यदि उसी उत्तेजना के लिए बार-बार दुहराता है तो अभ्यास के फलस्वरूप ऐच्छिक ध्यान बदल कर स्वाभाविक ध्यान का रूप धारण कर लेता है। स्वाभाविक ध्यान के लिए व्यक्ति का उस उत्तेजना पर ध्यान देने का भूतकाल मे किया गया अभ्यास बहुत महत्त्वपूर्ण है। कवि की कविता पर ध्यान देने का अभ्यास बहुत हो चुका है। इसीलिए किसी नयी कविता की ओर उसका ध्यान बिना किसी उपक्रम के सहसा चला जाता है। अत स्वाभाविक ध्यान को अभ्यासात्मक ध्यान कहा जाता है।

ध्यान निर्धारक

(Conditions of Determiners of Attention)

अब तक हम लोगो ने देखा है कि हम जान कर कुछ चीजो पर ध्यान देते है तथा कुछ पर हमारा ध्यान स्वभावत बिना विशेष प्रयास के ही चला जाता है। अब हमे देखना है कि किसी वस्तु पर ध्यान चले जाने का क्या कारण है। इन्ही कारणो को अँगरेजो मे Causes or Reasons or Conditions or Determiners or Factors of Attention की संज्ञा दी गयी है। हिन्दी मे इन्हे 'ध्यान निर्धारक' या 'ध्यान प्रतिबन्धक' की संज्ञा दी गयी।

सच तो यह है कि कई कारणो से हमारा ध्यान किसी उत्तेजना विशेष की ओर जाता है। इन कारणो को स्पष्ट रूप से समझने के लिए मनोवैज्ञानिको ने इन्हें दो भागो मे बाँटा है—

(क) वाह्य निर्धारक (Objective conditions)

(ख) आन्तरिक निर्धारक (Subjective conditions)।

वाह्य निर्धारको के अन्तर्गत हम उन अवस्थाओ (Conditions) को रखते है जिनमे किसी वस्तु-विशेष की ओर हमारा ध्यान उस वस्तु से उत्पन्न उत्तेजना (Externals timulus) के स्वरूप, आकार, रग, स्थिति, प्रबलता परिवर्तन पुनरावृत्ति इत्यादि के कारण चला जाता है। ये कारण अथवा निर्धारक सर्वथा उस वस्तु मे उत्पन्न उत्तेजना की विशेषता एव वाह्य वातावरण से सम्बन्ध रखते है।

ठीक इनके विपरीत कुछ ऐसे कारण है जो ध्यान देने की वस्तु से नही, वल्कि ध्यान देने वाले व्यक्ति की आन्तरिक अवस्थाओ से सम्बन्ध रखते है। जसे—व्यक्ति की किसी उत्तेजना एव वस्तु पर ध्यान जाने के इन आन्तरिक कारणो, जैसे—मनो-

वृत्ति, आनन्द, निद्रा, जिज्ञासा इत्यादि को आन्तरिक निर्धारक कहते हैं। यह आन्तरिक कारणों का ही प्रभाव है कि वातावरण में उपस्थित समान रूप से आकर्षक वस्तुओं के रहते भी एक व्यक्ति, एक समय सभी पर ध्यान न देकर अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुकूल किसी एक [illegible] उत्तेजना विशेष पर ध्यान लगा पाया जाता है।

(ख) बाह्य निर्धारक (External or Objective conditions)

१. उत्तेजना में परिवर्तन—यदि व्यक्ति के निकट के वातावरण में उपस्थित सामान्य उत्तेजनाओं में अचानक कोई परिवर्तन आ जाय तो उस व्यक्ति का ध्यान उस उत्तेजना के परिवर्तन की ओर चला जाता है। जैसे—गर्मी के दिनों में सहसा रात में बिजली के चलते [illegible] पंखे बन्द हो जाय अथवा दिन में काले-काले बादल उमड़ उठें तो विद्यार्थियों का ध्यान उस ओर चला जायगा। कॉलेज के शान्त वातावरण में अगर लड़के सहसा शोरगुल करने लगें तो शोरगुल की तरफ हमारा ध्यान चला जाता है। यहाँ ध्यान देने की एक बात यह है कि ये परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं।

(क) क्रमिक परिवर्तन (Gradual change)

(ख) आकस्मिक परिवर्तन (Sudden change)।

यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि वातावरण में होने वाले अचानक परिवर्तन ही हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट कर पाते हैं। जो परिवर्तन धीरे-धीरे होता है उस तरफ या तो हमारा ध्यान जाता ही नहीं और जाता भी है तो कभी-कभी, जैसे—मौसम का बदलना, सुबह के प्रकाश एवं गर्मी का सन्ध्या तक घटना या बढ़ना आदि। जो परिवर्तन जितना ही धीरे-धीरे होता है उधर हमारा ध्यान उतना ही कम जाता है। यदि सहसा भूकम्प आ जाय, पड़ोस में आग लग जाय, रेलगाड़ी चलते-चलते सहसा रुक जाय या भाषण करता हुआ कोई व्यक्ति गश खाकर सहसा गिर जाय, भाषण में लाउड-स्पीकर एकाएक बन्द हो जाय, शहरों में अचानक बिजली की लाइन कट जाय इत्यादि तो उत्तेजना के ऐसे परिवर्तनों की ओर हमारा ध्यान चला जाता है।

२. उत्तेजना की पुनरावृत्ति (Repetition of the stimulus)— ध्यान आकृष्ट करने के लिए उत्तेजना विशेष की पुनरावृत्ति आवश्यक है। हो सकता है दरवाजे पर आये हुए आपके मित्र के एक बार दरवाजा खटखटाने पर आपका ध्यान नहीं जाय और आप अपने कमरे में पढ़ने में लगे रहें। परन्तु आपके मित्र अगर बार-बार दरवाजा खटखटाते चले जायें तो आपका ध्यान दरवाजे की ओर जरूर चला जायगा। बार-बार एक ही उत्तेजना के उपस्थित होने पर हमारा ध्यान उसकी ओर गये बिना नहीं रहता। एक व्याख्यानदाता अपनी बातों को बार-बार जनता के सामने सिर्फ इसलिये उपस्थित करता है कि जनता का ध्यान उसकी ओर पूर्ण रूप से जा सके। शिक्षक एक ही बात को बार-बार दुहराते हैं जिससे कि लड़के ध्यान दें और बात समझ जायें। यही कारण है कि प्रचारक (Propagandist)

अपनी वातो का प्रचार (Advertisement) बार-बार करता है। यदि पुनरावृत्ति (Repetition) के साथ साथ उत्तेजनाओ का परिवर्तन (Change) भी करता चला जाय तो उस उत्तेजना की ओर ध्यान चला जाता है। अत प्रचारक अपनी वातो का प्रचार बदलते हुए विज्ञापनो द्वारा करता है। अखबारो के लिये चाय, सिगरेट, साबुन, सायकिल, सेण्ट, सेण्टेड तेल इत्यादि के प्रचार मे हम पुनरावृत्ति ही नही पाते वरन् हरएक बार उसमे कुछ न कुछ परिवर्तन एव नयापन (Novelty) भी पाते है। रेडियो-केन्द्र के व्यापार-विभाग के द्वारा भी प्रचार के लिये पुनरावृत्ति एव परिवर्तन की विधि खूब अपनायी जाती है। उदाहण के लिये, 'सिलोन-रेडियो-केन्द्र' का व्यापार-विभाग लिया जा सकता है।

३ उत्तेजना की अवधि—(Duration of the stimulus)—जो उत्तेजना हमारे समक्ष अधिक समय तक रहती है उस पर हमारा ध्यान विशेष कर चला जाता है। अगर कोई उत्तेजना क्षण भर के लिये हमारे समक्ष उपस्थित हो तो हमारा ध्यान उस तरफ नही भी जा सकता है। यही कारण है कि प्रचारक होटलो के टेबुल की ऊपरी सतह पर लगे शीशे के अन्दर अपना विज्ञापन लगा देता है ताकि ग्राहक का ध्यान उस पर गये विना नही रहे, क्योकि वह वहाँ कुछ देर ठहरता है। अगर एक ही वस्तु का विज्ञापन सडको पर घण्टों किया जाय तो हमारा ध्यान उधर चला जाता है। अधिक अवधि बढाने के लिये पुनरावृत्ति एव परिवर्तन की विधियो का भी सहारा लेना पडता है।

४ उत्तेजना का आकार (Size of the object)—जो उत्तेजना जितनी बडी है उस पर हमारा ध्यान उतना ही जल्द चला जाता है। अपेक्षाकृत छोटे उत्तेजक हमारा ध्यान आकृष्ट नही कर पाते। यही कारण है कि समाचार-पत्रो मे विज्ञापन दाता अपना विज्ञापन बडे-बडे अक्षरो मे छपवाते है। कभी-कभी तो वे पूरे पेज पर अपना एक ही विज्ञापन छपवाते है। विशाल पानी टकी, विशाल भवन, विशाल-काय आदमी या जानवर इत्यादि पर भी हमारा ध्यान जल्द चला जाता है।

५ उत्तेजना के बीच विरोध (Contrast)—हमारा ध्यान किसी बडे जानवर अथवा भवन पर सिर्फ इसलिये नही चला जाता है कि उन उत्तेजनाओ का आकार बडा है बल्कि इसलिये भी चला जाता है कि बडे उत्तेजक तथा उसी प्रकार के छोटे उत्तेजको की उत्तेजनाओ मे विरोधाभास का अन्तर है। जब बडे हाथी पर ध्यान चला जाता है तब हमारे मस्तिष्क मे हाथी की तुलना आप-से आप छोटे जानवरो से भी हो जाती है। अस्तु, 'विरोध और आकार' दोनो ध्यान-निर्धारको को एक-दूसरे का पूरक समझना चाहिये। दो उत्तेजनाओ के बीच जितना ही अधिक विरोध है उतना ही अधिक शीघ्र ध्यान उन पर जाता है जैसे—पौष्टिक दवा के विज्ञापन मे आपने देखा होगा कि बीच मे दवा का नाम लिखा होता है तथा एक ओर एकदम ठठरी जैसा कमजोर व्यक्ति का चित्र होता है और दूसरी तरफ एक पहलवान व्यक्ति का चित्र होता है। दोनो के बीच क्रमश लिखा होता है, 'दवा

वृत्ति आदर, *दिशा जिज्ञासा इत्यादि को आन्तरिक निर्धारक कहते है।* यह आन्तरिक कारणों का ही प्रभाव है कि वातावरण मे उपस्थित समान रूप से आकर्षक वस्तुओं के बीच भी एक व्यक्ति एक समय सभी पर ध्यान न देकर अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुकूल किसी एक ही उत्तेजना विषय पर ध्यान देता पाया जाता है।

(क) बाह्य निर्धारक (External or Objective conditions)

१ उत्तेजना में परिवर्तन— यदि व्यक्ति के निकट के वातावरण में उपस्थित सामान्य उत्तेजनाओं म अचानक कोई परिवर्तन आ जाय तो उस व्यक्ति का ध्यान उस उत्तेजना के परिवर्तन की ओर चला जाता है जैसे—गर्मी के दिनों म सहसा क्लास मे बिजली के चलते हुए पंखे बन्द हो जायें अथवा दिन म सारे के-सारे बल्ब जल उठें तो विद्यार्थियों का ध्यान उस ओर चला जायगा। कॉलेज के शान्त वातावरण म अगर लड़के सहसा शोरगुल करने लगें तो शोरगुल की तरफ हमारा ध्यान चला जाता है। यहाँ ध्यान देने की एक बात यह है कि ये परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं।

(क) क्रमिक परिवर्तन (Gradual change)

(ख) आकस्मिक परिवर्तन (Sudden change)।

यहाँ पर यह देना आवश्यक है कि वातावरण मे होने वाले अचानक परिवर्तन *ही हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट कर पाते है। जो परिवर्तन धीरे-धीरे होता है* उस तरफ या तो हमारा ध्यान जाता ही नही और जाता भी है तो कभी-कभी, जैसे— मौसम का बदलना, सुबह से प्रकाश एवं गर्मी का सध्या तक घटना या बढ़ना आदि। जो परिवर्तन जितना ही धीरे धीरे होता है उधर हमारा ध्यान उतना ही कम जाता है। यदि सहसा भूकम्प आ जाय पड़ोस म आग लग जाय, रेलगाड़ी चलते-चलते सहसा रुक जाय या भाषण करता हुआ कोई व्यक्ति गश खाकर सहसा गिर जाय भाषण मे लाउड-स्पीकर एकाएक बन्द हो जाय शहरों म अचानक बिजली की लाइन कट जाय इत्यादि तो उत्तेजना के ऐसे परिवर्तनो की ओर हमारा ध्यान चला जाता है।

२ उत्तेजना की पुनरावृत्ति (Repetition of the stimulus)— ध्यान आकृष्ट करने के लिए उत्तेजना विषय की पुनरावृत्ति आवश्यक है। हो सकता है दरवाजे पर आये हुए आपके मित्र के एक बार दरवाजा खटखटाने पर आपका ध्यान नही जाये और आप अपने कमरे में पढने मे लगे रहें। परन्तु आपके मित्र अगर बार-बार दरवाजा खटखटाते चले जायें तो आपका ध्यान दरवाजे की ओर जरूर चला जायगा। बार-बार एक ही उत्तेजना के उपस्थित होने पर हमारा ध्यान उसकी ओर गये बिना नही रहता। एक व्याख्यानदाता अपनी बातों को बार बार जनता के सामने सिर्फ इसलिये उपस्थित करता है कि जनता का ध्यान उसकी ओर पूर्ण रूप से जा सके। शिक्षक एक ही बात को बार-बार दुहराते हैं जिससे कि लड़के ध्यान दें और बात समझ जायें। यही कारण है कि प्रचारक (Propagandist)

अपनी बातो का प्रचार (Advertisement) बार-बार करता है। यदि पुनरावृत्ति (Repetition) के साथ साथ उत्तेजनाओ का परिवर्तन (Change) भी करता चला जाय तो उस उत्तेजना की ओर ध्यान चला जाता है। अत प्रचारक अपनी बातो का प्रचार बदलते हुए विज्ञापनो द्वारा करता है। अखबारो के लिये चाय, सिगरेट, साबुन, सायकिल, सेण्ट, सेण्टेड तेल इत्यादि के प्रचार मे हम पुनरावृत्ति ही नही पाते वरन् हरएक बार उसमे कुछ न कुछ परिवर्तन एव नयापन (Novelty) भी पाते है। रेडियो-केन्द्र के व्यापार-विभाग के द्वारा भी प्रचार के लिये पुनरावृत्ति एव परिवर्तन की विधि खूब अपनायी जाती है। उदाहरण के लिये, 'सिलोन-रेडियो-केन्द्र' का व्यापार-विभाग लिया जा सकता है।

३ उत्तेजना की अवधि—(Duration of the stimulus) --जो उत्तेजना हमारे समक्ष अधिक समय तक रहती है उस पर हमारा ध्यान विशेष कर चला जाता है। अगर कोई उत्तेजना क्षण भर के लिये हमारे समक्ष उपस्थित हो तो हमारा ध्यान उस तरफ नही भी जा सकता है। यही कारण है कि प्रचारक होटलो के टेबुल की ऊपरी सतह पर लगे शीशे के अन्दर अपना विज्ञापन लगा देता है ताकि ग्राहक का ध्यान उस पर गये बिना नही रहे, क्योकि वह वहाँ कुछ देर ठहरता है। अगर एक ही वस्तु का विज्ञापन सडको पर घण्टों किया जाय तो हमारा ध्यान उधर चला जाता है। अधिक अवधि बढाने के लिये पुनरावृत्ति एव परिवर्तन की विधियो का भी सहारा लेना पडता है।

४ उत्तेजना का आकार (Size of the object)—जो उत्तेजना जितनी बडी है उस पर हमारा ध्यान उतना ही जल्द चला जाता है। अपेक्षाकृत छोटे उत्तेजक हमारा ध्यान आकृष्ट नही कर पाते। यही कारण है कि समाचार-पत्रो मे विज्ञापन दाता अपना विज्ञापन बडे-बडे अक्षरो मे छपवाते है। कभी-कभी तो वे पूरे पेज पर अपना एक ही विज्ञापन छपवाते हे। विशाल पानी टकी, विशाल भवन, विशालकाय आदमी या जानवर इत्यादि पर भी हमारा ध्यान जल्द चला जाता है।

५ उत्तेजना के बीच विरोध (Contrast)—हमारा ध्यान किसी बडे जानवर अथवा भवन पर सिर्फ इसलिये नही चला जाता है कि उन उत्तेजनाओ का आकार बडा है बल्कि इसलिये भी चला जाता है कि बडे उत्तेजक तथा उसी प्रकार के छोटे उत्तेजको की उत्तेजनाओ मे विरोधाभास का अन्तर है। जब बडे हाथी पर ध्यान चला जाता है तब हमारे मस्तिष्क मे हाथी की तुलना आप-से आप छोटे जानवरो से भी हो जाती है। अन्तु, 'विरोध और आकार' दोनो ध्यान-निर्धारको को एक-दूसरे का पूरक समझना चाहिये। दो उत्तेजनाओ के बीच जितना ही अधिक विरोध है उतना ही अधिक शीघ्र ध्यान उन पर जाता है जैसे—पौष्टिक दवा के विज्ञापन मे आपने देखा होगा कि बीच मे दवा का नाम लिखा होता है तथा एक ओर एकदम ठठरी जैसा कमजोर व्यक्ति का चित्र होता है और दूसरी तरफ एक पहलवान व्यक्ति का चित्र होता है। दोनो के बीच क्रमश लिखा होता है, 'दवा

खाने के पहले' तथा 'दवा खाने के बाद'। दोनों चित्रों में विरोध के कारण पाठकों का ध्यान उस दवा पर गये बिना नहीं रहता। इसी प्रकार ध्यान आकृष्ट करने के लिये विज्ञापन में विरोधी रंगों, ध्वनियों, बनावटों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। यह विरोध का ही परिणाम है कि झोपड़ियों के गाँव में एक बड़े पक्के का घर, काले लोगों के बीच एक अंग्रेज, लम्बे कद के लोगों के बीच एक बौना हमारा ध्यान अपनी ओर खींच लेता है।

६ नवीनता (Novelty)—उत्तेजना की नवीनता भी एक प्रमुख ध्यान निर्धारक है। नवीन स्वरूप, गन्ध अथवा ध्वनि हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। हम उन उत्तेजनाओं को नवीन कहते हैं जिन्हें साधारणतः अपने वातावरण में नहीं पाते हैं तथा जो हमारे सम्मुख अपने नवीन रूप में उपस्थित होती हैं। नवीन वस्तु अथवा स्थिति उन वस्तुओं को कहते हैं जिनसे हम परिचित या अभ्यस्त नहीं रहते हैं। आज अपने कालेज के बरामदे पर दो एक अंग्रेज गुजर जायें तो हमारा ध्यान उनकी ओर चला जायगा। गाँवों में अगर एक नव-दम्पति 'हाथ में-हाथ' डाले सड़कों पर तथा मैदानों में सैर करते हैं तो वे गाँव वालों का ध्यान अपनी ओर खींच लेते हैं। नयी सजावट, नया संगीत, नये विचार, मन में आने वाला नया लड़का, नया फैशन, अर्थात् नये डिजाइन के कोट, कमीज, ब्लाउज, फ्राक इत्यादि कुछ अच्छे उदाहरण हैं जिन पर हमारा ध्यान चला जाता है। यही कारण है कि बहुरूपिया जो हर रोज नये 'मेकअप' द्वारा नया नया रूप धारण करता है हमारा ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहता। छोटे छोटे शहरों में अगर कोई स्त्री मोटर साइकिल अथवा मोटर चलाती बाजार आये अथवा किसी होटल में लड़कियाँ बैयरा का काम करती हों या कोई पागल व्यक्ति नंगा अथवा अजीब अजीब बातें बोलता हुआ फुटपाथ पर चक्कर लगाता रहे तो हमारा ध्यान उनकी ओर गये बिना नहीं रहता। ध्यान से देखा जाय तो पता चलेगा कि उत्तेजनाओं के परिवर्तन अथवा विरोध भी हमारा ध्यान इसलिये आकर्षित कर पाते हैं चूंकि परिवर्तन अथवा विरोध के कारण उनमें एक नवीनता आ जाती है।

७ उत्तेजना की तीव्रता (Intensity)—कम तीव्र उत्तेजनाओं की अपेक्षा अधिक तीव्र उत्तेजनाएँ हमारा ध्यान अधिक शीघ्रता से अपनी ओर खींच लेती हैं। लाउड स्पीकर की आवाज हमारा ध्यान साधारण बोलचाल की आवाज की बनिस्बत अधिक जल्दी आकर्षित करती है। बादल की भयंकर गड़गड़ाहट पर हमारा ध्यान गये बिना नहीं रह सकता है। ठीक इसी प्रकार अगर अंधेरी रात में सड़क पर एक व्यक्ति जलती हुई लालटेन लिये जा रहा है तथा थोड़ी दूर पर दूसरा व्यक्ति जलता हुआ पेट्रोमेक्स लिए जा रहा है तो देखने वाले तीसरे व्यक्ति का ध्यान पहले पेट्रोमेक्स की रोशनी पर जायगा। यह मुख्यतः अत्यधिक तीव्रता का ही परिणाम है कि बरसात में बादलों के बीच रह रह कर चमक उठने वाली बिजली हमारा ध्यान खींच ही लेती है। कोई भी तीव्र खुशबू अथवा बदबू (अमोनिया) का निकलना, टायर का

अचानक फटना (Tyre bursting), मिल, रेल-इञ्जन अथवा आग बुझाने वाली गाडी (Fire Brigade) की आवाज, अन्धकार मे रोशनी का तेज 'फोकस' (Focus) इत्यादि अपनी तीव्रता के कारण ध्यान आकर्षित करते है। फुटवॉल खेलते हुए लडके का ध्यान अचानक पैर का अँगूठा फूट जाने पर अँगूठे की ओर तुरत भले नही जाय, परन्तु जब उसके अँगूठे की पीडा अत्यधिक तीव्र हो जाती है तो लडके का ध्यान फूटे हुए अँगूठे की ओर चला ही जाता है। यह इसलिए होता है कि उत्तेजना की तीव्रता बहुत अंशो से उत्तेजना को अधिक स्पष्ट बना देने मे सहायक है। स्पष्ट उत्तेजनाएँ अस्पष्ट उत्तेजनाओ की अपेक्षा ध्यान अधिक आकर्षित करती है।

८ उत्तेजना मे गति (Movement)—गतिशील उत्तेजनाओ मे ध्यानाकर्षण की क्षमता स्थिर उत्तेजनाओ की अपेक्षा अधिक रहती है। स्थिर वस्तुओ पर हमारा ध्यान अपेक्षाकृत चलती चीजो की ओर से कम हो जाता है, परन्तु चलती हुई गाडियाँ, दौडता हुआ व्यक्ति, भागता हुआ जानवर हमारे ध्यान को विशेष आकर्षित कर लेता है। शहरो मे दूकानो के साइनबोर्ड के चारो तरफ अथवा प्रचार के लिए जगह-जगह बिजली के बल्बो को कुछ इस प्रकार रखा जाता है कि 'स्विच ऑन, कर देने पर ऐसा लगता है कि रोशनी एक बल्ब से निकल कर दूसरे मे प्रविष्ट कर जाती है तथा फिर दूसरे बल्ब से निकल कर तीसरे मे, फिर तीसरे से निकल कर चौथे मे तथा इसी प्रकार निकलती एव प्रविष्ट करती चली जाती है। देखने से लगता है कि ये बल्ब अलग-अलग क्रमानुसार जल एव बुझ नही रहे है, बल्कि यह एक ही रोशनी है जो बल्बो के बीच से गुजरती जा रही है। ऐसा प्रबन्ध इसलिए किया जाता है कि रोशनी का चलना व्यक्ति के ध्यान को आकर्षित करने मे सफल होता है। प्रचार करने के लिए बडे-बडे शहरो मे जगह-जगह सिर्फ कागज पर छपे चित्रो को न चिपका कर उनसे सम्बन्धित चलचित्रो (Motion pictures) को भी निःशुल्क दिखलाया जाता है। परिणाम यह होता है कि अधिक जनता का ध्यान आकर्षित हो पाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गतिशील उत्तेजनाएँ व्यक्ति का ध्यान विशेष कर अपनी ओर खीच लेती है।

९ उत्तेजना की स्थिति (Position of stimulus)—उत्तेजना की स्थिति भी ध्यानाकर्षण के लिए एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। अगर हम दैनिक समाचारपत्र मे नौकरी के लिए वान्टेड कॉलम (Wanted column) देखना चाहते है तो अखबार मे इनके लिए एक निश्चित स्थान बनी होती है जहाँ 'वान्टेड का कॉलम' छपा होता है, जैसे—अपने प्रान्त के दो दैनिक 'इण्डियन नेशन' तथा 'सर्च-लाइट' समाचार-पत्रो मे 'वान्टेड का कॉलम' प्रथम पृष्ठ की पीठ पर छपा होता है। यह नौकरी के उम्मीद-वारो का ध्यान बहुत जल्द आकर्षित करता है। ठीक इसी प्रकार प्रथम पृष्ठ अन्तरराष्ट्रीय समाचारो के पाठको का ध्यान आकर्षित करता है। अन्तिम पृष्ठ सिनेमा-प्रेमियो के लिए आकर्षक होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि उत्तेजनाएँ

अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित करने में समर्थ होती है। किसी भी सभा में सभापति की कुर्सी पर बैठे हुए व्यक्ति पर ध्यान गये बिना रह नहीं सकता। यह उत्तेजना की स्थिति का ही परिणाम है कि वर्ग भवन में छात्रों का ध्यान शिक्षक की ओर चला जाता है। उत्तेजनाओं की स्थिति उन्हें अपनी विशिष्टता प्रदान करता है। यही कारण है कि बारात पार्टी में लोगों का ध्यान बारात में आये अन्य व्यक्तियों से अधिक मण्डप के नीचे बैठे हुए लोगों पर अथवा वर पर चला जाता है।

१ उत्तेजना की विविक्तता (Isolation of stimulus)—मान लीजिए कि वर्ग में प्रोफेसर भाषण दे रहे हैं। अगर लड़कों में से एक उठकर कमरे के पिछले दरवाजे पर खड़ा हो जाय तो हमारा ध्यान उस लड़के पर जरूर चला जायगा। जहाँ कोई उत्सव हो रहा हो और उस उत्सव में सब लोगों से अलग हट कर अगर कोई व्यक्ति चुपचाप खड़ा हो जाय तो उस व्यक्ति पर हमलोगों का ध्यान चला जाता है। लड़के या व्यक्ति के अलग अकेले खड़े होने के कारण ही हमारा ध्यान उस ओर चला जाता है। यहाँ उत्तेजना (व्यक्ति या बालक) में जिस गुण के रहने के कारण व्यक्ति का ध्यान उस ओर खिंच जाता है उस गुण को उत्तेजना का पार्थक्य या विविक्तता का गुण कहते हैं।

११ उत्तेजना का स्वरूप (Nature of stimulus)—हमारी भिन्न भिन्न ज्ञानेन्द्रियों के क्रियाशील होने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं की आवश्यकता पड़ती है। जैसे—आँखों के लिए प्रकाश-तरंगें (Light waves), कानों के लिए ध्वनि-तरंगें (Sound waves) आदि।

मनोवैज्ञानिकों ने बतलाया है कि साधारणतः मनुष्यों का ध्यान दृष्टि संवेदना अन्य संवेदनाओं की अपेक्षा अधिक आकृष्ट कर पाती है। दृष्टि-सम्बन्धी उत्तेजनाओं में भी जो उत्तेजनाएं रंगीन हैं वे अन्य रंगविहीन उत्तेजनाओं की अपेक्षा अधिक शीघ्र ध्यान आकर्षित कर सकती हैं। ठीक इसी प्रकार श्रवण-सम्बन्धी उत्तेजनाओं में मधुर संगीत की उत्तेजना साधारण बोलचाल से अधिक आकर्षक होती है।

(ख) आन्तरिक निर्धारक (Subject to Internal conditions)—अभी हमलोगों ने यह चर्चा की है कि रंगीन वस्तुएं हमलोगों का ध्यान रंगविहीन वस्तुओं की अपेक्षा अधिक आकृष्ट कर पाती हैं यदि रंगीन वस्तुओं का रंग हमारी अभिरुचि स्वभाव आदि के अनुसार हुआ तो हमारा ध्यान निश्चित रूप से उस पर चला जाता है। वस्तु बाह्य निर्धारकों को आन्तरिकों से पूर्ण भिन्न नहीं समझना चाहिए। जब किसी वस्तु पर हम ध्यान देते हैं तो साधारणतः बाह्य और आन्तरिक दोनों निर्धारक काम करते हैं। एक ही समय प्रायः एक से अधिक ध्यान निर्धारक क्रियाशील देख जाते हैं।

१ अभिरुचि (Interest)—जिस वस्तु में हमारी अभिरुचि रहती है उसकी ओर हमारा ध्यान अवश्य जाता है। एक मनोवैज्ञानिक अपनी अभिरुचि के कारण ही लोगों के व्यवहारों पर ध्यान देता है। कविता प्रेमी का ध्यान कविता की ओर

विद्वानो का ध्यान नयी-नयी पुस्तको की ओर, सिनेमा मे रुचि रखने वालो का ध्यान सिनेमा हॉल (Cinema Halls) अथवा सिने पोस्टर्स अथवा सिनेमैगजिन्स की ओर चला जाता है। यही कारण है कि किसी क्लास मे बैठे 'मैटनी शो' सिनेमा देखने के इच्छुक छात्रो का ध्यान अपने वर्ग की पढाई की ओर न जाकर बार-बार घडी की सूई पर ही जाता रहता है।

यो तो अभिरुचियाँ कितनी ही प्रकार की होती है, परन्तु निम्नलिखित प्रकार से भी उनका वर्गीकरण (Classification) किया जा सकता है—

(क) मूल प्रवृत्यात्मक अभिरुचि (Instinctive) (ख) अभ्यास-जन्य अभिरुचि (Habitual) तथा (ग) परिस्थिति-जन्य क्षणिक अभिरुचि (Temporary)।

यह भी प्रवृत्यात्मक अभिरुचि का ही परिणाम है कि बच्चे का ध्यान खेल पर, बिल्ली का ध्यान चूहे पर, कुत्ता का ध्यान बिल्ली पर, पुरुषो का ध्यान स्त्री पर तथा तितली का ध्यान फूल पर चला जाता है।

इनके अतिरिक्त कुछ अभिरुचियो को मनुष्य अपनी शिक्षा एव अभ्यास द्वारा अर्जित करता है। जैसे, अखबार पढते समय 'स्पोर्ट्स' (Sports) मे अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति का ध्यान खेल-कूद की खबरो की ओर तुरत चला जाता है।

'नयी रोशनी' के नवयुवको अथवा नवयुवतियो का ध्यान 'फैशन' (Fashion) के किसी नये 'कट' की ओर अपेक्षाकृत अधिक शीघ्र एव जरूर चला जाता है। जिसमे अनुसन्धान (Research) के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो गयी है उसका ध्यान फैशन के नये 'कट' (Cut) की ओर न जाकर अपने अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित बातो की ओर गये बिना नही रहता।

कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती है जिनमे थोडी देर के लिए हमारी आवश्यकताओ से सम्बन्धित वस्तुओ की ओर हमारा ध्यान चला जाता है, जैसे—पत्र लिखते समय लिफाफा एव पोस्टकार्ड हमारा ध्यान आकर्षित करते है। अगर कोई व्यक्ति सिगरेट जलाना चाहता है तो थोडी देर के लिए उसकी अभिरुचि दियासलाई के प्रति हो जायगी और उसका ध्यान सलाई पर चला जायगा।

सिगरेट पीते समय व्यक्ति का ध्यान 'ऐश ट्रे' (Ash tray) की ओर चला जाना, टिकट सटते समय गोंद पर ध्यान चाला जाना आदि परिस्थिति-जन्य क्षणिक अभिरुचि के कारण ध्यानाकर्षण के सुन्दर उदाहरण है।

यहाँ यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि हमारी अभिरुचियो का सम्बन्ध हमारी शारीरिक आवश्यकताओ जैसे—भूख, प्यास, यौनसमागम की इच्छा तथा सामाजिक प्रेरणा दोनो से है। अस्तु किसी पर ध्यान देने मे शारीरिक आवश्यकताओ (Bodily needs) एव सामाजिक प्रेरणाओ (Social motives) दोनो का प्रभाव देखते हैं। जब व्यक्ति भूखा होता है तो चलते समय भोजनालय एव रेस्तराँ की

और ध्यान चला ही जाता है। प्यासे का ध्यान किसी ठण्डे शर्बत की दूकान अवश्य खींच लेती है।

२ जिज्ञासा (Curiosity)—मनुष्य में जिस वस्तु के विषय में जानने की उत्सुकता होती है उसकी ओर उसका ध्यान अवश्य चला जाता है। अगर मनोविज्ञान के प्रति कोई जिज्ञासु व्यक्ति किसी लाइब्रेरी (Library) में पहुंचता है और पुस्तक को घूम-घूम कर देखना शुरू करता है तो मनोविज्ञान की किताबें उसका ध्यान तुरत आकर्षित कर लेंगी।

साधारणतः हम नयी चीजों को जानने के लिए इच्छुक हो जाते हैं। यही कारण है कि नवीनता तथा जिज्ञासु का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा दोनों हमारे ध्यान निर्धारक है।

३ आदत (Habit)—ताड़ी शराब गांजा भांग इत्यादि पीने वाले व्यक्तियों का ध्यान ताड़ीखाना गांजा भांग इत्यादि की दूकानें अवश्य आकृष्ट कर लेती हैं। पढ़ने लिखने की आदत वाले व्यक्ति का ध्यान पुस्तकालय पुस्तक केन्द्र कालेज इत्यादि तुरत अपनी ओर आकृष्ट कर पाते हैं।

नशेबाजों का ध्यान न केवल नशीली चीजों की दूकानें ही आकृष्ट कर पाती है बल्कि उन चीजों से सम्बन्धित बात चीत अथवा कोई घटना भी उनका ध्यान आकृष्ट कर लेती है। मुल्ला का ध्यान मस्जिद की ओर अभ्यास एवं आदत के कारण ही चला जाता है।

४ शिक्षण (Training)—यह शिक्षण का ही परिणाम है कि एक इंजीनियर (Engineer) का ध्यान सड़क अथवा मकानों की डिजाइन की ओर, एक मोटर-ड्राइवर का ध्यान मोटर के पार्ट-पुर्जों की खराबी की ओर तथा एक कलाकार का ध्यान कलाकृतियों की ओर चला जाता है। व्यक्ति में शिक्षण द्वारा भी एक विशेष ढंग से सोचने तथा कार्य करने में निपुणता प्राप्त करने का अभ्यास हो पाता है। अस्तु अभ्यास और शिक्षण बहुत मिले-जुले ध्यान निर्धारक है। यही अभ्यास एक आदत का रूप ग्रहण कर पाता है जो ध्यान देने की क्रिया के निर्देशन में सहायक है। यही कारण है कि दर्जी का ध्यान कपड़ों की फिटिंग (Fitting) पर चमार का ध्यान जूतों पर अथवा नाई का ध्यान बालों की हजामत पर पाकेटमार का ध्यान पाकेट की ओर अथवा डाक्टर का ध्यान रोगी की ओर अवश्य चला जाता है।

५ उद्देश्य अथवा अभिप्राय (Aim or purpose)—हमारे ध्यान को किसी वस्तु की ओर ले जाने में हमारे उद्देश्य अथवा लक्ष्य का भी प्रमुख स्थान है। मान लीजिए हम घर के फूटे बरतनों की मरम्मत के लिए बाजार निकले हैं। इस समय हमारा ध्यान किसी कपड़े की दूकान पर न जाकर ठठेरे की दूकान पर शीघ्रता से चला जायगा। समाजसेवी का ध्यान समाज के कष्टों के निवारण पर अपनी मोटर

मे पेट्रोल भराने के इच्छुक व्यक्ति का ध्यान 'पेट्रोल-पम्प' पर तथा परीक्षा मे अच्छे अ को से उत्तीर्ण होने का लक्ष्य रखने वाले परीक्षार्थी का ध्यान परीक्षा मे आने योग्य प्रश्नो पर चला जाता है ।

उद्देश्य व्यक्ति के पेशा, शिक्षण तथा आदत से भी पैदा होते है ।

६ **मनोवृत्ति (Attitude)**—पेशा तथा शिक्षण का प्रभाव मनुष्यो की मनोवृत्तियो पर भी पडता है । सभी मनुष्यो की मनोवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न होती है । यह मनोवृत्तियो की भिन्नता का ही परिणाम है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियो का ध्यान भिन्न-भिन्न वस्तुओ पर जाता है तथा यदि एक ही वस्तु पर दो व्यक्ति ध्यान दे रहे हो, तो उन दोनो व्यक्तियो का ध्यान उस एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न पहलुओ पर जाता है । मान लीजिए कि किसी ऐतिहासिक स्थल की खुदाई के कारण पत्थर की एक मूर्ति निकली है । उसे देखने के लिए मूर्त्तिकार एव इतिहासज्ञ, एक अर्थशास्त्रज्ञ तथा एक शरीरशास्त्रज्ञ, जाते हैं । मूर्तिकार का ध्यान खुदाई से निकली हुई प्राचीन काल की इस मूर्ति की कला एवं भाव-भ गिमा पर जायगा । इतिहास के ज्ञाता का ध्यान इस प्रश्न पर जायगा कि मूर्त्ति आज से कितने सौ वर्ष पहले की बनी हुई है तथा उस समय की सामाजिक एव राजनीतिक स्थिति कैसी थी । अर्थशास्त्र का विद्वान् शायद उस मूर्त्ति की प्राचीन कीमत एव उसके द्वारा परिलक्षित तत्कालीन समाज की आर्थिक स्थिति की ओर आकर्षित होगा और शरीर शास्त्रज्ञ उस मूर्त्ति की शारीरिक बनावट की ओर आकृष्ट हुए बिना नही रहेगा । हमने देखा कि मूर्त्ति एक ही है, परन्तु भिन्न भिन्न व्यक्ति अपने पेशा एव शिक्षण अथवा वैयक्तिक अनुभव से उत्पन्न अलग-अलग मनोवृत्तियो के कारण उस मूर्त्ति के भिन्न-भिन्न पहलूओ की ओर आकर्षित होते है ।

७ **अर्थ (Meaning)**—अगर उत्तेजना-विशेष व्यक्ति के लिये सार्थक है तो उसपर व्यक्ति का ध्यान जायगा । निरर्थक उत्तेजनाओ पर ध्यान अपेक्षाकृत नही जाता । यही कारण है कि जिस भाषा का हमे ज्ञान नही, उस भाषा मे लिखी अच्छी से अच्छी पुस्तको पर भी हमारा ध्यान तब तक नही जाता जबतक कि उसका अनुवाद देखने को न मिले अथवा कोई उस पुस्तक से हमे परिचित न करा दे ।

८ **मानस-वृत्ति अथवा मानसिक स्थिति (Mental set)**—मान लीजिये कोई व्यक्ति आधी रात बीते भी चोर के भय से जाग रहा है कि किसी भी समय चोर आकर सामान गायब कर दे सकता है तो इस मानसिक स्थिति मे चूहे द्वारा की गयी एक छोटी-सी खडखडाहट पर भी उस व्यक्ति का ध्यान चला जाता है । साधारण अवस्था मे ऐसी खडखडाहटें उसका ध्यान आकृष्ट नही कर पाती ।

प्रेम की मानसिक स्थिति मे प्रियपात्र के गुणो पर ही ध्यान जाता है तथा क्रोध की अवस्था मे दुश्मन के सिर्फ अवगुण ही ध्यान मे आते हैं । सच पूछा जाय तो ऊपर जितने आन्तरिक निर्धारकों की चर्चा की गयी है । वे सब के सब मनुष्य की मानसिक स्थिति के अन्दर ही सम्मिलित किये जा सकते हैं । अभिरुचि, जिज्ञासा,

आदत, शिक्षण उद्देश्य इत्यादि के कारण व्यक्ति में एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति उत्पन्न होती है जिसका व्यक्ति की मानसिक स्थिति से सम्बन्ध है।

प्राय किसी वस्तु अथवा स्थिति पर ध्यान देने की क्रिया म बाह्य एव आन्तरिक दोनों निर्धारक क्रियाशील होते हैं। यही कारण है कि ध्यान की चयनात्मक क्रिया सफल हो पाती है। वे निर्धारक पूर्णत एक दूसरे से सदा पृथक् नही रहते वरन वे एक दूसरे के साथ भी क्रियाशील होते हैं। जब किसी तस्वीर पर हमारा ध्यान जाता है तो उसमें तस्वीर की उत्तेजना की नवीनता स्पष्टता आदि बाह्य निर्धारको के अतिरिक्त हमारी अभिरुचि शिक्षा मनोवृत्ति इत्यादि आन्तरिक निर्धारक भी साथ-साथ काय करते है।

आठवाँ अध्याय

भाव

(Feeling)

भूमिका—भाव का स्वरूप—भाव की विशेषताएँ—संवेदना तथा भाव मे अन्तर—क्या भाव संवेदना का गुण है ?—भाव सम्बन्धी सिद्धान्त—'वुण्ट' महोदय का भाव-सम्बन्धी 'त्रिदिशात्मक सिद्धान्त'—मिश्रित भाव।

हमारे मन के तीन पहलू होते हैं—'ज्ञानात्मक (Cognitive), भावात्मक (Affective) तथा क्रियात्मक (Conative) जिनमे परस्पर सम्बन्ध है। भाव प्रत्येक संवेगात्मक अनुभूति का एक अंग है। कुछ वस्तु या व्यक्ति तथा परिस्थितियाँ संवेगात्मक परिवर्तन उत्पन्न नही करती है, फिर भी वे हममे सुख या दु:ख की अनुभूति उत्पन्न कर सकती हैं।

मानव-व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिए खुश या नाखुश करने वाली चीजो का ज्ञान एक ही व्यावहारिक महत्त्व रखता है। जो रंग, गन्ध तथा स्वाद हममे खुशी का भाव उत्पन्न करता है, उनको हम अधिक पसन्द करते हैं। इसके अतिरिक्त जो वस्तु अथवा परिस्थिति हममे दु:ख का भाव पैदा करती है, उनको हम नापसन्द ही नही करते, बल्कि उनसे घृणा भी करते हैं। अत पसन्द या नापसन्द सम्बन्धी अध्ययन का भाव अध्ययन करता है। यह एक 'अप्रत्यक्ष अध्ययन' है। सरल विज्ञापन करने तथा मनोवृत्ति का पता लगाने के लिए ललित-कला-सम्बन्धी पसन्दों का अध्ययन अति आवश्यक है। हमारे वातावरण के बहुत-से अंग, यहाँ तक कि दूसरे व्यक्ति तथा उनके व्यवहार प्राय हमे कष्ट देते हैं (Source of annoyance)। यदि एक व्यक्ति यह जान पाता है कि उसके कौन-कौन से व्यवहार दूसरे को कष्ट पहुँचाते हैं तो उनमें सुधार लाकर उन्हे प्रसन्न कर सकता है।

मानसिक जीवन मे भाव का स्थान—(Role of Feeling in mental life)—जीवन के प्रत्येक क्षण मे किसी-किसी रूप मे हम भाव तथा संवेग से प्रभावित होते रहते हैं। कभी-कभी तो वे अनुभूति तथा व्यवहार दोनो मे प्रधान स्थान रखते हैं। यदि कोई व्यक्ति बैठकर अपनी पसन्दों तथा नापसन्दों की एक-एक सूची बनाये जिनने किसी एक अमुक दिन उसके व्यवहारो को प्रेरित किया है, तो सूची निस्सन्देह आश्चर्यजनक रूप मे बड़ी होगी। हमारी अनुभूतियों मे परस्पर-सम्बन्धी मान-

सिक क्रियाओं का एक महून जाल सा बिछा हुआ है जिनमे सुख या दुःख के भाव इस तरह मिले हुए हैं कि उनको हमारी अनुभूतियों से अलग करना मुश्किल ही नहीं, बल्कि असम्भव भी है। उदाहरण के लिए हम क्रोध के संवेग को ही लें। यदि इसका विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि उसमें एक अनोखे प्रकार की अनुभूति रहती है, जिसे भाव के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ पर भाव का जटिल संवेगात्मक अनुभूति के साथ उसी प्रकार का सम्बन्ध है जैसा कि साधारण संवेदनाओं का सम्बन्ध प्रत्यक्षीकरण के गहून ज्ञानात्मक अनुभूति से है।

भाव का स्वरूप

(Nature of Feeling)

भावात्मक जीवन को अत्यधिक स्पष्ट रूप से समझाने के लिए की गयी व्याख्याओं में दिन प्रति दिन नये नये विकास एवं परिवर्तन होते जा रहे हैं। फिर भी हम साधारण भावों को इस प्रकार की अनुभूति के प्रारम्भिक क्रम के नाम से पुकारते हैं। हम अपने जीवन में प्रत्येक दिन कहते हैं कि वातावरण के अमुक व्यक्ति वस्तु अथवा घटना ने हमें सुख या दुःख पहुँचायी है। हमारी कोई भी मानसिक प्रक्रिया ऐसी नहीं है जो किसी न किसी अर्थ में न तो सुखकर हो या न दुःखकर हो। व अन्य मानसिक क्रियाओं के साथ इस तरह मिले हुए हैं कि उनको उनसे अलग करना सम्भव नहीं है। परन्तु बात जो मुख्यतः स्मरण रखने योग्य है वह यह है कि हमारी कोई भी मानसिक प्रक्रिया ऐसी नहीं है जो एक ही समय दुःखकर तथा सुखकर दोनों हो। यही कारण है कि हम इसे विशुद्ध भाव (Pure feeling) की संज्ञा देते हैं ये या तो सुखकर होंगी या दुःखकर। अर्थात् मिश्रित भाव (Mixed feeling) नाम की कोई अनुभूति नहीं है। जब भाव स्थायी रूप से किसी खास ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी घटना के निकट सम्बन्ध में चले आते हैं तो हम उन्हें ज्ञान भाव (Sense feeling) से सम्बोधित करते हैं। उदाहरणार्थ—भूख प्यास सिर दर्द पीड़ा इत्यादि दुःखद भावों का सम्बन्ध हमारे विशिष्ट ज्ञानेन्द्रियों से रहता है। यहाँ जो भी संवेदनाएं होती हैं उनका सदा एक भावात्मक पहलू रहता है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि प्रत्येक चेतन अनुभूति से सम्बन्धित सुख या दुःख के अनुभव को ही भाव की संज्ञा दी जाती है। यह चेतना मानसिक प्रक्रियाओं का सरलतम तथा प्रारम्भिक भावात्मक पहलू है ठीक वैसे कि संवेदना चेतन अनुभूति का सबसे सरल तथा प्रारम्भिक ज्ञानात्मक पहलू है (Feeling is the most simple and elementary process of the affective aspect of any mental process just as sensation is most simple and elementary process of the cognitive aspect of mental life)। अर्थात् संवेदना की तरह इसका भी विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। इसका सम्बन्ध हमारे प्रत्येक चेतन अनुभूति तथा व्यवहार से रहता है।

भाव की विशेषताएँ
(Characteristics of Feeling)

भाव की निम्नलिखित विशेषताएँ है—

१. यह एक सरलतम तथा प्रारम्भिक भावनात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसका विश्लेषण करना सम्भव नही है।

२. भाव दो प्रकार के होते है—सुख या दुःख।

३ एक साथ एक से अधिक भाव की उत्पत्ति नही हो सकती है, जैसे—हम एक ही समय सुख या दुःख का अनुभव नही कर सकते है। अर्थात् मिश्रित भाव (Mixed feeling) का होना सम्भव नही है।

४ वह बहुत ही चचल और क्षणिक होता है। एक के बाद दूसरे भाव का अनुभव होता रहता है, जैसे—दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख।

५ भाव का सम्बन्ध शरीर के किसी एक अग-विशेष से स्थापित नही किया जा सकता है। भाव का सम्बन्ध सम्पूर्ण शरीर से रहता है।

६. भाव की मात्रा मे अन्तर होता है, अर्थात् दुःख एव सुख की मात्रा मे अन्तर रह सकता है जिसे साहित्यकारो ने विभिन्न नामो से पुकारा है।

७ इसका सम्बन्ध चेतन अनुभूति तथा व्यवहार से सदा रहता है, अर्थात् प्रत्येक अनुभूति और व्यवहार के साथ किसी-न-किसी प्रकार का भाव सदा मिला रहता है।

८ यह आत्मगत होता है। यह सदा व्यक्ति-विशेष के अन्दर ही होता है, अर्थात् इसका कोई बाह्य प्रदर्शन नही होता है। अत इसका अध्ययन सिर्फ अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा ही सम्भव है।

सवेदना तथा भाव में अन्तर
(Distinction between Sensation and Feeling)

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने प्राथमिक तथा अविकसित प्रकार की सवेदनाओं को ही भाव की सज्ञा दी है, परन्तु ऐसा कहना गलत है। हालांकि सवेदना तथा भाव दोनो ही क्रमश चेतन अनुभूति के ज्ञानात्मक तथा भावात्मक पहलू से सम्बन्धित सरलतम प्राथमिक मानसिक क्रियाएँ है, फिर भी दोनो मे निम्नलिखित विशेष अन्तर है। अत हम दोनों को एक न मान कर दो विभिन्न मानसिक प्रक्रिया मानते हैं।

(क) सवेदना के बाद भाव का अनुभव होता है। सवेदना के बिना भाव नहीं हो सकता है। सवेदना हमारी चेतन अनुभूति का एक वस्तुगत अग प्रस्तुत करती है, तो भाव आत्मगत। सवेदना मे हमे किसी वस्तु या परिस्थिति का आभास मिलता है, परन्तु भाव हमारी ही मानसिक अवस्था का वर्णन करता है अर्थात् सवेदना वस्तुगत

है तो भाव आत्मगत। एक उदाहरण से इसे अधिक स्पष्ट किया जा सकता है जैसे—जब बच्चा मिठाई खाता है तो उसे दृष्टि-संवेदना होती है जिसमें कि उसे मिठाई का ज्ञान होता है। मिठाई को देख कर उसे प्रसन्नता होने के कारण सुख का अनुभव होता है। यहाँ सुख का अनुभव जो हुआ उसे ही भाव कहेंगे। यह मिठाई से उत्पन्न उत्तेजना को ग्रहण करने के पश्चात् बालक की जो मानसिक अवस्था है उसका बोध कराता है। उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि जहाँ संवेदना से हम किसी वस्तु का आभास मिलता है वहाँ भाव वस्तुविशेष की संवेदना के फलस्वरूप उत्पन्न हमारी मानसिक अवस्था का बोध कराता है।

(ख) जहाँ संवेदना जितनी तरह की ज्ञानेन्द्रियाँ हैं उतनी ही प्रकार की होती हैं वहाँ भाव सिर्फ दो प्रकार का होता है जैसे—सुख या दुःख का भाव, परन्तु दृष्टि श्रवण स्पर्श स्वाद गन्ध इत्यादि अनेक प्रकार की संवेदनाएं होती हैं।

(ग) संवेदनाओं का स्थान निरूपण हो सकता है चूँकि इसका सम्बन्ध किसी न किसी अंगविशेष से रहता है। लेकिन भाव में यह सम्भव नहीं है, चूँकि इसका सम्बन्ध किसी एक अंगविशेष से न होकर शरीर से रहता है।

(घ) एक समय एक से अधिक संवेदनाएं हो सकती हैं परन्तु भाव एक समय एक ही प्रकार का हो सकता है जैसे—दुःख या सुख का। एक नारंगी को खाते समय व्यक्ति में एक ही समय दृष्टि, गन्ध स्पर्श तथा स्वाद सभी प्रकार की संवेदनाएं होती हैं परन्तु खाने से सुख या दुःख दोनों में से कोई एक ही भाव उत्पन्न होता है। मिश्रित भाव का होना सम्भव नहीं है। अर्थात् जहाँ संवेदना में विभिन्नता पायी जाती है वहाँ भाव में विरोध पाया जाता है।

(ङ) संवेदनाओं को प्रतिमा के रूप में पुनः उपस्थित किया जा सकता है परन्तु भाव में अनु-स्मृति (Reproduce) लागू नहीं होती है। भाव सदा नया होता है। भूतकाल में ग्रहण की गयी संवेदनाओं की मानसिक प्रतिमाएं पुनः उत्पन्न करना सम्भव है परन्तु भाव को पुनः मानसिक चेतना में नहीं लाया जा सकता है।

(च) ध्यान देने की दृष्टि से भी संवेदना तथा भाव में अन्तर है।

सचेत चेतनावस्था में संवेदना तथा भाव का स्वरूप भिन्न रहता है। ध्यान देने से संवेदना स्पष्ट हो जाती है इसके विपरीत ध्यान देने से भाव लुप्त हो जाता है। संवेदना की तरह भाव में भी गुण मात्रा तथा सतःकाल सम्बन्धी अन्तर हो सकते हैं परन्तु उनमें इन्द्रियग्राह्य स्पष्टता सम्बन्धी कोई अन्तर नहीं होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि स्पष्टता के दृष्टिकोण (From the view point of clearness) से संवेदना तथा भाव में अन्तर नहीं किया जा सकता है।

क्या भाव संवेदना का एक गुण है ?

(Is feeling an atribute of sensation ?)

एक ओर चूँकि प्रत्येक संवेदना में प्रसन्नता या अप्रसन्नता का भाव रहता

है, कुछ मनोवैज्ञानिको ने भाव को संवेदना के एक गुण या विशेषता की संज्ञा दी है। इस तरह उनके दृष्टिकोण मे भाव का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही रह जाता है (Feeling has no status as an element of knowledge)। परन्तु दूसरी ओर चूँकि भाव मे किसी-न-किसी तरह का इन्द्रिय-सम्बन्धी परिवर्त्तन अवश्य होता है, कुछ मनोवैज्ञानिको ने भाव को प्राथमिक एव अविकसित आन्तरिक इन्द्रिय संवेदना कहा है। परन्तु ऐसा कहना गलत है। यदि दो क्रियाएँ एक साथ होती हैं तो इसका अर्थ यह नही होता कि ये समान है। यदि निम्नलिखित बातो पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि दोनो अभिन्न नही, वरन् विभिन्न है—

१. **गुण या विशेषता का अर्थ** (Meaning of an attribute)— हम विशेषता या गुण उसी को कहते है जिसके अभाव मे उस चीज, वस्तु या क्रिया जिसका कि वह है, उसकी कोई अपनी सत्ता नही रह जाती है। परन्तु 'कुलपे' (Kulpe) नामक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का अपने अध्ययनो के आधार पर कहना है कि चूँकि बिना किसी भाव के भी संवेदना होती है, इसलिए हम भाव को संवेदना की विशेषता या गुण नही कह सकते है।

२ **संवेदना की कुछ विशेषताएँ**, जैसे— तीव्रता (Intensity) और सत्ताकाल (Duration) भाव मे भी पाये जाते है। अत यदि भाव संवेदना की विशेषता रहता तो स्वय भाव मे संवेदना की उपर्युक्त विशेषता नही पायी जाती।

३ **संवेदना वस्तुगत** (Objective) है तो भाव आत्मगत (Subjective) है। एक ही संवेदना के साथ विभिन्न समय मे विरोध-भाव पाये जाते हैं, जैसे—कालेज की घंटी सुनकर परीक्षा के समय विद्यार्थियो को यह जानकर कि समय बीतता जा रहा है और वे पूरा प्रश्न नही लिख पाये है उन्हे दुख का भाव होता है। परन्तु जब वर्ग मे शिक्षक के भाषण मे रुचि नही हो तो उसी घंटी के बजने पर उन्हें सुख का अनुभव होता है। उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि एक ही संवेदना मे विभिन्न समय मे व्यक्ति मे उसके मानसिक झुकाव के अनुकूल उसके भाव मे विभिन्नता पायी जाती है। चूँकि समान संवेदना के रहते हुए भी उनसे सम्बन्धित भाव बदलते रहते है, इसलिए भाव को संवेदना का गुण कहना उचित नही होगा। अत हम अन्त मे निश्चित रूप से यह कह सकते है कि भाव संवेदना का एक गुण-मात्र नही है, वरन् अन्य मानसिक प्रक्रियाओ की तरह इसका भी अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व है।

भाव-सम्बन्धी सिद्धान्त
(Theories of Feeling)

प्राथमिक भावो (Elementary Feelings) की संख्या— भाव कितने प्रकार के है, इसपर भी मनोवैज्ञानिको मे एक मत नही है। पहले कहा जा चुका है कि साधारणत दो प्रकार के भाव माने जाते है, परन्तु वुण्ट (Wundt) नामक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने इन मत का खण्डन करते हुए कहा है कि भाव को हम सिर्फ दो ही

भाग में नहीं बाँट सकते वरन् भावों का वर्गीकरण निम्नलिखित तीन दृष्टिकोणों से किया जा सकता है, जिसको उन्होंने भाव के त्रिविमात्मक सिद्धान्त (Tridimensional theory of feeling) की संज्ञा दी है— (१) सुख-दुख (Pleasantness-unpleasantness) (२) उद्दीप्त-शान्त (Excitement-calm) तथा (३) खींचाव ढीलाव (Tension Relief)।

इनके कथनानुसार यद्यपि भाव एक इकाई की अवस्था (Unitary state) है फिर भी हम हमेशा अपने भावों को उपर्युक्त दिशाओं में से किसी एक में निरूपित कर सकते हैं जैसे—एक क्षण हमें सुख उद्दीपन तथा विराम के भाव का अनुभव होता है तो दूसरे क्षण दुःख शान्ति तथा तनाव का। यद्यपि वुण्ट (Wundt) ने भाव को इन तीन दिशाओं में बाँटा है, फिर भी हम कह सकते हैं कि यदि भाव को एक ही दिशा अर्थात् सुख-दुःख में बाँटा जाय तो बाकी दोनों दिशाएँ इसमें सम्मिलित हो जाती हैं। जब हमें सुख के भाव का अनुभव होता है तो उद्दीपन तथा श्रम (Excitement and Relief) दोनों की अनुभूति होती है। ठीक इसके विपरीत, जब हमें दुःख के भाव का अनुभव होता है तो हमें शान्ति तथा तनाव की भी अनुभूति होती है।

वुण्ट महोदय के इस त्रिदिशात्मक सिद्धान्त की आलोचना उनके शिष्य टिचेनर (Tichener) महोदय ने भी अपने अध्ययनों के आधार पर किया है जिसका उल्लेख करना अभीष्ठ नहीं है।

मिश्रित भाव
(Mixed Feeling)

इस अध्याय के आरम्भ में कह दिया गया है कि मिश्रित भाव नहीं होता है। प्रायः लोगों को हम यह कहते हुए पाते हैं कि एक ही साथ सुख-दुख दोनों प्रकार के भावों का अनुभव करते हैं। अपने किसी मित्र के पदोन्नति पाकर दूसरी जगह जाने के समय उसकी विदाई के अवसर पर हम भाषण देते समय प्रायः कहते हैं कि हमें इस समय एक प्रकार के मिश्रित भाव का अनुभव हो रहा है। अर्थात् सुख और दुःख का अनुभव एक साथ हो रहा है। सुख का भाव इसलिए हो रहा है कि वे तरक्की पाकर जा रहे हैं परन्तु दुःख इसलिए हो रहा है कि हम उनसे बिछुड़ रहे हैं। लेकिन ऐसा कहना सर्वथा भूल है। हममें एक ही समय सुख और दुख या दोनों प्रकार के भावों का अनुभव कदापि नहीं होता है। एक समय हमें सुख दुख या दोनों में किसी एक ही तरह के भाव का अनुभव होता है जिसे हम विशुद्ध भाव (Pure feeling) की संज्ञा देते हैं। भाव की विशेषताओं पर प्रकाश डालते समय ही कहा जा चुका है कि हमारे भाव इतने चंचल एवं क्षणिक होते हैं कि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि एक समय में हम दो प्रकार के भावों का अनुभव करते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि व क्षण क्षण बदलते रहते हैं अर्थात् एक

क्षण सुख का अनुभव होता है तो शीघ्र दूसरे समय दुःख का, जैसे—उपर्युक्त उदाहरण को ही लें। हम जब अपने मित्र से बिछुड़ने के बारे मे सोचते है तो हमे दुःख का अनुभव होता है, परन्तु दूसरे ही क्षण जब उसकी पदोन्नति की बात ध्यान आती है तो उसके शुभचिन्तक होने के नाते सुख का अनुभव होता है। अतः उस समय हमारे विचारो मे परिवर्तन होने के साथ-साथ क्षण-प्रतिक्षण हमारे भाव भी बदलते रहते है। उनके शीघ्रातिशीघ्र बदलने के स्वभाव के कारण उस क्षण-विशेष मे व्यक्ति को ऐसा लगता है जैसे उसमे सुख और दुःख दोनो प्रकार के भावो का अनुभव साथ ही हो रहा हो। परन्तु बात ठीक इसके विपरीत है। अस्तु, हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि हमे एक ही समय मिश्रित भाव (सुख और दुःख दोनो साथ-साथ) का अनुभव नही होता, बल्कि एक क्षणविशेष मे हम एक विशुद्धभाव (सुख या दुःख) का अनुभव करते है (Feelings are pure and not mixed)। इस बात को केलॉग (Kellog), फेलन (Phelan) तथा यग (Young) इत्यादि मनोवैज्ञानिको ने भी अपने प्रयोगात्मक अध्ययनो के द्वारा सिद्ध कर दिया है जिसका उल्लेख विस्तार मे यहाँ अभीष्ट नही है।

नवाँ अध्याय

संवेग

(Emotion)

भूमिका—संवेग की परिभाषा—संवेग तथा भाव में अन्तर—संवेग में निहित शारीरिक प्रक्रियाएं ।

संवेग के दो पहलू—संवेगात्मक अनुभूति एवं संवेगात्मक व्यवहार । संवेगात्मक व्यवहार तथा अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि । संवेगात्मक व्यवहार—बाह्य एवं आन्तरिक संवेगात्मक व्यवहार । बाह्य संवेगात्मक व्यवहार—मुखाकृतिक अभिव्यंजन स्वराभिव्यंजन तथा शारीरिक स्थिति में परिवर्तन एवं आन्तरिक संवेगात्मक व्यवहार—सांस लेने की क्रिया हृदय की गति रक्त सम्बन्धी परिवर्तन रक्तचाप में परिवर्तन अँतड़ियों की क्रिया अथवा पाचन क्रिया आदि में परिवर्तन, त्वक् प्रक्रियाओं में परिवर्तन तथा ग्रन्थि क्रियाओं में परिवर्तन ।

संवेग में निहित नाड़ी मण्डल—केन्द्रीय नाड़ी मण्डल स्वतः संचालित स्नायुमण्डल—सहानुभूति एवं उपसहानुभूति भाग तथा हाइपोथैलेमस ।

संवेग के सिद्धान्त—सामान्य सिद्धान्त जेम्स लांज का सिद्धान्त और इसकी आलोचनाएं तथा हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त ।

संवेग सिद्धान्त सम्बन्धी निष्कर्ष

इमोशन (Emotion) शब्द की उत्पत्ति लैटिन (Latin) शब्द इमोवर (Emovere) से हुई है जिसका अर्थ होता है उत्तेजित करना (To stir up) या घबरा देना (To agitate) । प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी तथा दूसरे की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण किया है और वह जानता है कि व्यक्ति सिर्फ संवेग का अनुभव ही नहीं करता है, बल्कि वह संवेगात्मक व्यवहार भी करता है । वह भी जानता है कि संवेग उत्पन्न करने वाला कोई उत्तेजक जब उसे उत्तेजित करता है तो वह सारे शरीर में संवेग का अनुभव करता है अर्थात् वह उसके सम्पूर्ण शरीर को उत्तेजित करता है । वह जानता है कि प्रायः संवेग हमारी वर्तमान अनुभूति तथा व्यवहारों में एक प्रकार का 'उपद्रव' सा देता है । ये व्यक्ति को उत्तेजित कर उसकी

क्रियाओ को उद्दीपित कर देता है। संवेग की उत्पत्ति बाह्य एव आन्तरिक दोनो प्रकार की उत्तेजनाओ द्वारा होती है, जैसे — संवेग को उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या तो धमाके की आवाज हो सकती है या पेट मे दर्द या इन बातो का विचार भी जैसे घर के किसी कोने मे कोई चोर छिपा बैठा है इत्यादि। अत यह स्पष्ट है कि संवेग के दो पहलू हैं—(१) चेतनानुभूति-सम्बन्धी तथा (२) व्यवहार-सम्बन्धी।

परिभाषा—संवेग की परिभाषा के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे एकमत नही है। परन्तु उनके द्वारा दिये गये संवेग की परिभाषाओ पर ध्यान देने से स्पष्ट है कि "संवेग एक साधारण तथा प्राथमिक मानसिक अवस्था नही है, वरन् यह एक जटिल भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है।" संवेग का सम्बन्ध मन के भावात्मक पहलू से है। गत अध्याय मे भाव के स्वरूप पर प्रकाश डालते समय यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जब-जब बाह्य एव आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनो मे अपने को अभिव्यक्त कर देता है तो इसे संवेग की संज्ञा दी जाती है। हालाँकि मनोवैज्ञानिको मे संवेग की परिभाषा के सम्बन्ध मे मतभेद है, फिर भी उपर्युक्त बातो को ध्यान मे रखने पर हमे पी० टी० यग (P T Young) द्वारा दी गयी संवेग की परिभाषा उपयुक्त मालूम होती है, जो इस प्रकार है— "Emotion is an acute disturbance of the individual as a whole, psychological in origin, involving behaviour, conscious experience and visceral functioning" अर्थात् संवेग की अवस्था मे व्यक्ति के व्यवहारो मे तीव्र क्षुब्धता (Acute disturbance) उत्पन्न हो जाती है, जिसका प्रभाव उस व्यक्ति पर पूर्ण रूप से (As a whole) पडता है। इसकी उत्पत्ति मानसिक होती है तथा इसके फलस्वरूप व्यवहार चेतन अनुभूति तथा अन्तरावयव-सम्बन्धी क्रियाएँ होती है। यदि इस परिभाषा की थोडी सी व्याख्या की जाय तो संवेग की विशेषताओ का समुचित ज्ञान प्राप्त होने मे बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

इसे तीव्र (Acute) इसलिए कहा जाता है कि संवेग प्राय एकाएक (Suddenly) तीव्र रूप से उत्पन्न होता है और कुछ देर के बाद क्षीण होकर लुप्त हो जाता है। इसे क्षुब्धता (Disturbance) उत्पन्न करनेवाला इसलिए कहा जाता है कि साधारण संवेगो (Mildest emotions) के अतिरिक्त सभी संवेग अपने उत्पन्न होने के साथ-साथ ही उस समय जो भी कार्य व्यक्ति करता रहता है अथवा उनकी मानसिक स्थिति जिस प्रकार की भी रहती है उसमे उपद्रव (Disturbances) उत्पन्न करता है। सम्पूर्ण रूप से (As a whole) इसलिए कहा गया है कि जब व्यक्ति मे संवेगात्मक उपद्रव (Emotional disturbance) होता है तो वह अपने पूरे शरीर मे एक प्रकार के उपद्रव का अनुभव करता है (Disturbed all over)। मनोवैज्ञानिक उत्पत्ति (Psychological in origin) इसलिए कहा गया है कि व्यक्ति मे कुछ उपद्रव जो एड्रीनिन (Adrenin) की सूई तथा अन्य दवाओ के प्रभाव मे उत्पन्न किये जाते हैं उन्हे संवेग कह सकते है। मनोवैज्ञानिक उत्पत्ति उसे-

कहते हैं जिनमें अनुभूति एवं व्यवहारों की उत्पत्ति किसी बाह्य एवं आन्तरिक उत्तेजना के कारण साधारण ज्ञानवाही स्नायु-मार्गों तथा क्रियावाही (Usual sensory motor channels) के द्वारा होती है अर्थात् संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यह एक परिस्थिति है जिसमें उत्तेजनाओं के प्रति व्यक्ति प्रतिक्रियाएं करता है। व्यवहार (Behaviour) चेतनअनुभूति (Conscious experience) तथा अंतरावयवों (Visceral), ये तीनों क्रियाएँ संवेग की अवस्था में होती हैं। अस्तु संवेग की परिभाषा उपर्युक्त प्रकार से की गयी है। इस परिभाषा को हम उदाहरण के द्वारा अधिक स्पष्ट कर सकते हैं, जैसे—जब कमरे में पढ़ते समय एक व्यक्ति की दृष्टि एकाएक सामने पड़े एक जीवित सर्प के ऊपर पड़ती है तो उसमें भय का संवेग उत्पन्न हो जाता है। यदि उसकी संवेगात्मक स्थिति (Emotional state) का विश्लेषण किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि सर्प का एकाएक प्रत्यक्षीकरण होने के फलस्वरूप उसे भय का संवेग उत्पन्न होता है तथा उसमें कुछ आन्तरिक एवं बाह्य (Internal and External) शारीरिक परिवर्तन होने लगते हैं। संवेग की अवस्था में व्यक्तिविशेष में एक प्रकार का तीव्र उपद्रव (Acute disturbance) उत्पन्न हो जाता है जो उसके सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करता है। इस परिस्थिति विशेष में सफल अभियोजन करने के लिए वह व्यक्ति कुछ व्यवहार भी करता है जैसे—या तो वह भागता है या वह पास पड़े डंडे से सर्प को मार डालता है।

अस्तु, संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि संवेग की अवस्था में उस व्यक्ति की वर्तमान मानसिक तथा शारीरिक स्थिति में एक प्रकार का उपद्रव हो जाता है जो उसके सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करता है। इसकी उत्पत्ति भी मनोवैज्ञानिक ढंग से (Psychological in origin) होती है तथा उस समय व्यक्ति में निम्नलिखित तीन प्रकार की क्रियाएं होती हैं—

१ चेतन-अनुभूति-सम्बन्धी (Conscious experience) २ व्यवहार सम्बन्धी (Behaviour) तथा ३ अन्तरावयव-सम्बन्धी (Visceral functioning)।

हम यह कह सकते हैं कि संवेग की उत्पत्ति में निम्नलिखित बातें पायी जाती हैं।

(क) किसी उत्तेजना विशेष के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप प्राणी का उत्तेजित हो जाना (ख) इस उत्तेजित अवस्था का प्राणी को ज्ञान या चेतन-अनुभूति होना (ग) इस उत्तेजना के फलस्वरूप बाह्य एवं आन्तरिक परिवर्तनों का होना तथा (घ) अन्त के इस उत्तेजना विशेष अथवा परिस्थिति विशेष के हेतु संवेगात्मक व्यवहारों का होना।

संवेग तथा भाव में अन्तर
(Distinction between Emotion and Feeling)

साधारणतः कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भाव तथा संवेग को विभिन्न नहीं मान

कर एक ही समझा है, परन्तु ऐसा कहना सर्वथा भूल है। हालाँकि सवेग एव भाव का सम्बन्ध मन के भावात्मक पहलू (Feeling aspect) से होने के कारण उनमे प्रकार भेद' (Difference in kind) नही है, फिर भी दोनो मे निम्नलिखित अन्तर होने के कारण दोनो दो विभिन्न मानसिक प्रक्रियाएँ (Two different mental process) है—

१ जहाँ भाव एक सरल एव प्राथमिक भावात्मक मानसिक क्रिया (Simple and primary affective mental activity) है, वहाँ सवेग एक 'जटिल भावात्मक मानसिक क्रिया' (Complex affective mental activity) है।

२ भाव के स्वरूप पर प्रकाश डालते समय ही गत अध्याय मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सवेग के होने के पूर्व भाव होता है या, यह कहा जाय कि प्रत्येक सवेग के साथ किसी-न-किसी भाव का सम्बन्ध रहता है, जैसे—शोक (Sorrow) और आनन्द (Joy) के सवेगो का क्रमश दु ख एव सुख के भावो के साथ रहता है। प्रत्येक सवेग को हम दो प्रकार की भावात्मक अनुभूतियाँ सुख और दु ख मे से किसी एक के अन्तर्गत रख सकते है। सवेग के साथ भाव का गहरा सम्बन्ध है। सक्षेप मे यह कह सकते है कि बिना भाव के सवेग सम्भव नहीं है, परन्तु इसके विपरीत सवेग के अभाव मे ही भाव होता है। अब भाव की अभिव्यक्ति किसी-न-किसी रूप मे आन्तरिक एव बाह्य व्यवहारो मे होती है तो भाव न रहकर सवेग हो जाता है। अत सवेग एक सक्रिय (Active) भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है तो भाव एक अपेक्षाकृत कम सक्रिय (Relatively less active) भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है।

३ भाव सदा आत्मगत (Subjective or Personal) होता है, परन्तु सवेग 'आत्मगत और वस्तुगत' (Personal and Impersonal) दोनो होता है। दूसरे के भावो का अनुभव हम नही कर सकते है और न हम उन्हे प्रत्यक्ष रूप मे देख ही सकते है। कोई किसी के अन्दर के दु खद भाव को प्रत्यक्ष रूप से नही देख सकता है। परन्तु शोक (Sorrow) अथवा क्रोध (Anger) का सवेग न केवल व्यक्ति अपने-आप मे अनुभव करता है, बल्कि इसे कुछ आन्तरिक एव बाह्य दोनो प्रकार के व्यवहारो द्वारा अभिव्यक्त भी करता है। फलत, सवेगात्मक व्यवहार को बाहर से भी देखा जा सकता है। सवेगात्मक अनुभूति तो व्यक्ति के अन्दर होती ही है। अस्तु, भाव को आत्मगत तथा सवेग को वस्तुगत एव आत्मगत दोनों कहा गया है।

४ भाव सिर्फ सुख-दु ख इन्ही दो प्रकार का होता है, परन्तु सवेग दो से अधिक तरह का होता है, जैसे—भय, क्रोध, शोक, आनन्द, प्यार इत्यादि।

५ भाव मे किसी भी प्रकार का शारीरिक परिवर्तन नही होता है, इसके विपरीत सवेग की अवस्था मे अनेक प्रकार के आन्तरिक एवं वाह्य शारीरिक परिवर्तन होते है, जैसे—क्रोध की अवस्था मे व्यक्ति की आँखें लाल हो जाती है, उसका शरीर काँपने लगता है, वह ओठ काटने लगता है तथा उसकी आवाज तेज हो जाती

हैं इत्यादि। ये ऐसे परिवर्तन हैं जिन्हें हम बाहर से देख सकते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त ऐसे भी परिवर्तन होते हैं जो शरीर के अन्दर होते हैं — पाचन क्रिया (Digestive function) का रुक जाना' हृदय की गति में परिवर्तन होना रक्त चाप में वृद्धि इत्यादि जिन्हें हम बाहर से नहीं देख सकते। परन्तु भाव की अभिव्यक्ति किसी प्रकार के वाह्य एवं आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन द्वारा नहीं होती है जब हम किसी वस्तु को देखकर दुःख का अनुभव करते हैं तो हम उससे छुटकारा पाना चाहते हैं। परन्तु जब किसी वस्तु को देखकर भय अथवा क्रोध के संवेग का अनुभव होता है तो हम इसकी अभिव्यक्ति क्रमशः भागने तथा आक्रमण करने के व्यवहार द्वारा करते हैं। अतः संवेग की अवस्था में व्यक्ति अधिक क्रियाशील हो जाता है और उसके द्वारा की गयी प्रतिक्रियाएँ विशिष्ट रूप की होती हैं जिसका सम्बन्ध उस संवेगविशेष से रहता है।

६. संवेग की अवस्था में हमारा शरीर भाव की अपेक्षा अधिक प्रभावित होता है। संवेग की अपेक्षा स्नायुमण्डल का कम भाग भाव में प्रभावित होता है जैसे- संवेग हमारे बृहत्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) के अतिरिक्त स्वतः संचालित स्नायु मण्डल और हाईपोथलेमस भी प्रभावित होते हैं। परन्तु भाव में सिर्फ हमारा बृहत्मस्तिष्कीय वल्क' ही प्रभावित होते हैं।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि संवेग के साथ-साथ व्यक्ति को वर्तमान भय तथा में एक प्रकार का उपद्रव (Disturbance) उत्पन्न हो जाता है पर भाव में ऐसी बात नहीं पायी जाती है। संवेग की अवस्था में उत्पन्न होने वाले इस उपद्रव के कारण ही उडवर्थ (Woodworth) नामक मनोवैज्ञानिक ने संवेग को 'Stirred up state of the organism' कहा है अर्थात् संवेग प्राणी की उत्तेजित अवस्था को कहते हैं। परन्तु जब तक यह उत्तेजित अवस्था आन्तरिक एवं वाह्य शारीरिक परिवर्तनों (External and Internal bodily changes) के रूप में प्रकट नहीं हो जाती है तब तक इसे संवेग की संज्ञा देना ठीक नहीं है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने ऐसा भी कहा है कि Feeling expressed in behaviour is called Emotion अर्थात् हमारे भाव की अभिव्यक्ति हमारे शारीरिक व्यवहारों द्वारा होने लगती है तब उसे हम संवेग की संज्ञा देते हैं। जब तक व्यक्ति को किसी चीज को देखकर सुखद एवं दुःखद अनुभव मात्र ही होता है तब तक उसे संवेग न कहकर भाव की अनुभूति ही कहेंगे। परन्तु जिस क्षण व्यक्ति हँसने या रोने लगता है तो उसे संवेग की संज्ञा देते हैं।

संवेग की इस प्रकार अनेक परिभाषाएं दी गयी हैं। परिभाषाओं को इन विविधता के बीच हम न पड़ कर संवेग को समझने के लिए संवेग में निहित शारीरिक प्रक्रियाओं (Physiological processes involved in Emotion) पर भी अत्यन्त संक्षेप में विचार करना होगा। संवेग में शारीरिक प्रक्रियाओं के क्रम के

सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतभेद है, जिसका वर्णन संवेग-सम्बन्धी सिद्धान्तों का उल्लेख करते समय आगे विस्तारपूर्वक किया जायगा, फिर भी सुविधा के लिए यहाँ इनका उल्लेख संक्षेप मे कर दिया जाता है।

संवेग में निहित शारीरिक प्रक्रियाएँ
(Physiological processes involved in Emotion)

संवेगात्मक परिस्थिति मे व्यक्ति के स्नायुमण्डल मे होनेवाली प्रक्रियाएँ विशेष रूप से निम्नलिखित प्रकार से होती है—

१ एक उत्तेजना प्राणी को उत्तेजित करती है (A stimulus stimulates the organism) जिसके फलस्वरूप वह कुछ प्रतिक्रियाएँ करता है। प्रतिक्रियाएँ केवल बाह्य व्यवहारो, जैसे —पैर-हाथ आदि मासपेशियो के सचालन द्वारा ही प्रदर्शित नही होती है, बल्कि शरीर के अन्दर स्थित चिकनी मासपेशियो (Smooth muscles) तथा 'पिण्डो' (Glands) मे भी परिवर्तन होते है जिन्हे हम बाहर से नही देख सकते है।

२ इनमे उत्पन्न शारीरिक प्रतिक्रियाएँ शरीर के प्रोपिरीयोसेप्टर्स (Proprioceptors) तथा इण्ट्रोसेप्टिर्स (Introceptors) दोनो उत्तेजित करती है।

३ उपर्युक्त दोनो प्रकार के उत्तेजित ग्राह्यकेन्द्रियो से स्नायुप्रवाह निकल कर ज्ञानवाही सयोजक नाडी-मण्डल (Sensory-Peripheral Nervous system) से होकर केन्द्रीय स्नायुमण्डल (Central Nervous-system) मे आते है। इसके फलस्वरूप मनुष्य अपने वातावरण से अपने को अपने सवेगो द्वारा अभियोजित कर पाता है।

इस तरह हम देखते है कि सवेग के दो प्रमुख पहलू है—

संवेग के दो पहलू
(The two aspects of Emotion)

सवेग के निम्नलिखित दो पहलू है—(१) सवेगात्मक अनुभूति (Emotional Experience) तथा (२) संवेगात्मक व्यवहार (Emotional Behaviour)। अब हम इन पर एक-एक कर प्रकाश डालेंगे।

१ सवेगात्मक अनुभूति (Emotional Experience) :

"सवेगात्मक अवस्था" (Emotional state) मे व्यक्ति की जो मानसिक स्थिति रहती है उसका अध्ययन अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि द्वारा किया गया है। यह सत्य है कि सवेग की अवस्था मे जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति रहती है उसका अन्तर्निरीक्षण (Introspection) सम्भव नही है। परन्तु इसका अनुनिरीक्षण (Retrospection) हम कर सकते है। सवेग की अवस्था मे जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति रहती है उसका निरीक्षण उसी समय करके उसके बारे मे रिपोर्ट देना

है इत्यादि। ये ऐसे परिवर्तन हैं जिन्हें हम बाहर से देख सकते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त ऐसे भी परिवर्तन होते हैं जो शरीर के अन्दर होते हैं —'पाचन क्रिया (Digestive function) का रुक जाना, हृदय की गति में परिवर्तन होना' रक्त चाप में वृद्धि इत्यादि जिन्हें हम बाहर से नहीं देख सकते। परन्तु भाव की अभिव्यक्ति किसी प्रकार के बाह्य एवं आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन द्वारा नहीं होती है। जब हम किसी वस्तु को देखकर दुःख का अनुभव करते हैं तो हम उससे छुटकारा पाना चाहते हैं। परन्तु जब किसी वस्तु को देखकर भय अथवा क्रोध के संवेग का अनुभव होता है तो हम इसकी अभिव्यक्ति क्रमशः भागने तथा आक्रमण करने के व्यवहार द्वारा करते हैं। अतः संवेग की अवस्था में व्यक्ति अधिक क्रियाशील हो जाता है और उसके द्वारा की गयी अभिव्यक्तियाँ विशिष्ट रूप की होती हैं जिसका सम्बन्ध उस संवेगविशेष से रहता है।

६. संवेग की अवस्था में हमारा शरीर भाव की अपेक्षा अधिक प्रभावित होता है। संवेग की अपेक्षा स्नायुमण्डल का कम भाग भाव में प्रभावित होता है जैसे—संवेग हमारे बृहन्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) के अतिरिक्त स्वतः संचालित स्नायुमण्डल और हाईपोथलेमस भी प्रभावित होते हैं। परन्तु भाव में सिर्फ हमारा बृहन्मस्तिष्कीय वल्क ही प्रभावित होते हैं।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि संवेग के साथ-साथ व्यक्ति की वर्तमान अवस्था में एक प्रकार का उपद्रव (Disturbance) उत्पन्न हो जाता है पर भाव में ऐसी बात नहीं पायी जाती है। संवेग की अवस्था में उत्पन्न होने वाले इस उपद्रव के कारण ही वुडवर्थ (Woodworth) नामक मनोवैज्ञानिक ने संवेग को 'Stirred up state of the organism" कहा है, अर्थात् संवेग प्राणी की उत्तेजित अवस्था को कहते हैं। परन्तु जब तक यह उत्तेजित अवस्था आन्तरिक एवं बाह्य शारीरिक परिवर्तनों (External and Internal bodily changes) के रूप में प्रकट नहीं हो जाती है, तब तक इसे संवेग की संज्ञा देना ठीक नहीं है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने ऐसा भी कहा है कि 'Feeling expressed in behaviour is called Emotion अर्थात् हमारे भाव की अभिव्यक्ति हमारे शारीरिक व्यवहारों द्वारा होने लगती है तब उसे हम संवेग की संज्ञा देते हैं। जब तक व्यक्ति को किसी चीज को देखकर सुखद एवं दुःखद अनुभव मात्र ही होता है तब तक उसे संवेग न कहकर भाव की अनुभूति ही कहेंगे। परन्तु जिस क्षण व्यक्ति हँसने या रोने लगता है तो उन संवेग की संज्ञा देते हैं।

संवेग की इस प्रकार अनेक परिभाषाएं भी दी गयी हैं। परिभाषाओं की इन विविधता के बीच हम न पड़ कर संवेग को समझने के लिए संवेग में निहित शारीरिक प्रक्रियाओं (Physiological processes involved in Emotion) पर भी अत्यन्त संक्षेप में विचार करना होगा। संवेग में शारीरिक प्रक्रियाओं के क्रम क

सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतभेद है, जिसका वर्णन संवेग-सम्बन्धी सिद्धान्तों का उल्लेख करते समय आगे विस्तारपूर्वक किया जायगा, फिर भी सुविधा के लिए यहाँ इनका उल्लेख सक्षेप मे कर दिया जाता है।

सवेग में निहित शारीरिक प्रक्रियाएँ

(Physiological processes involved in Emotion)

सवेगात्मक परिस्थिति मे व्यक्ति के स्नायुमण्डल मे होनेवाली प्रक्रियाएँ विशेष रूप मे निम्नलिखित प्रकार से होती है—

१ एक उत्तेजना प्राणी को उत्तेजित करती है (A stimulus stimulates the organism) जिसके फलस्वरूप वह कुछ प्रतिक्रियाएँ करता है। प्रतिक्रियाएँ केवल वाह्य व्यवहारो, जैसे—पैर-हाथ आदि मासपेशियो के सचालन द्वारा ही प्रदर्शित नही होती है, बल्कि शरीर के अन्दर स्थित चिकनी मासपेशियो (Smooth muscles) तथा 'पिण्डो' (Glands) मे भी परिवर्तन होते है जिन्हे हम बाहर से नही देख सकते है।

२ इनसे उत्पन्न शारीरिक प्रतिक्रियाएँ शरीर के **प्रोपिरीयोसेप्टर्स** (Proprioceptors) तथा इन्ट्रोसेप्टिर्स (Introceptors) दोनो उत्तेजित करती है।

३ उपर्युक्त दोनो प्रकार के उत्तेजित ग्राहककेन्द्रियो से स्नायुप्रवाह निकल कर **ज्ञानवाही सयोजक नाडी-मण्डल** (Sensory-Peripheral Nervous system) से होकर **केन्द्रीय स्नायुमण्डल** (Central Nervous-system) मे जाते है। इसके फलस्वरूप मनुष्य अपने वातावरण से अपने को अपने सवेगो द्वारा अभियोजित कर पाता है।

इस तरह हम देखते है कि सवेग के दो प्रमुख पहलू है—

संवेग के दो पहलू

(The two aspects of Emotion)

सवेग के निम्नलिखित दो पहलू है—(१) **सवेगात्मक अनुभूति** (Emotional Experience) तथा (२) **संवेगात्मक व्यवहार** (Emotional Behaviour)। अब हम इन पर एक-एक कर प्रकाश डालेंगे।

१ सवेगात्मक अनुभूति (Emotional Experience) ·

"सवेगात्मक अवस्था" (Emotional state) मे व्यक्ति की जो मानसिक स्थिति रहती है उसका अध्ययन अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि द्वारा किया गया है। यह सत्य है कि सवेग की अवस्था मे जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति रहती है उसका अन्तर्निरीक्षण (Introspection) सम्भव नही है। परन्तु इसका अनुनिरीक्षण (Retrospection) हम कर सकते हैं। सवेग की अवस्था मे जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति रहती है उसका निरीक्षण उसी समय करके उसके बारे मे रिपोर्ट देना

उसके लिए सम्भव नहीं है। परन्तु संवेग के लुप्त हो जाने पर व्यक्ति यदि अपने स्मरण के आधार पर उस परिस्थिति विशेष के बारे में रिपोर्ट दे तो संवेग की अवस्था में रहने वाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति का ज्ञान हमें बहुत हद तक मिल सकता है। संवेग की अनुभूति करने के पश्चात् यदि भिन्न भिन्न सामान्य व्यक्तियों द्वारा दी गयी रिपोर्ट में समानता पायी जाय तो हमें निश्चित रूप से सामान्य व्यक्तियों की संवेगात्मक स्थिति में रहने वाली मानसिक अवस्था का एक समुचित ज्ञान मिल पायेगा। यहाँ पर एक यह दिक्कत होती है कि कभी-कभी व्यक्ति उचित शब्दों (Appropriate words) के अभाव में अपनी अनुभूति का सही-सही वर्णन नहीं कर पाता। इस दिक्कत को दूर करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने संवेग की अवस्था में होने वाले अनुभवों की एक निम्नलिखित सूची (List) तैयार की है जिनका सम्बन्ध किसी-न किसी संवेग से अवश्य रहता है जैसे—सुखकर (Pleasant) दुःख कर (Unpleasant) उदास (Dull) उद्विग्नता (Excitement) गतिशीलता (Speed) हतोत्साह (Cold) तनाव (Tension) इत्यादि। जब किसी व्यक्ति में संवेग की अवस्था में रहने वाली मानसिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करना होता है तो उपर्युक्त प्रकार की सूची उसके सामने प्रस्तुत की जाती है तथा उससे उस संवेग की अवस्था में होने वाले प्रस्तुत अनुभवों में जिनका अनुभव उसे होता है उसके सामने हाँ और जिसका अनुभव नहीं होता है उसमें न लिखकर अपने अनुभवों को व्यक्त करना पड़ता है। इस तरह के प्रयोगात्मक अध्ययनों (Experimental studies) से यह स्पष्ट हुआ है कि अधिकांश लोगों को भय के संवेग की अवस्था में दुःख तनाव, हतोत्साह इत्यादि का अनुभव होता है तथा आनन्द के संवेग में सुख उत्तेजना आराम इत्यादि का अनुभव होता है पर यहाँ स्मरण रखने योग्य एक बात यह है कि ऊपर की सूची में हम देखते हैं कि कुछ ऐसी अनुभूतियाँ हैं जो प्रायः एक से अधिक प्रकार के संवेगों में किसी-न किसी मात्रा में पायी जाती हैं। दुःख का अनुभव व्यक्ति शोक तथा भय दोनों के संवेगों की अवस्था में हुई अनुभूतियों का व्यक्ति द्वारा किये गये वर्णन के आधार पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि किस संवेग से इन अनुभूतियों का सम्बन्ध है। अस्तु इसका समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन अनुभूतियों से सम्बन्धित संवेगात्मक परिस्थिति से उत्पन्न व्यवहारों का भी अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

२ संवेगात्मक व्यवहार (Emotional Behaviour)—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है संवेग अध्ययन चेतनानुभूति के साथ-साथ व्यवहार के रूप में भी होता है। संवेग की अवस्था में प्रायः मुख्यतः निम्नलिखित दो प्रकार के व्यवहार पाये जाते हैं—(१) बाह्य व्यवहार या परिवर्तन (External behaviour or changes) तथा (२) आन्तरिक व्यवहार या परिवर्तन (Internal behaviour or changes)।

बाह्य व्यवहार से हमारा तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जिन्हें हम बाहर से देख

सकते हैं, जैसे—मुखाकृतिक अभिव्यञ्जन (Facial expression), स्वराभिव्यञ्जन (Vocal expression) तथा शारीरिक स्थिति (Bodily posture) मे परिवर्तन आदि।

आन्तरिक परिवर्तन से हमारा तात्पर्य शरीर के अन्दर होने वाले परिवर्तन से है, जैसे—'हृदय की गति' 'रक्त सचार,' रक्त-चाप' इत्यादि मे परिवर्तन। इन्हे हम पृष्ठ १८१ पर दी गयी तालिका द्वारा अत्यधिक स्पष्ट कर सकते हैं।

अब हम एक-एक कर सक्षेप मे इनपर प्रकाश डालेंगे।

(क) संवेग मे होने वाले बाह्य शारीरिक परिवर्तन (External bodily change in Emotion)—सवेग मे होने वाले बाह्य शारीरिक परिवर्तन निम्नलिखित हैं—

१. मुखाकृतिक अभिव्यञ्जन (Facial Expression)—संवेग की अवस्था मे विशेष प्रकार का मुखाकृतिक अभिव्यञ्जन देखा जाता है। चेहरे के उन भागो मे जैसे—ललाट, आँख, नाक गाल, मुख इत्यादि मे एक विशेष प्रकार की 'गतिशीलता एव सक्षोभन' के द्वारा विभिन्न प्रकार के सवेगो की अभिव्यक्ति होती है। इन अभिव्यक्तियो को देखकर ही हम समझ सकते हैं कि व्यक्ति किस तरह के सवेग का अनुभव कर रहा है, जैसे—साधारणत जब हम किसी व्यक्ति को आँखे लाल-लाल किये तथा दाँत पीसते हुए देखते हैं तो समझ जाते है कि वह 'क्रुद्ध' है। हालाँकि विभिन्न सवेगो मे खास-खास तरह के मुखाकृतिक अभिव्यजन पाये जाते हैं फिर भी यह कहना गलत होगा कि एक विशिष्ट प्रकार के मुखाकृति अभिव्यजन एक ही तरह के सवेग मे पाये जाते है, चूँकि एक ही प्रकार का मुखाकृतिक अभिव्यजन दो विभिन्न सवेगो की अवस्था मे भी पाया जाता है। फिर विभिन्न संस्कृतियो (Cultures) मे एक ही प्रकार के मुखाकृतिक अभिव्यजन का भिन्न-भिन्न सवेगात्मक अर्थ होता है। कुछ सस्कृतियो के व्यक्तियो में 'विस्फारित नेत्र' (Wide open eyes) आश्चर्य की अवस्था में देखे जाते है। परन्तु इसके विपरीत कुछ ऐसी सस्कृतियाँ भी हैं (जैसे—चीन की सस्कृति) जहाँ विस्फारित नेत्र सिर्फ क्रोध के परिचायक हैं। खास-खास प्रकार का मुखाकृतिक अभिव्यजन भिन्न-भिन्न सस्कृतियो मेँ एक विशिष्ट अर्थ रखता है, जो उस सस्कृति की परम्परा (Tradition) का सूचक है। इस सम्बन्ध में डार्विन (Darwin) तथा फर्नबर्गर (Fernberger) आदि महोदयो ने भी प्रयोग किया है। उन्होने कुछ 'निर्णायकों' (Judges) के समक्ष विभिन्न सवेगो को प्रकट करने वाले कुछ चेहरो के चित्रों' (Photographs) को रखा और उनसे यह कहने को कहा कि उन चित्रो को देखने से कौन-कौन से सवेगो का पता चलता है। परन्तु निर्णायको द्वारा दिये विचारो में काफी विभिन्नता पायी गयी। एक ही चित्र को विभिन्न निर्णायको ने विभिन्न सवेगो का द्योतक बतलाया। इससे यह स्पष्ट है कि वस्तुत ये चित्र विशिष्ट प्रकार के सवेग के द्योतक नही हैं।

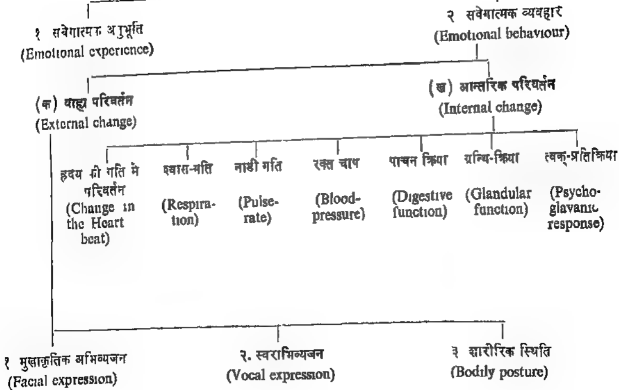
उपर्युक्त मनोवैज्ञानिको का कहना है कि जब तक जिस परिस्थिति मे किसी

व्यक्ति के चेहरे का चित्र लिया गया है उसका पूर्व-ज्ञान नहीं हो तब तक सिर्फ मुखाकृतिक अभिव्यंजन सम्बन्धी चित्र को देख कर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि कौन-सा संवेग उससे प्रकट होता है। इस निष्कर्ष का समर्थन उडवर्थ (Woodworth) महोदय ने भी किया है। उनका कहना है कि मुखाकृतिक अभिव्यंजनों के आधार पर संवेगों का अध्ययन करना गलत होगा, अर्थात् यह एक मिथ्य है (Reading facial expression is a myth)।

२ स्वराभिव्यञ्जन (Vocal expression)—संवेगों की अवस्था में प्राणियों में एक विशेष प्रकार का स्वराभिव्यंजन भी पाया जाता है जैसे रोने, हँसने चिल्लाने, जोर-जोर से कटु शब्द बोलने धीरे-धीरे मधुर शब्द बोलने इत्यादि। यदि सामान्य अवस्था तथा संवेग की अवस्था में व्यक्ति के 'स्वर की गम्भीरता, ऊंचाई तथा गति' इत्यादि पर ध्यान दिया जाय तो दोनों में काफी अन्तर पाया जायगा। संवेग की अवस्था में अपेक्षाकृत स्वर की गम्भीरता, ऊंचाई तथा गति' अधिक रहती है। क्रोध की अवस्था में स्वर ऊंचा रहता है और इसमें कम्पन भी पाया जाता है। मधुर स्वर प्यारे के समय में पाये जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाषा (Language) के द्वारा भी संवेग की अभिव्यक्ति की जाती है। हम अपने नेताओं को भाषण देते समय विभिन्न प्रकार के संवेगों की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न तरह के स्वरों द्वारा कर पाते हैं। इसके अतिरिक्त नाटकों तथा फिल्मों में भी नायिकाओं और नायकों को भी विभिन्न संवेगों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार के स्वरों के माध्यम से करते देखते हैं। फिर भी इस सम्बन्ध में स्मरण रखने योग्य बात यह है कि जैसा ऊपर मुखाकृतिक अभिव्यंजन के बारे में कहा गया है, स्वराभिव्यंजन के सम्बन्ध में भी पाया गया है कि एक विशिष्ट प्रकार के संवेग के साथ सम्बन्धित नहीं रहता है। एक ही प्रकार का स्वराभिव्यंजन दो विभिन्न संवेगों में पाया जाता है जैसे—अत्यधिक आनन्द तथा विषाद दोनों के संवेग में व्यक्ति रोते हुए पाये जाते हैं अथवा उनका गला बैंध जाता है।

इसका यह अर्थ हुआ कि सिर्फ स्वरों को सुनकर निश्चित रूप से उनके द्वारा अभिव्यक्त संवेग का पता नहीं चलता है। यहाँ पर भी उस परिस्थिति विशेष का ज्ञान होना आवश्यक है जिसमें व्यक्ति ने इन स्वरों की अभिव्यक्ति की है।

३ शारीरिक स्थिति (Bodily posture)—संवेगों की अवस्था में प्राणी में एक विशेष प्रकार की शारीरिक स्थिति पायी जाती है। फिर भी यहाँ पर स्मरण करने योग्य प्रायः निम्नलिखित तीन प्रमुख बातें हैं—(क) एक ही संवेग की अवस्था भिन्न भिन्न व्यक्ति में विभिन्न प्रकार की शारीरिक स्थिति उत्पन्न करती है। अर्थात् एक ही संवेग की अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति में एक ही प्रकार की शारीरिक स्थिति नहीं पायी जाती है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति में सांप को देख कर भय का संवेग होने पर वह भागता हुआ पाया जाता है तो दूसरा किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मूर्तिवत् खड़ा रह जाता है। (ख) विभिन्न संस्कृतियों में एक ही प्रकार की शारीरिक


संवेग
(Emotion)
१ संवेगात्मक अनुभूति
(Emotional experience)
२ संवेगात्मक व्यवहार
(Emotional behaviour)
(क) बाह्य परिवर्तन
(External change)
(ख) आन्तरिक परिवर्तन
(Internal change)
हृदय की गति में परिवर्तन
(Change in the Heart beat)
श्वास-गति
(Respiration)
नाड़ी गति
(Pulse-rate)
रक्त चाप
(Blood-pressure)
पाचन क्रिया
(Digestive function)
ग्रन्थि-क्रिया
(Glandular function)
त्वक्-प्रतिक्रिया
(Psycho-glavanic response)
१ मुखाकृतिक अभिव्यजन
(Facial expression)
२. स्वराभिव्यजन
(Vocal expression)
३ शारीरिक स्थिति
(Bodily posture)

स्थिति भिन्न भिन्न संवेगों को सूचित करती है तथा (ख) विभिन्न संवेग भिन्न भिन्न शारीरिक स्थितियों को उत्पन्न करता है जैसे—प्रसन्नता की अवस्था में मनुष्य का सीना तना रहता है तथा सिर ऊंचा उठा रहता है। दुःख की अवस्था में सारा शरीर झुका रहता है। क्रोध की अवस्था में मुट्ठी बंधी होती है वह हाथ पैर पटकने लगता है और आक्रमण कर बैठता है। भय की अवस्था में वह भागने लगता है तथा प्रेम की अवस्था में अपने प्रेम-पात्र के समीप जाने लगता है। हालांकि विभिन्न संवेगों की अवस्था में पायी जानेवाली शारीरिक स्थितियां एक-दूसरे से भिन्न होती हैं फिर भी जैसा पृष्ठ १८० के (क) और (ख) में कहा गया है उनके अनुसार सिर्फ शारीरिक स्थिति को देखकर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वे किस संवेग विशेष के द्योतक हैं।

जेम्स लांजे (James-Lange) के अनुसार इन शारीरिक स्थितियों का संवेग के होने में प्रमुख स्थान माना जाता है। उनका कहना है कि इनके अभाव में किसी प्रकार के संवेग का होना असम्भव है। जेम्स लांजे के संवेग सम्बन्धी सिद्धांत का उल्लेख करते समय इस पर आगे विस्तार से प्रकाश डाला जायगा।

(ख) संवेग में होने वाले आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन (Internal Bodily Changes in Emotion) यह पहले भी कहा जा चुका है कि संवेग की अवस्था में बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते हैं। बाह्य परिवर्तनों का उल्लेख पहले हो चुका है। संवेग की अवस्था में शरीर के अन्दर होने वाले कुछ प्रमुख शारीरिक परिवर्तनों पर हम अब प्रकाश डालेंगे। शरीर के अन्दर होने वाले इन परिवर्तनों का हम बाह्य रूप से निरीक्षण नहीं कर सकते हैं। इनका निरीक्षण विशिष्ट यन्त्रों (Special instruments) के द्वारा सम्भव है। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों द्वारा बहुत से अनुसंधान (Researches) किये गये हैं जिनके फलस्वरूप उनका निष्कर्ष है कि संवेग की अवस्था में शरीर के अन्दर आगे लिखे गये मुख्य परिवर्तन होते हैं जैसे—(क) सांस लेने की मुख्य क्रिया में परिवर्तन (ख) हृदय की गति में परिवर्तन (ग) नाड़ी की गति में परिवर्तन, (घ) रक्त-सम्बन्धी परिवर्तन (ङ) रस-पाक में परिवर्तन (च) अन्तड़ियों की क्रिया में या पाचन क्रिया में परिवर्तन तथा (छ) त्वक् प्रतिक्रियाओं इत्यादि में परिवर्तन।

अब एक-एक कर संक्षेप में इनका वर्णन किया जाता है—

(1) सांस की गति में परिवर्तन (Changes in Respiration)—प्रायः यह देखा जाता है कि संवेग की अवस्था में अपेक्षाकृत सांस की गति धीमी या तेज हो जाती है। सांस लेने और छोड़ने की क्रियाओं की अवधि का अनुपात (Ratio) सामान्यतः १ : ४ रहता है। परन्तु संवेग की अवस्था में यह बदलकर कम या अधिक हो जाता है और यह अनुपात विभिन्न संवेगों में भिन्न रहता है। संवेग में

सामान्य अवस्थाओं के अपेक्षाकृत साँस लेने की गति भिन्न रहती है। सांस लेने की गति को 'निमोग्राफ' (Pneumograph) नामक यन्त्र द्वारा मापा जाता है।

(ii) **हृदय की गति मे परिवर्तन** (Changes in the Heartbeat)—साँस की गति से हृदय की गति का गहरा सम्बन्ध है। इसके फलस्वरूप सवेग की अवस्था मे साँस की गति मे परिवर्तन होने के साथ-साथ हृदय की गति मे भी परिवर्तन होता है जो 'इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ' (Electrocardiograph) नामक यन्त्र द्वारा मापा जाता है। साधारणत यह पाया जाता है कि सन्देह कि अवस्था मे अपेक्षाकृत हमारे हृदय की गति बढती जाती है। परन्तु कभी कभी इसकी गति धीमी अथवा रुक जाने-जैसी भी हो जाती है, जैसे—जब हम बहुत डर जाते है तो कभी-कभी हमारे हृदय की गति बहुत ही तेज हो जाती है, परन्तु कभी-कभी इसकी गति क्षण भर के लिए अत्यधिक मन्द पड जाती है।

(iii) **नाडी की गति मे परिवर्तन** (Changes in pulse rate)—हृदय की गति से नाडी की गति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत. सवेग की अवस्था मे भी हृदय की गति मे परिवर्तन होने के साथ-साथ हमारी नाडी की अवस्था मे भी परिवर्तन होता है। सवेग की अवस्था मे सामान्य अवस्थाओ के अपेक्षाकृत नाडी की गति विशेष रूप से भिन्न रहती है। इसे 'स्फिगमोमैनोमीटर' (Sphygmomanometer) नामक यन्त्र से मापा जाता है।

(iv) **रक्त सम्बन्धी परिवर्तन** (Changes in Blood)—रक्त सम्बन्धी परिवर्तन निम्नलिखित तीन प्रमुख प्रकार के होते है—(१) रक्त-चाप मे परिवर्तन (Changes in Blood pressure), (२) रक्त संचालन मे परिवर्तन (Changes in Blood circulation) तथा (३) रक्त के रासायनिक तत्वो के परिवर्तन (Changes in chemical composition of the Blood)।

साधारणत सामान्य अवस्थाओ के अपेक्षाकृत सवेग की अवस्था मे उपर्युक्त रक्त-सम्बन्धी तीनो प्रकार के परिवर्तन पाये जाते है। क्रोध और प्रेम के सवेग की अवस्था मे रक्तचाप तथा रक्त-सचालन की गति मे वृद्धि हो जाती है, परन्तु भय के सवेग मे रक्त चाप तथा रक्त-सचालन की गति दोनो प्राय कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त संवेग की अवस्था मे रक्त के रासायनिक तत्वो मे भी काफी परिवर्तन हो जाता है। रक्तचाप मे होने वाले परिवर्तन को हम स्फिगमोमैनोमीटर (Sphygmomanometer) तथा स्टेथोसकोप (Stethoscope) नामक यन्त्रो द्वारा माप सकते हैं।

(v) **रस-पाक मे परिवर्तन** (Metabolic Changes)—यह पाया गया है कि क्रोध और भय मे सवेग मे ऐसा कोई परिवर्तन नही पाया जाता है।

(vi) **पाचन-क्रिया मे परिवर्तन** (Changes in Gastro-intestinal or Digestive function)—सवेग मे पाचन-क्रिया-सम्बन्धी अग्रलिखित तीन प्रकार के परिवर्तन पाये जाते है—

(क) पाचन क्रिया का थोड़ी देर के लिए बन्द हो जाना (ख) इसका थोड़ी देर के लिए मन्द पड़ जाना या (ग) पाचन क्रिया का अत्यधिक तेज हो जाना। संवेग की अवस्था में कभी-कभी थोड़ी देर के लिए पाचन क्रिया मन्द हो जाती है तथा इसके फलस्वरूप व्यक्ति म कब्ज (Constipation) की शिकायत हो जाती है। पेट मे दर्द आदि होने लगता है। इसके विपरीत जब संवेग की अवस्था म पाचन क्रिया अत्यधिक तेज हो जाती है तो अतड़ियो की मंथन क्रिया (Churnig function) बहुत बढ़ जाती है। इसके कारण व्यक्ति में अजीर्णता (Diarrhoea) की शिकायत हो जाती है। उसे बहुत जोरों का दस्त होने लगता है। इस हालत में कुछ व्यक्तियों को पेशाब अधिक होने लगता है। बिल्ली आदि जानवरो पर प्रयोग कर इस बात का पुष्टिकरण भी किया गया है। एक्स रे (X ray) द्वारा प्रयोग की अवस्था में अन्तरावयवों (Viscera) अन्दर होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सकता है। यही कारण है कि कब्जियत तथा दस्त इत्यादि बीमारियों का कारण संवेगात्मक असतुलन (Emotional instability) भी बताया गया है। जिन व्यक्तियो में क्रोध तथा भय के संवेग की मात्रा अधिक पायी जाती है व उपयुक्त बीमारियों से अधिक पीड़ित पाये जाते हैं।

(vii) साईकोगैलवेनिक या त्वक प्रक्रियाओं तथा मानस तरंगों में परिवर्तन (*Changes in Psychogalvanic Response and Brain waves*)—प्रयोगो द्वारा यह पाया गया है कि संवेग की अवस्था म त्वक प्रक्रिया तथा मानस तरगो में काफी परिवर्तन पाये जाते हैं जो सामान्य अवस्था से काफी भिन्न होते हैं जैसे—रोगटों का खड़ा हो जाना अथवा सारे शरीर मे रोमाच या सिहरन उत्पन्न हो जाना। इसका अध्ययन 'साइकोगैलवेनोमीटर (Psychogalvanometer) नामक यन्त्र द्वारा सम्भव है।

(viii) ग्रन्थियों या निकों की क्रियाओं में परिवर्तन (Changes in the activities of the glands)—प्रयोगो द्वारा यह प्रमाणित हुआ है कि इस रूप से निम्नलिखित प्रकार की ग्रन्थि क्रियाओ में जो परिवर्तन संवेग की अवस्था मे पाये जाते हैं जो सामान्य अवस्थाओं से विशेष रूप से भिन्न होते हैं जैसे—(१) एड्रीनल ग्रन्थि (Adrenal gland) (२) लार-ग्रन्थि (Salivary gland) ( ) अश्रु-ग्रन्थि (Tear gland) तथा (४) स्वेद ग्रन्थि (*Sweat gland*) इत्यादि की क्रियाओं में परिवर्तन।

एड्रीनल ग्रन्थि आमाशय मे स्थित एक बहुत ही प्रमुख ग्रन्थि है जिसका हमारे जीवन रस रक्षा-सम्बन्धी (*Preservation of life*) कार्यों म घनिष्ठ सम्बन्ध है। संवेग की अवस्था में सामान्य अवस्थाओ म अपेक्षाकृत एड्रीनल ग्रन्थि की क्रिया तेज हो जाती है, जिसके कारण यकृत (Liver) उत्तेजित हो जाता है और यह अधिक मात्रा म चीनी (Sugar) छोड़ने लगता है। अत हवा लगने स रक्त शीघ्र जम' (Coagulate) जाता है और मांसपेशियों में थकावट देर से होती है। साथ

प्राय व्यक्ति मे अधिक शक्ति भी आ जाती है। यही कारण है कि एकाएक सॉंप देख लेने मे भय का सवेग उत्पन्न होने पर हम बदहवास होकर भाग सकते है तथा हम ऐसी क्रियाएँ करते है जिनके बारे मे सवेग समाप्त होने पर यदि हम सोचें तो हमे स्वय आश्चर्य होगा कि हमने कैसे यह सब कर लिया; जैसे— भागते समय ऊँची दीवार अथवा चौडे नाले को तडप जाना। यह सम्भव है कि बदहवास होकर भागने के समय हमारे शरीर के किसी अग के फूट जाने के कारण रक्त बहने लगे। परन्तु जैसा कि ऊपर ही कहा गया है, एड्रीनल-ग्रन्थि की क्रिया मे वृद्धि होने के कारण हुवा लगने पर रक्त शीघ्र जम जाता है। अत अधिक रक्त शरीर से नही निकल पाता है। इस तरह स्पष्ट है कि सवेग की अवस्था मे एड्रीनल ग्रन्थि की क्रियाओ मे वृद्धि हो जाने के कारण ऐसी-ऐसी क्रियाएँ व्यक्ति करता है जिनका जीवन रक्षा से घनिष्ट सम्बन्ध है।

सवेग की अवस्था मे लार-ग्रन्थि (Salivary gland), अश्रु-ग्रन्थि (Tear-gland) तथा स्वेद-ग्रन्थि (Sweat gland) की क्रियाओ मे भी परिवर्तन होता है। भय तथा क्रोध के समय लार-ग्रन्थि की क्रिया मन्द पड जाती है जिससे ओठ सूखने लगते है। फलत व्यक्ति को बहुत प्यास लगती है। अश्रु और स्वेद-ग्रन्थि की क्रियाओ के बढ जाने पर इन सवेगो की अवस्था मे क्रमश आँसू निकलने लगते हैं और पसीना अधिक छूटने लगता है और जो सामान्य अवस्थाओ मे नही पाये जाते हैं। पर ऐसी बाते प्रेम के सवेग मे नही पायी जाती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सवेग की अवस्था मे अनेक प्रकार के आन्तरिक परिवर्तन शरीर मे होते है, परन्तु यहाँ पर निम्नलिखित दो बातो का स्मरण रखना बहुत ही आवश्यक है—

(१) प्राय एक ही प्रकार के आन्तरिक शारीरिक परिवर्त्तन विभिन्न सवेगो मे पाये जाते हैं तथा (२) प्रत्येक सवेग से एक विशिष्ट तरह के आन्तरिक परिवर्तनो की शृ खला एक ही जैसी नहीं पायी जाती हैं।

फलत हम सिर्फ व्यक्ति के शरीर के अन्दर हुए परिवर्तनो के आधार पर यह निश्चित रूप से नही कह सकते है कि उसे किस प्रकार से सवेग की अनुभूति हुई है, अर्थात् किन सवेगात्मक अनुभूति का सम्बन्ध इन शारीरिक परिवर्तनो से है।

अत सक्षेप मे यह कह सकते है कि सवेग की अवस्था मे होनेवाले आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनो को किसी एक विशिष्ट सवेग का द्योतक नही माना जा सकता है। यहाँ पर भी जिस परिस्थिति अथवा उत्तेजना-विशेष के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप ये परिवर्तन हुए हैं उनका ज्ञान इस परिस्थिति मे उत्पन्न सवेग की सही-सही जानकारी के लिए अनिवार्य है।

*सवेग मे निहित नाड़ी यन्त्र
(Neural Mechanisms involved in Emotion)

हालांकि सवेग की परिभाषा देते समय यह स्पष्ट हो चुका है कि सवेग को

हम शरीर के किसी खास अंग मे निर्धारित (Localize) नही कर सकते हैं क्योंकि यह सारे शरीर को प्रभावित करता है फिर भी उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट है कि प्राय हमारे स्नायुमण्डल के निम्नलिखित दो भाग विशेष रूप से संवेग से उत्तेजित हैं जिनका उल्लेख यहाँ पर संवेग के सिद्धान्तों को ठीक से समझने के हेतु देना आवश्यक है— केन्द्रीय स्नायुमण्डल जिसमे मुख्यत (क) बृहन्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) (ख) हाइपोथेलेमस (Hypothalamus) तथा (२) स्वत संचालित स्नायु मण्डल (Autonomic Nervous system) है। इस तरह देखते हैं कि संवेग में स्नायुमण्डल के निम्नलिखित भाग विशेष रूप से प्रभावित होते हैं— (१) बृहन्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) (२) स्वत संचालित स्नायु मण्डल (Autonomic Nervous system) और (३) हाईपोथेलेमस (Hypothalamus)।

१ संवेग में बृहन्मस्तिष्कीय वल्क की क्रियाएँ (Role of Cerebral cortex In Emotion) — संवेग और बृहन्मस्तिष्कीय वल्क मे घनिष्ठ सम्बन्ध है जो निम्न लिखित बातो से स्पष्ट है—

(क) संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण बृहन्मस्तिष्कीय वल्क द्वारा ही सम्भव है।

(ख) इसके साथ साथ संवेगात्मक परिस्थितियो के साथ सफल अभियोजन करने के लिए बृहत मस्तिष्क का रहना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में कुत्ते तथा बिल्ली आदि जानवरो पर प्रयोग (Experiments) किये गये हैं। बिल्ली जिसका बृहद् मस्तिष्क काट दिया गया था। उसके समक्ष कुत्ता को रखने पर चुपचाप बैठी रह गयी। उसने भागने की भी कोशिश नही की। भाग जाना इस परिस्थिति में सफल अभियोजन के लिए जरूरी था।

(ग) संवेगात्मक परिस्थिति के हट जाने पर भी संवेगात्मक व्यवहार प्राय होते रहते है पर ऐसी बात बृहत मस्तिष्क के अभाव म सम्भव नही है जैसे— शत्रु को देखकर क्रोध का संवेग होने के कारण शारीरिक परिवर्तन होते है और शत्रु को दृष्टि से ओझल हो जाने पर भी कुछ देर तक ये होते पाये जाते हैं। परन्तु बृहन्मस्तिष्कीय वल्क के अभाव में यह कदापि सम्भव नही था।

(घ) बृहत् मस्तिष्क के अभाव में संवेगात्मक अभिव्यक्ति की तीव्रता बढ जाती है। इस सम्बन्ध म किये गये प्रयोगो के आधार पर मनोवैज्ञानिको का निष्कर्ष है कि 'बृहन्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) हाइपोथेलेमस (Hypothalamus)' आदि अन्य नाडी-यन्त्रो (Neural mechanisms) की क्रियाओं को नियन्त्रित करता है जिनपर संवेगात्मक व्यवहार निर्भर है।

२ संवेग में स्वत संचालित स्नायु मण्डल की क्रियाएँ (Role of Autonomic Nervous system in Emotion) — स्नायुमण्डल का उल्लेख करते समय यह बताया गया है कि स्वत संचालित स्नायुमण्डल के अन्य अवयवों की तरह उनका एक अवयव है। इसके प्रधानत दो अंग हैं— (१) सहानुभूतिक मण्डल (Sympa

thetic Division) और (२) उपसहानुभूतिक मण्डल (Parasympathetic Division)।

यहाँ पर फिर से इन दोनो की बनावट तथा क्रियाओ का उल्लेख विस्तार मे करना आवश्यक नही है। परन्तु सिर्फ इतना कह देना अनिवार्य है कि इन दोनो से की गयी क्रियाएँ परस्पर विरोधी होती हैं। उदाहरण के लिए, जब 'उपसहानुभूतिक मण्डल' के कार्य की प्रधानता रहती है, तो लार टपकना बढ जाता है, 'एड्रीनल-ग्रन्थि का कार्य रुक जाता है तथा हृदय की गति धीमी हो जाती है, आंखो की पुतली फैल जाती है इत्यादि। ठीक इसके विपरीत जब सहानुभूतिक मण्डल की प्रधानता रहती है तो हृदय की गति बढ जाती है, लार का टपकना रुक जाता है, 'एड्रीनल-पिण्ड' विशेष रूप से उत्तेजित हो जाता है तथा आंखो की पुतली सिकुड जाती है इत्यादि।

इस तरह स्पष्ट है कि सवेग की अवस्था मे शरीर के अन्दर होने वाले विभिन्न परिवर्तन जिनका उल्लेख विस्तार मे पहले ही किया जा चुका है, उनका आधार प्राणी का सहानुभूतिक मण्डल (Sympathetic Division) ही है। जेम्स और लांजे महोदयो (James-Lange) ने सहानुभूतिक मण्डल को ही सवेग का आधार माना है। अर्थात्, उनके कथनानुसार इसके अभाव मे सवेगात्मक अनुभूति का होना सम्भव नही है।

हाल तक मनोवैज्ञानिको का मत था कि सवेग मे 'स्वत संचालित स्नायु-मण्डल' के उपसहानुभूतिक भाग (Para-Sympathetic Division) का कोई भी स्थान नही है। सवेग मे स्वत सचालित स्नायुमण्डल का सिर्फ वही भाग जिसे 'सहानुभूतिक मण्डल' की सज्ञा दी गयी है, प्रभावित होता है। परन्तु हाल ही मे इधर पशुओ पर जो अध्ययन किये गये है, इनके फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि सवेग की अवस्था मे प्राणी मे 'स्वत सचालित स्नायुमण्डल' का सिर्फ सहानुभूतिक भाग ही नही, बल्कि इसमे पूरा 'स्वत सचालित स्नायुमण्डल' ही क्रियाशील रहता है। अत हम यह कह सकते है कि सवेग की अवस्था मे स्वत सचालित स्नायुमण्डल ही क्रियाशील रहता है या हम कह सकते है कि सम्पूर्ण स्वत सचालित स्नायुमण्डल के द्वारा ही सवेग की अवस्था मे होने वाली आन्तरिक क्रियाओ का नियन्त्रण होता है।

३ सवेग मे हाइपोथैलेमस की क्रियाएँ (Role of Hypothalamus in Emotion) – 'शरीर शास्त्रज्ञो' (Physiologist) ने अपने अनुसन्धानो (Researches) के आधार पर पता लगाया है कि सवेगात्मक व्यवहार नियन्त्रण कार्य हाइपोथैलेमस करता है। मासरमैन (Maserman) आदि मनोवैज्ञानिको ने भी इस सम्बन्ध मे कुत्ते तथा बिल्लियो पर प्रयोग कर इस बात का पुष्टिकरण किया है। किसी प्राणी के हाइपोथैलेमस को उसके मस्तिष्क से काट कर निकाल दिये जाने के बाद उसके सामने किसी सवेग उत्पन्न करने वाली परिस्थिति को प्रस्तुत किया गया तो

उसमे किसी प्रकार का संवेगात्मक व्यवहार नही दृष्टिगत हुआ। पर ऐसी बात उसके शरीर के अन्य अंगों को काटकर हटाने पर नहीं पायी गयी। इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि संवेगात्मक व्यवहार का होना सिर्फ हाइपोथलेमस पर ही आधारित है, क्योंकि मस्तिष्क के दूसरे भाग विशेषतः वृहद्‌मस्तिष्कीय वल्क का प्रभाव भी संवेगात्मक व्यवहार पर पड़ता है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यह सही है कि हाइपोथलेमस का संवेगात्मक व्यवहार को उत्पन्न करने में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। परन्तु संवेग के भावात्मक पहलू (Feeling aspect) में हाइपोथलेमस का कहाँ तक महत्त्व है, यह बात विवादास्पद है।

कैनन (Cannon) तथा बार्ड (Bard) आदि मनोवैज्ञानिकों ने हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) को ही संवेगात्मक व्यवहार का प्रमुख आधार माना है जिस पर आगे प्रकाश डाला जायगा।

संवेग के सिद्धान्त
(Theories of Emotion)

मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर संवेग के विभिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं, पर उन सभी का उल्लेख करना यहाँ अभीष्ट नहीं है। फिर भी हम यहाँ संवेग के निम्नलिखित सिद्धान्त का उल्लेख एक एक कर करेंगे—(१) सामान्य सिद्धान्त (Commonsense Theory) (२) जेम्स लांगे का सिद्धान्त (James Lange Th-ory) तथा (३) हाइपोथलमिक सिद्धान्त (Hypothalamic Theory)।

यह पहले भी कहा जा चुका है कि संवेग के दो पहलू हैं—(क) संवेगात्मक अनुभूति तथा (ख) संवेगात्मक व्यवहार।

कुछ सिद्धान्तों में संवेगात्मक व्यवहार पर जोर दिया गया है और कुछ में संवेगात्मक अनुभूति पर। परन्तु कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जिनमें संवेगात्मक व्यवहार और अनुभूति दोनों पर जोर दिया गया है।

(१) संवेग सम्बन्धी सामान्य विचार
(Commonsense Theory of Emotion)

संवेग में संवेगात्मक अनुभूति की प्रधानता है और संवेगात्मक व्यवहार संवेगात्मक अनुभूति के बाद ही होता है जैसे—एक पागल कुत्ते का प्रत्यक्षीकरण होने के बाद पहले भय की संवेगात्मक अनुभूति होती है तब उनमें भागने का संवेगात्मक व्यवहार देखा जाता है। जनसाधारण का विचार है कि किसी भी संवेगात्मक उत्तेजना या परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप हम पहले संवेग की अनुभूति होती है और उसके बाद हम संवेगात्मक व्यवहार करते हैं। पर इस विचार को जेम्स तथा लांगे आदि महोदयों ने नहीं माना है।

(२) जेम्स-लॉंजे का सिद्धान्त
(James Lange Theory)

जेम्स (अमेरिका-निवासी) तथा लॉंजे (डेनमार्क-निवासी) दो मनोवैज्ञानिको ने भी अपने-अपने अध्ययनो द्वारा सवेग का एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। हालाँकि दोनो ने इस सम्बन्ध मे अलग-अलग प्रयोग किये हैं, फिर भी सवेग-सम्बन्धी निष्कर्ष दोनो के एक ही है। अत हम उनके द्वारा प्रतिपादित सवेग सिद्धान्तो को जेम्स-लॉंजे (James-Lange) नामक एक ही सिद्धान्त के नाम से पुकारते है। उनका कहना है कि सवेग मे पहले सवेगात्मक व्यवहार होता है और इसी व्यवहार की चेतन अनुभूति को ही उन्होंने सवेग की संज्ञा दी है। साथ-साथ उन्होने तो सवेगात्मक अनुभूति का कारण (Cause) भी माना है (Emotional behaviour not only precedes emotional experience rather is its cause as well)। किसी सवेगात्मक परिस्थिति (Emotional-provoking situation) के प्रत्यक्षीकरण के तुरत बाद सवेगात्मक व्यवहार (Emotional behaviour) होता है। उनके अनुसार डर का सवेग इसलिए होता है कि हम किसी वस्तु को देखकर कांपने लगते है तथा भागते हैं। यदि उस वस्तु को देखकर कांपने नही लगें या भागें नही बल्कि सीना तान कर खड़े रहे तो हममे डर का सवेग कदापि नही होगा। हमे क्रोध के सवेग की अनुभूति इसलिए होती है कि क्रोध उत्पन्न करने वाली वस्तु या परिस्थिति मे आँखे लाल-लाल कर लेते है, मुट्ठी बाँध लेते है तथा आक्रमण करने लगते है। यदि ऐसा नही हो तो क्रोध का सवेग कभी नही होगा ("We feel sorry because we cry, angry because we strike, afraid because we tremble and not that we cry, strike and tremble because we are sorry, angry or fearful as the case may be"— James, W Psychology, Briefer Course)। अर्थात् विभिन्न सवेगो से सम्बन्धित विशिष्ट सवेगात्मक व्यवहार उस सवेग के फलस्वरूप नही होते हैं, बल्कि सवेगो की उत्पत्ति सवेगात्मक व्यवहारो के होने के उपरान्त ही होती है। उनके अनुसार ये सवेगात्मक व्यवहार ही सवेग के कारण है या यह कहा जाय कि सवेगात्मक व्यवहार के परिणामस्वरूप ही होते है। जेम्स-लॉंजे का सिद्धान्त सामान्य विचार के ठीक विपरीत है जो निम्नलिखित बातो से अत्यधिक स्पष्ट हो जायगा।

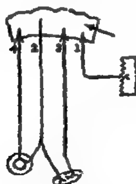
जहाँ सामान्य विचार के अनुसार सवेग का क्रम इस प्रकार है कि (१) पहले सवेगात्मक परिस्थति का प्रत्यक्षीकरण होना (२) सवेगात्मक अनुभूति का होना और (३) इसके पश्चात् सवेगात्मक व्यवहार का होना, वहाँ जेम्स-लांजे के अनुसार सवेग का क्रम सामान्य विचार के ठीक विपरीत है जो इस प्रकार है —

(१) सर्वप्रथम सवेगात्मक परिस्थति का प्रत्यक्षीकरण होना, (२) उस परिस्थति के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप सवेगात्मक व्यवहार का होना और (३) इसके पश्चात् सवेगात्मक अनुभूति का होना (The feeling of these bodily changes

in emotion according to James) इन शारीरिक परिवर्तनों के ज्ञान अथवा अनुभव करने को ही संवेग की संज्ञा जेम्स महोदय ने दी है।

जेम्स-लांज का कहना है कि जब विभिन्न संवेगों से सम्बन्धित शारीरिक व्यवहार (जिनका वर्णन पहले ही किया जा चुका है) नहीं होगा, हम संवेग का अनुभव कदापि नहीं होगा। अपने सिद्धान्त के प्रमाणस्वरूप उन्होंने इस सम्बन्ध में अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों द्वारा दिये गये अन्तर्निरीक्षण की रिपोर्ट को प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि यदि अभिनेतागण संवेग विशेष से सम्बन्धित विशिष्ट शारीरिक संवेगात्मक व्यवहार, जैसे शारीरिक स्थिति मुखाकृतिक अभिव्यजन आदि में परिवर्तन नहीं करते तो उन्हें वस्तुतः उस संवेग की अनुभूति नहीं होती और जब एक खास तरह के संवेग का अभिनय करते समय वे उससे सम्बन्धित शारीरिक व्यवहार करते हैं तो उन्हें व्यवहार करते करते सचमुच में उससे संवेग की अनुभूति भी होने लगती है। फलतः वे अपने प्रेम, क्रोध, भय इत्यादि के अभिनय को करने में सफल होते हैं।

यदि जेम्स लांजे के सिद्धान्त के शारीरिक आधार (Physiological basis) पर ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होगा कि उसके अनुसार संवेगात्मक परिस्थिति या उत्तेजना की उपस्थिति के साथ प्राणी की ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तेजित हो जाती हैं। फलतः उनसे ज्ञानवाही स्नायु प्रवाह (Sensory nerve-impulse) निकल कर (१ से होकर चित्र नं० २४ देखें) वृहद् मस्तिष्क में जाते हैं। तदुपरान्त उसे उस परिस्थिति या वस्तु का प्रत्यक्षीकरण होता है। इसके प्रत्यक्षीकरण के साथ-साथ



बृहद् मस्तिष्कीय वल्क

ज्ञानेन्द्रिय

अन्तरावयव

धारीदार मांसपेशी

(चित्र नं० २४—जेम्स लांजे सिद्धान्त का रेखाचित्र जिसमें जेम्स लांज के अनुसार संवेग के शारीरिक आधार के क्रम को दिखलाया गया है।)

गतिवाही स्नायु-प्रवाह (Motor nerve-impulses) वृहद् मस्तिष्क से निकल कर

(२ से होकर) अन्तरावयवों को मांसपेशियों तथा धारीदार मांसपेशियों (Striped-muscles) एवं पिण्डों (Gland) में पहुँचे हैं और उनकी क्रियाओं में परिवर्तन लाते हैं। इसके फलस्वरूप व्यक्ति संवेगात्मक व्यवहार करता है। फिर इन मांसपेशियों तथा अन्तरावयवों में स्थित ज्ञानेन्द्रियाँ जिन्हें क्रमशः इण्ट्रोसेप्टर (Introceptor) और प्रोपोरियोसेप्टर (Proprioceptor) कहते हैं, उनसे 'ज्ञानवाही प्रवाह निकल कर फिर बृहत् मस्तिष्क में (३ तथा ४ से होकर) जाते हैं। तत्पश्चात् उसे उस परिस्थिति से सम्बन्धित संवेग की अनुभूति होती है। पृष्ठ १६० पर दिये गये चित्र नं० २८ को ठीक से देखने पर बातें पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है।

अतः स्पष्ट है कि जेम्स-लांजे-सिद्धान्त के अनुसार संवेगात्मक व्यवहार संवेगात्मक अनुभूति के पहले होता है जिसका आधार स्वतः संचालित स्नायु मण्डल है। इनके अतिरिक्त बृहन्मस्तिष्कीय वल्क का भी हाथ इसमें रहता है। उनके अनुसार संवेगात्मक अनुभूति, संवेगात्मक व्यवहार के बाद ही नहीं होता है बल्कि इसके परिणाम-स्वरूप ही है। अर्थात्, संवेगात्मक व्यवहार की चेतनानुभूति ही संवेग है ("My theory——is that the bodily changes follow directly the perception of an exciting fact, and that the feeling of the same changes as they occur is the Emotion

—James, W Psychology, Briefer Course)

हालाँकि यह सत्य है कि संवेग की अवस्था में शारीरिक परिवर्तन होते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि संवेग में पहले संवेगात्मक व्यवहार होता है तब उसकी अनुभूति। यदि निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाय तो हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि जेम्स लांजे का सिद्धान्त पूर्णतः सही नहीं है।

जेम्स लांजे की आलोचनाएँ (Critiscisms of James-Lange Theory)

जेम्स लांजे के सिद्धान्त की निम्नलिखित आलोचनाएँ की गयी हैं—

(क) कभी-कभी बिना किसी संवेगात्मक व्यवहार का अनुभव किये हुए ही हमें उसकी अनुभूति होती है।

(ख) शेरिंगटन (Sherrington) तथा कैनन (Cannon) महोदय ने क्रमशः कुत्ता और बिल्ली पर प्रयोग कर यह देखा है कि जब गर्दन के पास मेरुदण्ड के कुछ स्नायुओं को इस प्रकार काट दिया गया जिससे सहानुभूतिक मण्डल में उत्पन्न होने वाले स्नायु-प्रवाह बृहन्मस्तिष्कीय वल्क में नहीं जा सके, तब भी पशुओं के संवेगात्मक अनुभूति तथा व्यवहार में कोई परिवर्त्तन नहीं दीख पड़ा। उनमें पहले ही जैसे संवेगात्मक व्यवहार देखे गये।

(ग) एक महिला, जिसकी गर्दन के पास मेरुदण्ड रज्जु (Spinal Cord) घोड़े से गिर जाने के कारण टूट गया था, उन्होंने बताया कि संवेगात्मक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के पश्चात् उसे उस परिस्थिति से सम्बन्धित संवेग का अनुभव होना

रहा। परन्तु यहाँ पर स्मरण रखने योग्य बात यह है कि उपयुक्त दोनों अवस्थाओं में वेगस नर्व (Vagus nerve) या प्राणदा स्नायु जो 'उपसहानुभूतिक मण्डल' के क्रेनियल फाइबर्स (Cranial fibres) या 'शीर्ष-तन्तु' को मस्तिष्क में ले जाते हैं उनमें कोई क्षति नहीं पहुँचती है। इसके फलस्वरूप आन्तरिक अवयवों से स्नायु प्रवाह मस्तिष्क में पहुँचते रहते हैं। यदि सम्पूर्ण आन्तरिक अवयवों तथा बृहमस्तिष्कीय-वल्क का आपसी सम्बन्ध पूर्ण रूपेण विच्छेदित कर दिया जाता और तब भी प्राणी में अगर संवेगात्मक व्यवहार पाये जाते तो हम इन्हें 'जेम्स लांज सिद्धान्त' के विरुद्ध एक उपयुक्त सबूत मानते। अतः ये अनुसन्धान इस सिद्धान्त को न तो पूर्णतः गलत ही साबित करते हैं और न इसकी पुष्टिकरण ही करते हैं।

(घ) संवेग की अवस्था में होने वाली शारीरिक परिवर्तनों पर प्रकाश डालते समय यह स्पष्ट कर दिया गया है कि विभिन्न संवेगों में एक विशिष्ट प्रकार का शारीरिक परिवर्तन नहीं होता है, बल्कि एक ही तरह का शारीरिक परिवर्तन प्रायः विभिन्न संवेगों का परिचायक होता है जिसके कारण विभिन्न संवेगों से सिर्फ उनमें हुए शारीरिक परिवर्तनों के आधार पर ही उनको एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। यदि शारीरिक परिवर्तनों का होना ही संवेगात्मक अनुभूति का आधार होता तो विभिन्न संवेगों में एक विशिष्ट प्रकार के शारीरिक परिवर्तन एक विशिष्ट क्रम में होते तथा विभिन्न संवेगात्मक अनुभूतियों के लिए भिन्न-भिन्न संवेगात्मक व्यवहार देखे जाते। जेम्स-लांज का सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाया है कि प्रायः समान शारीरिक व्यवहार किस प्रकार भिन्न-भिन्न संवेगात्मक अनुभूतियाँ उत्पन्न करते हैं। काँपना, दौड़ना आदि व्यवहार न केवल भय की अनुभूति में पाये जाते हैं बल्कि ये व्यवहार हमारे क्रोध की अवस्था में भी देखे जाते हैं। अस्तु, हम जेम्स-लांज के सिद्धान्त को पूर्णतः सही नहीं मान सकते हैं।

(ङ) एड्रीनलिन की सुई की काफी मात्रा में प्राणी के अन्तरावयवों की क्रियाओं में परिवर्तन लाती है प्रायः संवेगात्मक अनुभूति उत्पन्न नहीं कर पाती है। यदि शारीरिक परिवर्तन ही संवेग का आधार होता जैसा कि जेम्स-लांज सिद्धान्त का मत है, तो ऐसी हालत में जब कि एड्रीनलिन की सुई देने पर अन्तरावयवों की क्रियाओं में विशेष रूप से परिवर्तन होता है तो संवेगात्मक अनुभूति का भी होना अनिवार्य था। चूँकि यहाँ शारीरिक परिवर्तन होने के पश्चात् संवेगात्मक अनुभूति नहीं होती इसलिए जेम्स लांज सिद्धान्त को त्रुटिपूर्ण माना गया है। जेम्स और लांज का कहना है कि संवेग के कुछ अन्तरावयवों तथा शरीरधार मांसपेशियों सम्बन्धी पहलू हैं जो व्यक्ति में एड्रीनलिन की सुई देने से उत्पन्न नहीं हो पाते हैं और जो उनके अनुसार संवेग की अनुभूति को उत्पन्न करने के लिए अनिवार्य हैं। यही कारण है कि एड्रीनलिन की सुई देने पर भी प्राणी में संवेगात्मक अनुभूति नहीं होती है। इनके अतिरिक्त इस अवस्था में किसी संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण भी प्राणी को नहीं होता है। जेम्स और लांज के अनुसार संवेगात्मक परिस्थिति

के प्रत्यक्षीकरण के पश्चात् शारीरिक परिवर्त्तनो के होने पर ही संवेगात्मक अनुभूति हो सकती है। अतः उपर्युक्त आलोचना से हम जेम्स-लांजे के सिद्धान्त को बिलकुल गलत भी नहीं साबित कर सकते है।

(च) अन्तरावयव (Viscera) अपेक्षाकृत न सिर्फ असंवेदनशील (Insensitive) है, बल्कि ये प्रतिक्रियाएँ करने मे भी धीमे है (Visceral organs are not only relatively insensitive rather they are also slow to react)। संवेगात्मक अनुभूति, संवेगात्मक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण होने के एक ही सेकेण्ड से कम की अवधि के बाद हो सकती है, परन्तु अन्तरावयवो की प्रतिक्रियाएँ एक सेकेण्ड के बाद ही होती है। अस्तु, हम देखते है कि वस्तुतः संवेगात्मक अनुभूति संवेगात्मक व्यवहार के बाद न होकर इसके पूर्व हो जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि संवेगात्मक अनुभूति के फलस्वरूप ही संवेगात्मक व्यवहार होते है, चूँकि (क) मे भी स्पष्ट कर दिया गया है कि संवेगात्मक अनुभूतियाँ भी होती है जिनमे स्पष्ट रूप से कोई शारीरिक परिवर्तन नहीं दीख पड़ता है।

(३) हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त
(Hypothalamic Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले कैनन (Cannon) तथा बार्ड (Bard) नामक दो मनोवैज्ञानिक है। उनका कहना है कि 'जेम्स-लांजे-सिद्धान्त' गलत है। उनके अनुसार संवेगात्मक अनुभूति, संवेगात्मक व्यवहार के पश्चात् नहीं होती है। अस्तु, हम संवेगात्मक व्यवहार को संवेगात्मक अनुभूति का कारण नहीं मान सकते है। इसके अनुसार संवेग मे जैसा कि जेम्स-लांजे के द्वारा माना गया है, सिर्फ स्वत. सचालित स्नायुमण्डल के सहानुभूतिक भाग तथा वृहत् मस्तिष्क का ही प्रमुख स्थान नहीं है वरन् हाइपोथैलेमस ही संवेग का नियन्त्रण करता है (Hypothalamus is the seat of emotion)।

उनके अनुसार संवेग की क्रिया इस प्रकार होती है—सबसे पहले संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण होता है, जिनके फलस्वरूप हाइपोथैलेमस उत्तेजित हो जाता है। तब इसमे स्नायु प्रवाह निकल कर एक ही समय वृहन्मस्तिष्कीय वल्क (4 मे होकर) तथा अन्तरावयव और धारीदार मांसपेशियों मे (2 से होकर) जाता है। फलतः एक ही समय प्राणी मे संवेगात्मक अनुभूति तथा संवेगात्मक व्यवहार दोनो होते है। इसको चित्र नं० २५ पृष्ठ १९४ द्वारा अधिक स्पष्ट कर सकते है।

[चित्र २५ की व्याख्या—ज्ञानवाही स्नायु (Sensory impulses) (1 तथा 1 मे) वृहत् मस्तिष्क मे जाते समय जब हाइपोथैलेमस मे गुजरती है तो एक निश्चित एवं विशेष प्रकार के (Definite patterns 'P') अर्जित तथा अनर्जित हाइपोथैलेमिक स्राव (Discharge) को उत्पन्न (Arouse) करती हैं। हाइपोथैलेमस मे उत्पन्न होने वाले ये स्नायु-प्रवाह (Impulses) तब तक एक ही समय वृहत्

मस्तिष्क (4 से होकर) तथा अन्तरावयवो एवं शारीदार मांसपेशियों में (2 से होकर) जाते है। "राह न० ३ (Path 3) ही बृहत्मस्तिष्क से हाइपोथैलेमस तक की राह है जहाँ के स्नायु प्रवाह (Impulse) हाइपोथैलेमस के स्राव (Discharge) को रोकने का काम (Inhibitory influence) करते हैं अथवा उसको नियन्त्रित करते हैं।]

इस सिद्धान्त के अनुसार हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) से ही निकल कर स्नायु-प्रवाह एक ही समय बृहत मस्तिष्क तथा अन्तरावयव और शारीदार

कनन और बार्ड



[चित्र २५—हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त का रेखाचित्र—इसमें कनन-बार्ड के अनुसार संवेग के शारीरिक आधार के क्रम को दिखलाया गया है।]

मांसपेशियों में जाते हैं। फलतः संवेगात्मक अनुभूति और संवेगात्मक व्यवहार एक ही साथ होते हैं। अस्तु जेम्स लांजे के सिद्धान्त के विरुद्ध की गयी उपर्युक्त सभी आलोचनाएं इस पर लागू नहीं होती हैं। चूंकि इसका वर्णन पहले ही विस्तार में कर दिया गया है इसलिए इसका उल्लेख यहाँ दुबारा करना अभीष्ट नहीं है। कनन (Cannon) तथा शेरिंगटन (Sherrington) द्वारा कुत्ता और बिल्ली पर किये गये प्रयोगों में एक बात ऐसी है जिसकी व्याख्या जेम्स-लांजे का सिद्धान्त नहीं कर पाता है। वह यह है कि जब अन्तरावयव (Viscera) और बृहत्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) को मिलाने वाली सहानुभूतिक स्नायु (Sympathetic nerve) काट दी गयी तो कुत्ते अथवा बिल्लों में किसी प्रकार संवेगात्मक अनुभूति उत्पन्न हो सकती है जब कि अन्तरावयवों में होने वाली क्रियाओं से उत्पन्न स्नायु प्रवाह मस्तिष्क में पहुँच ही नहीं पाते थे।

हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त यह बतलाता है कि हाइपोथैलेमस में उत्पन्न स्नायु प्रवाह एक साथ ही अन्तरावयव (Viscera) आदि तथा बृहत्मस्तिष्कीय वल्क (Cortex) दोनों की ओर संवेगात्मक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के साथ ही जाते

है। यदि अन्तरावयव और वृहत्मस्तिष्क का सम्बन्ध-विच्छेद भी कर दिया जाय तो भी हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त के अनुसार हाइपोथैलेमस और वृहत्मस्तिष्क का सम्बन्ध बना रहता है। इस सम्बन्ध के बने रहने के कारण हम देखते हैं कि कुत्ते तथा बिल्ली और घोड़े से गिरी हुई महिला जिसकी मेरुदण्डरज्जु गर्दन के पास टूट गयी थी, इनमें भी सवेगात्मक अनुभूति एवं व्यवहार दोनो देखे गये।

हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त के अनुसार हम इस बात की भी व्याख्या कर पाते हैं कि जब अन्तरावयव आदि को क्रियाशील होने मे थोड़ा समय लगता है तो फिर सवेगात्मक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के साथ ही सवेगात्मक अनुभूति अविलम्ब क्यो हो जाती है। हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त अन्तरावयव (Viscera) को सवेग की उत्पत्ति मे गौण महत्त्व का समझता है। यह सिद्धान्त बतलाता है कि सवेगात्मक अनुभूति इसलिए अविलम्ब हो जाती है कि हाइपोथैलेमस के स्नायु-प्रवाह जब वृहत्मस्तिष्क मे पहुँचता है तो उसे क्रियाशील होने मे कुछ भी समय नही लगता है। यही कारण है कि सवेगात्मक अनुभूति तथा सवेगात्मक व्यवहार एक-दूसरे के बाद न होकर एक ही साथ होते है, न कि सवेगात्मक व्यवहार सवेगात्मक अनुभूति उत्पन्न करता है जैसा कि जेम्स-लांजे ने अपने सिद्धान्त मे माना है। हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त के अनुसार हाइपोथैलेमस का ही सवेग की उत्पत्ति मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। हाइपोथैलेमस क्रियाशील होने मे अन्तरावयव (Viscera) की तरह समय नही लेता। यही कारण है कि अन्तरावयव के अपेक्षाकृत देर से क्रियाशील होने की बात हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त के लिए विशेष महत्त्व नही रखती, परन्तु हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त भी दोषरहित नही है। इसमे भी बहुत से दोष बतलाये गये है।

हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त के दोष (Defects of Hypothalamic theory)—यदि हाइपोथैलेमस की क्रियाओ (Hypothalamic functions) पर दृष्टिपात करें तो सवेग के सिद्धान्त मे भी कई त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होंगी, जिनमे मुख्यत निम्नलिखित है—

(क) हाइपोथैलेमस को उत्तेजित करने (By stimulation of hypothalamus) के फलस्वरूप उत्पन्न सवेगात्मक व्यवहार (Emotional behaviour), स्वाभाविक रूप से उत्पन्न सवेगात्मक व्यवहार (Naturally aroused emotional behaviour) से निम्नलिखित रूप मे भिन्न होते है —

पहली अवस्था मे हुए सवेगात्मक व्यवहार दूसरी अवस्था की अपेक्षा (१) किस परिस्थिति-विशेष की ओर कम आदेशित होते है (Less oriented towards a situation), (२) अधिक नियन्त्रित (More restricted), (३) अधिक दृढ (More stereotyped), (४) अभियोजन की क्षमता मे कम (Less adaptive), एव (५) क्षणिक (short lived) होते हैं।[1]

[1] "Emotional behaviour aroused by stimulation of hypothalamus is less oriented towards a situation more restricted, more stereotyped, less adaptive and short-lived than naturally aroused emotional behaviour."—Munn

उपयुक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि संवेगात्मक व्यवहारों के उत्पन्न करने में हाइपोथैलेमस के अतिरिक्त स्नायुमण्डल के अन्य भागों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ तक संवेगात्मक परिस्थिति से अभियोजन (Adjustment) का प्रश्न है 'वृहद्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) एक विशेष महत्व रखता है।

(ख) इसके अतिरिक्त जिस प्रकार 'हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त (Hypothalamic theory) संवेगात्मक अनुभूति (Emotional experience) को उत्पन्न करने मे हाइपोथैलेमस की क्रियाओ (Hypothalamic functions) की महत्ता बतलाता है उसका भी कोई यथेष्ट प्रमाण नही है।

अत उपयुक्त सभी त्रुटियो के कारण हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त (Hypothalamic theory) को भी संवेग का यथेष्ट सिद्धान्त (Adequate theory) नही माना जा सकता है।

*संवेग सिद्धान्त-सम्बन्धी निष्कर्ष
(Conclusion regarding the Theories of Emotion)

संवेग सिद्धान्तों (Theories of Emotion) के सम्बन्ध मे किये गये उपयुक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि पूर्ण रूप से न तो जेम्स-लांजे सिद्धान्त को और न 'हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त' को ही संवेग का एक यथेष्ट सिद्धान्त (Adequate theory) मान सकते हैं, क्योंकि इन दोनो मे त्रुटियाँ (Defects) है। फलत संवेगात्मक अनुभूति तथा व्यवहार के स्वरूप का पूर्ण (Complete) एवं समुचित (Correct) ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है। हालांकि यह सत्य है कि संवेग की अवस्था मे कुछ शारीरिक परिवर्तन भी होते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नही कि जैसा जेम्स-लांजे सिद्धान्त का कहना है संवेगात्मक व्यवहार संवेगात्मक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के बाद ही होता है और संवेगात्मक अनुभूति इसी संवेगात्मक व्यवहार की चेतनानुभूति है। अत यह स्पष्ट है कि जेम्स-लांजे का सिद्धान्त (James-Lange theory) न तो पूर्णत ठीक है न पूर्णत गलत ही है। अर्थात् इसे आंशिक रूप मे ही संवेग का एक ठीक सिद्धान्त मान सकते है।

इसी तरह हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त भी अपने मे आंशिक सत्यता रखता है। इस सिद्धान्त को भी बिलकुल बेकार नहीं कहा जा सकता है यद्यपि हाइपोथैलमस को संवेग का केन्द्र (Seat of Emotions) नहीं माना जा सकता है फिर भी इसमे कोई सन्देह नही कि संवेग मे हाइपोथैलेमस का एक प्रधान स्थान है।

अन्त मे यही कहा जा सकता है कि उसी सिद्धान्त को संवेग का एक यथेष्ट सिद्धान्त (Adequate theory) माना जा सकता है, जिसमें न सिर्फ जेम्स लांजे और हाईपोथैलमिक सिद्धान्तों द्वारा प्राप्त तथ्यो का समावेश हो बल्कि जो इनकी त्रुटियों को दूर कर पूर्ण रूप से संवेग की व्याख्या कर सके।

इन सिद्धान्तो के अतिरिक्त भी संवेग के अन्य सिद्धान्त दूसरे दूसरे मनोवैज्ञानिकों [जैसे—मैकडूगल (McDougal), लीपर (Leeper) आदि] द्वारा प्रस्तुत किये गये है जिनका वर्णन आगे उच्च वर्गों मे पढ़ेंगे।

दूसरा भाग
(PART II)

[इण्टरमीडियट के पाठ्य-क्रम के प्रथम पत्र के अनुसार –
As per Paper II of the Intermediate Course]

प्रेरणा एवं प्रेरक वृत्तियो का संघर्ष
(Motivation and Conflict of Motives)

प्रेरक—परिभाषा—प्रणोदन परिभाषा—प्रणोदन और प्रेरक—प्रेरको के भेद—(क) शारीरिक प्रेरक—भूख, प्यास, यौन भाव (ख) सामाजिक प्रेरक—(i) सार्वजनीन—सामुदायिकता, अर्जनात्मकता आत्म-स्थापना, कलह तथा (ii) असार्वजनीन, (iii) प्रेरको का द्वन्द्व एव उनका समाधान।

प्रेरक शब्द का प्रयोग विभिन्न लोगों ने विभिन्न अर्थों मे किया है। कुछ लोगो के अनुसार प्रेरक का तात्पर्य शक्ति (Power)[1] से है तो कुछ लोगो के लिए इसका अर्थ प्रणोदन[2] से है। पर ऐसे भी कुछ लोग है जिन्होने प्रेरक शब्द का अर्थ क्रिया के लिए आवश्यक ताकत देने वाली चीज से लगाया है।[3] इस तरह स्पष्ट है कि प्रेरक (Motive) शब्द का अर्थ एक नही, अनेक है। परन्तु मनोविज्ञान मे इसका उपयोग कुछ विशेष अर्थो मे किया जाता है। प्रेरक (Motive) से तात्पर्य व्यक्ति की एक ऐसी आन्तरिक अवस्था से है जिसके उपस्थित होने पर व्यक्ति का व्यवहार चयनात्मक (Selective) हो जाता है। व्यक्ति जब ऐसी अवस्था को प्राप्त करता है तब इसका व्यवहार एक खास दिशा की ओर अग्रसर होने लगता है। साथ-ही-साथ उस दिशा मे अग्रसर हो वह किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहता है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु वह ऐसी चीज की खोज करता है जो उसके पास उस समय नही होती। वस्तु की प्राप्ति होते ही, व्यक्ति के व्यवहारो मे जो बैचैनी दीख पड़ती थी वह दूर हो जाती है और वस्तु की खोज के लिए प्रयत्न भी समाप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ, भूख लगने की अवस्था को ले सकते है। भूख लगने पर व्यक्ति मे कुछ आन्तरिक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनो के फलस्वरूप वह बेचैन-सा हो जाता है।

१. As adjective—Power, productive of power or action
२. As noun—Something which impels the person to act.
३. As verb—Something which supplies force or motive for action

अपनी इस बेचैनी को दूर करने के लिए वह एक खास ढंग का व्यवहार करता है। वह भोज्य-पदार्थ की खोज करता है। इस प्रकार उसके व्यवहार से स्पष्ट झलकता है कि वातावरण में उपस्थित अनेक चीजों में से एकमात्र वह भोजन की खोज कर रहा है। भूख की बेचैनी ने उसके व्यवहार को चयनात्मक (Selective) बना दिया है। भोजन की प्राप्ति होने के साथ-साथ उसकी चयनात्मक प्रवृत्ति का भी अन्त हो जाता है। एक दिशा की ओर अग्रसर ऐसे चयनात्मक व्यवहारों को प्रेरक (Motive) की संज्ञा दी गयी है। इसकी परिभाषा देते हुए न्यूकम (New Comb) महोदय ने स्पष्टतया बतलाया है कि प्रेरणा (Motivation) से तात्पर्य व्यक्ति की उस अवस्था से है जिस अवस्था के उत्पन्न होने पर व्यक्ति की शारीरिक शक्ति (Energy) वातावरण में उपस्थित अनेक चीजों में से किसी एक खास चीज को चुनने की ओर अग्रसर हो जाती है। व्यक्ति का यह चयनात्मक व्यवहार उस समय तक अग्रसर रहता है जब तक कि उद्देश्य (Goal) की प्राप्ति नहीं होती है। अर्थात् वह उस समय तक अपने काम में संलग्न रहता है जब तक वातावरण में जिस चीज की खोज वह कर रहा है उसे प्राप्त न कर ले। उद्देश्य की प्राप्ति के साथ ही-साथ चयनात्मक व्यवहार का भी अन्त हो जाता है। व्यक्ति स्थिर हो जाता है। उसकी बेचैनी दूर हो जाती है।

प्रणोदन (Drive) उपर्युक्त परिभाषा में न्यूकम (New Comb) महोदय ने व्यक्ति में क्रिया उत्पन्न करने वाली अवस्था की चर्चा की है। व्यक्ति में उत्पन्न वह अवस्था जिसकी उत्पत्ति के फलस्वरूप व्यक्ति क्रियाशील होता है प्रणोदन (Drive) कहलाती है। मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार के लिए इस अवस्था की उत्पत्ति अनिवार्य है। व्यक्ति की यह अवस्था व्यक्ति को बल प्रदान करती है जिसके फलस्वरूप वह कार्यशील होता है। अब प्रश्न है कि इस अवस्था के उत्पन्न होने से व्यक्ति में कौन-कौन से परिवर्तन होते हैं। इस पर प्रकाश डालते हुए मनोवैज्ञानिकों ने बतलाया है कि व्यक्ति इस अवस्था में बेचैन रहता है। पर ऐसी बेचैनी की अवस्था में कोई भी अधिक समय तक नहीं रह सकता। अतः वह इस बेचैनी को दूर करने के लिए कार्यशील होता है। हर प्रकार के व्यवहार में इस बेचैनी को दूर करने की क्षमता नहीं रहती है। अतः वह एक ऐसे कार्य की खोज में रहता है जिसके करने से

स्वरूप किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक दिशा मे अग्रसर होता है तब ऐसे व्यवहार को प्रेरित व्यवहार (Motivated Behaviour) की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक प्रेरित व्यवहार लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

प्रणोदन (Drive) और प्रेरक (Motive) दो भिन्न अर्थों मे प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। क्लाइनबर्ग (Klineberg) ने प्रणोदन (Drive) एव प्रेरक (Motive) का एक ही अर्थ मे प्रयोग किया है, जो भ्रमात्मक है। प्रणोदन (Drive) का अर्थ व्यक्ति मे उत्पन्न उस अवस्था से है जो व्यक्ति को कार्य करने को बाध्य करती है।

परन्तु, प्रणोदन (Drive) के उपस्थित होने के साथ-साथ अगर उद्देश्य प्राप्ति के हेतु चयनात्मक प्रवृत्ति व्यक्ति मे उत्पन्न हो जाय तो ऐसी अवस्था का नाम प्रेरक (Motive) देंगे। अत प्रेरक (Motive) के आवश्यक अ ग ये हैं—(क) प्रणोदन (Drive) जो व्यक्ति को कार्यशील बनाता है। (ख) लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट व्यवहार या उद्देश्य-प्राप्ति के हेतु व्यवहारो मे दिशा-नियन्त्रण, अर्थात् प्रेरक व्यवहार उद्देश्य प्राप्ति मे सहयोगी हो और (ग) लक्ष्य-प्राप्ति तक व्यक्ति का कार्यशील रहना लक्ष्य-प्राप्ति के साथ-साथ क्रियाओ का अन्त।

प्रेरको के भेद
(Kinds of Motives)

व्यक्ति मे जन्मजात (Inborn) एव सार्वजनिक (Universal) तथा प्रधान रूप से जीवन-रक्षा के हेतु वर्त्तमान रहने वाले प्रेरक (Motive) मे शारीरिक प्रेरक (Physiologcal Motive) प्रधान हैं। शारीरिक प्रेरक के अन्तर्गत भूख, प्यास, यौन-भावना इत्यादि हैं। हमारे जीवन की रक्षा इन्ही शारीरिक प्रेरको पर निर्भर है।

उपर्युक्त प्रधान प्रेरकों (Primary motives) के अतिरिक्त भी व्यक्ति मे कुछ प्रेरक (Motive) पाये जाते है। इन अतिरिक्त प्रेरक (Motive) की उत्पत्ति व्यक्ति के जीवनकाल मे होती है। व्यक्ति अपने जीवनकाल मे अनेक प्रकार के अनुभवो को ग्रहण करता है। व्यक्ति के इन विभिन्न अनुभवो को स्नायुमन्डल सचित करता है। स्नायुमण्डल मे सचित अनुभवो की समानता एव विषमता के आधार पर व्यक्ति में पाये प्रेरको (Motives) की समानता एव विषमता की व्याख्या की जा सकती है। उदाहरणार्थ—बाल्यकाल के कुछ वर्षो तक मनुष्य असहाय एव दूसरो पर आश्रित रहता है। अधिक दिनो तक आश्रित रहने के फलस्वरूप वह कुछ अनुभव प्राप्त करता है। इस अनुभव के परिणामस्वरूप व्यक्ति मे दूसरो के मध्य रहने की प्रवृत्ति जागरूक हो जाती है। इस प्रवृत्ति के कारण बच्चा जब प्रौढ हो जाता है, उस समय भी उसमें दूसरो के साथ रहने वाली प्रवृत्ति रह जाती है। दूसरो के साथ रहने वाली इस प्रवृति को सामुदायिक प्रेरक (Greganous Motive) की संज्ञा दी जाती है। बाल्यकाल में साथ रहने का अनुभव प्राय सभी करते है, अत सामुदायिक प्रेरक सबो में पाया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समान वातावरण

के सम्पर्क से प्राप्त अनुभव की समानता के कारण व्यक्ति कुछ ऐसे प्रेरकों (Motives) का अर्जन करता है जो एक समाज के सभी सदस्यों में समान रूप से पाये जाते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे सामान्य सामाजिक प्रेरकों (Common motives) की गणना करने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न के फलस्वरूप सामान्य प्रेरकों के अन्तर्गत सामुदायिकता (Gregariousness) अर्जनात्मकता (Acquisitivenss), आत्मस्थापना (Self-assertion) और कलह (Pugnacity) या क्रोध (Aggression) नामक सामाजिक प्रेरकों (motives) की चर्चा की गयी है।

उपर्युक्त सामान्य एवं अर्जित प्रेरकों (Motives) के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रेरक (Motives) हैं जिनकी उत्पत्ति का आधार संस्कृति है। संस्कृति की विभिन्नता के कारण प्रेरक भी विभिन्न व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के होते हैं। अतः एक विशेष संस्कृति में पले व्यक्ति में पाये जाने वाले प्रेरक दूसरी संस्कृति में विकसित व्यक्तियों में देखने को नहीं मिलते। उदाहरणार्थ जापानी सैनिक हार कर युद्ध से भागना या विरोधी से समझौता करना अत्यन्त नीच कार्य समझते हैं। विरोधी से समझौता करने के पूर्व वे आत्महत्या करना अधिक अच्छा समझते हैं। जापानी सैनिक में पायी जानेवाली इस प्रवृत्ति का एकमात्र कारण उनकी संस्कृति है।

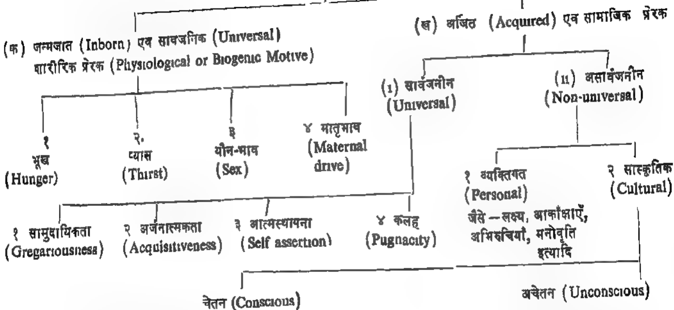
कुछ प्रेरक ऐसे हैं जो व्यक्तिविशेष में ही पाये जाते हैं। ऐसे प्रेरकों को वैयक्तिक प्रेरक (Personal motive) की संज्ञा दी जाती है। ऐसे प्रेरकों (Motives) में प्रधानतः नशा खाने की प्रवृत्ति टिकट एकत्र करने की प्रवृत्ति आदि की चर्चा की जाती है।

ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट है कि प्रेरक (Motive) को पृष्ठ संख्या २ ३ पर दी गयी तालिका द्वारा अत्यधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

(क) शारीरिक प्रेरक
(Physiological motives)

शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति जब नहीं हो पाती है तो ऐसी अवस्था में प्रत्येक प्राणी के अन्दर वर्तमान संतुलन (Equilibrium) में गड़बड़ी प्रारम्भ हो जाती है। व्यक्ति असंतुलन की अवस्था में अधिक समय तक नहीं रह सकता है। अतः इस असन्तुलित अवस्था को दूर कर प्राणी अपने में संतुलन लाने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न के फलस्वरूप प्राणी कार्यशील होता है और वह अपने ही कार्यों द्वारा अपने में संतुलन लाता है। संतुलन प्राप्त करने के विचार को कैनन (Cannon) ने सर्वप्रथम हमलोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया था। कैनन ने सन्तुलन प्राप्त करने की इस क्रिया का नाम होमियोस्टेसिस (Homeostatis) दिया है। व्यक्ति में वर्तमान प्रत्येक शारीरिक प्रेरणा का विश्लेषण कैनन के विचार द्वारा किया जा सकता है। अब प्रश्न है कि भूख की अवस्था में कौन कौन से परिवर्तन पाये जाते हैं।।

१ भूख (Hunger) — भूख की अवस्था में हुए परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं। पहला बाह्य व्यवहारों में परिवर्तन और दूसरा शरीर के भीतर परिवर्तन।



उपर्युक्त प्रेरकों (Motives) का अलग-अलग विवरण आगे उपस्थित किया जा रहा है। पहले हमलोग शारीरिक प्रेरकों (Physiological motives) की चर्चा करेंगे।

(क) टौलमन (Tolman) हॉनजिक (Honzik) एवं राबिन्सन महोदय ने चूहों पर प्रयोग किये। भूख की अवस्था के व्यवहारों के विश्लेषण के लिए किये गये इन प्रयोगों में पाया गया कि भूख की अवस्था में चूहों द्वारा गलतियाँ कम होती हैं। इस प्रकार के प्रयोग से स्पष्ट मालूम होता है कि भूख की अवस्था में व्यवहार परिवर्तित हो जाते हैं। प्राणी विशेष कार्यशील (Increase in general activity) हो जाता है। भोजन मिलने के कुछ समय बाद तक कार्य की गति में कोई परिवर्तन नहीं होता है, परन्तु कुछ समय के उपरान्त जानवर शिथिल पड़ जाता है।

(ख) उपर्युक्त परिवर्तित व्यवहारों के शारीरिक आधार के जानने का प्रयत्न कनन (Cannon) वाशबन (Washburn) रिक्टर (Richter) इत्यादि ने किया है। इन लोगों के अनुसार भूख की अवस्था प्राणी के उदर में कुछ परिवर्तन लाती है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप व्यक्ति पेट में दर्द का अनुभव करता है। पेट में दर्द के अनुभव के अतिरिक्त पेट की मांसपेशियों की क्रियाओं में भी परिवर्तन हो जाता है।

अब प्रश्न है कि पेट के अन्दर मांसपेशियों की क्रिया में परिवर्तन क्यों होता है? रिक्टर (Richter) के प्रयोग ने स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि मांसपेशियों के परिवर्तन का नियन्त्रण मस्तिष्क नहीं करता है। मस्तिष्क का सम्बन्ध पेट से हटाए जाने पर भी उदर संकोचन (Stomch contraction) रहता है। भूख लगने पर मस्तिष्क के अभाव में व्यक्ति पेट दर्द का अनुभव करता है। इससे स्पष्ट है कि मस्तिष्क का सम्बन्ध उदर-संकोचन (Stomach contraction) से नहीं है।

कुछ लोगों ने उदर संकोचन (Stomach contraction) का सम्बन्ध रक्त के रासायनिक तत्वों के साथ स्थापित किया है। रक्त में चीनी की मात्रा की कमी हो जाने पर व्यक्ति के उदर की मांसपेशियों की क्रियाओं में परिवर्तन होता है और व्यक्ति पेट दर्द का अनुभव करता है। पर ग्लूकोज (Glucose) को खून में मिलाये जाने पर चीनी की मात्रा ठीक हो जाती है। इसके ठीक हो जाने से व्यक्ति के पेट की अवस्था में हुए परिवर्तन का अन्त हो जाता है और व्यक्ति पेट दर्द का अनुभव नहीं करता है। रक्त के इस रासायनिक विश्लेषण से प्रतीत होता है कि रक्त में रासायनिक परिवर्तन के कारण ही उदर संकोचन (Stomach contraction) सम्भव है। स्कॉट (Scott) महोदय ने रक्त के रासायनिक तत्वों की महत्ता को प्रमाणित करने के लिए एक भूखे और एक ऐसे व्यक्ति के रक्त की जाँच की जो भूखा नहीं था। इस जाँच के फलस्वरूप पता लगा कि भूखे और भोजन किये हुए व्यक्ति के रक्त के रासायनिक तत्वों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं रहता है। अतः रक्त के रासायनिक परिवर्तन को ही उदर-संकोचन का आधार मानना भ्रामक होगा। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि भूख लगने पर खून के रासायनिक अंगों में परिवर्तन होता है पर यह परिवर्तन किस प्रकार का होता है हम नहीं पता है। अतः हम लोगों के लिए रक्त के रासायनिक तत्वों के स्वभाव का अध्ययन करना आवश्यक है।

२- प्यास (Thirst)—प्यास की अवस्था मे होने वाले परिवर्तनो का अध्ययन रिच्चर (Richter) ने किया है।[1] इन्होने अपने अध्ययन मे स्पष्टतया पाया है कि प्यास की अवस्था मे दो प्रकार के परिवर्तन होते है—(१) प्राणी के व्यवहारो मे परिवर्तन और (२) उसके भीतर परिवर्तन।

प्राणी प्यास लगने पर अधिक कार्यशील हो जाता है, उसके मुँह और कठ सूखने लगते है। मुँह और कंठ के सूखने का अनुभव व्यक्ति मे पानी की कमी का द्योतक है। मुँह और कठ के सूखने के अनेक कारण बतलाये जाते हैं। कैनन (Cannon) के अनुसार, रक्त मे पानी की कमी के कारण व्यक्ति मे लार का बनना कम हो जाता है। अत लार कम मात्रा मे मुँह मे आता है। मुँह मे लार की कमी के कारण व्यक्ति अपने मुँह और कठ को सूखा हुआ अनुभव करता है।

रक्त मे पानी की मात्रा मे परिवर्तन होने के अतिरिक्त कुछ अन्य शारीरिक परिवर्तन भी प्यास की अवस्था मे होते है। गिलमैन (Gilman)[2] महोदय ने अपने प्रयोगो में पाया है कि प्यास की अवस्था मे शरीर के भीतर कोशो (Cells) मे पानी की कमी हो जाती है। अत व्यक्ति प्यास का अनुभव करता है। हॉल्मस (Holmes)[3] ने अपने प्रयोगो द्वारा गिलमैन के विचारो की पुष्टि की है। इस तरह कोशो मे पानी की कमी प्यास के अनुभव का कारण है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्यास की अवस्था में व्यक्ति का कठ और मुँह सूखने लगता है तथा शरीर के कोशो (cells) में पानी की कमी हो जाती है। कठ और मुँह के सूखने से व्यक्ति पानी पीना आरम्भ करता है। परन्तु वह कितना पानी पीयेगा, यह शरीर के भीतर पानी की कमी पर निर्भर करता है।

प्यास की अवस्था में शरीर के भीतर होने वाले दोनो प्रकार के परिवर्तनो का होना आवश्यक है। एक परिवर्तन की उपस्थिति व्यक्ति मे पानी पीने के व्यवहार को प्रारम्भ करती है और दूसरे परिवर्तन की उपस्थिति व्यक्ति मे पानी पीने को निश्चित करती है।

यौन-भाव (Sex-instinct)—जानावरो पर प्रयोग कर के देखा गया है कि उनमे नर और मादा का व्यवहार एक ही तरह का नही होता है। स्वभावत मादा जानवर एक नर से अधिक क्रियाशील पायी जाती है। जीवन के कुछ क्षणो मे मादा जानवर अत्यधिक कार्यशील रहती हैं, परन्तु उस क्षण के तुरत बाद अत्यधिक शिथिल हो जाती हैं। मादा जानवरो मे अत्याधिक कार्यशीलता के उपरान्त नरो की अपेक्षा अत्यधिक शिथिलता का कारण सम्भवत यौन भाव ही है। साधारण

१ Richter, C P, Animal Behaviour And internal Drives Quar Rev, Biol, 1927, Pp 307-347

२ "Physiological Psychology by Morgan and Stellar" Chapter XVIII, Bodily Needs P 289

३ 'The State of hydration of the cells seems pivotal in thirst —Halmes.

लोगों का विचार है कि जननेन्द्रियों (Sex-organ) में परिवर्तन होने के कारण ही ऐसा परिवर्तन होता है। परन्तु प्रश्न है कि यह कौन-सा ऐसा शारीरिक परिवर्तन है जिसके होने से मादा जानवर एक समय अत्यधिक कार्यशील हो जाती है। शारीरिक मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने मादा जानवरों में हुए परिवर्तन की व्याख्या दो प्रकार से की है—

(अ) जननेन्द्रिय (Sex-organ) में परिवर्तन के आधार पर और (इ) गर्भाशय (Ovaries) में परिवर्तन के आधार पर।

मादा जानवरों एवं उनके जननेन्द्रियों की क्रिया में सम्बन्ध निश्चित करने के लिए अनेक प्रयोग किये गये हैं। इन प्रयोगों में प्रायः जानवरों के शरीर से जननेन्द्रिय (Sex-organ) को अलग कर दिया जाता था। जननेन्द्रियों (Sex-organ) के अलग कर दिये जाने के उपरान्त जानवरों की क्रियाओं का निरीक्षण किया जाता था। इन प्रयोगों से स्पष्ट मालूम हुआ कि जननेन्द्रियों (Sex-organ) के हटाये जाने पर भी जानवरों का व्यवहार अपरिवर्तित रहता है। वे ऐसी अवस्था में भी अधिक क्रियाशील रहते हैं। ऐसे प्रयोगों से स्पष्ट है कि जानवरों का विशेष रूप से क्रियाशील होना जननेन्द्रिय (Sex-organ) पर निर्भर नहीं करता बरन् शरीर में हुए कुछ अन्य परिवर्तनों पर निर्भर है।

शरीर के अन्य परिवर्तनों में जिन पर यौन-व्यवहार (Sexual behaviour) निर्भर करता है, गर्भाशय (Ovaries) के साथ का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है। गर्भाशय (Ovaries) का सम्बन्ध व्यवहार से है। इस सम्बन्ध को मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग द्वारा दिखलाया है। कुछ ऐसे प्रयोग किये गये जिनमें गर्भाशय (Ovaries) को जानवरों में से निकाल लिया गया है। गर्भाशय के निकाले जाने के उपरान्त जानवरों में कार्यशीलता नहीं पायी गयी। गर्भाशय जिन जानवरों में से निकाल लिया गया था उन जानवरों में फिर दूसरे जानवरों के शरीर से निकाल कर गर्भाशय लगा दिया गया। गर्भाशय (Ovaries) जोड़ देने पर यौन व्यवहार (Sexual behaviour) परिलक्षित होने लगे। एक अन्य प्रयोग में गर्भाशय के रसस्राव एस्ट्रीन (Estrin) का प्रवेश गर्भाशयहीन जानवर में कराया गया। एस्ट्रीन का प्रवेश जानवर के शरीर में होते ही जानवर यौन-सम्बन्धी क्रियाओं को प्रदर्शित करने लगा। इस प्रकार के प्रयोगों से स्पष्ट है कि जानवरों में यौन-सम्बन्धी क्रियाएँ गर्भाशय पर आश्रित हैं।

मानव यौन-प्रेरणा (Human Sex Drive)—मनुष्यों की यौन प्रेरणा का भी अध्ययन कुछ मनोवैज्ञानिकों ने किया है। स्त्रियों की यौन प्रवृत्ति में जानवरों की तरह अधिक आरोह अवरोह (Periodicity) स्पष्ट रूप से नहीं मालूम होता है परन्तु उनमें भी यौन प्रवृत्ति के लिए गर्भाशय होना आवश्यक है। स्त्रियों में यौवन के आगमन के पूर्व ही उनके रज-कोष को निकाल कर देखा गया है कि ऐसी स्त्रियों में नारी-सुलभ विशेषताओं का विकास नहीं हो पाता है। ऐसी परिस्थितियों में औरतें यौन समागम की भावना से वंचित रह जाती हैं। मनुष्यों की

यौन-ग्रन्थि (Sex-gland) को हटाये जाने पर उनमे भी यौन-भावना का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार यौन-समागम-सम्बन्धी व्यवहार यौन-ग्रन्थि या गोनाड्स [Gonads] पर निर्भर है।

परन्तु, कुछ मनोवैज्ञानिको ने युवावस्थाप्राप्त स्त्रियो एव पुरुषो के शरीर से यौन-ग्रन्थि (Glands) के निकलने पर भी यौन-भावना का विनाश नही पाया है। इसके उपरान्त भी उनमे यौन-समागम-सम्बन्धी व्यवहार देखे गए हैं। अत इन मनोवैज्ञानिको की धारणा है कि यौन-ग्रन्थि (Glands) का सम्बन्ध यौन-समागम के व्यवहार से नही है। परन्तु ऐसा समझना भ्रामक है। वस्तुत इन मनोवैज्ञानिको द्वारा यौन-ग्रन्थि के निकाले जाने के पश्चात् भी स्त्रियो एव पुरुषो मे यौन व्यवहार की उपस्थिति पायी गयी। यहाँ यौन-सम्बन्धी व्यवहार के पाये जाने का कारण दूसरा है। अधिक दिनो तक यौन-समागम व्यवहार मे अपने को तल्लीन रखने के कारण व्यक्ति मे इस क्रिया के करने की आदत सी पड जाती है। अत यौन-ग्रन्थि के अभाव मे शारीरिक परिवर्तन नही होने पर भी व्यक्ति की आदत उसे उस कार्य को करने के लिए बाध्य करती है।

यौन-प्रेरणा (Sex-Drive)—सभी व्यक्तियो मे समान रूप से नही पायी जाती है। इसका कारण यौन-भाव को हीन समझने की प्रवृत्ति और व्यक्तिगत विभिन्नताओ (Individual differences) का होना है।

व्यक्ति मे शारीरिक गडबडी नही रहने पर भी कभी-कभी यौन समागम की इच्छा का अभाव पाया जाता है। ऐसी अवस्थाओ मे बहुधा देखा जाता है कि व्यक्ति यौन-भाव को हेय दृष्टि से देखता है। यौन-भाव (Sex-Drive) के प्रति व्यक्ति की ऐसी धारणा ही उसे यौन सम्बन्धी व्यवहारो मे सलग्न होने से रोकती है। ऐसी अवस्थाओ मे स्त्रियो मे जडता (Frigidity) और पुरुषो मे नपुंसकता (Impotency) उत्पन्न होती है। यौन भावना के प्रति हीन विचार के अभाव मे पुरुषो और स्त्रियो मे यौन प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा मे पायी जाती है। कुछ स्त्रियाँ तो ऐसी होती है, जिनकी यौन प्रवृत्ति बहुत उग्र होती है। ऐसी स्त्रियो को निम्फमेनिक (Nymphomanic) की सज्ञा दी जाती है। कुछ पुरुष भी ऐसे होते है जिनमे यौन भावना अत्यधिक होती है। ऐसे पुरुषो को सटायरियेसिस (Setyriasis) की सज्ञा दी जाती है। स्त्रियो और पुरुषो की यौन भावना की उग्रता के दो कारण हैं—

(अ) यौन ग्रन्थि (Gonads) मे अधिक रसस्राव होना तथा (ब) समाज द्वारा यौन सम्बन्धी क्रियाओ के लिए आकृष्ट किया जाना।

रसस्राव के अधिक होने के फलस्वरूप व्यक्ति यौन-समागम के लिए अधिक तत्पर पाया जाता है। समाज मे दूसरो द्वारा आकृष्ट किये जाने पर व्यक्ति में यौन-समागम की अभिरुचि बढती जाती है जिससे ऐसे व्यक्तियो मे यौन समागम-सम्बन्धी व्यवहार प्रचुर मात्रा मे पायी जाती है। यौन-ग्रन्थि (Gonads) का स्राव सभी में एक समान नही होती है। कुछ व्यक्ति मे तो रसस्राव कम होता है और कुछ मे अधिक। इस प्रकार रसस्राव मे अन्तर के फलस्वरूप यौन सम्बन्धी व्यवहारों (Sex-

ual behaviour) में अन्तर आ जाता है।

यौन-समागम की अपनी इच्छा की पूर्ति सभी एक ही तरह की वस्तु को प्राप्त कर नहीं करते हैं। अत बाल्यकाल से ही व्यक्ति में इच्छा पूर्ति के हेतु विभिन्न व्यवहार में अन्तर पाया जाता है। कुछ व्यक्ति अपने ही लिंग (Sex) के लोगों के सम्पर्क में अपनी इच्छा की पूर्ति कर लेते है। ऐसे व्यक्ति को होमोसेक्सुअल (Homosexual) की संज्ञा दी जाती है। समाज होमोसेक्सुअलिटी (Homosexuality) को मान्यता नहीं देता है, अत इसे असामान्य व्यवहार (Abnormal behaviour) कहते हैं।

(ख) सामाजिक प्रेरक (Social motive)—ये दो प्रकार के होते हैं—i) सार्वजनीन तथा (ii) असार्वजनीन। व्यक्ति के कुछ प्रेरक अर्जित होते है। व्यक्ति पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है। वातावरण के सम्पर्क में आने से व्यक्ति को कुछ अनुभव प्राप्त होता है। इन अनुभवों के आधार पर व्यक्ति के कुछ प्रेरकों का विकास होता है। सभी व्यक्ति को अगर एक ही तरह का अनुभव हो तो अनुभव की समानता के कारण सभी व्यक्ति में समान रूप से एक ही प्रकार के प्रेरकों की उत्पत्ति होगी। अनुभवों में जैसे-जैसे अन्तर आता जाता है वैसे वैसे व्यक्ति में भिन्न भिन्न प्रेरकों में भी अन्तर परिलक्षित होने लगता है। समाज में एक ही प्रकार के अनुभव प्राप्त करने के फलस्वरूप कुछ प्रेरक सभी में पाये जाने वाले प्रेरक हैं। ऐसे सामाजिक प्रेरकों की चर्चा यहाँ की जायगी। इन सामाजिक प्रेरकों की व्याख्या करते हुए हम इनकी उत्पत्ति के कारणों का उल्लेख विशेष रूप से करेंगे।

(i) सार्वजनीन सामाजिक प्रेरक
(Universal social Motives)

१ सामुदायिकता (Gregariousness)—कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति में सामुदायिकता जन्म जात होती है तो कुछ लोगों के अनुसार इसे व्यक्ति अपने जीवनकाल में अर्जन करता है। सुटी (Suttie) महोदय ने सामुदायिकता को जन्मजात माना है। इन्होंने अपने विचार की पुष्टि के लिए बिल्ली और गाय पर एक प्रयोग किया। सुटी महोदय के विचारानुसार कोई भी प्राणी अपनी सामुदायिकता की जन्मजात प्रवृति के कारण ही सामुदायिक बन पाता है। इस प्रवृत्ति के अभाव में वह कभी भी सामुदायिक नहीं हो सकता है जैसे—बिल्ली अपने जन्म के समय से सामुदायिक होती हैं। एक बिल्ली एक साथ दो चार बच्चे देती है। बिल्लियों का बचपन में सदा साथ रहने का अवसर मिलता है। परन्तु, साथ रहने के अनुभव के पश्चात भी बिल्ली में सामुदायिकता की भावना नहीं पाते हैं। कुछ बड़े होने पर ये एक-दूसरे से अलग हो जाते है। अब प्रश्न है कि साथ साथ रहने के उपरान्त भी बिल्लियों में सामुदायिकता की भावना का विकास क्यों नहीं हो पाता है। सुटी महोदय के अनुसार यद्यपि बिल्लियाँ सदा एक साथ पैदा होती हैं तथापि उनमे सामु

दायिक होने की जन्मजात प्रवृत्ति नही होनी । इस जन्मजात सामुदायिक प्रवृत्ति के अभाव मे वे सामुदायिक नही हो पाती हैं ।

सुटी (Suttie) महोदय ने अपने इस विचार की पुष्टि गायो के निरीक्षण के आधार पर की । गायो के बछड़े सदा अकेले जन्म लेते है । परन्तु अकेला जन्म लेने के उपरान्त भी उनमे सामुदायिकता की भावना पायी जाती है । इससे स्पष्ट है कि सामुदायिकता की भावना के बीच जन्म से ही प्राणी मे वर्त्तमान रहते है । इस भावना का विकास उपयुक्त वातावरण की उपस्थिति मे होता है । अत यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि यद्यपि सामुदायिकता की भावना व्यक्ति मे जन्मजात होती है तथापि इसके विकास के लिए उपयुक्त वातावरण का होना आवश्यक है ।

दूसरे मत के अनुसार सामुदायिकता की भावना का विकास व्यक्ति अपने जन्मकाल मे करता है, अत व्यक्ति का सामुदायिक होना परिस्थिति पर निर्भर करता है । इस मत को मानने वालो के अनुसार बच्चे जन्म के समय असहाय एव अपनी शारीरिक इच्छाओ की पूर्ति के लिए दूसरो पर आश्रित रहते है । दूसरो पर अधिक दिनो तक आश्रित रहने के कारण उनमे दूसरो के बीच रहने की आदत बन जाती है । पैटी (Pattie)[१] महोदय ने सामुदायिकता के स्वभाव पर प्रकाश डालने के लिए एक प्रयोग किया । इस प्रयोग मे मुर्गी के बच्चो को दो वर्गो मे रखा गया । एक वर्ग के बच्चो को उनकी माँ से अलग एव दूसरे वर्ग के बच्चो को साथ रखा गया । चार दिन के उपरान्त मुर्गी के प्रत्येक बच्चे को एक उजले चूहे और एक उजली मुर्गी से समान दूरी पर रखा गया । कभी उजले चूहे को दायी ओर रखा गया तो कभी उजली मुर्गी को, जिससे मुर्गी के बच्चे के एकमात्र दायें या बायें जाने की सम्भावना से उत्पन्न प्रायोगिक गलतियाँ न होने पाये ।

प्रत्येक चूहे को ऐसी परिस्थिति मे जहाँ चूहे और मुर्गी दोनो थी, तीस मिनटो तक रखा गया और देखा गया कि प्रत्येक चूहा अपना कितना समय चूहा के साथ और कितना समय मुर्गी के साथ व्यतीत करता है । इस निरीक्षण के उपरान्त पैटी महोदय ने निम्नलिखित विवरण उपस्थित किया है—

(क) माँ से अलग पाले गये चूहो ने चूहे और मुर्गी के साथ लगभग समान समय व्यतीत किया । कुल समय का ३१ ६ प्रतिशत भाग चूहो ने चूहे के साथ और ३४ ६ प्रतिशत भाग मुर्गी के साथ व्यतीत किया ।

(ख) पुन प्रत्येक दिन के व्यवहारो के निरीक्षण से पता चला है कि माँ से अलग पाले गये चूहे यद्यपि मुर्गी और चूहे के साथ लगभग समान समय व्यतीत करते थे, फिर भी आरम्भ मे चूहे विशेष रूप से मुर्गी के पास ही जाया करते थे । कुछ देर के बाद उनकी इस प्रवृत्ति मे परिवर्तन हो गया और वे अपना विशेष समय चूहो के साथ बिताने लगे ।

(ग) जिन चूहो को सदा माँ के साथ रखा गया था उनका अधिकाश समय

१ Pattie, F A "Gregarious behaviour of normal chicks and chicks hatched in isolation" J Comp Psychol 1936,21, pp 161-178

मुर्गी के साथ ही बीता। उपर्युक्त निरीक्षण के उपरान्त प्राप्त विवरणों से स्पष्ट है कि ऐसे प्राणी जिन्हें समाज में रखा जाता है उनपर सामाजिक प्रेरकों का प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप, उनमें सामाजिकता की भावना का विकास अधिक मात्रा में हो जाता है। दूसरा अनुमान जो हम विवरण (ख) से लगा सकते हैं वह यह है कि सामुदायिकता जन्मजात होती है। पर यह जन्मजात प्रवृत्ति बाल्यकाल में अधिक बलिष्ठ नहीं होती है। अतः उपर्युक्त वातावरण के अभाव में इसका विकास नहीं हो पाता।

सामुदायिकता की भावना के विषय में हम निम्नलिखित निर्णय दे सकते हैं—(क) अगर सामुदायिकता की जन्मजात प्रवृत्ति प्राणी में पायी जाती हो तो यह प्रवृत्ति बहुत कमजोर होती है (ख) सामुदायिकता की प्रवृत्ति प्राणी में पायी जाती है तथा (ग) उपर्युक्त वातावरण के अभाव में यह प्रवृत्ति क्षीण हो जाती है।

२. *अर्जनात्मकता (Acquisitiveness)*—व्यक्ति में सुन्दर एवं लाभदायक चीजों को अपने पास रखने की प्रवृत्ति देखी जाती है। दूसरों की सुन्दर एवं लाभदायक चीजों को प्राप्त कर अपने पास संचित करने की प्रवृत्ति को अर्जनात्मक प्रवृत्ति की संज्ञा दी जाती है। अर्जनात्मकता की परिभाषा देते हुए मैकडूगल ने कहा है कि व्यक्ति में सुन्दर एवं लाभदायक चीजों का संचय करने की प्रवृत्ति को अर्जनात्मकता कहते हैं।[१] जानवरों में अर्जनात्मकता की प्रवृत्ति कम देखी जाती है। परन्तु मानवों में यह भावना प्रायः अधिक देखी जाती है। अर्जनात्मकता की उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न विचार किये जाते हैं। कुछ लोगों के अनुसार यह सार्वजनिक एवं जन्मजात होता है। परन्तु कुछ इसे जन्मजात न मानकर अर्जित मानते हैं। इनके अनुसार अर्जनात्मकता की उत्पत्ति प्राणियों के अनुभव पर निर्भर है।

अब प्रश्न है कि अर्जनात्मकता व्यक्ति में जन्मजात है या इसकी उत्पत्ति परिस्थितिजन्य होती है। प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट रूप से दिखलाया गया है कि इसकी उत्पत्ति प्राणी में परिस्थितिजन्य होती है। यह न तो जन्मजात है और न सार्वजनीन। आस्ट्रेलिया की एक जाति में संचय की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। इस वर्ग के लोग अपनी आवश्यकताओं की चीजों को एकत्र कर अपने समाज को सौंप देते हैं। जब वस्तुएँ एकत्र हो जाती हैं तो इनका वितरण समाज द्वारा ही वर्ग के अन्य लोगों में किया जाता है। समाज में यह नियम बहुत दिनों से चला आ रहा है। इस नियम के रहने के कारण उनमें अर्जनात्मक प्रवृत्ति नहीं पायी जाती है।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि अर्जनात्मकता की प्रवृत्ति सार्वजनीन नहीं है। इस प्रवृत्ति के विकास के कारण व्यक्ति के कुछ अपने ही अनुभव होते हैं। हण्ट (Hunt)[२] महोदय ने अपने प्रयोग में दिखलाया है कि जानवरों

---

१. Acquisitiveness may be defined as the motive tendency or propensity to acquire, possess and defend whatever is found useful, or otherwise attractive." —McDougall

२. The effect of infant feeding frustration upon Adult Hoarding in the Albino Rat.—Hunt J. Mcv. J. Abn. and Soc. Psychol. 1941, 36, pp 338-360

मे सचय करने की प्रवृत्ति के विकास का कारण भोजन-प्राप्ति-सम्बन्धी कठिनाई है।

मनुष्य मे सचय की प्रवृत्ति के विकास मे समाज का बहुत हाथ है। समाज मे रहकर व्यक्ति कुछ अनुभव प्राप्त करता है। बहुधा वह देखता है कि समाज जिन लोगो के पास आवश्यकता की वस्तुएँ प्रचुर मात्रा मे है उनकी प्रतिष्ठा अन्य लोगों से कुछ विशेष होती है। समाज मे प्रतिष्ठा पाने के इच्छुक सभी होते है। व्यक्ति उस कार्य को करता है जिससे प्रतिष्ठा बढे। इस प्रकार व्यक्ति मे सचय की प्रवृत्ति का विकास प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिए होता है।

६ आत्म-सस्थापन (Self assertion)— व्यक्ति मे नेता बनने या दूसरो पर अपना आधिपत्य जमाने की प्रवृत्ति है। आधिपत्य जमाने की ऐसी प्रवृत्ति को आत्म-सस्थापन की सज्ञा दी जाती है। दूसरे पर आधिपत्य जमाने का कारण व्यक्ति का प्रणोदन है।

व्यक्ति की आन्तरिक इच्छा उसे दूसरो पर आधिपत्य जमाने के लिए बाध्य करती है। एडलर (Adler) ने दूसरो पर अपना आधिपत्य जमाने या आप सस्थापन के भाव का जन्मजात (Inborn) माना है। एडलर के अनुसार आत्मसस्थापन की प्रेरणा यौन-प्रेरणा से अधिक बलवती होती है। यदि व्यक्ति आत्मसस्थापन की अपनी प्रेरक शक्ति की पूर्ति कर लेता है तो उसमे सुपिरियोरिटी कम्प्लैक्स (Superiority Complex) उत्पन्न हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत यदि वह अपने आत्म सस्थापन की प्रेरक शक्ति की पूर्ति मे असफल रहता है तो उसमे हीनता का भाव (Inferiority Complex) उत्पन्न होता है।

आत्म सस्थापन की प्रेरक शक्ति प्राय सभी मे पायी जाती है। अत इसे कुछ लोगो ने जन्मजात (Inborn) सार्वजनीन भी माना है, परन्तु मीड (Mead)[१] और बेनेडिक्ट (Benedict) ने अपने अध्ययनो द्वारा स्पष्ट किया है कि कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं जिनमे आत्मसस्थापन की भावना का सर्वथा अभाव है। ऐसी जातियो मे न्यूगीनी (New Guinea) के एरापेश (Arapesh) एव जुनीइण्डियन (Zuni Indians) के नाम उल्लेखनीय है। एरापेश जाति का कोई भी व्यक्ति नेता होना नही चाहता। इसी प्रकार बेनेडिक्ट (Benedict) ने अपने अध्ययन मे पाया कि कोई भी जुनी बच्चा अपना प्रभाव दूसरे पर डालना नही चाहता। साथ-साथ, स्पर्द्धा की भावना का भी उनमे अभाव पाया जाता है। अपने प्रयोग के लिए बेनेडिक्ट ने कुछ जुनी बच्चो को एक प्रश्न हल करने को दिया। कुछ बच्चो ने प्रश्न को जल्दी हल कर लिया, परन्तु, इन बच्चो ने अपने 'हल' (Solution) को उस समय तक सामने नही रखा जब तक कि वर्ग के अन्य बच्चो ने प्रश्न को हल नही कर लिया।

१ Mead, M "SEX AND TEMPERAMENT IN THREE PRIMITIVE SOCIETIES New-York, Morrow, 1935, PP, 29-30, Benedict, R – Patterns of Culture Boston Hughton, 1934,

इससे स्पष्ट है कि कुछ ऐसी जातियाँ हैं जिनके व्यवहारों में आत्मसंस्थापन की प्रेरक शक्ति को जन्मजात न मान कर अर्जित ही मानना उचित है।

४ कलह (Pugnacity)— प्राणी आपस में क्यों लड़ते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि प्राणी अन्तःप्रेरणा से बाध्य होकर लड़ते हैं। अर्थात् प्राणी में लड़ने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। इस जन्मजात प्रवृत्ति को कलह (Pugnacity) की संज्ञा दी गयी है। कलह की प्रवृत्ति को जन्मजात मानना भ्रामक है या नहीं? अभी ऐसे प्रयोगों की कमी है जिससे कलह के स्वभाव पर पूर्ण प्रकाश डाला जा सके। फिर भी कुछ ऐसी जातियों का अध्ययन किया गया है जहाँ कलह का सर्वथा अभाव पाया जाता है। एसी जातियों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कलह की प्रवृत्ति जन्मजात नहीं होती वरन् इसकी उत्पत्ति के दो कारण हैं—

(१) शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति में बाधा का होना तथा (२) शिक्षा का प्रभाव एवं अनुकरण की प्रवृत्ति। जब किसी प्राणी की इच्छाओं की पूर्ति में कोई बाधक होता है तो वह बाधा पहुँचाने वाले पर क्रुद्ध हो जाता है। व्यक्ति का क्रोध उसे बाधक कारणों से लड़ने को प्रेरित करता है। इनके अतिरिक्त कलह प्रवृत्ति का विकास व्यक्ति के शिक्षण (Training) द्वारा भी होता है। कलह के विकास में शिक्षा के प्रभाव को मीड (Mead) ने मुण्डागुमर (Mundagumor) बच्चों के अध्ययन द्वारा प्रदर्शित किया है। यह 'न्यूगाइना' में रहने वाली एक जाति है। इस जाति के लोग सदा आपस में लड़ते झगड़ते हैं तथा जानवरों को मार कर कच्चा मांस खाते हैं। इनलोगों के सम्पर्क में रह कर इनके बच्चे भी कलहप्रिय एवं लड़ाकू हो जाते हैं। यहाँ शिक्षण एवं बच्चों के अनुकरण करने की प्रवृत्ति दोनों का प्रभाव बच्चों के कलह की भावना के विकास में है। दूसरी ओर एरापेश (Arapesh) जाति के लोग जो न्यूगाइना में ही पाये जाते हैं अत्यन्त ही शान्तिप्रिय होते हैं। इस जाति के लोगों को बचपन से ही आपस में मिल कर रहने की शिक्षा दी जाती है। अतः इनमें कलह प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कलह की प्रेरक-शक्ति का विकास शिक्षा तथा प्राणी के अनुकरण करने की प्रवृत्ति पर निर्भर है। शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति में बाधा उपस्थित होने पर व्यक्ति क्रुद्ध हो जाता है। इसके फलस्वरूप उसे लड़ाई झगड़ा करने की प्रेरणा मिलती है और वह अपनी बाधाओं से भिड़ जाता है।

(ii) असामाजिक या वैयक्तिक प्रेरक
(Personal Motives)

शारीरिक एवं सामाजिक प्रेरकों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे प्रेरक हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को संचालित एवं नियंत्रित करते हैं। ऐसे प्रेरकों को वैयक्तिक प्रेरक की संज्ञा दी जाती है। वैयक्तिक प्रेरक मनुष्यों में भिन्न होता है। इन प्रेरकों की उत्पत्ति व्यक्ति में परिस्थिति विशेष के उपस्थित रहने पर होती है जैसे—मादक

द्रव्य सेवन करने की प्रेरणा-शक्ति। व्यक्ति अपनी तकलीफों को भुलाने के लिए मादक द्रव्यों का सहारा लेता है। ऐसे व्यक्तियों को मादक द्रव्यों के सेवन की आदत हो जाती है। आदत हो जाने पर वह द्रव्यों के बिना कभी भी नहीं रह सकता है। मादक द्रव्य न मिलने पर उसकी अन्तःप्रेरणा ऐसे द्रव्यों के लिए उसे व्यग्र कर देती है। इस तरह स्पष्ट है कि व्यक्ति का कोई भी व्यवहार जब आदत के रूप में परिणत हो जाता है तब वह प्रेरक का काम करता है।

हर व्यक्ति के सामने कुछ-न-कुछ लक्ष्य (Goal) रहता है जिसकी प्राप्ति करना प्रत्येक का उद्देश्य रहता है। लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु सभी क्रियाशील होते हैं। व्यक्ति में लक्ष्य का निर्माण अनेक बातों पर निर्भर है। लक्ष्य के निर्माण में परिवार, समाज तथा समीप के रहने वाले लोगों के आचरण का प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव के कारण ही कोई डाक्टर बनना चाहता है तो कोई इन्जीनियर, तो कोई नेता और कोई प्राध्यापक। एक बार लक्ष्य निश्चित कर लेने के पश्चात् व्यक्ति के व्यवहार को एक निर्दिष्ट दिशा में ले जाने का कार्यभार लक्ष्य का रहता है। अतः व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिये व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य से अवगत होना आवश्यक है।

व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने में जीवन-लक्ष्य के अतिरिक्त व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ भी सहयोगी होती हैं। फ्राइड (Freud) महोदय के अनुसार व्यक्ति में इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति अपनी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति चाहता है। अतः उसे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कार्यशील होना आवश्यक है। व्यक्ति की सभी इच्छाओं की पूर्ति समाज में प्रत्यक्ष रूप से नहीं होती है। समाज में प्रत्यक्ष रूप से कुछ इच्छाओं की पूर्ति नहीं होने का कारण समाज के अपने नियम हैं। समाज अपने नियमों द्वारा कुछ कार्यों को सामाजिक तथा कुछ कार्यों को असामाजिक करार देता है। व्यक्ति समाज में रहता है। वह समाज के नियमों से पूर्णतः अवगत रहता है। अतः अपनी उन इच्छाओं की पूर्ति, जिनकी पुष्टि समाज में नहीं होती है व्यक्ति अपनी चेतनावस्था में नहीं कर पाता। परन्तु व्यक्ति अपनी अतृप्त इच्छाओं को अतृप्त नहीं रहने देना चाहता। साथ-ही-साथ, इन इच्छाओं को चेतना में भी समाज के डर से अधिक समय तक नहीं रख सकता है। अतः ये इच्छाएँ अचेतन (Unconscious) भाग में चली जाती हैं। व्यक्ति के अचेतन में रहनेवाली इच्छाएँ अपनी पूर्ति के हेतु व्यक्ति को कार्यशील बनाती हैं। व्यक्ति अचेतन मन द्वारा प्रेरित व्यवहार का कारण नहीं जानता है। यहाँ व्यक्ति को अपने व्यवहार-विशेष के कारण को समझने में कठिनाई होती है, क्योंकि उसके व्यवहार के कारण अचेतन मन में स्थित हैं। इस प्रकार जिन व्यवहारों का संचालन अचेतन प्रेरकों द्वारा होता है, उसमें प्रमुख हैं बोलने के समय अनजाने कुछ गलती करना, किसी परिचित व्यक्ति के नाम के स्मरण आदि में कठिनाई होना। अगर कोई व्यक्ति हाथ में गिलास लेकर आ रहा है और रास्ते में उनसे गिलास छूट कर टूट जाय तो व्यक्ति अपने इस व्यवहार के विषय में यही अवश्य कहता पाया जायगा कि यह संयोगवश या अन-

जाने हो गया। परन्तु यदि व्यक्ति के व्यवहारों का विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट मालूम होगा कि व्यक्ति के इस व्यवहार के पीछे ही कुछ रहस्य है। व्यक्ति के व्यवहार के रहस्य की जानकारी अचेतन मन के विश्लेषण से सम्भव है।

मनुष्य ऐसे अनेक काम करता पाया गया है जिसका संचालन अचेतन प्रेरकों द्वारा होता है, अत यहाँ स्पष्ट है कि अचेतन प्रेरक (Unconscious motive) भी व्यक्ति को काम करने के लिए प्रेरित करते हैं।

प्रेरक शक्तियों का संघर्ष
(Conflict of Motives)

व्यक्ति के अन्दर क्रियाशील हर एक प्रेरक (Motive) व्यक्ति की क्रियाओं द्वारा अपनी सन्तुष्टि (Satisfaction) चाहता है। जब कई एक प्रेरक शक्तियाँ एक साथ ही यह चाहने लगती है कि सबसे पहले मेरी सन्तुष्टि कर दी जाय, तब सबसे पहले मेरी जैसी अवस्था मे व्यक्ति के मानस (Mind) मे संघर्ष उठ खड़ा होता है। यह संघर्ष विभिन्न इच्छाओं अथवा प्रेरकों के बीच होता है। मानसिक संघर्ष (*Mental conflicts*) को ही प्रेरक संघर्ष (*Conflict of motives*) कहा गया है।

जब अविवाहित युवक के सामने यह समस्या हो जाती है कि वह शादी में अच्छा दहेज ले या अच्छी लड़की तब उस समय उसके मानस मे दो प्रमुख विरोधी प्रेरक-शक्तियाँ (Motivating forces) संघर्ष करती होती है तथा संघर्ष के छिड़ जाने पर प्रारम्भिक प्रेरक शक्तियाँ तथा इससे सम्बन्धित अन्य प्रेरक-शक्तियाँ भी क्रियाशील हो जाती है। एक ओर एक प्रेरक शक्ति के अनुसार वह यह सोचता है कि शादी तो मुझे आखिर लड़की से ही करनी है जिसको अपनाकर जीवन के सारे सुख-दुख मे साथ-साथ हँसना रोना है। अस्तु लड़की तथा उसके गुणों का अधिक महत्व देना चाहिए। आखिर मै कोई दुकान का खिलौना तो नही जो कुछ ठीकरों पर अपने को बिक जाने दूँ कि जो चाहे खरीद कर मोल ले डाल ले। मुझे मेरी इच्छा की लड़की चाहिए दहेज नही। रुपया तो बहुत पानी जैसे है आज है कल नही परन्तु पत्नी जीवन भर की निधि जो ठहरी।

साथ-साथ दूसरी प्रेरक शक्ति उसे यह सोचने पर मजबूर कर देती है कि मैं भी कितना नीच हूँ। माता पिता की छोटी सी इच्छा भी पूरी नही कर रहा हूँ। उन्होंने मुझे जन्म दिया है पाला-पोसा है पढ़ा लिखा कर योग्य बनाया है। आज मैं जो कुछ हूँ उन्हीं के कारण हो पाया हूँ। कभी किसी दूसरे ने तो कोई सहायता की नही। फिर आज यदि व अपनी अभिलाषा के कारण मेरी शादी में कुछ दहेज माँग ही रहे हैं तो हमें मुझे एतराज क्यों उनका मुझपर पूर्ण अधिकार है। वे मेरे ऊपर जितना चाहें दहेज ले लें जिससे चाहें मेरी शादी करा दें मुझ कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

वह फिर सोचता है— माता पिता पिताजी का मुझपर अधिकार है पर

वे तो जीवन-भर मेरे साथ नहीं रहेंगे। साथ तो रहेगी वह लड़की जिससे मेरा विवाह कर देंगे। अस्तु, अच्छी लड़की से सम्बन्ध जोड़ना ही ठीक है। पैसे तो पिताजी की अभिलाषा की पूर्ति करने के लिए हैं, मैं कमा कर उन्हें, वे जब तक जीवित रहेंगे, दे भी सकता हूँ। मैं गलती में हूँ। पैसों का महत्त्व आदमी से अधिक आँकना भूल है, मुझे दहेज नहीं चाहिए।

सहसा इन प्रेरकों से सम्बन्धित एक नयी प्रेरक-शक्ति आ जाती है— "परन्तु अगर पिताजी मेरी शादी में दहेज नहीं लेंगे तो फिर अगले वर्ष बहन की शादी में उन्हें दहेज देने में बड़ी कठिनाई होगी। वे भी तो कोई सेठ साहूकार नहीं। उन्हें कितना दुःख होगा। दहेज के अभाव में हो सकता है, मेरी बहन को योग्य वर प्राप्त न हो सके। सभी लड़के तो बिना दहेज के शादी करने को तैयार नहीं होते। उस दिन मेरी बहन भी रोयेगी, माँ तथा पिताजी भी, और मैं—ये सब किन आँखों से देख सकूँगा। माना कि दहेजवाले जगह पर विवाह करने से मुझे अच्छी लड़की नहीं मिल रही। परन्तु क्या मैं अपने प्रिय बहन, माँ अथवा अपने वृद्ध पिताजी के लिए इतना भी त्याग नहीं कर सकता! दहेज लेने से परिवार के बहुत लोगों को सुख मिलने की सम्भावना है। तो क्या अपने प्यारे परिवार के लिए मैं इतना भी दुःख झेल नहीं सकता! आखिर दहेज के साथ-साथ वहाँ भी तो मुझे एक पत्नी मिलेगी ही, कोई मिट्टी की मूरत थोड़े ही होगी। धनी बाप के घर की बेटी है तभी तो वे लोग इतने रुपये दे रहे हैं—नहीं, मुझे दहेज चाहिए—घर वाले मेरा निर्णय सुनेंगे तो कितना खुश होंगे। परन्तु क्या मेरा जीवन सुखमय हो सकेगा —कभी! उफ, कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूँ, क्या नहीं करूँ।"

पाठकों ने ऊपर के छोटे-से दृष्टान्त में यह देखा कि परिस्थिति-विशेष उत्पन्न हो जाने पर किस प्रकार कुछ विरोधी पूरक शक्तियाँ एक साथ ही अपनी-अपनी सन्तुष्टि के लिए क्रियाशील हो उठती हैं और मनुष्य किस प्रकार किसी एक पक्ष में निर्णय करने में असमर्थ रहता है। मनोविज्ञान में इन्हीं विरोधी प्रेरक शक्तियों के इसी प्रकार से मानसिक संघर्ष को प्रेरणा संघर्ष (Conflict of motives) कहा गया है। ऊपर के उदाहरण में दिखलायी गयी परिस्थिति में दो प्रमुख विरोधी प्रेरक-शक्तियाँ काम कर रही थीं —(अ) 'अपने सुख की प्राप्ति की प्रेरक-शक्ति' तथा (ब) 'परिवार के सुख की प्राप्ति चाहने वाली प्रेरक-शक्ति'। यह तो एक छोटा-सा उदाहरण है। पाठक अपने जीवन में ऐसे अनेक प्रेरणा-संघर्षों का अनुभव कर चुके होंगे अथवा करेंगे।

संघर्ष का कारण सिर्फ विरोधी (Incompatible) प्रेरक-शक्तियों का एक साथ मनुष्य के मानस में आकर टकराना ही नहीं है, इस संघर्ष का कारण वातावरण द्वारा उत्पन्न ऐसी रुकावटें भी हैं जो क्रियाशील प्रेरकों की सन्तुष्टि में बाधा पहुँचाती हैं। यही कारण है कि काम प्रेरक (Sex motive) की सन्तुष्टि की क्रिया में सामाजिक बन्धनों (Social taboos) को लेकर मनुष्य के मानस में इतने अधिक

सघप उपस्थित होते पाये जाते हैं। मनुष्य बाब जहाँ जिसके साथ बाह्‌ अपने काम प्रेरक (Sex motive) की सन्तुष्टि धार्मिक, मामाजिक आदि प्रतिबन्धो के कारण नही कर सकता।

साथ साथ मनुष्य की मानसिक अथवा शारीरिक त्रुटि भी इस प्रकार के मानसिक सघर्ष का कारण बन जाती है। एक अल्प बुद्धि का (Law intelligence or dull) व्यक्ति कुशल दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक न हो सकने के क्षोभ (Frustration) के कारण मानसिक सघर्ष से पीडित हो सकता है।

प्रेरकों के सघर्ष का समाधान
(Resolution of Conflict)

विभिन्न प्रेरकों के बीच हुए संघर्ष का समाधान या तो (1) चेतन स्तर (Conscious level) पर होता है या (ii) अचेतन स्तर (Unonscious) level पर।

(i) अचेतन स्तर पर प्रेरकों के समाधान (Resolution of conflict at the Conscious level)—यहाँ व्यक्ति को निम्नलिखित अवस्थाओ से गुजरना पडता है (क) विचारणा अथवा तर्क वितर्क की अवस्था (Stage of Delberation) (ख) निर्णय की अवस्था (Stage of Decision) (ग) सकल्प की अवस्था (Stage of Resolution), (घ) उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रियाओ का प्रकटीकरण (Overt behavioural stage) तथा (ङ) द्वन्द्व का समाधान और उद्देश्य की प्राप्ति (Resolution of conflict and Attainment of aim)।

उपर्युक्त सभी अवस्थाओं का विवरण नीचे प्रस्तुत है —

(क) विचारणा अथवा तर्क वितर्क की अवस्था (Stage of Deliberation) —पानी अथवा वृक्ष की समस्या वाले उदाहरण से यह स्पष्ट है कि जब विरोधी प्रेरक-शक्तियाँ एक साथ उपस्थित हो जाती हैं तब मनुष्य के मानस में किस प्रकार तर्क वितर्क होने लगता है। यह अवस्था किसी निश्चय अथवा निर्णय पर पहुँचने के पूर्व की अवस्था में होती है। इस अवस्था में व्यक्ति भिन्न भिन्न प्रेरक शक्तियों के लाभ एवं उनकी हानियों पर भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से विचार विमर्श करता है प्रेरकों के भिन्न भिन्न पहलुओं पर सोच विचार करता है।

(ख) निर्णय की अवस्था (Stage of Decision)—यह अवस्था तब आती है जब व्यक्ति विरोधी प्रेरक-शक्तियों द्वारा उपस्थित भिन्न भिन्न विकल्पो (Alternatives) में से किसी एक की सन्तुष्टि के लिए निश्चय रूप से चुन लेता है। इस क्रिया को निर्णय करना कहते हैं तथा इस अवस्था को निर्णय की अवस्था (Stage of Decision) कहते हैं। निर्णय हो जाने के बाद एक ही प्रेरक शक्ति चेतना के केन्द्र में रह जाती है जिसकी सन्तुष्टि करना व्यक्ति अपने लिए अभीष्ट मानता है। अन्य विरोधी प्रेरक शक्तियाँ दब जाती हैं तथा धीरे धीरे अचेतन (Subconscious) एवं अचेतन (Unconscious) मानस में चली जाती है।

अनेक तर्क-वितर्क के बाद जब युवक यह निश्चय कर लेता है कि वह वृक्ष

नही लेगा तब सारे विकल्प (Alternatives) उसकी चेतना के केन्द्र से धीरे-धीरे दूर हो जाते है। व्यक्ति अन्य विकल्पो का परित्याग कर देता है।

मैकडूगल (McDougall) के अनुसार व्यक्ति प्रेरणा सघर्ष की अवस्था उत्पन्न होने पर उसी प्रेरक-विशेष की सन्तुष्टि करने का निर्णय करता है जिसके करने से उसे अपेक्षाकृत अधिक आत्मसम्मान के स्थायी भाव (Self-regarding sentiment) की प्राप्ति की सम्भावना प्रतीत होती है।

(ग) सकल्प की अवस्था (Stage of Resolution)—सकल्प की अवस्था का महत्त्व इसलिए बढ जाता है कि हो सकता है, सकल्प के अभाव मे व्यक्ति किये गये अपने निर्णय के अनुसार शीघ्रता से कार्य करना न शुरु कर पाये। सकल्प उसे अपने निर्णय पर डटे रहने एव उसे कार्य रूप मे परिणत करने मे सहायता प्रदान करता है। इस अवस्था मे युवक मे—**मैं दहेज नहीं लूँगा**—का दृढ सकल्प देखा जाता है।

(घ) उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रियाओ का प्रकटीकरण (Overt behavioural stage) —निर्णय पर पहुँचते ही व्यक्ति के सामने एक निश्चित उद्देश्य भी चला आता है तथा सकल्प के फलस्वरूप व्यक्ति उद्देश्य-प्राप्ति के लिए प्रकटित क्रियाएँ करता है। युवक अपने उपर्युक्त संकल्प के अनुसार क्रियाएँ करता पाया जाता है। यदि एक प्रकार के व्यवहार से उद्देश्य की प्राप्ति नही होती है तो दूसरे प्रकार के व्यवहारो की आवश्यकता होती है।

(ङ) उद्देश्य की प्राप्ति (Attainment of aim) —अन्त मे इन क्रियाओ का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति को अपने उद्देश्य की प्राप्ति होती है तथा उसे सतुष्टि मिलती है, जैसे—**युवक का बिना दहेज लिए योग्य लडकी से विवाह का होना।**

व्यक्ति मे किसी अभाव की अनुभूति से लेकर उद्देश्य की प्राप्ति के बीच की इन सारी अवस्थाओ तक की **क्रमबद्ध-शृ खला** (Systematic sequence) का ज्ञान ऐच्छिक क्रियाओ के अध्ययन के लिए आवश्यक है।

(ii) अचेतन मानस द्वारा मानसिक सघर्षो का समाधान (Resolution of Mental conflict by unconscious mechanism)—अन्त मे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि एक समय मे उत्पन्न भिन्न-भिन्न क्रियाशील प्रेरको अथवा इच्छाओ के बीच आपसी सघर्ष (Conflict of Motives) का समाधान प्राय दो प्रकार से होता है—(१) हमारी चेतन (Conscious) मानसिक अवस्था द्वारा तथा (२) हमारी अचेतन (Unconscious) मानसिक अवस्था द्वारा।

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो गया कि हमारा चेतन मानस किस प्रकार प्रेरक-सघर्षो का समाधान कर पाता है।

परन्तु, अचेतन-मानस द्वारा किये गये मानसिक सघर्षो के समाधान का ढग कुछ दूसरे ही प्रकार का होता है। यह किस प्रकार सघर्षो का समाधान कर पाता है, इस बात का पता स्वय व्यक्ति की चेतना को भी नही लग पाता है। फिर भी

यह समाधान व्यक्ति को प्रेरक-संघर्ष से छुटकारा दिलाने एवं उसके मानसिक स्वास्थ्य (*Mental health*) को बहुत कुछ बनाये रखने के लिए आवश्यक है।

ऐसा प्राय देखा जाता है कि एक कम पढ़ने वाला छात्र जो किसी विषय में फेल कर गया होता है अपने मित्रों अथवा अभिभावकों से जा जा कर कहता है कि शिक्षक ने सवाल ही ऐसा चुना था कि हम फेल कर गये अथवा शिक्षक बड़े पक्षपाती थे। मैंने तो बहुत अच्छा लिखा परन्तु उन्होंने मुझ जान बूझकर फेल कर दिया था मेरी तकदीर मे ही फेल करना था, नहीं तो मैं फेल कभी नहीं करता।

ऐसा कहते समय छात्र प्राय यह नहीं सोचते कि उन्होंने परीक्षा के लिए तैयारी ही बहुत कम की थी—साल भर में अत्यधिक समय उन्होंने खेलने मे ही लगा दिया था।

यहाँ परीक्षा में फेल होने पर उनके अन्दर एक मानसिक संघर्ष उत्पन्न होता है। एक ओर उनका अहम् (Ego) अच्छे अंको से पास करके अपने प्रभुत्व को स्थापित करना चाहता है तथा दूसरी ओर अच्छे अंक नहीं प्राप्त कर सकने के कारण उनके अहम् को एक ठेस लगती है। अपनी हीनता को वे अपने चेतन मानस में स्वीकार करना नहीं चाहते। यदि वह अपनी चेतन में इस बात को स्वीकार कर ले कि वस्तुत वह अपनी अयोग्यता के कारण ही फेल कर गया है तो उसका अहम् संतुष्ट नहीं होता। अस्तु प्राय वह अपनी इस अयोग्यता को स्वीकार करना नहीं चाहता।

उस छात्र के अचेतन मे दो प्रश्न उठते है—क्या वह अपनी अयोग्यता को सचमुच स्वीकार कर ले? अथवा, किसी और तरीके को अपना कर अपनी अयोग्यता को छिपाये रहे तथा अपने अहम् की भी संतुष्टि करे। यदि वह अपनी अयोग्यता को स्वीकार कर लेता है तो उसके अहम् की संतुष्टि नहीं हो पायगी इसलिए भी कि यदि समाज के लोग उसकी अयोग्यता को जान लेंगे तो लोग उसे बुरा समझने लगेंगे। ऐसी अवस्था मे छात्र के अचेतन मानस मे ऐसी 'प्रक्रिया (Process) उत्पन्न होती है जो संघर्षो के समाधान मे सहायक है तथा जिसके द्वारा छात्र के अहम् की यथासम्भव संतुष्टि भी प्राप्त होती है। फल यह होता है कि समाज में उसकी प्रतिष्ठा भी बनी रह गयी और स्वय अपने में किसी दोष को स्वीकार भी नहीं करना पड़ा। समाधान की प्रक्रिया को रेशनलाइजेशन (Rationalisation) की संज्ञा दी गयी है।

छात्र जब यह कहता है कि शिक्षक ने जान कर पक्षपात के कारण मुझे फेल कर दिया है नहीं तो मैं कभी फेल नहीं करता तब उसका कहना रेशनलाइजेशन की अचेतन प्रक्रिया का फल है। इसके द्वारा छात्र अपने दोष (अयोग्यता) को स्वीकार नहीं करता एवं ऐसा कह कर समाज में अपनी प्रतिष्ठा को बचाये रख कर अपने अहम् को यथासम्भव संतुष्टि प्रदान करता है।

रेशनलाइजेशन के और कई एक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जैसे—व्यक्ति का यह कहना कि "मैने तो अमुक नौकरी पर लात मार दी वरन् उस नौकरी को पाना तो मेरे लिए बायें हाथ का खेल था।" अथवा ऐसा कहना कि 'मुझे तो तीन लाख रुपये की ठेकेदारी मिल रही थी। मगर मैंने सोचा कि ठेकेदारी का काम बेईमानी का काम है। सब ठेकेदार चोर होते है। चोर के साथ कौन चोर बनने जाय।"

इसी प्रकार कम्पेन्सेशन (Compensation), प्रोजेक्शन (Projection), सबलिमेशन (Sublimation), रिप्रेशन (Repression) इत्यादि कई और भी अचेतन मानसिक प्रतिक्रियाएँ है जिनके द्वारा मनुष्य के मानसिक सघर्षों का समाधान हो पाता है।

जो लडका पढने मे अच्छा नही कर पाता है वह एक अच्छा खिलाडी हो जा सकता है जिसके कारण लोग खेल के क्षेत्र मे उसकी काफी तारीफ करते हैं। अत लडका अपनी पढाई की योग्यता की पूर्ति (Compensation) एक अच्छा खिलाडी बन कर करता है। उसी प्रकार जिस लडके के माता-पिता अथवा शिक्षक आदि उस पर ध्यान नही देते है उस लडके के मस्तिष्क मे हीनता (Inferiority) की भावना जग जाती है जिसके कारण उसमे मानसिक सघर्ष उत्पन्न होता है। उसके मानसिक सघर्षो का समाधान प्राय इस प्रकार भी होता पाया जाता है कि वह लडका एक बहुत बडा शैतान, पाकिटमार, चोर, इत्यादि निकल जाय। इन क्रियाओ द्वारा वह अपनी हीनता की भावना अतिशय पूर्ति (Over Compensation) दूसरे क्षेत्रो मे कर पाता है जिसके कारण लोगो का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहता।

प्राय ऐसा भी देखा जाता है कि व्यक्ति मे स्वय जो दोष है अथवा दोषपूर्ण विचार है जिन्हे उसका 'अहम' (Ego) स्वीकार नही कर पाता है, उन दोषो (Anti-social unapproved ideas) अथवा दोषपूर्ण विचारो को वह दूसरो पर आरोपित कर देता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए 'क' 'ख' से नफरत करता है तथा वह नही चाहता कि 'ख' उससे मिलने भी आये। अब उसके मस्तिष्क मे सघर्ष उत्पन्न होता है कि किस प्रकार वह नफरत भी करे और उसकी यह नफरत जाहिर भी न हो। ऐसी अवस्था मे उसमे प्रोजेक्शन (Projection) नाम की अचेतन प्रक्रिया (Process) हो ी है जिसके कारण 'क' ऐसा कहते पाया जाता है कि 'देखा न 'ख' तो मुझसे इतनी नफरत करता है कि मुझसे कभी मिलने भी नही आना चाहता"। "वह तो मेरा दुश्मन बन गया", अमुक को मैं तो फूटी आँखो नही सुहाता" इत्यादि प्रोजेक्शन के उदाहरणस्वरूप है।

इसी प्रकार आपने देखा होगा कि कोई व्यक्ति अपने जीवन को कला की उपासना (जैसे—कविता, कहानी, सगीत, नृत्य इत्यादि) अथवा वैज्ञानिक अनुसन्धान

अथवा है अन्य किसी ऐसे काय मे लगा देता है जिसे समाज बहुत अच्छा कहता है (Sublimation)। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे कार्यों के पीछे कुछ अतृप्त प्रेरक अथवा इच्छाओं (Unsatisfied motives) जैसे यौन प्राप्ति प्रतिष्ठा (Sex recognition) आदि का संघष ही छिपा होता है जिन संघर्षों का समाधान उपर्युक्त व्यवहारों द्वारा परिलक्षित होता है।

अचेतन मानव द्वारा सम्पादित ऐसी महत्त्वपूण क्रियाओं की विशेष व्याख्या असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology) के सिलसिले में विद्यार्थी अधिक पढ़ेंगे।

दूसरा अध्याय

सीखना

(Learning)

परिचय — सीखने की क्रिया की दो आवश्यक बातें — व्यवहारों में परिवर्तन या परिमार्जन तथा परिवर्तित एवं परिमार्जित व्यवहारों का स्थायीकरण ।

सीखने की परिभाषा — सीखना तथा परिवर्तनों में अन्तर ।

शिक्षण-वक्र की विशेषताएँ ।

सीखने का सिद्धान्त — थार्नडाइक का प्रयत्न और भूल का सिद्धान्त— थॉर्नडाइक का बिल्ली तथा चूहे पर प्रयोग — थार्नडाइक के सीखने के नियम — अभ्यास-नियम तथा इसकी आलोचना-प्रभाव-नियम तथा इनकी आलोचना - तत्परता का नियम ।

सूझ का सिद्धान्त — कोहलर का छड़ी तथा बॉक्स-समस्याओं पर प्रयोग — सूझ द्वारा सीखने की दो आवश्यक बातें ।

पावलव का सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त — पावलव का प्रयोग, सम्बन्ध प्रत्यावर्तन के लिए कुछ आवश्यक बातें — मनुष्य पर किये गये कुछ प्रयोग — वाटसन का प्रयोग — सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन-सिद्धान्त की समालोचना ।

सीखने की विधियाँ — 'आंशिक अथवा पूर्ण रीति', 'विराम अथवा अविराम विधि', 'पुनः निरीक्षण एवं आवृत्तिकरण विधि', 'रट कर अथवा समझ कर सीखने की विधि' तथा 'उद्देश्यपूर्ण एवं अनायास सीखने की विधि ।'

मनुष्य एवं पशुओं के सीखने में अन्तर

अपने वातावरण से अपना सम्पर्क अभियोजन करने के लिए मनुष्य को सीखने की आवश्यकता पड़ती है । एक सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्यों को पढ़ाई-लिखाई, ज्ञान विज्ञान के अतिरिक्त अपने समाज के रस्म-रिवाजों, रहन-सहन आदि सब कुछ सीखना पड़ता है । केवल मनुष्य नहीं वरन् अन्य प्राणियों को भी सीखने की आवश्यकता पड़ती है । इसी सीखने की क्रिया का प्रभाव है कि सर्कस के

जीव-जन्तु आश्चर्यजनक काम करते नजर आते है। 'सीखने' की क्रिया द्वारा प्राणी के व्यवहारो तथा अनुभूतियों मे अपेक्षाकृत स्थायी परिवतन एव परिमार्जन हो जाते हैं। परन्तु व्यवहारो के सभी परिवर्तनों को सीखने की सज्ञा नही दे सकते। मनोवैज्ञानिको के अनुसार किसी भी क्रिया को सीखने की सज्ञा देने के लिए दो बातो का होना जरूरी है –

सीखने की क्रिया की दो आवश्यक बातें

१ व्यवहारों में किसी प्रकार के शिक्षण के कारण परिवतन अथवा परिमार्जन का होना (Dynamic changes and modification in the behaviour due to training) — यह शिक्षण किसी व्यक्ति विशेष द्वारा हो सकता है अथवा वातावरण विशेष में प्राणी के अन्दर उत्पन्न अपने अनुभव द्वारा हो सकता है या दूसरो व व्यवहारो के अनुकरण द्वारा हो सकता है। अगर ऑफिसर अपने चपरासी को समय पर आने का आदेश देता है और यदि चपरासी दूसरे दिन से लगातार ठीक समय पर आना प्रारम्भ कर देता है तो व्यवहार के इस परिवतन को हम व्यक्ति विशेष के शिक्षण (Training) द्वारा उत्पन्न मानेंगे। शिक्षकों का पढाना सिखाना या सिखलाना इस विषय के सुन्दर उदाहरण हैं। ये परिवर्तन प्रगतिशील (Dynamic) होते है और यही कारण है कि इन क्रियाओं मे धीरे-धीरे सुधार एव निपुणता आती जाती है। दूसरी तरफ जीवन मे ऐसी परिस्थितियाँ भी आती हैं जिनमें बिना किसी व्यक्ति विशेष के शिक्षण (Training) के ही प्राणियों के व्यवहार में अपने अनुभवों के आधार पर आप से-आप परिवतन हो जाते हैं। एक दिन गर्म दूध मे मु ह डालने के अनुभव को प्राप्त कर लेने पर बिल्ली स्वत अपने अनुभवों से यह शिक्षण प्राप्त कर लेती है कि गम दूध में मु ह नही डालना चाहिए। दूसरे दिन से वह गर्म दूध मे मु ह नही डालना सीख जाती है। उसके व्यवहारो में नया परिवर्तन हो जाता है।

२ इस परिवर्तित एव परिमार्जित व्यवहारो का स्थायीकरण (Retention of the changed modified behaviour)—व्यवहारो में जो परिवतन होते हैं उन परिवतनो का स्थायी होना सीखने के लिए आवश्यक है। अगर चपरासी दो एक दिन ही समय पर आता है और फिर पहले की तरह देर से आना शुरू कर देता है अथवा अगर बिल्ली फिर उस गम दूध में मु ह डालती हुई पायी जाती है तो हम कहेंगे कि चपरासी ने समय पर ऑफिस आना नही सीखा है अथवा बिल्ली यह नही जान पायी कि गम दूध मे मु ह नही डालना चाहिए। अत नये व्यवहारो का प्राणी विशेष म अपेक्षाकृत स्थायी (Relatively Permanent) रूप ग्रहण करना सीखने के लिए आवश्यक है।

य सारे परिवर्तन वातावरण स प्राणी का उचित अभियोजन कराने के दृष्टिकोण से होते हैं।

अत सीखने की क्रिया के लिए निम्नलिखित बातें प्रमुख ह —(i) वातावरण से अभियोजन (Adjustment) की आवश्यकता (ii) अभियोजन के लिए किये गये

व्यवहारो मे प्रगतिशील परिवर्तन अथवा परिमार्जन, (iii) इन परिवर्तनो अथवा परिमार्जनो, स्थायीकरण तथा (iv) किसी प्रकार के शिक्षण (Training) का प्रभाव।

सीखने की क्रिया में व्यवहारो के परिवर्तन के लिए किसी भी प्रकार के शिक्षण (Training) की आवश्यकता इसलिए आवश्यक मानी गयी है कि प्राणियो के व्यवहारो मे परिवर्तन अथवा परिमार्जन परिपक्वता (Maturation) की प्राप्ति के कारण भी हो जाते है और यह परिवर्तन (Change) अपेक्षाकृत स्थायी (Relatively permanent) भी हो जाते हैं, जैसे—नवजात शिशु उठकर बैठने मे समर्थ नही होता है, परन्तु जैसे-जैसे उसके शरीर के भिन्न-भिन्न अगो मे शक्ति आती जाती है, वैसे-वैसे वह चित्त लेटने की अवस्था से पट लेटने की अवस्था मे हो जाता है और फिर धीरे-धीरे बैठना भी शुरू कर देता है। परन्तु इस बैठने की क्रिया को हम मनोविज्ञान के दृष्टिकोण मे 'सीखना' तब तक नही कह सकते है जब तक कि उस क्रिया को अपनाने का शिक्षण (Training) नही दिया गया हो। ध्यान से देखने पर स्पष्ट मालूम पड़ेगा कि इस क्रिया मे शिक्षण और परिपक्वता दोनो कुछ इस तरह शामिल होते है कि एक के प्रभाव को दूसरे के प्रभाव से एकदम अलग कर लेना बहुत कठिन है। जब बच्चा ठीक-ठीक बोलना सीख लेता है तो इस पर जीभ एव कण्ठ के नीचे स्वर के तारो (Vocal chords) पर परिपक्वता का काफी असर पड़ता है। साथ-साथ बच्चे के स्नायुमण्डल (Nervous system) मे धीरे धीरे परिपक्वता आती जाती है जिसके कारण बच्चा सीखी हुई ध्वनि अथवा सीखे हुए शब्दो एव वाक्य को याद रख पाता है। बोलचाल मे भाषा के शुद्ध प्रयोग को सीखने मे ट्रेनिंग या शिक्षण का भी उतना ही जबर्दस्त असर पड़ता है। शिक्षण ट्रेनिंग के कारण वह बार-बार दुहरा कर सीखता है तथा भूल मे सुधार करता है। परन्तु अगर सिर्फ शिक्षण का प्रभाव ही सब कुछ होता तो दो महीने का बच्चा भी शायद भाषण करना सीख लेता। इस विषय की चर्चा हम आगे और भी अधिक स्पष्ट रूप से करेंगे। अभी सिर्फ इतना समझना आवश्यक है कि व्यवहारो मे किसी भी प्रकार के उन परिवर्तनो अथवा परिमार्जनो को हम सीखना कहेंगे जो सिर्फ परिपक्वता के कारण नही हुए है, बल्कि शिक्षण के कारण उत्पन्न हुए है और जिन्होने प्राणीविशेष मे एक अपेक्षाकृत स्थायी रूप भी ग्रहण कर लिया है।

परिभाषा— सीखने (Learning) की परिभाषा निम्नलिखित ढग से दी जाती है—

"Some modification in the behaviour of the organism as a result of experience (due to some sort of training) which is retained for at least a certain period of time by the organism"—Morgan & Gilliland (मार्गन और गिलिलैण्ड)।

भिन्न भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सीखने (Learning) की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी हैं।[१]

दी गयी परिभाषाओं को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी ने सीखने को एक प्रगतिशील प्रक्रिया (Development process) माना है। सीखने की क्रिया में प्राणी की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं का प्रमुख हाथ रहता है। ये आवश्यकताएं उसे सीखने के लिए प्रेरित (Motivate) करती रहती हैं। प्यास से व्याकुल व्यक्ति पानी पीने की शारीरिक आवश्यकता के कारण कुएं अथवा नल आदि की जगहों पर जाना सीख जाता है। यही कारण है कि पिंजड़े में बन्द कर दी गयी भूखी बिल्ली पिंजड़े से बाहर रखा खाना पाने के प्रयास में पिंजड़े को खोलने की क्रिया सफलता से सीख जाती है।

ठीक इसी प्रकार अधिक-से अधिक ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता एवं जिज्ञासा द्वारा बहुत-सी नयी-नयी बातें प्रतिदिन सीखता जाता है।

सीखने में प्राणी की जाति (Race) उम्र (Age) मानसिक अवस्था (Mental condition) इत्यादि से गहरा सम्बन्ध है। जिस प्राणी का स्नायुमण्डल (Nervous system) जितना ही अधिक विकसित एवं जटिल (Complex) है वह उतना ही अधिक-से अधिक एवं कठिन-से-कठिन विषयों को सीखने में एवं ठीक ठीक ढंग से (Quickly and Accurately) सीख पाता है। साथ-साथ उम्र पर सीखने की विधि समय आदि वातावरण की अन्य बातों का भी काफी प्रभाव पड़ता है।

सीखना और परिपक्वता
(Learning and Maturation)

व्यवहारों में परिवर्तन शरीर के भिन्न भिन्न अंगों के सहज विकास अथवा परिपक्वता पर निर्भर करते हैं। परिपक्वता का सम्बन्ध अंग प्रत्यंग के सहज एवं स्वाभाविक विकास से है। नवजात शिशु के हाथ पैर में बचपन में छोटे होते हैं और उनमें शक्ति का भी अभाव रहता है। जैसे जैसे नवजात शिशु में परिपक्वता आती जाती है वैसे-वैसे न केवल उसके हाथ-पैर एवं उसके शरीर के आकार में विकास होता जाता है बल्कि धीरे-धीरे उनमें शक्ति भी आती जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे में व्यवहार को ग्रहण कर सकने की क्षमता का परि

---

१ "Any activity can be called learning in so far as it develops the individual (in any respect good or bad) and makes his later behaviour and experience different from what they would otherwise have been."
—Woodworth

२ "Learning, as we measure it, is a relatively permanent change in behaviour as a function of practice. In most cases this change has a direction which satisfies the current motivating conditions of the individuals."
—McGeoch

पक्वता प्राप्त करने के बाद व्यवहारो को करने मे समर्थ हो जाता है, जसे—लेटने की अवस्था, फिर बैठना तथा घुसकना, खडा होना, चलना दौडना इत्यादि के व्यवहार। धीरे-धीरे बच्चा दौडने लगता है, फुटबॉल खेलने लगता है।

परिपक्वता की यह क्रिया जन्म के पहले ही शुरू हो जाती है। जिस समय में गर्भाधान होता है उसी समय से परिपक्व होने की क्रिया भी शुरू हो जाती है। बच्चा धीरे-धीरे माँ के गर्भ मे विकसित होता है और विकास का यह क्रम जन्म के बाद भी चलता जाता है। अस्तु, उसका प्रभाव बच्चो के जन्म के पहले (Pre-natal stage) तथा उसके जन्म के बाद (Post-natal stage) दोनो ही अवस्थाओ मे देखने को मिलते है। फिर भी परिपक्वता के विकास पर वातावरण मे अधिक वशानुक्रम का प्रभाव मनोवैज्ञानिको ने माना है। अच्छी हवा, अच्छा भोजन, अच्छी देख-रेख इत्यादि का प्रभाव भी परिपक्वता पर पडता है, परन्तु यह क्रिया अधिक अश मे वशानुक्रम द्वारा ही निर्देशित होती है।

अस्तु, परिपक्वता एक ऐसी लगातार होनेवाली क्रिया है जो सहज रूप से हमारे अ ग-प्रत्यंग के विकास के द्वारा प्रकट होती है। हमारे शरीर के अन्दर रहनेवाली ग्रन्थि (Glands) की क्रियाओ से इसका गहरा सम्बन्ध है जो हमे अपने वशानुक्रम के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इसीलिए जैंगविल (Zangwill) नामक शरीरशास्त्रज्ञ एव मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि—

"Maturation is an endogonous process which depends only in a very broad way upon the external environment It is determind largely, if not exclusively, by inherited mechanisms"

हमने व्यवहारो के परिवर्तनो की चर्चा की है। व्यवहारो के फलस्वरूप उत्पन्न अनुभूतियो (Experience) मे भी परिवर्तन स्वाभाविक है। ये परिवर्तन परिपक्वता के कारण भी होते हैं और शिक्षण के द्वारा भी। सीखने की क्रिया मे दोनो का प्रमुख सहयोग है। अत सीखना और परिपक्वता के अन्तर को भी समझना आवश्यक है।[१]

सीखना तथा परिपक्वता मे अन्तर (Distinction between Learning and Maturation) —

सीखना तथा परिपक्वता मे निम्नलिखित अन्तर है—

१ परिपक्वता शरीर के अ गो के स्वाभाविक एव प्राकृतिक विकास की एक क्रिया है, परन्तु सीखना एक कृत्रिम क्रिया है जिसका सम्बन्ध शरीर के भिन्न-भिन्न अ गो के विकास से नही वल्कि उन विकसित अ गो द्वारा उत्पन्न नये व्यवहारो मे नया परिवर्तन लाने से है। शिक्षण का सम्बन्ध अ गो की क्रियाओ (Function) से है, परन्तु परिपक्वता का अधिक सम्बन्ध अ गो की रचना (Structure) से है।

१, "Maturation is growth of a structure in response to the diffused stimulations received from its surroundings while learning is growth in response by the functioning of that structure"

२ परिपक्वता की क्रिया प्राणी की जाति-विशेष भर में प्रायः एक ही जैसी देखी जाती है। मनुष्य का शिशु अपनी उम्र की खास अवस्था प्राप्त कर लेने पर बढ़ने लगता है, दूसरी अवस्था विशेष आने पर चलने लगता है, तीसरी अवस्था विशेष प्राप्त होने पर दौड़ने लगता है। किसी अवस्था विशेष पर कैसा व्यवहार होगा यह मनुष्य-जाति के हर प्राणी में लगभग एक जैसा ही देखा जाता है। इसी तरह से प्रायः समान क्रमिक विकास (Regular stage of development) जीव जन्तुओं में भी अपने-अपने ढंग से देखने को मिलते हैं।

परन्तु सीखने की क्रिया में हम एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में बहुत अधिक अन्तर (Individual difference) पा सकते हैं — जैसे—१६ वर्ष का एक लड़का मैट्रिक की योग्यता प्राप्त कर ले और १८ वर्ष का लड़का आठवें वर्ग की योग्यता भी प्राप्त नहीं कर पाये। यह कभी सम्भव नहीं है कि मनुष्य के समान उम्र के सभी बच्चों का समान शिक्षण (Learning) भी हो सके। इसलिए कहा गया है कि परिपक्वता जातीय एकरूपता (Racial uniformity) लाती है और सीखना वैयक्तिक असमानता (Individual variability) अथवा इसे हम इस प्रकार से कह सकते हैं कि परिपक्वता से जातीय विशेषताओं (Racial characteristics) का प्रदर्शन होता है तथा, शिक्षण से व्यक्तिगत विभिन्नताओं (Individual difference) का।

३ परिपक्वता की क्रिया लगातार जारी रहती है परन्तु सीखने की क्रिया बीच-बीच में छूट भी जा सकती है।

४ जैंगविल (Zangwill) तथा कारमाइकल (Carmichael) ने स्पष्ट बतलाया है कि व्यवहारों के प्रारम्भिक विकास में परिपक्वता का ही हाथ अधिक रहता है। परन्तु धीरे धीरे बाद में चलकर अत्यधिक विकास के लिए शिक्षण (Training) की आवश्यकता पड़ने लगती है।

५ परिपक्वता जन्मजात (Inborn) प्रक्रिया है परन्तु शिक्षण अर्जित (Acuquired) है।

६ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सीखने की क्रियाओं में अभ्यास का कितना महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु परिपक्वता में अभ्यास का स्थान नगण्य है।

७ परिपक्वता के कारण शरीर के अन्दर कुछ रचनात्मक परिवर्तन होते हैं जिनसे शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की वृद्धि में सहायता मिलती है। यही कारण है कि शरीर-सम्बन्धी अंग विकास शिक्षण से अधिक परिपक्वता पर निर्भर करता है। शिक्षण द्वारा बाह्य वातावरण में ही परिवर्तन लाना सम्भव है शरीर के आन्तरिक वातावरण में नहीं।

८ बिना शिक्षण (Learning) के परिपक्वता कुछ अंश तक सम्भव है परन्तु बिना परिपक्वता के शिक्षण असम्भव है।

इनके अन्तरों के कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि शिक्षण और परिपक्वता में किसी प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं है। सच तो यह है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं

—दोनो का एक-दूसरे से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक के अभाव में दूसरे के कार्य सीखने के विकास के दृष्टिकोण से अधूरा रह जायगा। शर्ली (Shirley), क्रूज (Cruze), स्टोन (Stone), गेसेल (Gesell) इत्यादि द्वारा किये गये प्रयोगो ने इन दोनो के आपसी सम्बन्ध पर काफी प्रकाश डाला है। एक बच्चे को साइकिल चलाने की लाख ट्रेनिंग दी जाय, फिर भी जब तक उसके पैर लम्बे तथा परिपक्व नही होगे, तब तक वह साइकिल चलाना नही सीख सकता। ठीक इसके विपरीत, अगर किसी के पैर परिपक्व हो गये हैं तो इसका अर्थ नही कि वह साइकिल चलाना बिना शिक्षण एव अभ्यास के ही आप से आप सीख जायगा। ठीक यही बात टेलीग्राफी, टाइपराइटिंग, सूत कातना, दर्जी का काम, खेलने इत्यादि कार्यों को सीखने मे स्पष्ट मालूम पडती है।

अर्थात्, सीखने के लिए शिक्षण और परिपक्वता दोनो चाहिए। दोनो की सहायता अनिवार्य है। हिलगार्ड (Hilgard) की निम्नलिखित पक्तियाँ इन दोनो के सम्बन्ध पर बहुत स्पष्ट प्रकाश डालती है—"For effective learning, the two, training and maturation, should go together like and ideal married couple each facilitating and helping the process of the other

*शिक्षण-वक्र
(Learning Curve)

सीखने की क्रिया मे होने वाले उत्तरोत्तर विकास का मनोवैज्ञानिको ने ग्राफ (Graph) पर अकित करके देखा है। इनमे जो वक्र (Curve) बनता है, उसमे कुछ अपनी विशेषताए वर्त्तमान रहती है।

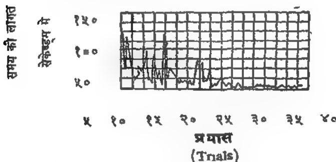
किसी क्रिया को करना जब व्यक्ति सीखता है, उसके लिए जैसे-जैसे वह अधिक से अधिक अभ्यास (Exercise) करता जाता है, वैसे-वैसे उसके सीखने की क्रिया मे निपुणता देखी जाती है। बढती हुई यह निपुणता कई तरह से प्रगट हो सकती है (१) प्रत्येक प्रयास मे गलतियो के होने की मात्रा मे कमी होता जाना (Reduction in the amount of errors made per trial), (२) प्रत्येक प्रयास मे अपेक्षाकृत पिछले प्रयास से कम समय लगना (Reduction in the duration of time taken per trial) और (३) प्रत्येक प्रयास मे, उपादान मे, क्रमश अभिवृद्धि होता जाना (Increment in the output made per trial) इत्यादि।

मान लीजिए कि आपने एक व्यक्ति के टाइपराइटिंग सीखने की क्रिया का अध्ययन करना शुरु किया। वह व्यक्ति किसी प्रकार अक्षरो का टाइप करना सीखने (Letter habit) के बाद शब्दो को (Word-habit) फिर मुहावरो और वाक्यो को (Phrase and Sentence habit) टाइप करना सीखता जाता है—इसका अध्ययन कर रहे हैं।

पर्यटन (Mind wandering) अथवा किसी प्रेरक वृत्ति (Motive) के अभाव के कारण इत्यादि ।

फिर भी यदि व्यक्ति सीखने का अपना प्रयास जारी रखे तो वह पठार (Plateau region) को पार कर पुन सीखने की क्रिया मे तरक्की करता पाया जाता है । पुन उसके द्वारा टाइप किये गये शब्दो का उत्पादन बढ जा सकता है । परन्तु इसके लिए **सीखने की नयी विधियाँ** (New or Improved methods of learning) एव **नयी प्रेरक वृत्ति** (Motives) को भी अपनाने की आवश्यकता पड सकती है । सीखने के हेतु किये गये प्रयासो के सिलसिले मे एक से अधिक बार भी पठार (plateau) का आगमन देखा जा सकता है । इसीलिए छात्रो को किसी कार्य को सीखने के सिलसिले मे यदि उस पठार (Plateau region) का सामना करना पडे तो निराश होना नही चाहिए वरन् अपने नये प्रयासो को बहुत हद तक जारी रखना चाहिये ।

पठार (Plateau region) के बाद फिर से व्यक्ति को सीखने की क्रिया मे उत्पादन वृद्धि देखी जाती है और इस प्रकार की वृद्धि होते-होते एक ऐसी अवस्था आती है जिसके आगे अनेक प्रयास करने पर भी वृद्धि नही हो पाती । किसी भी विधि अथवा प्रेरक वृत्ति को अपनाने से कोई फायदा नही होता । इस अवस्था को



(चित्र २७ शिक्षण वक्र—समय के आधार पर)

मानसिक एव शारीरिक सीमा (Psychological and Physiological limit) के नाम से पुकारा जाता है । यह इस सीमा का ही परिणाम है कि लाख अभ्यास करने के बाद भी व्यक्ति की उँगलियाँ एक मिनट मे एक हजार शब्द नही टाइप कर सकती अथवा एक बन्दर कितना सिखाये जाने पर भी मनुष्य की तरह किसी समस्या पर भाषण नही दे सकता । पठार (Plateau region) के बाद सीखने की क्रिया मे पुन तरक्की अवश्य होती है, पर शारीरिक अथवा मानसिक सीमा तक तरक्की कर लेने के बाद पुन आगे कोई तरक्की नही देखी जाती । शिक्षण-वक्र यदि **गलतियो और समय** (Time taken per trial) को लेकर अकित किया जाय तो यह वक्र ऊपर की

ओर उठता न जाकर नीचे की ओर गिरता जायगा। यह इसलिए कि शुरू-शुरू में तो गलतियाँ अधिक होंगी, परन्तु किये गये प्रयासों (Trials) के साथ-साथ गलतियाँ कम होती जायेंगी और ऐसी अवस्था आयगी जब इन गलतियों का होना बिलकुल समाप्त हो जायगा।

समय भी प्रत्येक प्रयास के साथ साथ घटता जाता है। जो काम पहले व्यक्ति अधिक समय में करता है वही काम वह धीरे धीरे एकदम कम ही समय में ठीक-ठाक करने लगता है। उसकी निपुणता बढ़ती जाती है। वह उस काम विशेष को सीख जाता है। थॉर्नडाइक (Thorndike) ने बिल्ली के सीखने की क्रिया पर किये गये अनेक प्रयोग में जो शिक्षण वक्र पाया वह प्रायः इस प्रकार है (चित्र २७ पृष्ठ २२९ देखें)।

पिंजड़े में बन्द बिल्ली को खाने की क्रिया में बिल्ली धीरे-धीरे बहुत प्रयास (Trials) के बाद अधिक से कम फिर उससे भी कम, फिर उससे और कम समय लेने लगी और ५० ६० प्रयासों के बाद बिल्ली प्राय एकदम कम समय में दरवाजा बिना किसी गलती किये ही खोलना सीख गयी। इस प्रकार पशुओं और मनुष्यों के शिक्षण-वक्र (Curve of learning) में काफी समानता पायी गयी है।

सीखने के सिद्धान्त
(Theories of Learning)

सीखने की क्रियाओं को हम कई पहलुओं से देख सकते हैं जैसे—(क) प्राणी क्या (What) सीखता है (ख) प्राणी कब (When) सीखता है (ग) प्राणी क्यों (Why) सीखता है, (घ) प्राणी कैसे (How) सीखता है इत्यादि।

प्रथम तीन प्रश्नों की व्याख्या तथा उत्तर के सिलसिले में मनोवैज्ञानिकों में आपस में अपेक्षाकृत कम मतभेद है, परन्तु सबसे अधिक मतभेद है अन्तिम प्रश्न के उत्तर में।

मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की क्रिया के अध्ययन के हेतु पशुओं एवं मनुष्यों दोनों पर प्रयोग किये हैं। किये गये प्रयोगों के फलस्वरूप तीन प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है।

(१) थार्नडाइक का प्रयत्न और भूल का सिद्धान्त (Trial and Error Theory by Thorndike) (२) कोहलर तथा कोफ्का अन्तर दृष्टि अथवा सूझ का सिद्धान्त (Theory of Insight by Kohler and Koffka) (३) पावलव एवं वाटसन का सम्बन्ध प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त (Theory of Conditioning by Pavlov and Watson)।

ये सारे सिद्धान्त हमें यह बतलाने का अधिक प्रयास करते हैं कि हम किस लिए (Why) सीखते हैं तथा किस प्रकार (How) सीखते हैं। अब इन सिद्धान्तों पर हम अलग अलग एक-एक कर विचार करेंगे।

१ प्रयत्न और भूल का सिद्धान्त (Trial and Error Theory)— यह

हमलोगो का साधारण अनुभव है जब कि हमलोग किसी नयी प्रक्रिया को करना सीखते है तो प्रारम्भ मे हम बहुत-सी भूलें करते हैं, जैसे—कोई लडका जब अँगरेजी सीखना शुरू करता है तो प्रारम्भ मे बहुत-सी गलतियाँ करता है। फिर, धीरे-धीरे गलतियो का सुधार होता है। अभ्यास करते-करते एक ऐसी अवस्था आती है जब वह अँगरेजी पढना-लिखना अच्छी तरह सीख लेता है और एक दिन वह विद्वान् कहलाने योग्य हो जाता है। इसी प्रकार टेनिस, बैडमिण्टन, कैरम इत्यादि के खेल सीखने मे भी मनुष्य प्रयत्न करता है, भूलें भी करता है, परन्तु उस क्रिया को बार-बार दुहराने से वह कुशल खिलाडी बन जाता है। मनुष्य उस क्रिया को बार-बार करके सीख जाता है। अस्तु, साधारणतया सीखने की क्रिया मे निम्नलिखित अवस्थाएँ दीख पडती है—

(i) सीखने की आवश्यकता का अनुभव, (ii) प्राणी द्वारा सीखने का प्रयत्न, (iii) प्रारम्भ मे प्रयत्न मे अधिक समय लगना तथा अधिक गलतियो का होना, (iv) बार-बार प्रयत्न तथा बार-बार भूलो का होना (v) भूलो मे क्रमश. सुधार, (vi) क्रमश कार्यकुशलता की प्राप्ति।

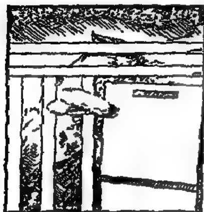
प्राणी का बार-बार प्रयत्न करना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि भूलो मे सुधार होना। इस विधि से सीखने की क्रिया के सिद्धान्त का प्रतिपादन थॉर्नडाइक (Thorndike) नामक मनोवैज्ञानिक ने किया। उन्होंने जानवरो तथा मनुष्यो दोनो पर प्रयोग करने के बाद सीखने की क्रिया के सम्बन्ध मे कुछ प्रमुख निष्कर्ष निकला। सर्वप्रथम हम उनके कुछ प्रयोगो पर ध्यान दें —

थॉर्नडाइक का बिल्ली पर प्रयोग या जटिल बॉक्स प्रयोग (Thorndike's experiment on cat or puzzle-experiment)— थॉर्नडाइक ने बिल्ली को २४ घण्टे तक भूखा रखा। दूसरे दिन उसे एक बडे पिंजडे मे डाल दिया। उस पिंजडे से बाहर निकने का एक ही दरवाजा था। उस दरवाजे के साथ एक 'लिवर' लगा हुआ था जिसको दबा देने से पिंजडे का दरवाजा खुल जाता था। पिंजडे के भीतर भूखी बिल्ली रख दी गयी और पिंजडे के बाहर एक बरतन मे बिल्ली का प्रिय भोजन मछली रख दी गयी। मछली इस प्रकार रखी गयी थी कि बिल्ली को वह स्पष्ट दिखाई पडती थी। भूखी होने के कारण वह बिल्ली उछल-कूद करने लगी, परन्तु वह मछली तबतक नही खा सकती थी जबतक पिंजडे का दरवाजा नही खुल जाता। अस्तु पिंजडे से बाहर निकल कर मछली खाकर वह अपनी भूख की सन्तुष्टि कर सके, इसके लिए उसे पिंजडे का दरवाजा खोलने की क्रिया को सीखना आवश्यक था।

बिल्ली बार-बार पिंजडे से बाहर निकलने का प्रयास करने लगी (चित्र स० ८ 'क' पृ० २३२ देखें)। पिजडे का हिलाना, नोचना, उछलना, कूदना आदि व्यवहार उस बिल्ली मे देखे गये। इसी उछल-कूद के सिलसिले मे कुछ समय के बाद अकस्मात् बिल्ली का पजा पिंजडे के दरवाजे मे लगे 'लिवर' पर पड गया जिससे

कारण दरवाजा खुल गया और बिल्ली बाहर निकलकर मछली खा गयी जिससे उसकी भूख मिट गयी (निचे का चित्र २८ ख देखें)।

पिंजड़े के अन्दर बिल्ली द्वारा किये व्यवहारों का थॉर्नडाइक ने वैज्ञानिक निरीक्षण (Scientific observation) किया। दूसरे दिन फिर बिल्ली को भूख की अवस्था में उसी प्रकार पिंजड़े के भीतर डाल दिया गया। मछली भी ठीक पहले





(क) (ख)

[चित्र २८—थार्नडाइक द्वारा प्रयुक्त की उलझन बाक्स (puzle box) सम्बन्धी बिल्ली पर किये प्रयोग का चित्र]

[(क) बिल्ली उलझन बॉक्स की कुण्डी को खोलने का प्रयास कर रही है और (ख) बिल्ली कुण्डी को खोलने में सफल हो गयी है तथा मछली खाने के लिए बढ़ रही है।]

जैसा पिंजड़े के बाहर बिल्ली के सामने रख दी गयी। उस बिल्ली में ठीक पहले जैसे व्यवहार देखने को मिले और फिर अचानक लिवर के दब जाने से दरवाजा खुल गया और बिल्ली बाहर निकल कर मछली खा गयी।

इस बिल्ली को लगभग कुछ दिनों तक एक प्रकार की परिस्थिति में रखकर उसके व्यवहारों का अध्ययन किया गया।

थार्नडाइक ने बिल्ली के व्यवहार में निम्नलिखित बातें पायी—

(i) भूख के कारण बिल्ली में पिंजड़े से बाहर निकलने की आवश्यकता का अनुभव (ii) पहले बिल्ली ने उछल कूद जैसे बहुत-से बेमतलब के व्यवहार (Random behaviours) किये (iii) बार बार पिंजड़े से बाहर निकलने का प्रयास (iv) काफी देर के बाद अचानक दरवाजा के लिवर पर बिल्ली के पंजे का पड़ना एवं दरवाजे का खुलना, (v) कुछ दिनों में धीरे धीरे बेमतलब के व्यवहारों की कमी होना तथा भूलों की संख्या में भी कमी होना (vi) दरवाजा खोलने में धीरे धीरे कम समय

लगना तथा एक ऐसी अवस्था का आना, जब बिल्ली ने बिना किसी बिलम्ब के झट दरवाजे को खोल दिया और निकल कर मछली को खा लिया तथा (vii) दरवाजा खोलने की विधि को ठीक-ठीक सीख लेना।

थार्नडाइक ने देखा कि ऐसी क्रियाएँ, जिनके करने मे बिल्ली को सतुष्टि की प्राप्ति हुई, उन क्रियाओ को करना बिल्ली सीख गयी (Stamping in the satisfying behaviour) तथा जिन क्रियाओ को करने से बिल्ली को असतुष्टि मिली थी, वे क्रियाएँ बिल्ली नही सीख पायी (Stamping out of the annoying behaviour)। बिल्ली दरवाजा खोलने की क्रिया इसलिए सीख गयी, क्योंकि दरवाजे खोलने पर उसे मछली मिलनी थी जिसे खाने से उसे अपनी भूख की सन्तुष्टि होती थी।

परन्तु छडो को नोचना, उछलना अथवा पिजडे को तोडने के प्रयास इत्यादि से उसे असन्तुष्टि प्राप्त होती थी। अस्तु, ऐसे अकारण (Random) व्यवहारो की सख्या मे आप से आप बिल्ली के व्यवहारो मे कमी होती चली आयी। अभ्यास के कारण सतुष्टि प्रदान करने वाली प्रक्रियाएँ बिल्ली सीखनी गयी और असन्तुष्टि प्रदान करने वाली क्रियाएँ उसके व्यवहारो से लुप्त होती चली गयी।

भूलभुलैया मे सीखने का चूहो पर किये गये प्रयोग (Maze learning experiment on rats)—एक भूखे चूहे को एक भूलभुलैया मे रखा गया। भूलभूलैया उसे कहते हैं जिसमे निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचने का एक ही रास्ता होता है, परन्तु उनमे कई एक अन्ध-पथ (Blind alleys) होते है। भूलभुलैया के बीच मे भोजन रखा था। वहाँ पहुँचने के लिए चूहे को कई एक रुकावटो तथा अन्ध-गलियो (Blocks and blind alleys) से होकर गुजरना पडता था। भूखे चूहे को भूलभुलैया के दरवाजे पर छोड दिया गया और यह अध्ययन किया गया कि चूहा उस भूलभूलैया के बीच मे रखे भोजन तक पहुँचना किस प्रकार सीखता है।

भिन्न-भिन्न प्रकार के भूलभूलैया मे कई एक इस प्रकार के प्रयोग किये गये किसी-किसी मे भोजन चूहे को दिखाई पडता था, परन्तु वहाँ पहुँचने का मार्ग सीखना पडता था। ऐसी अवस्था मे भूलभुलैया के बीच-बीच मे शीशे अथवा जाली की दीवारें खडी हो गयी थी। किसी-किसी मे तो चूहे को भोजन की गन्ध भी मिलती थी।

भूलभूलैया के ऐसे प्रयोग मानव-शिशुओ पर भी किये गये हैं।

निष्कर्ष—इन प्रयोगो मे भी थाँर्नडाइक ने देखा कि (i) सीखने मे प्रेरकशक्ति (Motivating force) का महत्त्वपूर्ण स्थान है, (ii) प्राणी अभ्यास द्वारा ठीक व्यवहार सीख पाता है, (iii) जिन व्यवहारो के करने मे प्राणी को सतुष्टि प्राप्त होती है, उन व्यवहारो को वह (समान परिस्थितियो मे) फिर से दुहराना चाहता है जिसके परिणामस्वरूप वह उन व्यवहारो को सीख लेता है।

थार्नडाइक-प्रदत्त सीखने के नियम (Thorndike's Laws of Learning)—

अपने प्रयोगों तथा उनसे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर थॉर्नडाइक ने सीखने के कई नियमों का प्रतिपादन किया जिसमे से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(१) अभ्यास नियम (Law of exercise), (२) प्रभाव नियम (Law of Effect) (३) तत्परता का नियम (Law of Readiness)।

१ अभ्यास नियम
(Law of Exercise)

यह नियम बतलाता है कि किसी भी प्रक्रिया को सीखने के लिए दो बातें आवश्यक हैं—(i) प्राणी किसी प्रक्रिया को खुद करके सीखता (Learning by doing) है और (ii) प्रक्रिया को जितनी ही अधिक बार दुहराता है अथवा अभ्यास करता (Exercise through repetition) है उतनी ही अधिक योग्यता उस कार्य विशेष के करने से उसे प्राप्त होती जाती है। इसी बार-बार अभ्यास के कारण धीरे धीरे भूलों में कमी और उस कार्य विशेष को करने की योग्यता बढ़ती जाती है। बिल्ली पिंजड़े का दरवाजा खोलना इसलिए सीख गयी क्योंकि बिल्ली प्रयास कर रही थी और बार-बार प्रयास कर रही थी।

किसी व्यक्ति को लाख मौखिक शिक्षा दे दी जाय कि किस प्रकार तैरना चाहिए फिर भी तैरने के लिए उसे स्वयं ही प्रयास करना होगा और बार-बार इस क्रिया को करने के बाद ही वह तैराक हो सकेगा। ठीक यही अवस्था साइकिल चलाना अथवा टाइप करना सीखनेवाले के साथ भी पाते है। अभ्यास नियम किसी कला के सीखने के लिए आवश्यक है।

इस नियम के भी निम्नलिखित दो भाग किये गये हैं—(क) उपयोग-नियम (Law of use) और (ख) अनुपयोग नियम (Law of disuse)।

अर्थात्, किसी क्रिया को जितना ही अधिक व्यवहार में रखा जाय तथा उसे जितनी अधिक बार दुहराया जाय उसे करने में उतनी ही जल्दी ठीक-ठीक तथा अधिक स्थायी योग्यता प्राप्त होगी।

ठीक इसके विपरीत यदि उस क्रिया को दुहराना बन्द करा दिया जाय (Disuse of behaviour) तो व्यक्ति उसे करना उतना ही जल्दी भूल जाता है।

थार्नडाइक ने अपने इस अभ्यास नियम पर इतना अधिक जोर दिया कि इन्होंने यहाँ तक कह दिया कि संसार की सभी चीजों के सीखने की व्याख्या इसी अभ्यास नियम (Law of exercise) द्वारा की जा सकती है। उनका कहना था कि किसी क्रिया के सीखने के लिए उस क्रिया में प्राणी को सूझ का होना कोई आवश्यक नहीं है। सभी प्रकार का सीखना इस अभ्यास पर आधारित है। उन्होंने लिखा है—

For learning there need be no reasoning no process of inference or comparison there need be no thinking about things no two and two together there need be no ideas

अर्थात् सीखने की क्रिया मे न किसी तर्क-शक्ति की आवश्यकता पडती है और न व्यवहारो मे किसी समानता-असमानता पर विचार करने की आवश्यकता पडती है और न कोई निष्कर्ष निकालने की आवश्यकता है और न किसी चिन्तन की ही। सीखने की क्रिया मे सोचने-समझने या विचार करने की कोई आवश्यकता नही, केवल अभ्यास ही के कारण वह क्रिया सीख ली जाती है ।

परन्तु, बाद मे स्वय अपने प्रयोगो के आधार पर ही थार्नडाइक महोदय ने १९३० ई० मे कहा कि अभ्यास को सीखने की क्रिया मे इतना अधिक महत्त्व देना मेरी भूल थी—'I was wrong' ।

अभ्यास-नियम की आलोचना (Criticism Law of Exercise)—

१ सीखने की क्रिया मे अभ्यास का प्रमुख हाथ अवश्य है परन्तु सीखने के लिए अभ्यास ही सब कुछ है, यह कहना गलत है । साथ-साथ प्रत्येक क्रिया अभ्यास के द्वारा ही सीखी जाय, यह सर्वेव आवश्यक नही है । जब किसी लडके की अगुली चाकू से कट जाती है अथवा वह गर्म लोहे से जल जाती है, तब वह एक ही बार मे यह सीख लेता है कि चाकू अथवा गर्म लोहे से बच कर रहना चाहिए । यह सीखने के लिए उसे बार-बार अपनी अगुली काट कर या जला कर सीखने की आवश्यकता नही पडती ।

२ साथ-साथ बिना सूझ (Insight) के केवल अभ्यास द्वारा किसी क्रिया को सीखना कठिन है । यह बात कठिन विषयो को सीखने मे साफ मालूम पडती है । इजीनियरिंग, डॉक्टरी अथवा दर्शन की बातो को सीखने के लिए अभ्यास के अतिरिक्त तर्कशीलता, चिन्तन-मनन आदि की कितनी आवश्यकता पडती है, यह हम सभी जानते है ।

विपरीत अभियोजना (Negative adaptation) की परिस्थितियो मे भी यह लागू नही है । मान लीजिए कि आपके ठीक बगल मे आटा पीसने की मशीन चलती है । शुरू शुरू मे आप मशीन द्वारा उत्पन्न कर्कश ध्वनि द्वारा अत्यधिक बाधा (Disturbance) का अनुभव करते है । धीरे-धीरे दूसरे, तीसरे तथा चौथे दिन होते-होते किसी भी प्रकार की बाधा का अनुभव नही करते है । आटा-कल चलता रहता है, उनसे कर्कश ध्वनि निकलती रहती है, फिर भी आप अपनी पढाई मे लगे रहते है तथा आप को कोई बाधा नही मालूम पडती है । यह सीखना वातावरण के प्रति किये आपके विपरीत अभियोजन का परिणाम है ।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिको ने बतलाया है कि इस अभ्यास-नियम की उपयोगिता सीखने की प्रत्येक प्रकार की क्रियाओ मे प्रमाणित नही होती ।

२. प्रभाव-नियम

(Law of Effect)

सीखने की क्रिया की बहुत-सी बातो की व्याख्या अभ्यास-नियम द्वारा नही हो पाती है । अस्तु थार्नडाइक (Thorndike) ने और भी नियम, पूरक के रूप मे दिये ।

थानडाइक ने अपने प्रयोगो मे यह स्पष्ट देखा कि जिस क्रिया को करने से प्राणी में सन्तुष्टि (Satisfaction) की प्राप्ति होती है उस क्रिया को वह बार बार दुहराना चाहता है और बार बार दुहराने के फलस्वरूप प्राणी उस क्रिया को करना सीख लेता है । प्राणी चाहता है कि उन क्रियाओं को वह बार-बार कर । ऐसी क्रियाएं प्राणी में घर कर लेती (Stamped in) है । ठीक इसके विपरीत असन्तुष्टि (Annoyance) प्रदान करने वाली क्रियाएं प्राणी नही दुहराना चाहता और फलस्वरूप वह उन क्रियाओ को नही सीख पाता । प्राणी मे एसी असन्तुष्टि प्रदान करने वाली क्रियाओं (Annoying behaviour) का लोप (Stamping out) हो जाता है ।

भूखी बिल्ली पिजड़े का दरवाजा खोलना इसलिए सीख गयी कि दरवाजा खोलने से मछली मिल जाती थी जिसे खाकर वह सन्तुष्ट हो जाती थी । अत दर वाजा खोलने की क्रिया बिल्ली को सन्तुष्टि प्रदान करती है । यही कारण है कि बिल्ली लिवर (Lever) दबाकर दरवाजा खोलने की क्रिया सीख जाती है । ठीक इसके विपरीत उछलने कूदने नोचने-खरोटने की क्रिया धीरे धीरे घटती जाती है और बिल्ली उन क्रियाओं को जिनको करने से अपनी समस्या (जैसे दरवाजा खोल कर मछली खायी जाय) के समाधान मे कोई सन्तुष्टि नही मिलती नही सीखती है ।

यह हमारे दैनिक अनुभव की बात है कि जिन व्यवहारो से हमें सफलता मिलती है उन्हें करना हम इसलिए सीख जाते है कि सफलता से हमे मानसिक अथवा शारीरिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है । साधारणत विद्यार्थियों को जिस कार्य को करने के लिए पुरस्कार मिलते हैं अथवा प्रतिष्ठा मिलती है वे काय विद्यार्थी सीख लेते हैं परन्तु जिस काम को करने से उन्हें (Punishment) मिलता है उस काम को करना वे छोड देते है । पुरस्कार से सन्तुष्टि मिलती तथा दण्ड से असन्तुष्टि ।

प्रभाव नियम की आलोचना (Criticism of the Law of Effect)—ध्यान से देखा जाय तो यह स्पष्ट मालूम होगा कि यह नियम अभ्यास नियम के पूरक जैसा है । प्राणी उन्हीं क्रियाओं को बार बार दुहराता (Exercise) है जिनको करने से सन्तुष्टि प्राप्त होती है । अस्तु अभ्यास और प्रभाव नियम मे आपस म गहरा सम्बन्ध है ।

व्यवहारवादी (Behaviourists) मनोवैज्ञानिको ने इसम कई एक दोषारोपण किये है परन्तु उनका दोषारोपण पूर्णरूपेण ठीक नही ।

कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि किसी वस्तु अथवा घटना का प्रभाव (Effect) तो आग आनेवाले समय मे देखा जाता है न कि पीछे बीते हुए समय म । प्रभाव (Effect) सदा आगे की ओर (Forward) पडता है । यहाँ प्रभाव आगे आने वाले समय म (Forward effect) न होकर पीछे की ओर (Backward effect) पडता है । मछली खा जाने से उत्पन्न सन्तुष्टि का प्रभाव पीछे की क्रिया (दरवाजा खोलना) पर पड़ता है । पृष्ठोन्मुख प्रभाव (Backward effect) की व्याख्या जिसे थानडाइक न प्रस्तुत की है, सभी मनोवैज्ञानिको को मान्य नहीं । मना

वैज्ञानिको ने अपने कुछ प्रयोगो मे प्राणी को असन्तुष्टि प्रदान करने वाली क्रियाओं को भी सीख लेते पाया है। साधारणत 'प्रभाव नियम' के अनुसार व्यक्ति मे सीखने पर 'पुरस्कार' का प्रभाव इसलिए पडता है कि पुरस्कार मिलने पर व्यक्ति को एक प्रकार की सन्तुष्टि की प्राप्ति होती है। परन्तु म्युयेनजिगर (Muenzinger) नामक मनोवैज्ञानिक ने अपने प्रयोगो मे पाया कि प्राणी ने उन क्रियाओ को भी शीघ्रता से और ठीक-ठीक सीख लिया जिनके लिए उन्हे दण्ड दिया गया।

३. तत्परता का नियम
(Law of Readiness)

इस नियम मे दो प्रमुख बातें जानने की है--१ प्रणी की शारीरिक एव मानसिक अवस्थाएं जब किसी उत्तेजना को ग्रहण करने, स्नायुमण्डल मे उस उत्तेजना मे उत्पन्न-प्रवाह (Nerve impulse) का परिवहन (Conduction) करने एव उसके प्रति प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करने के लिए तत्पर (Ready) रहती है तो ऐसी अवस्था मे यदि उस प्राणी को उपर्युक्त कार्य करने का अवसर दिया जाय तो वह कार्य प्राणी मे सन्तुष्टि (Satisfaction) उत्पन्न करेगा।

२ दूसरी बात यह है कि जब प्राणी मे उपर्युक्त शारीरिक अथवा मानसिक तत्परता (Readiness) नही रहती है, तब यदि उसे किसी कार्य को करना पडता है तो उस कार्य को करने से उसमे असन्तुष्टि (Annoyance) उत्पन्न होती है।

पाठक यहाँ ध्यान रखे कि इस तत्परता के पीछे कोई न कोई प्रेरक (Motive) अवश्य कार्य करता है। इस विषय की विशद् व्याख्या यहाँ अभीष्ट नही है।

२ सूझ का सिद्धान्त
(Insight Theory)

कोहलर (Kohler) तथा कोफ्का (Koffka) ने सीखने (Learning) की क्रियाओ की व्याख्या 'सूझ के सिद्धान्त' द्वारा की है। उनका कहना है कि प्राणी अपनी सूझ के कारण ही सीख पाता है। यदि प्राणी मे सूझ न हो तो वह किसी भी क्रिया को नही सीख सकेगा। समस्यापूर्ण परिस्थिति मे प्राणी मे सूझ का उत्पन्न हो जाना समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है। सूझ खास कर अधिक जटिल प्रक्रियाओ को सीखने मे और भी आवश्यक है। डाक्टरी की कला, इजीनियरिंग, साहित्य-रचना, चित्रकारी, सगीत इत्यादि सभी कलाओ को सीखने तथा उनमे निपुण होने के लिए सूझ की आवश्यकता है। बिना सूझ (Insight) के ही यदि प्रयत्न और भूल (Trial and Error) द्वारा सीखने का प्रयास किया जाय तो सीखना असम्भव है।

सूझ निम्न स्तर (Lower on the ladder of Evolution) के प्राणियो में बहुत कम पायी जाती है। इसी से वे अधिक जटिल क्रियाओ को करना नही सीख पाते। निम्न-स्तर प्राणियो का शारीरिक बनावट भी उन्हें अधिक बातें सीखने मे बाधा डालती है। परन्तु सूझ की कमी, जो स्नायुमण्डल के विकास और जटिलता पर

निर्भर करती है, प्राणी को (जहाँ तक नयी-नयी क्रियाओं के सीखने का प्रश्न है) एक सीमा में बाँध देती है। यही कारण है कि बन्दर और कुत्ते, बिल्ली और खरहों से अधिक जटिल काम करने में समर्थ है। मनुष्य अपने में सूझ की अधिकता के कारण ही बन्दरों और कुत्तों की क्रियाओं से कहीं अधिक जटिल क्रियाओं को सीख पाता है। विज्ञान की उत्पत्ति सूझ के महत्व को प्रमाणित करने के लिए सबसे अधिक सुन्दर उदाहरण है।

जैसे-जैसे हम निम्न स्तर के प्राणियों से उच्च स्तर के जीव-जन्तुओं की ओर बढ़ते जाते हैं सूझ की मात्रा में भी क्रमशः वैसे वैसे विकास पाते जाते हैं। डारविन (Darwin) महोदय के विकास के सिद्धान्त (Theory of Evolution) पर ध्यान देने से इस विषय को समझने में अधिक सहायता मिल सकती है।

कोहलर (Kohler) ने अपने इस सूझ के सिद्धान्त (Theory of Insight) का प्रतिपादन अपने कुछ प्रयोगों द्वारा प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर किया। उनके प्रयोग अधिकतर वनमानुषों (Apes) पर हुए। बाद में चलकर मनुष्यों पर तो और भी अनेक प्रयोग किये गये। कोहलर (Kohler) द्वारा वनमानुषों पर किये गये प्रयोगों को हम निम्नलिखित दो प्रमुख वर्गों में बाँट सकते हैं—

१ छड़ी की समस्याओं पर प्रयोग (Experiment on the stick problems) तथा २ बक्सों की समस्याओं पर प्रयोग (Experiment on Box problems)।

१ छड़ी की समस्याओं पर प्रयोग (Experiment on Stick problems) —कोहलर ने एक भूखे वनमानुष को एक बहुत बड़े पिंजड़े में बन्द कर दिया। चित्र न० २९ पृष्ठ २३९ देखें।

पिंजड़े के भीतर दो छड़ियाँ रखी हुई थीं। उन दोनों की बनावट ऐसी थी कि एक छड़ी दूसरी से जोड़ दी जा सकती थी। पिंजड़े के बाहर वनमानुष के सामने केले रख दिये गये थे। वनमानुष को भूखा रखा गया था। उसके सामने यह समस्या उत्पन्न हो गयी कि पिंजड़े के सामने पड़े उन केलों को किस प्रकार पाया जाय। वनमानुष ने पिंजड़े में लगी छड़ों के बीच से पहले अपना हाथ बढ़ाया, फिर पैर बढ़ाकर देखा। केलों की दूरी पिंजड़े से कुछ अधिक थी। अतः वनमानुष के हाथ अथवा पैर केले तक नहीं पहुँच सके जिसके फलस्वरूप वह केला नहीं पा सका। भूखा होने के कारण उसने बार-बार कोशिश की। सहसा पिंजड़े के अन्दर रखी गयी छड़ियों पर उसका ध्यान गया।

उसने बारी-बारी से दोनों छड़ियों से केलों को खींचकर पिंजड़े के भीतर ले आने का प्रयत्न किया। इन छड़ियों की अलग अलग लम्बाई उसके हाथ अथवा पैर की लम्बाई से अधिक थीं। फिर भी वह केलों को प्राप्त करने में असमर्थ ही रहा। लगातार प्रयासों के पश्चात् भी उसे निराशा प्राप्त हुई। कोहलर (Kohler) ने देखा कि धीरे धीरे वनमानुष केलों की ओर से जैसे निराश हो गया। वह उन्हीं छड़ियों को लेकर पिंजड़े के अन्दर इधर-उधर कुछ खेल जैसे व्यवहार प्रदर्शित करने लगा।

सहसा खेल-खेल मे दोनो छड़ियां जुट गयी। छड़ियाँ आपस मे जुट जाने के कारण वे दानो मिलकर लम्बी छडी हो गयी। वनमानुष मे अचानक अधिक उत्साह दिखाई पडा। उसने फिर इस जुडी हुई छडी द्वारा केले को अपनी ओर खीचने का प्रयास किया। अत. इस बार वह इस छडी द्वारा केले को प्राप्त करने मे सफलीभूत हुआ तथा उसे खाकर सन्तुष्ट हुआ। अब वह यह सीख गया था कि एक छडी दूसरी छडी से जुट

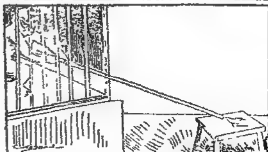
चित्र न० २९ की व्याख्या—



(क) वनमानुष पिंजड़े के भीतर छड़ियो से खेल रहा है।



(ख) खेलते-खेलते एकाएक एक छडी दूसरी छडी के छेद मे घुस जाती है।



(ग) वनमानुष इन जुडी हुई दो छड़ियो के सहारे पिंजडे से बाहर टेबुल पर रखे केले को अपने पास लाने की चेष्टा कर रहा है।)

(चित्र न०—कोहलर द्वारा, वनमानुष पर 'छडी वाली समस्या पर' किये गये प्रयोग का चित्र)

जाती है और केले को पिंजडे मे लाने के लिये उनका जुटना अनिवार्य है। अगली बार

से वह शीघ्र ही दोनों छड़ियों को जोड़कर केले को खींच लेता तथा उन्हें खाकर वह सन्तुष्ट हो जाता था (चित्र नं० २९ पृष्ठ २३९ देख)।

बक्स समस्याओं पर प्रयोग (Experiment on Box problems)—इसी प्रकार एक दूसरे प्रयोग में कोहलर ने एक कमरे में कुछ केलों को छत में कील के सहारे लटका दिया। कमरे में छोटे बड़े तीन बक्स रख दिये गये। फिर, कमरे में एक भूखे वनमानुष को रखकर कमरा बन्द कर दिया गया। कमरे से लगे ही 'कोहलर' ऐसी जगह बैठे थे जहाँ से वे वनमानुष के सारे व्यवहार देख सकते थे परन्तु वन मानुष को जरा भी पता नहीं चल सकता था कि उसे कोई देख भी रहा है।

कमरे में आते ही वनमानुष ने कमरे में इधर-उधर नजर डाल कर देखना शुरू किया। भूखा होने के कारण केले ने उसका ध्यान तुरत आकर्षित कर लिया। वनमानुष ने पहले तो उछल उछल कर केले को पा लेने की कोशिश की, परन्तु केले की ऊँचाई इतनी रखी गयी थी कि वनमानुष उसे उछल कर प्राप्त नहीं कर सकता था। 'कोहलर' ने देखा कि कुछ समय के बाद वनमानुष ने एक 'बक्स (Box) लटकते हुये केले के नीचे लाकर रख दिया तथा उस पर चढ़ कर उसने केले को पाने का प्रयास किया। परन्तु उसको अभी और अधिक ऊँचाई की आवश्यकता थी। थोड़ी देर में वनमानुष ने दूसरा बक्स लाकर पहले बक्स के ऊपर रख दिया। फिर, दोनों बक्सों के ऊपर चढ़कर उसने केलों तक पहुँचने की कोशिश की। फिर भी वह निराश रहा। सहसा उसने कमरे में पड़ा तीसरा बक्स भी लाकर एक-दूसरे पर रखे गये दोनों बक्सों के ऊपर डाल दिया। अब तीनों बक्सों के एक दूसरे पर रख दिये जाने से उनकी सम्मिलित ऊँचाई इतनी हो गयी थी कि उन पर चढ़ जाने पर वनमानुष ने शीघ्र केले को पा लिया तथा इन्हें खाकर अपनी भूख मिटा ली।

अगले दिन जब इस प्रयोग को दुहराया गया तो वनमानुष ने शीघ्र ही बक्सों को एक-दूसरे पर डाल दिया और केले को खाकर सन्तुष्टि प्राप्त की।

कोहलर ने पाया कि कुछ समय तक अपने उद्देश्य की प्राप्ति में विफल होने के बाद वनमानुष चुपचाप बैठ जाता था परन्तु एकाएक उसमें नयी सूझ (अपनी समस्या को सुलझाने का नया तरीका) आ जाती थी। कोहलर ने इस अचानक उत्साहित हो जाने की क्रिया को सूझ के आगमन का परिचायक व्यवहार माना है और इस अनुभव को आहा अनुभव (Aha experience) की संज्ञा दी है।

यह आहा अनुभव (Aha experience) मनुष्यों में अक्सर देखने को मिलता है। मान लीजिए कि आप अलजबरा (Algebra) का कोई प्रश्न बना रहे हैं। सवाल आपको कठिन मालूम पड़ता है। थोड़ी देर के लिये आप समझ नहीं पाते हैं कि इस सवाल को बनाने के लिए कौन-सा सूत्र (Formula) कौन-सी विधि सबसे अधिक उपयुक्त होगी। आप थोड़ी देर के लिये मौन हो जाते हैं—सोचने लगते हैं। अचानक आपको उचित विधि अथवा उत्तर मिल जाता है। आपका हृदय प्रसन्नता से उछल पड़ता है। आप बोल पड़ते हैं—बन गया,

बन गया।" प्रसन्नता का अनुभव तब होता है, जब उद्देश्य-प्राप्ति की दिशा मे आप को सफलता मिल जाती है। इसी अनुभव को कोहलर ने आहा अनुभव (Aha experience) कहा है।" "आहा अनुभव व्यक्ति मे सूझ के आगमन का द्योतक है।"

उपर्युक्त दोनो प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि 'समस्याओ के विभिन्न पहलुओ के बीच के सम्बन्ध के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न आकस्मिक समस्या समाधान को ही सूझ की संज्ञा दी गयी है' (Sudden solution of a problem, apparently by seeing relation between one aspect of it and its other aspects, has been designated as 'Insight,')।

पहले प्रयोग मे पिंजडे मे केले की दूरी तथा दोनो छडियो के आपस मे जुड जाने के कारण जो उनकी लम्बाई हो गयी, उनके बीच के सम्बन्ध के प्रत्यक्षीकरण को ही 'सूझ' कहेंगे। इसी सम्बन्ध के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप उस समस्या का आकस्मिक समाधान हो पाया।

इस प्रकार दूसरे प्रयोग मे बक्सो को एक-दूसरे पर रखने से जो उनकी ऊँचाई हो गयी और उससे केले की दूरी के बीच का सम्बन्ध के प्रत्यक्षीकरण के कारण ही उस समस्या का 'आकस्मिक समाधान' हो पाया। अत इसे ही सूझ की सज्ञा दी गयी है।

सूझ द्वारा सीखने की दो आवश्यक बातें

'सूझ' द्वारा सीखने के लिए भी थॉर्नडाइक के प्रयोगो के समान यहाँ भी निम्नलिखित दो आवश्यक बातो का होना अनिवार्य है—

१ प्राणी के सामने समस्या का उपस्थित होना—यह सबसे पहली और आवश्यक बात है। समस्या एक ऐसी परिस्थिति को कहते है जिसके साथ अभियोजना करने मे पुराने सभी सीखे हुए अनुभव बेकार मालूम पडने लगते हैं (Problematic situation is a situation in which all out past modes of behaviour fail to adjust with it)। वनमानुष के सामने केले को पिंजडे के अन्दर खीच कर लाना इसलिए एक समस्या हो गयी कि उसके भूतकाल के सीखे अनुभव एव व्यवहार केले को खीचने मे उसकी सहायता कर सकने मे असमर्थ प्रमाणित होने लगे।

प्राणी के अन्दर कुछ प्रेरक शक्ति का क्रियाशील होना—यदि प्राणी के अन्दर कोई प्रेरणा क्रियाशील नही होगी तो वह उपस्थित समस्या पर ध्यान ही नही देगा। फलत, समस्या के समाधान का प्रश्न ही नही उठेगा। यदि वनमानुष भूखा नही रहता तो 'केले' को कैसे पाया जाय' इसकी समस्या उसके सामने नही उपस्थित होती। यदि उसे अपने सामने की समस्या को सुलझाने की आवश्यकता नही पडती तो 'सूझ' के व्यवहार प्रकट नही हो पाते।

३ सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन का सिद्धान्त
(Conditioned-Reflex Theory)

पावलव (Pavlov) नामक रूसी मनोवैज्ञानिक ने अपने प्रयोग के आधार पर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

पावलव का प्रयोग—पावलव ने एक कुत्ते पर प्रयोग किया (चित्र नं० ३० देखें)। कुत्ते को एक ऐसे कमरे में रखा गया जिसमें बाहर से किसी प्रकार की आवाज नहीं पहुँच सकती थी। कुत्ता भूखा था। प्रत्येक बार घण्टी बजा दी जाती थी और घण्टी बजने के लगभग तीन सेकेण्ड बाद कुत्ते के सामने भोजन दिया जाता था। घण्टी बजने के कुछ देर बाद भोजन देने की क्रिया कई दिनों तक दुहरायी गयी। धीरे धीरे कुत्ता सीख गया कि घण्टी बजना भोजन आने का द्योतक है। परिणाम यह हुआ कि कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगी। धीरे धीरे ऐसा हुआ कि घण्टी बजते ही कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगती थी।

पावलव ने बतलाया है कि भोजन देखकर भूखे कुत्ते के मुँह से लार का टपकना एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। भोजन को देखना और लार का निकलना दोनों का आपस में स्वाभाविक (Natural) सम्बन्ध है। परन्तु घण्टी के बजने और लार टपकने में कुछ स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। घण्टी बार-बार भोजन आने के पहले बजायी जाती थी। अतः भोजन और घण्टी के बजने में एक नया सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस नये सम्बन्ध के स्थापित हो जाने का यह परिणाम हुआ कि कुत्ते के मुँह से लार जो पहले भोजन देखकर टपकती थी अब केवल घण्टी की आवाज पर टपकने लगी।

पावलव (Pavlov) ने देखा कि कुत्ते ने अब एक नया सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। पहला सम्बन्ध भोजन और लार का था किन्तु अब नया सम्बन्ध



(चित्र नं० ३ —पावलव महोदय द्वारा कुत्ते पर किये गये सम्बन्ध प्रत्यावर्तन वाले प्रयोग का चित्र)

घण्टी बजने और लार टपकने में हो गया। पहले सम्बन्ध की स्वाभाविक प्रक्रिया (Natural response) को अनकण्डिशण्ड रेसपोंस (Unconditioned response) कहते। यही स्वाभाविक प्रतिक्रिया जब किसी अस्वाभाविक उत्तेजक (Unnatural stimulus) (जैसे यहाँ घण्टी का बजाना एक अस्वाभाविक उत्तेजना है) के प्रति होने लग जाती है तो हम नये सम्बन्ध की

स्थापना को सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन (Conditioning) कहते है। इसी अस्वाभाविक उत्तेजक को, नये सम्बन्ध की स्थापना के बाद कण्डिशण्ड स्टिमुलस (Conditioned stimulus) कहा जाता है तथा वह स्वाभाविक प्रतिक्रिया, जो अब इस कण्डिशण्ड स्टिमुलस (Conditioned stimulus) के प्रति होने लगी है, कण्डिशण्ड रेसपौन्स (Conditioned response) कहलाती है।

लार के गिरने की प्रतिक्रिया के लिए भोजन एक स्वाभाविक उत्तेजक है तथा लार का गिरना भोजन के प्रति एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। घन्टी का बजना लार गिरने की प्रतिक्रिया के लिए एक स्वाभाविक उत्तेजक है। परन्तु यही लार गिरने की क्रिया जब स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में घण्टी की ध्वनि के प्रति होने लगती है तो इसे सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन कहते है। पावलव ने इसे कण्डिशनिंग (Conditioning) के नाम से पुकारा है तथा कहा है कि सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन (Conditioning) द्वारा ही प्राणी के सीखने की प्रत्येक क्रिया सम्पन्न होती है।

सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के पूर्व की अवस्था—

(स्वाभाविक उत्तेजना) → भोजन (Unconditioned stimulus) ——— ← लार का टपकना (Conditioned response) (स्वाभाविक प्रतिक्रिया)

सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के बाद की उत्तेजना—

(अस्वाभाविक उत्तेजना)
↓
घण्टी का बजना (Conditioned stimulus) ——— ← लार का टपकना
भोजन ——— स्वाभाविक प्रतिक्रिया (Conditioned response)
स्वाभाभाविक उत्तेजना Conditioned stimulus)

सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के लिए कुछ आवश्यक बातें—(i) न्यूट्रल या तटस्थ (Neutral या अस्वाभाविक) उत्तेजना को ओरिजनल, मौलिक या स्वाभाविक उत्तेजना (Original or natural stimulus) के पहले प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जैसे घण्टी की ध्वनि सुनकर प्राणी मे लार टपकने की अभिसम्बित प्रतिक्रिया (Conditioned response) नहीं उत्पन्न हो सकेगी, (ii) प्राणी (प्रयोज्य) मे किसी न किसी सम्बन्धित प्रेरक (Motive) को सक्रिय (Active) रहना चाहिए। कुत्ता यदि भूखा न रहता तो उसे घण्टी की ध्वनि सुनकर लार न टपकती। यहाँ भूख एक प्रेरक का कार्य करती है, (iii) प्राणी प्रयोज्य स्वयं सोया अथवा सुस्त न हो, (iv) जहाँ प्राणी प्रयोज्य हो, वहाँ घण्टी के अतिरिक्त और कुछ ध्वनि

न होने पाये तथा (४) प्राणी प्रयोग का स्नायुमण्डल खास कर मस्तिष्क दुरुस्त रहना चाहिए। कुत्ते के बहुत मस्तिष्क के कुछ आवश्यक भागों के काट दिये जाने पर कुत्ते म सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन की प्रतिक्रियाए नही उत्पन्न होती देखी गयी।

मनुष्यों पर किये गये कुछ प्रयोग (Some experiments on human beings)—प्रयोगो की सख्या तो बहुत अधिक है किन्तु यहाँ एक का ही वर्णन यथेष्ट होगा।

वाटसन का प्रयोग (Watson s Experiment)—एक बहुत छोटा बच्चा था। उसके सामने एक सुन्दर उजला चूहा (खिलौना) रखा गया। खिलौना के पीछे एक परदा लगा था। चूहा (खिलौना) देखते ही बालक की स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई, खिलौने की ओर अपने हाथ को बढ़ाना प्रसन्न होना आदि। अचानक चूहे के पीछे टँगे हुए परदे के पीछे से एक बड़े जोर की भयकर आवाज की गयी। भयकर आवाज को सुनते ही बालक भयभीत हो गया और उसने खिलौने की ओर बढ़ा हुआ अपना हाथ झट से पीछे खीच लिया। बच्चे को बार बार ऐसी परिस्थिति में डाला गया। जब ही बच्चा खिलौना की ओर आकर्षित होकर उसे छूने के लिए आगे बढ़ता था कि अचानक आवाज कर दी जाती थी। बच्चा प्रत्येक बार उस आवाज से अत्यन्त भयभीत हो जाता था।

धीरे धीरे बच्चा बिना आवाज हुए ही सिर्फ उस खिलौने को देखकर डरने लगा। जैसे ही वह खिलौना उसके सामने लाया जाता था वैसे ही वह भयभीत हो जाया करता था। जो भय उसमें आवाज की प्रतिक्रिया के स्वरूप पैदा हुआ था, वह भय अब चूहा देखने मात्र से उत्पन्न हो जाता था। पहले वह चूहा से खेलना पसन्द करता था, परन्तु अब धीरे धीरे न वह केवल चूहा से भयभीत होने लगा बल्कि प्राय उस प्रकार के रोएँदार जानवर से भी डरने लगा जैसे—खरगोश, उजली बिल्ली छोटे कुत्ते इत्यादि। यहाँ तक कि जब उसकी माँ ने रोएँदार कोट (Fur coat) पहनकर उसे अपनी गोद म उठा लिया तो रोएँदार कोट के सम्पर्क मे आते ही बच्चा भयभीत हो गया तथा रोने लगा। सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन की स्थापना के पूर्व बच्चा रोएँदार कोट से कभी भयभीत होता नही देखा गया था।

इस प्रकार के सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन के उदाहरण हम अपने दैनिक जीवन मे अनेक मिलते हैं। प्राणी के बहुत-से अनुभव ऐसे होते हैं जो सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन के कारण उसमे विशेष प्रकार का भय आकर्षण अथवा घृणा पैदा कर देते है।

यह सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन का ही परिणाम है कि हम अपने दोस्त के दोस्त को भी अपना दोस्त मानने लगते हैं। गणित के शिक्षक यदि बहुत बेरहम और खूँखार प्रकृति के हों तो बच्चा न केवल गणित के शिक्षक से ही डरता है बल्कि धीरे धीरे वह गणित से भी भागने लगता है। छोटे छोटे सवाल भी उसे भयभीत करने लगते हैं। वह गणित से घृणा करने लगता है।

मनोवृत्ति (Attitude) विश्वास धर्म माया इत्यादि के सीखने म तो सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन का और भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन का

ही परिणाम है कि अमेरिकन नीग्रो को, गोरे काले को अथवा धनी गरीबो को घृणा तथा उपेक्षा की भावना से देखते है। नादान बच्चा पहले साँप से बिल्कुल नही डरता है। परन्तु धीरे-धीरे वह साँप से इतना भयभीत होना सीख जाता है कि साँप का सीधा अर्थ मौत ही समझता है।

साधारणत जब माँ का स्तन शिशु के मुख मे पडता है तो शिशु मे चूसने की प्रतिक्रिया देखी जाती है। परन्तु जब हम किसी शिशु मे सिर्फ माँ की बोली सुनते ही चूसने जैसा मुख चलाने की प्रतिक्रिया देखें तो हमे तुरत समझ लेना चाहिए कि यह सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का ही परिणाम है।

सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन-सिद्धान्त की समालोचना (Criticism of the Conditioned Response Theory)—सोवियत रूस के मनोवैज्ञानिक पावलव (Pavlov) ने कहा था कि समाज मे मनुष्यो द्वारा होने वाली सारी प्रतिक्रियाओ की व्याख्या सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन (Conditioning) के आकार पर की जा सकती है। बहुत अशो तक यह बात ठीक भी है। खासकर 'सामाजिक मनोविज्ञान' मे इस सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी विशेष मनोवृत्ति (Attitude) अथवा विश्वास आदि मे आस्था उत्पन्न होना एव दलो के बनने (Formation of groups) अथवा उनके बिखरने (Disintegration) इत्यादि की समस्याओ की व्याख्या करने के लिए यह सिद्धान्त काफी उपयुक्त मालूम पडता है। मनुष्यो की अच्छी-बुरी आदतो के निर्माण, उनके सवेग के सन्तुलन (Emotional balance), भय, क्रोध अथवा प्रेम (Affection) की प्रतिक्रियाओ का निर्माण या यह कहा जाय कि उनके व्यक्तित्व के निर्माण मे सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पशु-विज्ञान के क्षेत्र मे सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन-पद्धति का अपना विशेष स्थान है। पशु मनुष्यो की तरह अन्तर्निरीक्षण (Introspection) करके अपने अनुभवो को मनुष्यो के समझने के लायक भाषा मे बोल नही सकते। परन्तु, इस पद्धति (Technique) ने उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओ को, जैसे—दो उत्तेजको के आपस के अन्तर एव समानता को समझने की क्रिया आदि की एक निष्पक्ष ढग (Objective) से व्याख्या करने मे सहायता प्रदान की है। सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन अपने सिद्धान्त (Theory) से भी अधिक अपनी प्रयोगात्मक पद्धति के लिए मनोविज्ञान के क्षेत्र मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

परन्तु, इतना होते हुए भी यह कहना कि यह सिद्धान्त सर्वथा दोषरहित है अथवा इसमे किसी प्रकार की त्रुटि नही, गलत होगा। सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन की क्रिया पूर्णत यान्त्रिक (Mechanical) मानी गयी है।

साथ-साथ यह सिद्धान्त अभ्यास एव पुनरावृत्ति को सीखने की क्रिया मे अत्यधिक महत्त्व प्रदान करता है। घण्टी की ध्वनि सुनते ही कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगे, इस प्रतिक्रिया को सिखलाने के लिए घण्टी की ध्वनि के बाद भोजन प्रस्तुत करने की क्रिया बार-बार दुहराने की आवश्यकता पडती थी। परन्तु जीवन मे प्रत्येक

क्रिया को सीखने के लिए इस प्रकार की पुनरावृत्ति अथवा अभ्यास की आवश्यकता नहीं पड़ती। बहुधा ऐसे अवसर भी आते हैं जब कि मनुष्य किसी क्रिया-विशेष को एक ही बार करने पर सीख जाता है जैसे—किसी व्यक्ति को यदि एक बार बिजली का करेंट छू जाता है तो वह एक बार के शॉक (Shock) में ही सीख लेता है कि बिजली का तार जब स्विच 'ऑन' हो तो नहीं छूना चाहिए। ठीक इसी प्रकार आग छूने से उँगली जल जाती है इस बात को सीखने के लिए किसी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती है। एक बार का यथेष्ट अनुभव (Adequate experience) काफी है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि यह पद्धति मनुष्य की केवल अचेतन क्रियाओं पर ही प्रभाव डालने में समर्थ है, चेतन क्रियाओं पर नहीं।

प्रयोगों में यह पाया गया है कि सम्बन्ध प्रत्यावर्तन की पद्धति से सीखी हुई क्रियाएं अधिक चिरस्थायी (Stable) नहीं होती हैं। घण्टी की आवाज सुनकर कुत्ते के मुँह से लार गिरने की प्रतिक्रिया तभी तक देखी गयी जब तक घण्टी की आवाज के बाद भोजन भी दिया जाता रहा। कुछ दिनों तक घण्टी की आवाज के बाद भोजन नहीं दिया जाने लगा तो पाया गया कि घण्टी की आवाज सुनकर लार का गिरना भी बन्द हो गया।

इतना तो स्पष्ट है कि सीखने की क्रिया के लिए सिर्फ यही आवश्यक नहीं कि अस्वाभाविक उत्तेजनाओं के साथ साथ स्वाभाविक उत्तेजनाओं को बार बार प्राणी के समक्ष उपस्थित किया जाय अपितु सीखने की क्रिया में सीखने वाले की रुचि तथा भाव अर्थात् उसकी मनोवृत्ति इत्यादि का भी स्थान होता है। यह सिद्धान्त प्राणी की रुचि, अर्थात् उसकी मनोवृत्ति इत्यादि पर समुचित प्रकाश नहीं डालता। इसके अतिरिक्त प्राणी बहुत से कार्य अनुकरण अथवा प्रयत्न एवं भूल के द्वारा भी सीखता है।

सीखने की विधियाँ
(Method of Verbal Learning)

यों तो सीखने की कई एक विधियाँ हैं परन्तु उनमें निम्नलिखित प्रमुख विधियों की चर्चा यहाँ की जाती है—

१ आंशिक अथवा पूर्ण रीति से सीखने की विधि (Part or Whole Method of Learning)—एक ही पाठ्य विषय को कई विधि के द्वारा सीखा जा सकता है। आंशिक रीति से सीखने की विधि वह विधि है जिसमें पाठ्य विषय को कई एक छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटकर अलग-अलग याद किया जाता है। ठीक इनके विपरीत पूर्ण रीति से सीखने की विधि में पाठ्य विषय को टुकड़े टुकड़े में विभक्त न कर सम्पूर्ण रूप में ही आदि से अन्त तक पढ़कर सीखते हैं।

पूर्ण रीति से याद करने में हम एक साथ ही पूरे पाठ्य विषय का ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं। हम पाठ्य विषय में कही गयी भिन्न भिन्न बातों का एक-दूसरे से क्या सम्बन्ध है इस बात का भी ज्ञान हो पाता है। परन्तु, यदि पाठ्य विषय बहुत अधिक लम्बा हो तो इस विधि का अनुसरण करने में कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। परन्तु,

यदि पाठ्य-विषय मे निहित विचार (Ideas) एक-दूसरे से इतने अधिक सम्बन्धित हैं कि पाठ्य-विषय का कुछ भागो में बाँटना उचित नही हो तो ऐसी दशा मे पूर्ण रीति का उपयोग ही श्रेयस्कर होगा।

बालको मे पाठ्य-विषय मे निहित बहुत से विचारो के सम्यक् समीकरण (Assimillation) की शक्ति वयस्कों की तुलना मे बहुत कम होती है। अस्तु, कुछ मनोवैज्ञानिको का विचार है कि उन्हें आंशिक रीति से ही पाठ्य-विषय को याद करना चाहिए।

यदि पाठ्य-विषय को आंशिक रीति से याद किया जाये तो यह देखा गया है कि पाठक प्राय जल्दी नही थकता। एक भाग को सीख लेने के बाद उसमे अपने कार्य की सफलता के कारण सन्तोष की भावना (Work pride) उत्पन्न होती है जो आगे के खण्डो को और भी अधिक उत्साहपूर्वक सीखने मे प्रेरक-शक्ति (Motivating force) का कार्य करती है। इस प्रकार अपेक्षाकृत अधिक आसानी से एक खण्ड के बाद दूसरे खण्डो को सीखते हुए वह पूरे पाठ्य-विषय को सीख लेता है।

इन विधियो के साथ-साथ विंच (Winch), लोटी स्टीफेन्स (Lotti Steffens), रीड (Reed) इत्यादि मनोवैज्ञानिको ने सीखने के लिए प्रगतिशील आंशिक एव पूर्ण रीति (Progressive Part and Whole Method) की भी चर्चा की है। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को चार सन्दर्भो की एक कविता याद करनी है, तो व्यक्ति पहले उस पूरी कविता को चार छोटे-छोटे टुकडो मे बाँट देगा और सर्वप्रथम पहले सन्दर्भ (Stanza) को सीखेगा। पहले सन्दर्भ को सीखने के बाद वह दूसरे सन्दर्भ को सीखेगा। फिर पहले का सम्बन्ध दूसरे सन्दर्भ से स्थापित करेगा। जब इन दोनो सन्दर्भो का आपसी सम्बन्ध भी वह व्यक्ति स्थापित कर लेगा तब वह फिर आगे अर्थात् तीसरे सन्दर्भ को सीखना शुरू करेगा।

इस प्रकार अन्तिम सन्दर्भ भी याद कर चुकने के बाद वह उन चारो सन्दर्भो के आपसी सम्बन्ध को स्थापित करेगा और तब अन्त मे पूरी कविता को सम्पूर्ण रीति से सीखकर सभी सन्दर्भो का आपसी सम्बन्ध समझ लेगा।

स्पष्ट है कि इस विधि मे 'आंशिक रीति' एवं 'पूर्ण रीति' दोनो का सम्मिश्रण पाते हैं।

यहाँ रीड (Reed) महोदय द्वारा किये गये प्रयोग को ध्यान मे रखना आवश्यक है। इस मनोवैज्ञानिक महोदय ने छात्रो पर यह प्रयोग निम्नलिखित ढग से किया —

छात्रों की संख्या ११३ थी। उन छात्रो को कुछ पाठ्य-विषय याद करने को दिये गए। छात्रों द्वारा प्राय समान (Comparable) पाठ्य-विषय को अलग-अलग भिन्न-भिन्न रीतियों मे याद करवाया अर्थात् आंशिक रीति से, फिर सम्पूर्ण रीति से तथा फिर प्रगतिशील आंशिक रीति से। इस प्रकार उस विषय को किस रीति

से याद करने में छात्रों को जितना औसत समय लगा इस बात की तालिका तयार की गयी जो इस प्रकार है—

सीखने की रीति→	पूर्ण रीति	आंशिक रीति	प्रगतिशील आंशिक रीति
समय→	५ ९१ मि	५ २५ मि	५ २१ मि

फलस्वरूप पोस्ट महोदय ने यह निष्कर्ष निकाला कि उपर्युक्त तीनों विधियों में प्रगतिशील आंशिक रीति ही सर्वश्रेष्ठ है।

परन्तु कौन सी रीति कब सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित होगी यह पाठ्य विषय के स्वरूप (Nature of the material to be learnt) एवं पाठक की योग्यताओं (*Capacities of the learner*) तथा परिस्थिति (*Situation*) पर निर्भर करती है।

वुडवर्थ (Woodworth) महोदय की यह राय है कि सामान्य रूप से (Generally) हमें पाठ्य विषय को सीखने के हेतु पूर्ण रीति को ही अपनाना चाहिये। हाँ यदि पाठ्य विषय में किसी स्थल विशेष पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता पड़े तो व्यक्ति को तुरत ही उस स्थल विशेष पर स्वतन्त्रतापूर्वक ध्यान देना चाहिए और तब फिर आगे बढ़ना चाहिए।

२ विराम तथा अविराम विधि (Learning by Spaced or Massed method)—आंशिक रीति से सीखने की विधि में हम लोगों ने देखा है कि पाठ्य विषय को कई एक भागों में बाँट दिया जाता है और तब अलग अलग भागों को पाठक एक-एक कर याद करता है। परन्तु विराम विधि (Spaced method) से सीखने में पाठ्य विषय को कई एक भागों में बाँटकर सीखने के लिए पूर्व निर्धारित समय की अवधि (Duration of time) को ही कई एक भागों में बाँट दिया जाता है। मान लिया कि किसी वस्तु को याद करने के लिये हम दो घण्टे समय दे सकते हैं।

अब यदि हम विराम विधि से याद करना चाहें तो इन दो घण्टों की अवधि को कई एक छोटे छोटे भागों में बाँट देंगे। मान लीजिये कि हम दो घण्टों को चार भागों में बाँट देना उपयुक्त समझते हैं तो हम आधा घण्टा पढ़ के थोड़ी देर विश्राम करेंगे फिर उसके बाद आधा घण्टा पढ़ेंगे। दूसरे आधा घण्टा के समाप्त हो जाने पर फिर थोड़ा विश्राम करके तीसरा आधा घण्टा को पढ़ने में लगायेंगे—और फिर थोड़ी देर के लिये पढ़ाई स्थगित कर इस के बाद अंतिम आधा घण्टा पढ़ने में लगायेंगे। इस प्रकार हम विराम दे-दे कर [illegible] के लिए दी गयी निश्चित अवधि

विराम विधि की सबसे बडी विशेषता यह है कि लगातार पढाई जारी रखने के सिलसिले मे थोडी-थोडी देर के लिए विश्राम लेने से सीखने के फलस्वरूप हमारे स्नायुमण्डल (Nervous system) मे बने स्मृति चिन्हो (Memory traces or engrams) को सुदृढ (Consolidated) बनने का अवसर भी प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि विराम विधि से सीखी गयी बातें अधिक समय तक याद रह पाती है।

पढाई के समय बीच-बीच मे थोडा-थोडा विश्राम मिलते रहने के कारण पाठक थकावट का भी अनुभव नही कर पाता तथा साथ ही साथ पाठक मे और काम करने की प्रेरणा बनी ही रहती है। बीच-बीच मे अवकाश मिलते रहने के कारण पठित सामग्रियो (Learnt materials) के मानसिक सगठन (Mental organisation) एव समीकरण (Assimilation) भी अपेक्षाकृत अधिक ही हो पाते है।

परन्तु, ठीक इसके विपरीत अविराम-विधि (Massed method) से सीखने मे समय को टुकडो मे नही बाँटा जाता। अगर याद करने की अवधि दो घण्टो की है तो लगातार दो घण्टो के आदि से अन्त तक पाठक याद करने की क्रिया निरन्तर (Continuously) जारी रखेगा। उसे दो घण्टो के बीच मे तनिक भी विश्राम नही दिया जायगा।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से पता चलता है कि 'अविराम विधि' को अपनाने पर सीखने की क्रियाओ से उत्पन्न स्मृति-चिन्ह सुदृढ नही हो पाते जिसके कारण पाठक अपेक्षाकृत कम दिनो तक सीखी हुई बातो को याद रख पाते है। साथ-ही-साथ थकावट आ जाने से धीरे-धीरे पाठक मे याद करने का उत्साह एव प्रेरणा भी घटती जाती है।

अस्तु, मसिक्षो (Muscio), जोस्ट (Jost) आदि मनोवैज्ञानिको के अनुसार विराम-विधि अविराम-विधि से अधिक उपयोगी है।

३ पुन निरीक्षण एव आवृत्तिकरण विधि (Revision and Recitation Method)—साधारणत किसी पाठ्य-विषय को याद करने के लिए उसे बार-बार पढने की आवश्यकता पडती है। पाठक एक बार पूरे पाठ्य-विषय को पढ लेने के पश्चात् उसका आवृत्तिकरण करता है। अर्थात् एक बार पढ लेने के बाद पाठ्य विषय को ढ़क कर तथा बिना देखे ही उसे फिर से दुहराने की क्रिया को आवृत्ति-करण (Recitation) की क्रिया कहते है। यदि आवृत्तिकरण के सिलसिले मे कोई बात भूल गयी तो पाठक तुरत पाठ्य-विषय का पुनर्निरीक्षण (Revision) करता है ताकि वह पता लगा सके कि वह कौन-सी बात है जो उसे आवृत्तिकरण के समय याद नही आ-पा रही थी। अस्तु, देखा जाय तो आवृत्तिकरण की विधि मे पुन-र्निरीक्षण की क्रिया भी शामिल है। अस्तु, कुछ मनोवैज्ञानिको ने पुन निरीक्षण को अलग विधि न मानकर उसे आवृत्तिकरण विधि का ही एक आवश्यक अग के रूप मे स्वीकार किया है। कुछ लोगो ने इसे पुनर्निरीक्षण एव आवृत्तिकरण की विधि न कह कर आवृत्तिकरण एवं सकेत (Recitation and Prompting method) की विधि कहना उचित समझा है।

स्कग्स (Skaggs) और क्रूगर (Krueger) आदि मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि सिर्फ पढ़ने की क्रिया (Only reading) करने से कहीं अधिक उपयोगी है पढ़ना + आवृत्तिकरण (Reading + Recitation) अर्थात् पढ़ना और आवृत्तिकरण दोनों का सहारा लिया जाय।

परन्तु, तब प्रश्न उठता है कि कितना समय पढ़ाई में लगाया जाना चाहिए तथा कितना समय पढ़े हुए विषय के आवृत्तिकरण में लगाना चाहिए। गेट्स (Gates) नामक मनोवैज्ञानिक का एक प्रयोग यहाँ उल्लेखनीय है।

उन्होंने कुछ व्यक्तियों को एक पाठ्य विषय पढ़ने के लिए दिया। पढ़ने के लिए निर्धारित समय कुल ९ मिनट था।

कुछ लोगों को लगातार नौ मिनट तक पढ़ते रहने के लिए कहा गया। कुछ लोगों को इसी नौ मिनट समय में नौ मिनट का २० प्रतिशत समय आवृत्तिकरण के लिए दिया गया। तीसरे, चौथे एवं पाँचवें ग्रुप (Group) को नौ मिनट के ही क्रमशः ४० प्रतिशत ६ प्रतिशत एवं ८० प्रतिशत समय तक आवृत्तिकरण करने का आदेश दिया गया। पुनः सभी ग्रुपों का अलग-अलग यह औसत प्रदत्त (Data) प्राप्त किया गया कि वे पढ़ाई एवं आवृत्तिकरण समाप्त करने के बाद (अर्थात् नौ मिनट के बाद) तुरत पढ़ी हुई बातों में से कितनी बातों का प्रत्याह्वान कर पाते हैं तथा चार घण्टों के बाद व पुनः उसी पठित सामग्री की कितनी बातों का प्रत्याह्वान (Recall) कर पाते हैं।

जो प्रदत्त (Data) प्राप्त हुए उन्हें निम्नलिखित तालिका द्वारा अधिक स्पष्टतापूर्वक रखा जा सकता है—

पाठ करने का निश्चित समय	ग्रुप	नौ मिनट के निश्चित समय का वह भाग (%) जो आवृत्तिकरण में लगाया गया था	तुरत किये गये प्रत्याह्वान का औसत प्रतिशत	चार घंटों के बाद के प्रत्याह्वान का औसत प्रतिशत
नौ मिनट	क	% समय	३५%	१५%
	ख	२० समय	५०%	२६%
	ग	४०% समय	५४%	२८%
	घ	६० समय	५७%	३७%
	ङ	८ समय	७४	४८%

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि जिस ग्रुप को निश्चित समय का

अस्सी प्रतिशत (८०%) समय आवृत्तिकरण के लिए दिया गया उसके द्वारा तुरत किया गया प्रत्याह्वान और चार घण्टो के बाद किया गया प्रत्याह्वान दोनो की मात्रा (Degree) अधिक रही। साथ-ही-साथ तालिका से गेट्स (Gates) ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि जिस 'ग्रूप' को क्रमश जितना ही अधिक समय आवृत्तिकरण के लिए मिला वह 'ग्रूप' उतनी ही अधिक बातें याद रख सका।

आवृत्तिकरण-विधि इसलिए अधिक प्रभावोत्पादक प्रमाणित हो पायी क्योकि यह एक सक्रिय प्रतिक्रिया (Active process) है। 'स्मृति-चिह्नो' के बार-बार क्रियाशील होने के कारण वे अधिक टिकाऊ हो पाते है। यह बार-बार आवृत्ति करके पढना सभी सहायक सिद्ध होता है जब कि प्रत्येक बार व्यक्ति सक्रिय रूप से आवृत्ति करे।

यदि कोई व्यक्ति गद्दीदार बिछावन पर तकिया लगाकर एव पखा चलाकर आराम से (Half heartedly) पढे तथा तन्द्रिल-अवस्था मे आवृत्ति करना शुरू करे तो बार-बार आवृत्ति करने का कोई भी प्रभाव'स्मृति-चिह्नो' को सुदृढ नही बना पायेगा। ऐसा इसलिए होता है कि यहाँ पढने एव आवृत्तिकरण की विधि सक्रिय न होकर निष्क्रय (Passive) है। इस प्रकार की अन्य निष्क्रय विधियाँ नही अपनानी चाहिए। ऐसी अवस्था मे पाठक थोडी देर मे ही पढने मे अन्यमनस्कता एव थकान का अनुभव करने लगता है।

इस विधि की दूसरी विशेषता यह है कि इसमे की गयी भूलें तुरत सुधार दी जाती है। फलत, व्यक्ति ठीक (Correct) बातो को सीखता जाता है तथा गलतियो को दूर करता जाता है।

ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण व्यक्ति मे सन्तोष की भावना आ जाती है जो उसे और अधिक सीखने को प्रोत्साहित करती है। इस प्रेरणा का एक कारण यह भी है कि व्यक्ति ने कितना सीख लिया है तथा कितना और सीखना बाकी है—अर्थात् अपने प्राप्त फल का ज्ञान (Knowledge of the Result) उसे साथ-साथ होता रहता है।

बार-बार दुहराने एव सुधार लाते रहने के कारण पाठ्य-विषय विस्तारपूर्वक याद हो जाता है। परन्तु आवृत्तिकरण प्रारम्भ करने के पहले कम से-कम एक दो बार पूरी पाठ्य-सामग्री को आदि से अन्त तक ध्यान से अवश्य पढ लेना चाहिए।

४, रट कर अथवा समझ कर सीखने की विधि (Learning by Rote or understanding method)—प्रत्येक वर्ग मे प्राय कुछ छात्र ऐसे जरूर रहते है जो पाठ्य-विषय के बहुत-से अशो को समझ नही पाते है। यदि इसे नही समझे हुए अशो की परीक्षा मे पूछे जाने की सम्भावना उन्हें मालूम पडती है तो वे उस पाठ्य-अश को बिना समझे-बूझे ही रट कर याद कर लेते है।

रटने के लिए वे बार-बार उस पाठ्य-विषय को दुहराते है और दुहराते दुहराते ही पठित शब्दो को बिना देखे ही दुहरा सकने मे समर्थ हो पाते है।

आवत्तिकरण विधि (Recitation Method) के भी दुहराने की आवश्यकता पड़ती है पर आवत्तिकरण विधि में समझ-समझ कर पुनरावृत्ति की जाती है। परन्तु रटन की विधि में समझ-समझ कर पुनरावृत्ति नहीं की जाती।

कुछ लोगों में पढ़ने की विधि म बुरे प्रशिक्षण (Bad training) क कारण रटने की आदत पड़ जाती है। कुछ लोग पाठ्य विषय के उन्ही स्थलों (Portions) को रटते है जो स्वयं उन्हें कठिन प्रतीत होता है। उन्हें एसा लगता है कि वह उनके समझने की योग्यता (Capacity to understand) स परे की बात है। साथ-साथ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो जब तक किसी विषय को समझ न लेंगे तब तक उस विषय को याद करने का कोई आवश्यकता ही नही समझते।

इस समझ-समझ कर सीखने की विधि में व्यक्ति पूरे पाठ्य विषय म निहित विचारों क सम्यक् अथ को समझने का प्रयास करता है। फिर भिन्न भिन्न विचारो का एक-दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करता है और अब अन्त के इन विचारों में से एक सार-स्वरूप तथ्य (Central Idea) को निकाल कर अपने स्मरण में आत्मसात् (Interiorise) करने का प्रयास करता है।

यह देखा गया है कि निरर्थक सामग्रियों (Nonsense materials) को व्यक्ति रट कर याद करता है। परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग द्वारा यह भी पता लगाया कि यदि निरर्थक सामग्रियो अथवा शब्दो मे व्यक्ति अपनी ओर से कोई विशेष अर्थ जोड़ देता है तो वह निरर्थक शब्द उस व्यक्ति विशेष के लिए सार्थक जैसा बन जाता है। मान लीजिए कि व्यक्ति को निम्नलिखित निरर्थक शब्द वर्णों (Nonsense syllable) को याद करने को दिया गया—DOQ PIR HIN FOZ इत्यादि।

ये शब्दांश निरर्थक हैं। अत समझ-बूझ कर याद करने का प्रयास कठिन है। अस्तु साधारणत व्यक्ति इन्हें रट कर ही याद कर पायेगा।

परन्तु, व्यक्ति यदि मन-ही मन DOQ का डौक से PIR का पीर' के मजार स HIN का 'हीनता' स तथा FOZ का फौज शब्द स व्यक्तिगत साहचर्य (Association) स्थापित कर लेता है तो रट कर याद करने की आवश्यकता प्राय कम हो जाती है।

५ उद्देश्यपूर्ण अथवा अनायास सीखने की क्रिया (Intentional or Incidental Learning) सीखने की क्रिया में सीखने की इच्छा का बहुत महत्व पूर्ण स्थान है। यह सीखने की इच्छा (Will to learn) व्यक्ति को एक उपयुक्त प्रेरणा (Adequate motivation) प्रदान करती है जिसके कारण व्यक्ति स्वेच्छानुकूल वस्तुओ की जानकारी शीघ्र प्राप्त कर लेता है। इस सीखने की इच्छा के पीछे व्यक्ति में कोई-न कोई उद्देश्य (Intention) छिपा होता है। अस्तु, किसी उद्देश्य की प्राप्ति के दृष्टिकोण म किये गये सीखने के प्रयास बड़े अधिक सक्रिय ढंग से होते हैं।

मान लीजिए कि एक विद्यार्थी है जिसे उसके शिक्षक ने एक कहानी की कथावस्तु याद करके लाने का सबक दिया है। अब अपने घर पर उस कहानी को जब वह विद्यार्थी पढने बैठता है तो वह जानता है कि दूसरे दिन शिक्षक महोदय इस कहानी के विषय मे उससे पूछेगे। अस्तु, वह उस कहानी को अधिक ध्यान, तत्परता तथा सक्रियतापूर्वक याद करने लगता है। उसके सामने यह उद्देश्य (intention) है कि किसी प्रकार वह कहानी की कथावस्तु को ठीक-ठीक याद कर ले ताकि अगले दिन वर्ग मे वह शिक्षक महोदय को प्रसन्न कर सके। अस्तु, उसका यह सीखना **उद्देश्यपूर्ण सीखना (Intentional Learning)** कहा जायगा। सीखने मे यह उद्देश्यपूर्णता (Intention) का ही परिणाम है कि परीक्षा मे आने वाले सम्भावित प्रश्नो (Expected questions) को विद्यार्थी तत्परता और शीघ्रता से याद कर लेते है तथा एक ऑफिस का सहायक (Clerk) पदोन्नति अथवा आर्थिक उन्नति के उद्देश्य से 'टाइप-राइटिंग' या 'शार्ट-हैंड' यथाशीघ्र सीख लेता है। इस प्रकार के उद्देश्यपूर्ण सीखने की क्रिया मे हम तीन-प्रमुख बात पाते है—१. अधिक सक्रियता से सीखना (More active Learning), २ सीखी हुई बातो को अधिक दिनो तक याद रखना (Lasting retention) तथा ३ आसानी से प्रत्याह्वान कर सकना (Easy recall)।

उपर्युक्त बातो के कारण ही इसमे पुनरावृत्ति की क्रिया अपेक्षाकृत अधिक ठीक-ठीक (Accurately) हो पाती है।

परन्तु, व्यावहारिक जीवन मे व्यक्ति बहुत-सी बातो को बिना किसी उद्देश्य के ही सीखता पाया जाता है। मान लीजिए कि उपर्युक्त उदाहरण मे शिक्षक महोदय ने विद्यार्थी से यह नही कहा होता कि अगले दिन वे उस कहानी की कथा-वस्तु को उस विद्यार्थी से सुनेंगे तो विद्यार्थी का पढना उद्देश्यपूर्ण नही होता। वह अपेक्षाकृत निष्क्रिय रूप से उस कहानी को पढता। उसके अन्दर उस पाठ्य-विषय को ठीक से याद करके शिक्षक की प्रसन्नता को प्राप्त करने का उद्देश्य क्रियाशील नही होना पाया जाता। परिणाम यह होता है कि उस कहानी को वह उतनी अच्छी तरह याद नही कर पाता अथवा स्मृति-चिन्ह उतने दृढ नही हो पाते।

ऐसी दशा मे उस कहानी को न तो वह अधिक दिनो तक याद ही रख पायगा वरन् अगर वह उस कहानी का प्रत्याह्वान भी करना चाहेगा तो वह उतनी शीघ्रता और ठीक-ठीक ढग से नही कर पायगा। इसका प्रमुख कारण यह होता है कि अनायास सीखने की अवस्था मे सीखने की मात्रा ही कम देखी जाती है।

इसमे सदेह नही कि जीवन मे बहुत-सी बातो को हम अनायास ही सीख लेते हैं। किन्तु अनायास रूप से (Casually) सीखी जाने वाली बाते उद्देश्य पूर्वक सीखी जाने वाली बातो की तुलना मे कम दिनो तक याद रहती है। इसलिए सीखने की क्रिया सोद्देश्य होनी चाहिए ताकि उसके द्वारा बने स्मृति-चिन्ह अधिक चिर-स्थायी हो सकें।

वुडवर्थ (Woodworth) आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों द्वारा भी यह प्रमाणित कर दिया है कि उद्देश्यपूर्ण सीखने की विधि अनायास सीखने की विधि से सर्वथा उत्तम है (The method of Intentional Learning is always better than method of incidental Learning)।

अस्तु हमें सदा किसी भी विषय को उद्देश्यपूर्ण विधि द्वारा ही सीखना चाहिए।

मनुष्यों एवं पशुओं के सीखने में अन्तर
(Distinction between Human and Animal Learning)

मनुष्य सृष्टि की सबसे अच्छी रचना है। वह न केवल देखने में ही सुन्दर है, बल्कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित स्नायुमण्डल भी रखता है। जानवरों में भी स्नायुमण्डल होते हैं परन्तु वे मनुष्यों की तरह विकसित एवं जटिल नहीं होते। यही कारण है कि मनुष्य जटिल से-जटिल विषय पर भी अधिक सीख सकता है, अधिक समझ सकता है और साथ ही सीख सकने में समर्थ भी हो जाता है। परन्तु पशु उतनी अधिक जटिल बातों को सीख नहीं पाते। पशुओं का सीखना अपेक्षाकृत सरल क्रियाओं तक ही सीमित रहता है। यही कारण है कि कोई बन्दर लाख शिक्षण (Training) दिये जाने पर भी कभी बी० ए० नहीं पास कर सकता पर मनुष्यों के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं।

इसी विकसित एवं जटिल स्नायुमण्डल का प्रभाव है कि मनुष्य सीखने की क्रिया में अपनी अनुभूतियों एवं अपने साहचर्य (Past experiences and Asso-ciation) से लाभ उठा पाता है। पशु मनुष्यों की तुलना में इस सुविधा से प्रायः वंचित हैं। पूर्व-अनुभूति से सीखने में सहायता पाना बन्दर बिल्ली आदि में तो कुछ अंशों में पाया भी जाता है मगर जैसे जैसे हम निम्नकोटि के जीवों की तरफ जाते हैं वैसे वैसे यह योग्यता और भी घटती पायी जाती है।

मनुष्य का सीखना बुद्धि एवं अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिक सम्पादित होता है। यही कारण है कि मनुष्य किसी क्रिया को जानवरों की अपेक्षा न केवल जल्दी सीख सकने में ही समर्थ होता है वरन् वह सीखी हुई क्रियाओं को अधिक दिनों तक याद भी रख पाता है।

सीखने की क्रियाओं में मनुष्यों में तर्कशीलता एवं चिन्तन की शक्ति की अधिकता देखी जाती है। तर्क चिन्तन एवं कल्पना की अधिकता के कारण मनुष्य न केवल उपस्थित परिस्थितियों, उलझनों एवं समाधान को हो समझ पाता है बल्कि अनुपस्थित परिस्थितियों एवं उनके भूतकाल तथा भविष्य के सम्बन्ध को भी स्थापित कर लेता है। इसलिए कहा गया है कि मनुष्यों का सीखना प्रायः अधिकतर विचारात्मक होता है तथा जानवरों का सीखना अधिकतर क्रियात्मक (Active) होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य सीखने की क्रिया में प्रयत्न और भूल (Trial and Error) का सहारा लेता ही नहीं। कहना इतना ही है कि मनुष्य में

'प्रयत्न और भूल अधिकतर मानसिक स्तर (Mental level) पर होता है, मगर पशु मे व्यावहारिक स्तर (Behavioural level) पर।

मनुष्यो मे सीखने की क्रिया के लिए यथेष्ट भाषा, नामावलियाँ, सख्या इत्यादि के प्रयोग करने की क्षमता प्राप्त है। इसी कारण से मनुष्य रोज ज्ञान-विज्ञान की नयी-नयी बाते सीखता एवं आविष्कार करता जाता है। परन्तु जानवरो के पास न कोई ऐसी विकसित भाषा है और न कोई सख्याओ का गणित ही। फलस्वरूप उनका सीखना सरल प्रकार की क्रियाओ से आगे नही हो पाता।

मनुष्य हस्त-कौशल मे भी जानवरो की तुलना मे अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। वस्तुत. यही कारण है कि मनुष्य तबला, मृदग, सितार इत्यादि के बजाने, लिखने चित्रकारी, दस्तकारी, नृत्य इत्यादि सभी कलाओ मे पशुओ से कही आगे बढा-चढा है।

कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्यो का सीखना जानवरो के बनिस्बत कही अधिक उन्नत होता है।

डारविन के विकासवाद के सिद्धान्त के आधार पर हम कह सकते है कि प्रणियो के विकास की सिढी (Ladder of Evolution) पर जीव जितना ही विकसित एव उच्च स्थान पर है वह जीव उतना ही अधिक बातो को सीख सकने मे समर्थ है और जो जीव जितना ही नीचे के पायदान पर है वह सीखने की क्रिया मे उतना ही अधिक अपेक्षाकृत निम्न-स्तर पर है। विकास की इस सीढी पर मनुष्य को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। सारे-के-सारे अन्य जीव इससे नीचे स्थान रखते है।

जानवरो मे भी जो जानवर मनुष्यो के विकास के सर्वोच्च पायदान से जितना ही समीप के पायदान पर है वे उतनी ही अधिक बातें सीख सकने मे समर्थ हो पाते है। विकासात्मक दृष्टिकोण से जो प्राणी मनुष्य-स्तर से जितना ही दूर है वह उतनी ही कम सीखने की योग्यता रखता है।

यही कारण है कि कीडे से अधिक चूहे, चूहे से अधिक कुत्ते तथा कुत्तो से भी अधिक वनमानुष एव बन्दर सीखने मे समर्थ होते है और मनुष्य तो सभी मे श्रेष्ठ है ही।

तीसरा अध्याय

स्मरण तथा विस्मरण
(Remembering and Forgetting)

(क) स्मरण (Remembering)

स्मरण की परिभाषा—स्मृति क्रिया के चार प्रमुख अंग—सीखना धारण करना प्रत्याह्वान करना तथा पहचानना या प्रतिभिज्ञा करना।

धारण क्रिया को प्रभावित करनेवाली कुछ मुख्य बातें—मस्तिष्क की बनावट सीखने की मात्रा धारण करने वाले की विशेषताएं तथा अभिरुचि एवं मनोवृत्ति।

धारण क्रिया की जाँच करने की विधियाँ—

१ प्रत्याह्वान करना—प्रत्याह्वान क्रिया के प्रकार—प्रत्याह्वान का स्वरूप—प्रत्याह्वान को प्रभावित करने वाली बातें प्रत्याह्वान में उत्तेजना का स्थान—प्रत्याह्वान में साहचर्य का स्थान।

२ पहचानने की क्रिया—पहचानने की क्रिया या प्रतिभिज्ञा के प्रकार।

प्रत्याह्वान तथा प्रतिभिज्ञा में अन्तर

३ पुनः सीखने की विधि—

(ख) विस्मरण (Forgetting)

भूमिका—भूलने का स्वरूप—एबिंगहॉस महोदय की विस्मरण रेखा।

भूलने के कारण—(१) सीखने काल के समय पड़ने वाले प्रभाव (२) धारण अवधि में पड़ने वाले प्रभाव तथा (३) प्रत्याह्वान करते समय पड़ने वाले प्रभाव।

स्मृति शिक्षण—अच्छी स्मृति किसे कहते हैं?—अच्छी स्मृति की विशेषताएं। स्मृति को अच्छा कैसे बनाया जाय? अर्थात् अच्छी स्मृति किन किन बातों पर निर्भर करती है?

भूलने की उपयोगिताएँ

(क) स्मरण
(Remembering)

स्मरण या स्मृति की परिभाषा (D-finition of Remembering)— पहले यह समझा जाता था कि स्मृति एक आन्तरिक शक्ति है जिसे अभ्यास से बढ़ा

तथा सुधार सकते हैं। पर आजकल इस पर किये गए प्रयोगात्मक अध्ययनों ने इस धारणा को गलत सिद्ध कर दिया है। दूसरी मानसिक क्रियाएँ, जैसे—चिन्तन, कल्पना, प्रत्यक्षीकरण इत्यादि की तरह यह भी एक मानसिक प्रक्रिया है। अस्तु, आजकल स्मरण-शक्ति न कहकर स्मरण करने की क्रिया या याद करना (Remembering) कहा जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह एक 'आन्तरिक शक्ति नहीं, वरन् एक 'मानसिक-प्रक्रिया' (Mental process) है।

अत इसकी परिभाषा (Definition) इस प्रकार दी जा सकती है—**स्मृति या स्मरण वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा भूतकाल मे सीखी गयी बातें या पूर्व अनुभूतियाँ मस्तिष्क मे स्मृति चिन्हों के रूप मे धारण की जाती हैं और वर्तमान या भविष्य मे उनका प्रत्यह्वान या प्रतिभिज्ञा हो पाती है।** (Remembering is that mental process through which the effects of previous learning or experience are retained in the brain in the form of memory traces and are being recalled or recognized in the present or future)

इससे स्पष्ट है कि स्मरण की क्रिया का सम्बन्ध गत अनुभवो (Past experience) अर्थात् व्यक्ति के भूतकाल के अनुभवो से ही रहता है। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति अपने किसी मित्र का नाम स्मरण करना चाहता है जिससे उसकी भेंट दो वर्ष पहले दिल्ली मे हुई थी और अन्त मे उसके नाम को फिर से अपनी स्मृति मे लाने मे समर्थ होता है तो हम कहते है कि उसको अपने मित्र का नाम याद है। यहाँ वह व्यक्ति अपनी इस पूर्व-अनुभूति (मित्र का नाम) को अपनी वर्तमान चेतना मे लाने मे सफल होता है।

स्मरण करने की क्रिया मे निम्नलिखित बातो का होना अनिवार्य है—(१) किसी भी प्रक्रिया को सीखना (Learning) (२) उस प्रक्रिया को धारण करना (Retaining) (३) उसका प्रत्याह्वान करना (Recalling) तथा (४) उसे पहचानना या प्रतिभिज्ञा करना (Recognizing)।

अर्थात्, स्मरण की क्रिया सीखने की क्रिया की पूर्व-कल्पना (Pre-suppose) करता है (पहले से ही मान लेता है)। बिना किसी घटना को सीखे उसे स्मरण करने की बात ही नही उठती है। जब हम किसी मे स्मरण-क्रिया देखते हैं तो हमे इस बात की पूर्वकल्पना होती है कि उसे स्मृति चिन्ह (Memory-trace) के रूप मे मस्तिष्क मे धारण किया जाता है (Retaining Process)। पर यह कैसे माना जा सकता है कि जो सीखा गया है उसे धारण भी किया गया है? उसके लिए धारण की क्रिया की जाँच (Test of Retention process) अत्यावश्यक है जो इन दो निम्नलिखित विधियो—'प्रत्याह्वान करना' (Recalling) तथा 'पहचानना' (Recognizing) द्वारा की जाती है। स्मृति की क्रिया के पूर्ण होने के लिए इसके

उपर्युक्त चारों अंग सीखना, धारण करना, प्रत्याह्वान तथा पहचानना का होना आवश्यक है।

प्रत्याह्वान की क्रिया उसे कहते हैं जिसके द्वारा भूतकाल में सीखी हुई घटनाओं को उनके वास्तविक उपस्थितिकरण के अभाव में ही वर्तमान चेतना में लाया जाता है। इसके लिए प्रतिमाओं (Images) की आवश्यकता पड़ती है या शब्दों (Words) की अथवा भावों की। पर कभी-कभी यह पाया जाता है कि व्यक्ति अपने सीखे हुए विषय तथा अनुभव की हुई घटनाओं का प्रत्याह्वान जिस समय चाहता है उस समय नहीं कर पाता है। परन्तु बाद में वह उसे अन्य समय में स्मरण आता है। इसलिए इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि व्यक्ति उस समय विशेष में उस बात का प्रत्याह्वान करने में असमर्थ हुआ था इसलिए उसके मस्तिष्क ने उस बात का धारण ही नहीं किया है।

इसके अतिरिक्त किसी घटना के प्रत्याह्वान नहीं होने पर जब उसी बात या घटना को अन्य घटनाओं के साथ फेंट (Mix) कर उसके सामने प्रस्तुत किया जाता है तो वह अपनी सीखी हुई बातें अथवा अनुभव की हुई घटनाओं को सही-सही पहचान लेता है। इसे एक उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है जैसे—मान लीजिए कि हम अपने किसी मित्र का नाम इस समय स्मरण नहीं कर पा रहे हैं। परन्तु, यदि पास खड़ा कोई दूसरा मित्र बहुत से नामों को बतलाता है तो हमें उन बहुत से नामों में अपने मित्र के नाम को पहचान लेते हैं।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्मृति की क्रिया में पूर्व सीखे हुए विषय या अनुभव की हुई घटनाओं को मस्तिष्क में स्मृति चिह्नों के रूप में धारण किया जाता है। इस बिना धारण क्रिया का बोध किए हुए यह कहना सम्भव नहीं कि अमुक घटना की वस्तु को व्यक्ति ने धारण किया या नहीं। इसका बोध दो प्रकार से हो जाता है। पूर्व सीखे हुए विषय अथवा पूर्व अनुभव की हुई घटनाओं का (क) प्रत्याह्वान करना (ख) उनको पहचानना।

स्मृति की क्रिया के उपर्युक्त चारों अंगों को निम्नलिखित तालिका द्वारा अत्यधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है—

स्मृति क्रिया के अंग अथवा उप क्रियाएँ
(Factors or Sub-processes in Memorization

(१) सीखना (Learning) (२) धारण करना (Retaining) (३) प्रत्याह्वान करना (Recalling) (४) पहचानना (Recognizing)

कोई भी व्यक्ति चाहे समझ-बूझकर अथवा रट कर किसी विषय या घटना को याद कर ले तो दोनों ही अवस्थाओं में उपर्युक्त चारों अंगों का सहयोग दिखाई देगा। अब हम इन पर विस्तार में प्रकाश डालेंगे।

१. सीखना
(Learning)

यह पहले भी कहा जा चुका है कि धारण की क्रिया सीखने की क्रिया के बिना सम्भव नहीं है। अर्थात्, सीखी हुई बातो एव घटनाओ को ही स्मरण किया जाता है। सीखने की क्रिया जितनी कुशलता के साथ सम्पादित होती है उतनी ही अच्छी स्मृति होने की सम्भावना रहती है।

यहाँ पर यह आवश्यक है कि सीखने की क्रिया निम्नलिखित दो बातो से विशेष रूप से प्रभावित होती है –(क) क्या सीखा गया है अथवा सीखी हुई वस्तु का स्वरूप (What is learnt or Nature of the material learnt), (ख) कैसे सीखा गया है अथवा सीखने की विधियाँ (How it has been learnt or Methods of Learning)।

आगे चलकर हम यह भी देखेंगे कि कैसे धारण करने की क्रिया भी इन दो बातो पर बहुत हद तक निर्भर करती है। इसका उल्लेख हम विस्तार में धारण करने की क्रिया को प्रभावित करनेवाली कुछ मुख्य बातो पर प्रकाश डालते समय आगे करेंगे।

२ धारण करने की क्रिया
(Process of Retaining)

मनोवैज्ञानिको ने अपने प्रयोगो द्वारा प्राप्त सामग्रियो के आधार पर इस नियम की स्थापना की है कि जो काम हम सीखते है उनको अपने मस्तिष्क मे स्मृति चिह्न (Memory-traces) के रूप मे धारण कर लेते है। पर जो भी हम सीखते है, बाद मे उसका प्रत्याह्वान करने या उनको पहचानने मे सदा समर्थ नही होते है और यदि वैसा करने मे समर्थ भी हो जाते हैं, तो आंशिक रूप मे। इसका यह अर्थ हुआ कि इनके द्वारा हमारे मस्तिष्क मे स्मृति-चिह्न स्थायी रूप से बने नही रहते है, बल्कि सीखने तथा प्रत्याह्वान करने के बीच के समय बीतने के कारण वे धीरे-धीरे क्षीण (Fade) होते जाते है। पर अब प्रश्न उठता है कि ऐसा कहना कहाँ तक उचित है। चूँकि 'स्मृतिचिह्न' के स्वरूप पर ठीक ठीक प्रकाश डालना कठिन है, अत इसके सम्बन्ध मे किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नही है। हम केवल इतना कह सकते हैं कि हमारे 'स्मृतिचिह्न' सदा स्थायी रूप मे हमारे मस्तिष्क मे बने नही रहते है, बल्कि उनमे परिवर्त्तन होता रहता है और वे क्रमश क्षीण होते जाते है। यही कारण है कि हम पहले की सीखी हुई अधिकाश बातो को भूल जाते हैं। पर यही दूसरा प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यो होता है? उनके उत्तर मे धारण करने की क्रिया को प्रभावित करने वाली कुछ निम्नलिखित मुख्य बातो पर ध्यान देना होगा।

धारण करने की क्रिया को प्रभावित करने वाली कुछ मुख्य बातें (Some Important foctors influencing the Process of Retaining,—धारण-क्रिया को प्रभावित करने वाली कुछ मुख्य बातें अग्रलिखित है—

१ मस्तिष्क की बनावट (Structure of the Brain) जिस घटना या विषय को हम स्मरण करते हैं उसे पहले सीखते हैं। सीखने की क्रिया बहुत हद तक मस्तिष्क की बनावट पर भी निर्भर करती है। जो हम सीखते हैं उसे 'स्मृति चिह्न' के रूप में मस्तिष्क में ही ग्रहण करते हैं। अस्तु मस्तिष्क की बनावट पर भी स्मरण क्रिया का स्वरूप निर्भर करता है। इसके प्रमाण में हम कहते हैं कि पशुओं तथा मनुष्यों के मस्तिष्क की बनावट में अन्तर रहता है। मनुष्यों की मस्तिष्क की बनावट पशुओं के मस्तिष्क की बनावट से जटिल होने के फलस्वरूप ही पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों के मस्तिष्क में कठिन-से कठिन तथा जटिल-से जटिल विषयों के भी 'स्मृति चिह्न' अधिक टिकाऊ रहते हैं। पशुओं तथा मनुष्यों के मस्तिष्क की बनावट की जटिलता में अन्तर के कारण ही उनकी स्मृति क्रिया में भी विभिन्नता पायी जाती है। अस्तु जहाँ मनुष्यों की धारण क्रिया प्रबल होती है वहाँ पशुओं की दुर्बल।

२ सीखने की मात्रा (Amount of Learning)—जिस घटना अथवा विषय को हम सीखते हैं उसी को धारण करते हैं। धारण की क्रिया बहुत हद तक सीखी हुई वस्तु के स्वरूप सीखने की विधियाँ आदि पर निर्भर करती है। अर्थात् जिस वस्तु को व्यक्ति ने जितनी ही अधिक निपुणता के साथ सीख लिया है उसका स्मृति चिह्न भी उतना ही प्रबल होगा। फलस्वरूप वह उस वस्तु को बहुत दिनों तक अपने मस्तिष्क में धारण कर सकेगा।

सीखने की मात्रा को मुख्यत: निम्नलिखित दो बातें प्रभावित करती हैं—

(क) सीखे हुए विषय का स्वरूप तथा (ख) सीखने की विधियाँ। ये दोनों भी स्वयं कई बातों पर निर्भर करती हैं जो निम्नलिखित हैं—

(क) सीखे हुए विषय का स्वरूप (Nature of the material learnt)—सीखे हुए विषय एवं अनुभव की कई घटना के स्वरूप पर सीखने की क्रिया की कुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है जो निम्नलिखित बातों पर आश्रित है—

१ विषय की सार्थकता—निरर्थक विषयों (Meaningless materials) को सीखने में सार्थक विषयों (Meaningful materials) के सीखने की अपेक्षा अधिक बार दुहराने की आवश्यकता पड़ती है। जिन विषयों को आसानी से समझा नहीं जा सकता है अधिक पुनरावृत्ति की आवश्यकता पड़ती है। जैसे—निरर्थक पदों (Nonsense syllables) की सूचि तथा 'सार्थक शब्दों' (Meaningful words) की सूची को याद करने में भिन्नता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि सार्थक शब्दों की एक सूची को याद करने में समान लम्बाई के एक निरर्थक शब्दखण्ड की सूची को याद करने से कम प्रयास की आवश्यकता पड़ती है। इसे एक उदाहरण से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक व्यक्ति को निम्नलिखित निरर्थक शब्दखण्डों की एक सूची याद करने को दी जाती है—LUZ QOS RAV BIJ COQ, DIR NUZ XOL SAB, KIG REC YIP

फिर इस सूची को याद करने के कुछ समय बाद उसे सार्थक शब्दों की एक

सूची याद करने को दी जाती है, जो इस प्रकार है—LIP, RUN, SON, CAT, FED, JAR, PUT, BAN, DOG, HIM, WAX.

इस प्रयोग से प्राप्त सामग्रियो (Data) को ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि पहली सूची (निरर्थक शब्दखण्डो) को याद करने मे दूसरी सूची (सार्थक शब्द) से अधिक प्रयासो (Trials) की आवश्यकता पडती है। इतना ही नही, बल्कि सीखे हुए निरर्थक शब्दखण्डो मे से अधिकाश को व्यक्ति शीघ्र भूल जाता है, परदूसरी ओर सार्थक शब्दखण्डो को अपेक्षाकृत अधिक दिनो तक याद रख पाता है।

२ विषय की लम्बाई (Length of materials)—एक विषय को सीखने मे उसकी कितनी पुनरावृत्ति की आवश्यकता पडेगी, यह विषय की लम्बाई पर बहुत कुछ निर्भर करती है। जो विषय लम्बा होगा उसे छोटे विषयो की अपेक्षाकृत अधिक दुहराना पडेगा। चूँकि लम्बे विषयो को अपेक्षाकृत अधिक दुहराना पडता है, इसलिए उनसे मस्तिष्क मे बने 'स्मृति-चिन्ह' भी अधिक सुदृढ एव टिकाऊ होते है। इसके विपरीत, छोटे विषयो को एक ही बार दुहरा कर सीखा जाता है। फलस्वरूप इनसे, हमारे मस्तिष्क के बने 'स्मृति-चिन्ह' कम सुदृढ होने के कारण लम्बे विषयो के स्मृति-चिन्ह' की अपेक्षा कम टिकाऊ होते हैं। फलत लम्बे विषयो की स्मृति छोटे विषयो की स्मृति से अच्छी रहती है।

३ सीखे हुए विषय का क्रम मे स्थान (Position of material in the series)—निरर्थक पदो की सूची (List of Nonsense syllables) मे जिन्हें पूर्णत सीखा नही गया है, प्राय उनके आरम्भ तथा अन्त वाले पदो को याद रखने की सम्भावना अधिक रहती है तथा बीच वाले पदो को कम। अत आरम्भ और अन्त (Beginning and End) वाले पदो की स्मृति, सूची के बीच (Middle) वाले पदो की स्मृति से पहले होगी तथा अधिक समय तक बनी भी रहेगी। यदि किसी पूर्णत सीखे हुए निरर्थक पद की एक सूची का प्रत्याह्वान उसके सीखने के कुछ समय बाद किया जाय, तो भी उपर्युक्त बातें पायी जाती है। 'लायन' (Lyon) ने इसको प्रयोग द्वारा भी प्रमाणित किया है। इसे एक उदाहरण से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। यदि निम्नलिखित निरर्थक शब्दखण्डो की सूची' LUZ, QOS, RAV, BIJ, COQ, DIR, NUZ, XOL, SAB, KING, REC, and YIP को किसी व्यक्ति ने अपूर्ण रूप मे सीखा है (Incomplete learning), और विभिन्न प्रयासो के बाद उसके द्वारा याद किये गये शब्दखण्डो पर ध्यान दिया जाय, तो स्पष्ट होगा कि सिर्फ आरम्भ के शब्दखण्ड LUZ, QOS, RAV और अन्त के शब्दखण्ड KIG, REC तथा YIP को ही याद कर पाया है। अर्थात् अब तक वह सूची के बीच वाले शब्दखण्डो BIJ COQ, DIR, NUZ, XOL, तथा SAB, को नही याद कर सका है।

४. सीखे हुए विषय का वातावरण (Environment of the material learnt)—सीखने की क्रिया की निपुणता सीखे हुए विषय के वातावरण पर भी निर्भर करती है। अर्थात् जिस विषय को किसी व्यक्ति ने सीखा है उसके पहले

और बाद में क्रमश उसने किन किन विषयों को सीखा है इसकी जानकारी आवश्यक है।

मायर्स महोदय (Myers) का कहना है कि एक ही व्यक्ति द्वारा एक क्रिया 'क' और दूसरी क्रिया 'ख' मे साहचर्य स्थापित करने के तुरंत बाद यदि क्रिया 'ग' (तीसरी क्रिया) और क्रिया 'घ' (चौथी क्रिया) मे साहचर्य स्थापित किया जाता है तो बाद की क्रियाओं (क्रिया ग और घ) मे स्थापित किया गया साहचर्य पहले की क्रियाओं क और ख के साहचर्य से उत्पन्न स्मृति में बाधा पहुंचाता है चूंकि क्रियाएँ ग और घ' के स्मृति चिन्ह क्रियाए क एवं ख के साहचर्य के आधार पर बने हुए स्मृति चिन्हों को भी होने के पहले ही क्षीण बना देते हैं। इसे रेट्रोएक्टिव इनहिबिशन (Retro-active inhibition) अथवा पृष्ठोन्मुख अवरोध की संज्ञा दी जाती है। इसको एक अन्य सरल उदाहरण से भी अधिक स्पष्ट किया जा सकता है जैसे—

अवस्था न० (१)—साहित्य का अध्ययन करना (आध घण्टे के लिए) *फिर १५ मिनट तक आराम करना तत्पश्चात् अध्ययन किये हुए साहित्य का प्रत्याह्वान करना।*

अवस्था न० (२)—साहित्य का अध्ययन करना (आधे घण्टे के लिए) १५ मिनट तक इतिहास का अध्ययन करना तत्पश्चात अध्ययन किये हुए साहित्य का प्रत्याह्वान करना।

दूसरी अवस्था मे पहले की अपेक्षा अध्ययन किये हुए साहित्य के प्रत्याह्वान की मात्रा मे काफी कमी होगी क्योंकि इस अवस्था में साहित्य के अध्ययन करने के पश्चात् पहली अवस्था की तरह आराम न कर इतिहास का अध्ययन किया गया।

अत साहित्य के अध्ययन करने से मस्तिष्क मे बने स्मृति चिन्हो को सुदृढ़ होने का मौका ही नहीं मिल पाया। फलत व्यक्ति अध्ययन किये हुए साहित्य के अधिकांश भाग को दूसरी अवस्था मे भूल जाता है। परन्तु पहली अवस्था मे साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् आराम करने से उनके मस्तिष्क मे बने स्मृति चिन्ह सुदृढ़ हो पाते हैं। यही कारण है कि पहली अवस्था मे सीखे हुए साहित्य का प्रत्याह्वान दूसरी अवस्था की अपेक्षा अधिक हो पाता है।

अर्थात् इससे स्पष्ट है कि सीखने के पश्चात् आराम करना या सो जाना सीखे हुए विषय के स्मृति चिह्नो को सुदृढ बनाने म मदद पहुंचाता है परन्तु यदि आराम करने का मौका नही मिलता है और किसी दूसरे विषय का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है, तो बाद मे अध्ययन किये गये विषय से बने स्मृति चिन्ह पहले अध्ययन किये हुए विषय से बने स्मृति चिन्हो को सुदृढ होने मे बाधा पहुंचाते हैं। इसी बाधा को पृष्ठोन्मुख अवरोध (Retro active inhibition) की संज्ञा दी जाती है। पृष्ठोन्मुख अवरोध की मात्रा निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है—

(१) किसी विषय को सीखने और प्रत्याह्वान करने के बीच की अवधि *(Retention interval) म किये गए कार्य (या अध्ययन किये गय विषय) का*

स्वरूप (Nature of the the Interpolated task or activity), (२) धारण-अवधि-मे सीखे गये विषय का बीतते हुए समय मे स्थान (Temporal Location of the Interpolated activity), (३) धारण-अवधि के पूर्व सीखे हुए विषय की मात्रा (Degree of Original Learning) (४) 'धारण-अवधि' के बीच मे सीखे गये विषय की मात्रा (Strength of Interpolated task or leaning) इत्यादि। परन्तु इनका वर्णन यहाँ विस्तार मे करना अभीष्ट नही है।

मूलर तथा पिलजेकर (Muller and Pilzecker) नामक दो मनोवैज्ञानिकों ने इस धारणा का पुष्टीकरण अपने प्रयोगो द्वारा भी किया है।

५ सीखे हुए विषय की भावानुभूति (Feeling tone of materal of learning)—जिस विषय को हम पसन्द करते हैं या जिसमे हमारी अभिरुचि रहती है उसे हम उसी प्रकार के दूसरे विषयो की अपेक्षा जिन्हें हम पसन्द नही करते हैं, अधिक आसानी से सीख लेते है। प्रयोगो द्वारा भी मनोवैज्ञानिको ने इस तथ्य (Fact) को स्थापित कर दिया है कि 'सुखकर विषयो' की स्मृति 'दुखकर विषयो' से अधिक टिकाऊ रहती है।

सीखने की विधियाँ

(Methods of Learning)

मनोवैज्ञानिको ने अपने प्रयोगो द्वारा प्राप्त निष्कर्षो से प्रमाणित कर दिया है कि सीखने की क्रिया की कुशलता (Efficieny of Learning) बहुत हद तक सीखने की विधि पर निर्भर करती है। यदि सीखने की विधि उपयुक्त है तो सीखने की क्रिया भी कुशल होगी। फलत, उसकी स्मृति भी अच्छी होगी। विभिन्न प्रकार की सीखने की विधियो का उपयोग किया गया है। इसकी चर्चा सीखने के अध्याय मे विस्तार मे किया जा चुका है (पृष्ठ ३६० देखें)। परन्तु, इसकी उपयुक्तता मे विभिन्नता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से यह स्पष्ट हो चुका है कि विराम-रीति से सीखना अविराम-रीति से सीखने की अपेक्षा अधिक उत्तम है। परन्तु, पूर्ण अथवा आंशिक विधि के सम्बन्ध मे किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। पूर्ण अथवा आंशिक विधि से सीखना अधिक लाभदायक होगा। यह पाठ्य-विषय के स्वरूप पर निर्भर करेगा। फिर भी, यह स्पष्ट है कि प्रगतिशील आंशिक एव पूर्ण रीति मे सीखना आंशिक अथवा पूर्ण रीति मे अधिक उत्तम है। सीखने के समय पुनः निरीक्षण एव आवृत्तिकरण विधि का उपयोग करना भी काफी लाभदायक सिद्ध होता है। समझ कर सीखना, रट कर सीखने की विधि से अधिक उपयोगी है। ठीक इसी प्रकार उद्देश्यपूर्ण या सक्रिय (Intentional or Active) सीखने की विधि, उद्देश्यहीन या निष्क्रिय (Incidental or Passive) सीखने की विधि से अधिक लाभदायक है। सिखने के समय संकेत (Cue) का उपयोग कर सीखना भी काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है, जो निम्नलिखित बातो मे स्पष्ट है—

संकेत का उपयोग कर सीखना (Use of Cue in Learning)—यदि

एव घटना की गहरी छाप पड़ती है। फलत वह उन्हें बहुत दिनों तक स्मरण रखता है। यही बात मानस वृत्ति पर भी लागू है। यदि व्यक्ति अपने मानस-वृत्ति के अनुकूल विषयों का अध्ययन करता है तो उसके मस्तिष्क पर उसकी छाप भी गहरी पड़ती है। फलत वे छाप प्रबल होती हैं और वे विषय अधिक समय तक याद रहते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि धारण करने की क्रिया की सबलता तथा दुर्बलता व्यक्ति की अभिरुचि एव मानस-वृत्ति पर भी निर्भर करती है जैसे— किसी छात्र को इतिहास मे अभिरुचि है, परन्तु भूगोल मे अभिरुचि नही है तो इतिहास का अध्ययन करने के फलस्वरूप बने हुए स्मृति चिह्न का भूगोल के अध्ययन द्वारा बने हुए स्मृति चिह्नों से अधिक प्रबल होगे। फलत उस व्यक्ति को इतिहास की बातें भूगोल की बातो से अधिक याद रहेंगी।

इस प्रकार हमने उन सारी प्रमुख बातो का अध्ययन कर लिया जो धारण करने की क्रिया को अत्यधिक रूप से प्रभावित करती हैं। पर यहाँ एक दूसरा प्रश्न उठता है कि इसका क्या प्रमाण है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा सीखा हुआ अमुक विषय धारण किया गया तथा उसके धारण की क्रिया सबल है या दुर्बल। अर्थात् धारण करने की क्रिया की जाँच होनी आवश्यक है। इसके हेतु बहुत सी प्रयोगात्मक जाँच (Test) का उपयोग मनोवैज्ञानिको द्वारा किया गया है। पर मुख्यत निम्न लिखित तीन जाँच (Test) हैं, जिनका उल्लेख अब करेंगे। उपर्युक्त बातो को पृष्ठ २६७ पर दी गयी तालिका में देखें।

३ प्रत्याह्वान करना (Recalling) तथा
४ पहचानने (Recognizing) की क्रियाएं

प्रत्याह्वान करना तथा पहचानना स्मृति क्रिया के क्रमश तीसरे और चौथे अग है। ये ही धारण क्रिया को जाँचने की विधियों के नाम से पुकारा जाता है।

धारण क्रिया की जाँच करने की विधि (Test of Retention)



१ प्रत्याह्वान करना
(Recalling)

यहाँ पर सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि प्रत्याह्वान किसे कहते हैं। जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है। यह धारण की क्रिया को जाँचने की एक विधि है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम वर्तमान चेतना में अपनी पूर्व की अनुभूतियों को (मौलिक उत्तेजक परिस्थिति को) उन अनुभूतियों को उत्पन्न करने वाली उत्तेजनाओं की अनुपस्थिति में ही लाते हैं। अर्थात यह कहा जाय कि प्रत्याह्वान की क्रिया म हम भूतकाल में सीखे हुए विषयो या अनुभव की गयी घटनाओं को उन

धारण-क्रिया को प्रभावित करने वाली मुख्य बातें
(Some Important Factors influencing Process of Retention)

1. मस्तिष्क की बनावट
2. सीखने की मात्रा
   - (क) सीखे हुए विषय का स्वरूप
     1. विषय की सार्थकता
     2. विषय की लम्बाई
     3. सीखे हुए विषय का क्रम मे स्थान
     4. सीखे हुए विषय का वातावरण
     5. सीखे हुए विषय की भावनुभूति
   - (ख) सीखने की विधियाँ
     1. विराम अथवा अविराम-विधि से सीखना
     2. पूर्ण अथवा आंशिक विधि
     3. स्वत दुहराने की विधि
     4. समझ कर सीखना अथवा रट कर सीखने की विधि
     5. लक्ष्यरहितया निष्क्रिय सीखना अथवा उद्देश्यपूर्ण या
     6. संकेत का उपयोग कर सीखना इत्यादि
   - (ग) अतिरिक्त बातें
     1. सीखने की इच्छा
     2. अपूर्ण रूप से सीखना
     3. सीखने की उपयोगिता
3. धारण करनेवाले की विशेषताएँ
   - (अ) उम्र
   - (ब) यौन
   - (स) बुद्धि
   - (द) स्वास्थ्य (शारीरिक तथा मानसिक)
4. अभिरुचि तथा मनोवृत्ति

विषयों या घटनाओं की अनुपस्थिति में ही अपनी वर्तमान चेतना में लाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि यहाँ दो बातों का रहना आवश्यक है—

(१) पूर्व अनुभूति (Past experience) तथा (२) इन पूर्व अनुभूतियों को उनके मौलिक उत्तेजक परिस्थितियों (Orginal Stimulus Situation) की अनुपस्थिति में ही वर्त्तमान चेतना में लाना।

प्रत्याह्वान की क्रिया दो प्रकार की होती है—(क) तात्कालिक प्रत्याह्वान (Immediate Recall) (ख) विलम्बी प्रत्याह्वान (Delayed Recall)। तात्कालिक प्रत्याह्वान उसे कहते हैं, जब किसी विषय को सीखने के कुछ समय पश्चात तुरत उसका प्रत्याह्वान किया जाता है। परन्तु विलम्बी प्रत्याह्वान उसे कहते है जब किसी भी विषय को सीखने के कुछ समय बाद उसका प्रत्याह्वान किया जाता है। तात्कालिक प्रत्याह्वान की विधि द्वारा सीखने की क्रिया की भी जाँच की जाती है। अतः यह सीखने की एक विधि भी है। परन्तु यहाँ हम धारण क्रिया की भी जाँच के लिए विलम्बी प्रत्याह्वान का ही उपयोग करते है। एक उदाहरण लेकर इसे हम अधिक स्पष्ट कर सकते हैं—एक व्यक्ति को निरर्थक पदों (१२ पदों) की एक सूची सीखने को दी जाती है और इसे एक बार समान समय के अन्तर पर (मानो दो सेकण्ड) सभी पदों को एक एक कर स्लिट द्वारा दिखाया जाता है। तत्पश्चात् उसे अपनी स्मृति से उन देखे हुए पदों का प्रत्याह्वान करने को कहा जाता है। ऐसे प्रत्याह्वान की क्रिया को हम तात्कालिक प्रत्याह्वान (Immediate recall) की संज्ञा देते है। यह क्रिया उस समय तक दुहरायी जाती है जब तक कि वह व्यक्ति सूची के सभी पदो को सही सही नही कह देता है। तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इतने प्रयासो (६ या ७ प्रयास जो व्यक्ति कर लेता है) के बाद उस व्यक्ति ने इन १२ निरर्थक पदों की सूची को सही-सही सीख लिया है। अब हम यदि उस व्यक्ति से चार घण्टे या चार दिन या एक महीने के बाद उन सीखे हुए निरर्थक पदो की सूची का प्रत्याह्वान करने को कहें तो उस व्यक्ति के द्वारा किये प्रत्याह्वान की क्रिया को विलम्बी प्रत्याह्वान (Delayed Recall) कहेंगे। इससे यह मालूम हो जाता है कि भूतकाल मे सीखे हुए विषय का कितना अंश वह व्यक्ति धारण कर सका है जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि सीखने की क्रिया जितनी ही दृढ (Strong) होगी उतनी ही दृढ धारण करने की क्रिया भी होगी। फलतः प्रत्याह्वान भी उतना ही अधिक सफल होगा। इन तथ्यों का पुष्टिकरण मनोवैज्ञानिको ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों द्वारा भी कर दिया है।

परन्तु यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि प्रायः प्रत्याह्वान द्वारा प्राप्त फलों (Results) तथा उनकी मौलिक अनुभूतियों मे जिनका प्रत्याह्वान व्यक्ति ने किया न केवल उनकी मात्रा मे अन्तर रहता है वरन् उसके स्वरूप (Nature) एवं गुण (Quality) म भी बहुत परिवर्तन पाया जाता है। इसलिए प्रत्याह्वान को क्रिया के स्वरूप पर भी ध्यान देना यहाँ अनिवार्य है।

प्रत्याह्वान का स्वरूप (Nature of Recall)—प्रारम्भ मे कुछ मनोवैज्ञानिको की ऐसी धारणा थी कि प्रत्याह्वान का स्वरूप रिप्रोडक्टिव या रिडुप्लीकेटिव (Reproductive or Reduplicative) है, अर्थात् यहाँ पूर्व-अनुभूतियो अथवा घटना का ज्यो-का-त्यो नकल होता है। इसे हम दूसरे शब्दो मे यह कह सकते है कि पूर्व-अनुभूतियाँ अपने यथार्थ रूप मे यहाँ आती है, केवल उनकी मात्रा (Degree) मे ही अन्तर रहता है। परन्तु बार्टलेट (Bartlett) नामक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने अपने प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्याह्वान मे भूतकाल मे सीखे हुये विषय अथवा अनुभव की हुई अनुभूतियो का ज्यो-का-त्यो वर्णन नही करता है, वरन् उनके रूप (Form) मे भी काफी परिवर्तन पाया जाता है। अत उनका कहना है कि यह एक रचनात्मक (Constructive) एवं गत्यात्मक (Dynamic) मानसिक प्रक्रिया है। बार्टलेट महोदय ने निम्नलिखित दो विधियो द्वारा प्रयोग करे उपर्युक्त नियम की स्थापना की है—(१) थोड़े-थोड़े समय के बाद एक ही व्यक्ति द्वारा क्रमबद्ध रूप से दुहराने की विधि (Method of successive reproduction) जिसमें एक ही व्यक्ति पूर्वपठित कहानी का क्रमबद्ध प्रत्याह्वान थोड़े-थोड़े समय के बाद स्वय करता है तथा (२) क्रमानुसार दुहराने की विधि (Method of serial reproduction), जिसमे एक व्यक्ति एक कहानी को पढता है फिर उसका प्रत्याह्वान दूसरे के सामने करता है जिसको सुनकर दूसरा व्यक्ति एक तीसरे व्यक्ति के सामने दुहराता है। इस तरह एक व्यक्ति द्वारा किये गये प्रत्याह्वान को सुनकर दूसरा व्यक्ति उसका प्रत्याह्वान करता है।

यह जानने के लिए कि धारण करने की विधि (Period of retention), मे क्या होता है, हम प्रत्याह्वान की गयी वस्तु (Matter) एव विषय की तुलना सीखे हुए विषय से करते हैं कि पहले के द्वारा मस्तिष्क मे एक चिन्ह छोड़ा गया है जो दूसरे मे फिर से चेतना प्राप्त करता है (Revived)। जब सीखा हुआ विषय कम विषय का प्रत्याह्वान होता है तब हम कहते हैं कि उन चिन्हो के कुछ अश या तो मिट गये है या कोई चीज प्रत्याह्वान मे रुकावट ला रही है।(Something is checking the recall)। कुछ ऐसी स्थिति भी होती है, जब जो विषय सीखा गया है उनके प्रत्याह्वान की मात्रा (Degree or quality) मे ही नही, बल्कि उनके रूप (Form or quality or nature) मे भी काफी अन्तर होता है। इस तरह की वस्तुस्थिति (Phenomenon) मे घट-बढ को सावधानी से अध्ययन करने के लिए हमलोग बार्टलेट महोदय के अत्यन्त ही आभारी है। उन्होने प्रयोज्यो को कुछ कहानियाँ पढने को कहा और फिर उसका साराश करके जो उन्होने पढा था उसे दुहराने को कहा (पुनरावृत्ति करने को कहा)। थोड़े-थोड़े समय के अन्तर पर प्रत्येक व्यक्ति द्वारा पढी हुई कहानी का प्रत्याह्वान किया गया। यहाँ बार्टलेट ने अपूर्णता के अतिरिक्त कुछ विशेषताएँ भी पायी जिनने प्रत्याह्वान किये हुये विषय को सीखे हुये विषय से भिन्न बना दिया।

प्रयोज्यों द्वारा किये गये प्रत्याह्वान पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रयोज्यों को कहानी की एक साधारण छाप मात्र मिलती है तथा उन्होंने एक प्रत्याह्वान से दूसरे प्रत्याह्वान में इसका प्रत्याह्वान करीब करीब समान रूप में किया। अधिकांशतः प्रत्याह्वान किया हुआ विषय मौलिक विषय से अधिक सार्थक (Sensible) था। पर कभी कभी इसमें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य कुछ चिह्न (Signs) पाये जाते थे। सिर्फ कुछ असाधारण (Outstanding) विवरण ही दृढ़ रह सके।

सीखे हुये विषय तथा उनके प्रत्याह्वान में पायी जाने वाली विभिन्नता इतनी आश्चर्यजनक होती है कि बार्टलेट महोदय ने स्मृति में रचनात्मक तत्त्व (Constructive elements) के महत्त्व की ओर संकेत किया। प्रारम्भ में एक सामान्य छाप मात्र (Scheme) रहता है जो बाद में विस्तृत हो जाता है। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे बाद में प्रयोज्य कुछ पूरा कर रहा हो।

इसी तरह के प्रयोग चित्रों के खींचने (Drawing of figures) पर भी किये गये हैं और इनके आधार पर भी प्राप्त निष्कर्ष समान (Similar) तरह के हैं। उल्फ (Wulf) आलपोर्ट (Allport) गिब्सन (Gibson) इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर इस सामान्य नियम की स्थापना की है। चित्रों का पुनः उत्पन्न किया हुआ रूप उनके मौलिक रूप (Original form) से कुछ विशेष रूप से क्रमानुसार भिन्न होता है (Different in certain systematic way) जैसे—(१) पुनः उत्पन्न किये हुए चित्र को एक परिचित रूप की तरह बनाने की प्रवृत्ति (२) सुडौलपन की ओर प्रवृत्ति, (३) तीव्र बनाने की प्रवृत्ति(Tendency towards sharpening) अर्थात् विशिष्ट आकृति (Form) को विस्तृत (Exaggerate) करना (४) आकार में कमी तथा (५) विशिष्ट आकृति में कुछ अपनी ओर से जोड़कर उसे समतल बनाना (Levelling or Toning down of Outstanding Features)।

इस सम्बन्ध में जेस्टाल्टवादियों (Gestaltists) का भी अपना एकमत है जिसका वर्णन यहाँ करना अभीष्ट नहीं है।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रत्याह्वान किए जाने वाले विषय का स्वरूप मौलिक विषय की बिल्कुल नकल न होकर रचनात्मक (Constructive) ढंग का होता है।

प्रत्याह्वान को प्रभावित करने वाली बातें (Factors that effect Recall)—यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात है कि प्रत्याह्वान की क्रिया धारण क्रिया पर ही निर्भर करती है। जिस विषय या वस्तु को हम अपने मस्तिष्क में स्मृति चिह्न के रूप में धारण नहीं कर पाते हैं उनका प्रत्याह्वान भी नहीं कर सकते हैं। फिर स्मृति चिह्न जितना ही गहरा होगा उतना ही धारण क्रिया प्रबल होगी। फलतः प्रत्याह्वान की क्रिया भी अधिक सफल होगी चूँकि प्रत्याह्वान धारण करने की क्रिया पर ही निर्भर करता है। अतः धारण करने की क्रिया को प्रभावित करने

वाली जितनी भी बातें है, जैसे—(१) मस्तिष्क की बनावट, (२) सीखे हुए विषय का स्वरूप तथा सीखने की विधि, (३) धारण करने वाले व्यक्ति की विशेषताएँ—उसकी उम्र, योनि, स्वास्थ्य (मानसिक तथा शारीरिक दोनों, (४) धारण करने वाले व्यक्ति की अभिरुचि तथा मनास-वृत्ति आदि, जिनका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इन सभी का प्रत्याह्वान की क्रिया को प्रभावित करने में भी अत्यधिक प्रधानता है।

* प्रत्यह्वान में उत्तेजना का स्थान (Role of Stimulus in Recall)—प्रत्याह्वान के सम्बन्ध में उल्लेख करते समय ही आरम्भ में स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रत्याह्वान की क्रिया मौलिक उत्तेजना-विशेष जिसका कि प्रत्याह्वान किया जा रहा है उनकी अनुपस्थिति में ही होती (Absence of the original Stimulus) है जैसे—हम भूतकाल में ही मिले हुए मित्र के नाम का प्रत्याह्वान करते है जो हमारे सामने अभी उपस्थित भी नहीं है। हालांकि यह कहना ठीक है कि प्रत्याह्वान में मौलिक उत्तेजक (Original Stimulus) अनुपस्थित रहती है, फिर भी यह कहना गलत होगा कि मौलिक उत्तेजक परिस्थिति के अतिरिक्त अन्य उत्तेजनाएँ भी उपस्थित नहीं रहती हैं। चूँकि अन्तिम उत्तेजनाएँ जिनका कि किसी-न-किसी विशेष रूप से उस मौलिक उत्तेजक परिस्थिति से सम्बन्ध रहता है, हमे एक घटना-विशेष या नाम-विशेष के प्रत्यह्वान में मदद पहुँचाती है। इस तरह की सहायक उत्तेजनाएँ दो प्रकार की होती है—(१) बाह्य उत्तेजनाएँ (External Stimuli or Cues) (२) आन्तरिक उत्तेजनाएँ (Intenal Stimuli or Cues)। बाह्य उत्तेजनाएं वे हुईं जो व्यक्ति के शरीर के बाहर रहती हैं तथा आन्तरिक उत्तेजनाएँ उन उत्तेजनाओं को कहा जाता है जो व्यक्ति के शरीर के अन्दर रहती है। इन दोनों प्रकार की उत्तेजनाएँ प्रत्याह्वान में मदद पहुँचाती हैं। प्रत्याह्वान में सहायता पहुँचाने वाली आन्तरिक एवं बाह्य उत्तेजनाओं का उदाहरण क्रमश इस प्रकार दिया जा सकता है, जैसे—उल्टी होने पर, किसी व्यक्ति को इंगलैंड जाते समय जहाज पर समुद्री बीमारी (Sea Sickness) के कारण हुए बहुत जोरों की उल्टी की याद आ सकती है। उसी प्रकार किसी व्यक्ति को किसी अन्य स्त्री को अपनी पत्नी-जैसी साड़ी पहने रहने पर अपनी स्त्री की याद आ सकती है। यह इसलिए होता है कि वर्तमान उत्तेजना तथा भूत काल के अनुभवों में एक प्रकार का साहचर्य (Association) रहता है।

* रिड्यूस्ड क्यूज (Reduced Cues)—कभी-कभी पूर्व-अनुभव किये हुए की परिस्थिति का एक अंश (Fraction) मात्र ही उस पूर्ण परिस्थिति का प्रत्याह्वान करा देता है, जैसे—अपने किसी मित्र का वस्त्र अथवा उसकी पदचाप ही उस मित्र का पूरा प्रत्याह्वान करा देने में समर्थ होती है। यह प्राय देखा जाता है कि वर्ग में शिक्षक द्वारा किसी प्रश्न के पूछने पर जब विद्यार्थी उसका सही नहीं उत्तर देने में असमर्थ होता है तब शिक्षक द्वारा थोड़ा-सा संकेत ही, उस विद्यार्थी को उस प्रश्न का सही सही उत्तर देने में मदद पहुँचाता है। यह इसलिए होता है कि शिक्षक द्वारा

दिया हुआ वह थोड़ा सकेत को ही उसे पूरे प्रश्न के उत्तर का प्रत्याह्वान कर देता है। इस थोड-से संकेत को ही जो इससे सम्बन्धित पूरी घटना या परिस्थिति का प्रत्याह्वान करा देता है उसे ही रिडयुस्ड क्यूज़ की संज्ञा दी जाती है। ये प्रत्याह्वान में सहायक का काय करती है (Aids in Recall)। यह इसलिए होता है कि इन सकेत और उस परिस्थिति और घटना विशेष मे जिसका कि यह प्रत्याह्वान करता है एक प्रकार का साहचय स्थापित हुआ रहता है।

प्रत्याह्वान में साहचर्य का स्थान (Role of Association Recall)—ऊपर यह स्पष्ट हो चुका है कि प्राय एक प्रकार की अनुभूति का प्रत्याह्वान दूसरी अनुभूति के प्रत्याह्वान मे सहायता पहुचाता है। ऐसा इन दोनों अनुभूति मे साहचर्य (Association) या यह कहा जाय कि एक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण ही होता है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि प्रत्याह्वान करने मे कुछ सहायक भी हैं (Aids in recall)। प्रत्याह्वान में सदा पव अनुभूति को ही वतमान चेतना में लाना होता है तथा साहचर्य मे भी भूतकाल का प्रभाव वतमान मे पडता है। अत साहचय और प्रत्याह्वान मे निकट सम्बन्ध है अर्थात हम यह कह सकते है कि साहचय प्रत्याह्वान कराने में बहुत सहायता पहुँचाता है (Association serves as an aid in recall)। इसे जानने के लिए हमें यह मानना होगा कि किस प्रकार साहचर्य प्रत्याह्वान मे सहायक के रूप में काय करता है।

प्रत्याह्वान के सहायक के रूप में साहचर्य जो काय करता है, उस सम्बन्ध में दो नियम हैं— (१) प्रधान नियम (Primary Laws) तथा (२) सहायक नियम (Secondary Laws)।

इनका अध्ययन अगले अध्याय मे किया जायगा। इस अध्याय में ही यह स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार साहचर्य के नियम प्रत्याह्वान में सहायक का काय करते है (How they work as aids in recall)।

२ पहचानना या प्रतिभिज्ञा
(Recognizing)

कभी कभी ऐसा होता है कि हम पूर्व अनुभव किये हुए विषय या घटना का प्रत्याह्वान करने मे समर्थ नही हो पाते है। परन्तु, यदि उस विषय या घटना विशेष को अन्य विषयों के साथ मिलाकर हमारे सामने प्रस्तुत किया जाय तो हम उसको पहचान लेते हैं। इस तरह उसका प्रत्याह्वान न होकर उसकी प्रतिभिज्ञा हो जाती है।

यहा पर सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि पहचानने की क्रिया या प्रतिभिज्ञा का क्या अथ होता है।

पहचानना या प्रतिभिज्ञा किसे कहते हैं—यही प्रत्याह्वान के समान धारण क्रिया की जाँचने की एक दूसरी मुख्य विधि है। यह एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी पूर्व एवं परिचित अनुभूतियो को नयी तथा

अपरिचित अनुभूतियो से अलग करता है। यहाँ व्यक्ति द्वारा अनुभव की गयी वस्तुओ या विधियो को जिनसे वह परिचित है, अन्य नयी एव अपरिचित वस्तुओ एव विधियो को जिनसे वह परिचित है, अन्य नयी एव अपरिचित वस्तुओ एव विधियो को साथ मिला (Mix) कर प्रस्तुत किया जाता है। व्यक्ति को अपने पूर्वानुभूत एव परिचित वस्तुओ को नयी तथा अपरिचित वस्तुओ से अलग करना पडता है। प्राय: व्यक्ति ऐसा करने मे समर्थ हो जाता है। इस क्रिया को ही पहचानने की क्रिया की सज्ञा दी जाती है। पहचानने की क्रिया पर मनोवैज्ञानिको ने अनेक प्रयोग किये हैं।

मान लिया जाय कि हमे यह जानना है कि हमारा प्रयोज्य एक पूर्वानुभूत तथा परिचित बारह निरर्थक पदो की एक सूची को पहचानने मे समर्थ होता है या नही। अर्थात्, हम उन निरर्थक पदो को धारण-क्रिया की जाँच, पहचानने की विधि मे करना चाहते है। यह प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—प्रयोज्य को सर्वप्रथम सिर्फ उन निरर्थक पदो की सूची को एक-एक कर कुछ समय के अन्तर पर एक छिद्र द्वारा दो या तीन बार केवल दिखलाया जाता है, उसका तात्कालिक प्रत्याह्वान नही किया जाता है। ऐसा इसलिए करते है चूँकि हमे यहाँ इन निरर्थक पदो की सूची से प्रयोज्य का सिर्फ परिचय मात्र ही करवाना है, उसे उन पदो को याद नही करवाना है। फिर कुछ समय, जैसे दो घण्टे, दो दिन या एक महीना के समय के बाद, जैसा हम चाहे, यह जानने की चेष्टा करते है कि पूर्वानुभूति एव परिचित निरर्थक पदो की सूची मे से कितने पदो को प्रयोज्य अभी तक स्मरण किये हुए है। ऐसा करने के लिए हम उन पूर्वानुभूति एव परिचित पदो की सूची को एक समान सख्या वाले निरर्थक पदो की सूची के साथ अव्यवस्थित ढग से मिश्रित (Randomly mixed) कर प्रयोज्य के सामने एक-एक कर निरर्थक पदो को प्रस्तुत करेंगे और प्रयोज्य से यह पूछेंगे कि इनमे से किन-किन पदो को उसने पहले देखा है तथा उनसे परिचित है और किनसे वह अपरिचित है अथवा वे नये हैं। प्रयोज्य को केवल परिचित एव पूर्वानुभूति पदो को ही पहचानने को कहेंगे। यह प्रयोग शब्दों (Words) तथा चित्रो (Figures) पर भी किया है।

पहचानने की क्रिया निम्नलिखित दो प्रकार की होती हैं।

१ **निश्चित पहचान**—यह उस पहचान को कहते है जब व्यक्ति अपनी पूर्वानुभूति तथा परिचित घटना का अनुभव, कहाँ और किस समय हुआ था, कर पाता है अर्थात् उसे इसका निश्चयपूर्वक ज्ञान हो पाता है।

२ **अनिश्चित पहचान**—अनिश्चित पहचान मे पहचान तो होती है, लेकिन यह अनिश्चित होता है कि व्यक्ति ने उसे पूर्वानुभूति एव परिचित घटना का कहाँ और किस समय परिचय प्राप्त किया था। व्यक्ति सिर्फ इतना ही कह पाता है कि उसने अमुक वस्तु कही और कभी देखा है, परन्तु, कब और कहाँ देखा है, इसे निश्चित रूप से कहने मे असमर्थ पाया जाता है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि निश्चित पहचान के समान सिर्फ पूर्वानुभूति एव परिचित घटना या विषय के परिचय की झलक मात्र ही नहीं रहती वरन् समय (Time) और स्थान (Place)

का ज्ञान भी रहता है। प्रयोग द्वारा भी इस बात की जानकारी की गयी है। इस तरह हम देखते हैं कि पहचानने की विधि से धारण क्रिया की जाँच सुलभता से सम्भव है।

प्रत्याह्वान तथा प्रतिभिज्ञा में अन्तर (Distinction between Recall and Recognition)—

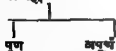
पिछले पृष्ठों में प्रत्याह्वान तथा पहचानने की क्रिया दोनों ही पर अलग अलग प्रकाश डाला गया है जिससे यह स्पष्ट है कि दोनों ही स्मरण क्रिया के अंग होते हुए भी एक दूसरे से निम्नलिखित बातों में भिन्न है।

१ प्रत्याह्वान की क्रिया में मूल उत्तेजना अनुपस्थित रहती है परन्तु पहचानने की क्रिया में यह उपस्थित रहती है। प्रत्याह्वान की क्रिया में व्यक्ति को मौलिक उत्तेजना की अनुपस्थिति में पूर्वानुभूत विषयों एवं घटनाओं को वर्तमान चेतना में लाना पड़ता है। लेकिन पहचानने की क्रिया में पूर्वानुभूत एवं परिचित घटनाओं या विषयों को अपरिचित एवं नयी घटनाओं या विषयों के साथ अव्यवस्थित ढंग से मिश्रित कर व्यक्ति के सामने प्रस्तुत कर उसे पूर्वानुभूत एवं परिचित घटनाओं को नयी एवं अपरिचित घटनाओं से अलग करने को कहते हैं। अस्तु पहचानने की क्रिया में मूल उत्तेजना भी वर्तमान रहती है (The original stimulus is also present in recognition but absent in recall)।

२ जहाँ प्रत्याह्वान स्मरण क्रिया का तीसरा अंग है वहाँ पहचानना चौथा अंग है। पहचानने के बिना प्रत्याह्वान सम्भव नहीं। परन्तु प्रत्याह्वान के बिना पहचानने की क्रिया सम्भव है अर्थात् जिस पूर्वानुभूति का हम प्रत्याह्वान नहीं कर पाते हैं उसे पहचान सकते हैं परन्तु जिसे पहचान ही नहीं सकते हैं उसका प्रत्याह्वान तो कदापि सम्भव नहीं हो सकता है।

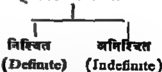
३ प्रत्याह्वान पूर्ण स्मरण एवं अपूर्ण होता है (Complete and incomplete) परन्तु पहचानने की क्रिया निश्चित एवं अनिश्चित होती है (Definite and Indefinite)।

प्रत्याह्वान की क्रिया



(Complete) (Incomplete)

पहचानने की क्रिया



इनका उल्लेख विस्तार में पीछे के पृष्ठों में किया जा चुका है।

४ प्रत्याह्वान में जहाँ परिवर्तन की गुंजाइश (Scope) है वहाँ पहचानने की क्रिया में नहीं है। प्रत्याह्वान के स्वरूप पर प्रकाश डालते समय ही बार्टलेट (Bartlett) आदि मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगों द्वारा प्राप्त फलों के आधार पर ही यह विस्तारपूर्वक स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रत्याह्वान करते समय चूँकि व्यक्ति अपने

पूर्वानुभूत विषयो मे से कुछ को भूल जाता है, वह उनकी क्षतिपूर्ति के हेतु उनमे अपने कुछ अन्य परिचित अनुभवो को जोड देता है। परन्तु पहचानने की क्रिया मे उसे पूर्वानुभूत एव परिचित विषयो एव घटनाओ को नयी एव अपरिचित घटनाओ या विषयो से सिर्फ 'ह' या 'ना' करके अलग करना है। अत यहाँ प्रत्याह्वान की क्रिया की तरह परिवर्तन की बिल्कुल गु जाइश (Possibility) नही है।

५. प्रत्याह्वान तथा पहचानने की क्रिया मे सबसे अन्तिम भेद यह है कि जहाँ प्रत्याह्वान की क्रिया पहचानने की क्रिया से कठिन (Difficult) है, वहाँ पहचानने की क्रिया प्रत्याह्वान की क्रिया से सरल (Easy) है। प्राय यह देखा जाता है कि जिस पूर्वानुभूति एव घटना या विषय का हम प्रत्याह्वान करने मे असमर्थ होते है, उनको हम आसानी से पहचान लेते है। एचिल्स (Achils) आदि अनेक मनोवैज्ञानिको ने इस सम्बन्ध में किये गये अपने प्रयोगो द्वारा प्राप्त फलो के आधार पर भी इस सामान्य नियम की स्थापना की है कि 'पहचानने की क्रिया प्रत्याह्वान की क्रिया से सर्वथा सरल एव आसान है। विभिन्न प्रकार की वस्तुओ एव विषयो के पहचानने एव प्रत्याह्वान करने के फलांक (Result) देखने से यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि एक प्रकार के विषय मे प्रत्याह्वान के फलाक तथा पहचानने के फलाक मे काफी अन्तर है। निरर्थक पदो, शब्दो, मुहावरो इत्यादि सभी विषयो मे पहचानने का फलाक प्रत्याह्वान के फलाक से कहीं अधिक है जो नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा—

विषय (Material)	फलाक (Result) पहचानना (Recognition)	प्रत्याह्वान (Recall)
१ निरर्थक पद (Nonsense syllable)—	४२%—	१२%
२ शब्द (Words) —	६५%—	३९%
३ मुहावरा (Proverbs) —	६७%—	२२%

६ पुन सीखने की विधि (Method of Relearning)— धारण क्रिया को जाँचने की जिन दो विधियों का उल्लेख ऊपर किया गया है वे धारण-क्रिया की जाँच प्रत्यक्ष रूप (Directly) मे करते है। इनके अतिरिक्त, एक और विधि है जो धारण क्रिया की जाँच 'अप्रत्यक्ष रूप' मे (Indirectly) करती है, इसे पुन सीखने की विधि (Method of Relearning) कहते हैं। किसी पूर्व-सीखे हुए विषय को प्रयोज्य द्वारा विलम्बी प्रत्याह्वान (Delayed Recall) कर लेने के पश्चात् जब यह पता चलता है कि उस विषय के कुछ अशो को वह भूल गया है तो उसी विषय को उसे फिर से पूर्णरूपेण सीखने को दिया जाता है। उस विषय को फिर से पूर्णरूपेण सीख लेने के लिए उस व्यक्ति ने उनको पहली बार आरम्भ मे सीखने के हेतु जितना प्रयास

और समय लिया था उससे कहीं कम प्रयास तथा समय वह उसे पुन सीखने में लता है। अत इसको पुन सीखने मे प्रयोज्य को पहले से कम मेहनत भी पड़ती है।

इससे यह पता चलता है कि प्रयोज्य पूव-सीखे हुए विषय के कुछ अशो को धारण किये हुए है। धारण करने की मात्रा (Amount of Retention) उस विषय को पुन सीखने के लिए प्रयासों की सख्या (Number of trials) प्रयोज्य पर भी निभर करती है। उस विषय को पुन सीखने के लिए जितना कम प्रयास प्रयोज्य लेता है इसका अथ हुआ कि उतनी ही अधिक मात्रा में उस पूव सीखे हुए विषय को वह धारण किये हुए है। अस्तु सीखने की विधि से भी धारण क्रिया की जाँच अप्रत्यक्ष रूप से सम्भव है।

(ख) विस्मरण
(Forgetting)

जिस विषय को हम सीखते हैं उसे स्मृति चिह्न (Memory trace) के रूप मे अपने मस्तिष्क मे धारण कर लेते हैं। कुछ समय के पश्चात जब उनका प्रत्याह्वान करने (Recalling) या उसको पहचानने (Recognizing) मे सफल हो जाते है तो कहा जाता है कि यह धारण किया गया है। पर कभी कभी ऐसा होता है कि जो हम सीखते हैं उसको कुछ अश का न तो हम प्रत्याह्वान (Recall) कर पाते और न उसे पहचान (Recognize) ही पाते है—इसी को भूलने की प्रक्रिया कहते है। अत कुछ मनोवैज्ञानिको (Psychologists) का कहना है कि भूलना एक मानसिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति द्वारा किसी सीखे हुए विषय को धारण (Retention) करने मे असमर्थता के कारण ही होता है। कहने का तात्पय यह है कि विस्मरण की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया के विपरीत है (Forgetting is converse of learning)। परन्तु ऐसा कहना पूणत ठीक नहीं है। प्राय देखा गया है कि जिस सीखे हुए विषय के कुछ अशो का प्रत्याह्वान या पहचान हम किसी खास समय मे जब करना चाहते है तो नहीं कर पाते है। परन्तु कुछ समय के पश्चात् न चाहते हुए भी उनको प्रत्याह्वान या पहचान करने मे सफल होते हैं अथवा थोड़ा-सा संकेतमात्र भी उनके प्रत्याह्वान करने या पहचानने मे बहुत सहायक सिद्ध होता है। उसी विषय को जब हम बाद मे सीखते हैं तो प्रारम्भ मे जितना प्रयास करना पड़ा था उससे कम प्रयास मे ही सीख लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पुन सीखने की क्रिया प्रारम्भिक सीखने की क्रिया से सहज एवं कम ही प्रयासों द्वारा सम्भव है। धारण क्रिया (Retention) का हम प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण नहीं कर सकते हैं परन्तु पहले सीखे गये विषयको बाद मे सीखे गये विषय पर पड़े प्रभाव द्वारा हम इसे जान सकते हैं। इसपर तो हमने धारण क्रिया की जाँच की विधियों (Methods of testing retention) का उल्लेख करते समय ही विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है (पृष्ठ २६८ से २७६ तक देखें)।

इसी प्रकार कुछ स्मृतियाँ, जो सामान्यत बिलकुल ही चेतना (Conscious

state of mind) में नहीं आ पाता है, सम्मोहनावस्था (Hypnotic state) में पुनः प्राप्त हो जाती है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि विस्मरण की प्रक्रिया सदा धारण न करने या स्मृति-चिह्न (Memory traces) के क्षीण (Weakening) होने के कारण ही नहीं होता है। अतः किसी पूर्व-सीखे हुए विषय का आवश्यकता-अनुसार प्रत्याह्वान या पहचान करने की असमर्थता को हम विस्मरण की संज्ञा दें, तो अधिक उपयुक्त होगा (So forgetting is not always the failure to retain but failure to recall or recognize)।

भूलने का स्वरूप
(Nature of Forgetting)

इस विषय में मनोवैज्ञानिकों के बीच दो विरोधी मत हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का, जिसमें एबिंगहौस (Ebbinghaus) का नाम प्रमुख है, विचार है कि विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया (Passive mental process) है। उनका कहना है कि हम काल-व्यवधान (Lapse of time) तथा उस बीच में सीखे हुए विषयों की कभी पुनरावृत्ति नहीं करने के कारण ही भूलते हैं। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे हम पहले सीखे हुए विषय को भूलते जाते हैं। उनके अनुसार यदि किसी पहले सीखे हुए विषय का प्रत्याह्वान सीखने के तीन महीने के बाद किया जाय और फिर उसका प्रत्याह्वान आठ महीनों के बाद किया जाय, तो दूसरी अवस्था में भूलने की मात्रा पहले से अधिक होगी, चूँकि पहली अवस्था के अपेक्षाकृत दूसरी अवस्था में समय काफी बीत चुका।

कहने का तात्पर्य यह है कि किसी विषय को सीखने तथा उसका प्रत्याह्वान करने के बीच की अवधि (Retention-Interval) जैसे-जैसे अधिक होती जायगी वैसे-वैसे भूलने की मात्रा (Amount of forgetting) भी बढ़ती जायगी। इसका कारण यह है कि समय के बीतते जाने से उनके द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति-चिह्न (Memory traces) भी क्रमशः क्षीण होते जाते हैं। इस तथ्य की पुष्टि एबिंगहौस (Ebbinghaus) ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों (Experimental studies) के द्वारा प्राप्त विस्मरण-रेखा (Forgetting curve) से भी किया है, जिसका उल्लेख विस्तार में आगे पृष्ठ २७९-२८० पर किया गया है।

परन्तु, मूलर, पिलजेकर, उडवर्थ तथा फ्रायड (Mullar, Pilzecker, Woodworth and Freud) इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों (Experimental studies) के आधार पर एबिंगहौस महोदय के उपर्युक्त विचार का खण्डन किया है। उनका विचार है कि 'विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया नहीं है वरन् यह सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है' (Forgetting is not a passive mental process, rather it is an active mental process)। इस विचार की पुष्टि के लिए उन्होंने निम्नलिखित दो प्रमुख प्रमाणों को उपस्थित किया है—

और समय लिया था उससे कहीं कम प्रयास तथा समय वह उसे पुन सीखने मे लता है। अत इसको पुन सीखने मे प्रयोज्य को पहले से कम मेहनत भी पड़ती है।

इससे यह पता चलता है कि प्रयोज्य पूर्व-सीखे हुए विषय के कुछ अ शो को धारण किये हुए है। धारण करने की मात्रा (Amount of Retention) उस विषय को पुन सीखने के हेतु प्रयासों की सख्या (Number of trials) प्रयोज्य पर भी निर्भर करती है। उस विषय को पुन सीखने के लिए जितना कम प्रयास प्रयोज्य करता है इसका अर्थ हुआ कि उतनी ही अधिक मात्रा में उस पूर्व सीखे हुए विषय को वह धारण किये हुए है। अस्तु सीखने की विधि से भी धारण क्रिया की जाँच अप्रत्यक्ष रूप से सम्भव है।

(ख) विस्मरण
(Forgetting)

जिस विषय को हम सीखते हैं उसे स्मृति चिह्न (Memory trace) के रूप मे अपने मस्तिष्क मे धारण कर लेते है। कुछ समय के पश्चात जब उनका प्रत्या ह्वान करने (Recalling) या उसको पहचानने (Recognizing) मे सफल हो जाते है तो कहा जाता है कि यह धारण किया गया है। पर कभी-कभी ऐसा होता है कि जो हम सीखते है उसको कुछ अ श का न तो हम प्रत्याह्वान (Recall) कर पाते और न उसे पहचान (Recognize) ही पाते हैं—इसी को भूलने की प्रक्रिया कहते है। अत कुछ मनोवैज्ञानिकों (Psychologists) का कहना है कि भूलना एक मानसिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति द्वारा किसी सीखे हुए विषय को धारण (Retention) करने में असमर्थता के कारण ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विस्मरण की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया के विपरीत हो है (Forgetting is converse of learning)। परन्तु ऐसा कहना पूर्णत ठीक नहीं है। प्राय देखा गया है कि जिस सीखे हुए विषय के कुछ अ शो का प्रत्याह्वान या पहचान हम किसी खास समय मे जब करना चाहते है तो नही कर पाते हैं। परन्तु, कुछ समय के पश्चात न चाहते हुए भी उनको प्रत्याह्वान या पहचान करने मे सफल होते हैं अथवा थोड़ा-सा संकेतमात्र भी उनके प्रत्याह्वान करने या पहचानने मे बहुत सहायक सिद्ध होता है। उसी विषय को जब हम बाद म सीखते है तो प्रारम्भ मे जितना प्रयास करना पड़ा था उससे कम प्रयास से ही सीख लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पुन सीखने की क्रिया प्रारम्भिक सीखने की क्रिया से सहज एव कम ही प्रयासों द्वारा सम्भव है। धारण क्रिया (Retention) का हम प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण नही कर सकते हैं परन्तु पहले सीख गये विषय को बाद म सीख गये विषय पर पडे प्रभाव द्वारा हम इसे जान सकते हैं। इस पर तो हमने धारण क्रिया की जाँच की विधियों (Methods of testing retention) का उल्लेख करते समय ही विस्तार-पूर्वक प्रकाश डाला है (पृष्ठ २६८ से २७६ तक देखें)।

इसी प्रकार कुछ स्मृतियाँ जो सामान्यत बिलकुल ही चेतना (Conscious

state of mind) में नहीं आ पाता है, सम्मोहनावस्था (Hypnotic state) में पुन प्राप्त हो जाती है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि विस्मरण की प्रक्रिया सदा धारण न करने या स्मृति- चिह्न (Memory traces) के क्षीण (Weakening) होने के कारण ही नहीं होता है। अत किसी पूर्व सीखे हुए विषय का आवश्यकता-अनुसार प्रत्याह्वान या पहचान करने की असमर्थता को हम विस्मरण की संज्ञा दें, तो अधिक उपयुक्त होगा (So forgetting is not always the failure to retain but failure to recall or recognize)।

भूलने का स्वरूप
(Nature of Forgetting)

इस विषय में मनोवैज्ञानिकों के बीच दो विरोधी मत हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का, जिसमें एबिंगहौस (Ebbinghaus) का नाम प्रमुख है, विचार है कि विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया (Passive mental process) है। उनका कहना है कि हम काल-व्यवधान (Lapse of time) तथा उस बीच में सीखे हुए विषयों की कभी पुनरावृत्ति नहीं करने के कारण ही भूलते हैं। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे हम पहले सीखे हुए विषय को भूलते जाते हैं। उनके अनुसार यदि किसी पहले सीखे हुए विषय का प्रत्याह्वान सीखने के तीन महीने के बाद किया जाय और फिर उसका प्रत्याह्वान आठ महीनों के बाद किया जाय, तो दूसरी अवस्था में भूलने की मात्रा पहले से अधिक होगी, चूँकि पहली अवस्था के अपेक्षाकृत दूसरी अवस्था में समय काफी बीत चुका।

कहने का तात्पर्य यह है कि किसी विषय को सीखने तथा उसका प्रत्याह्वान करने के बीच की अवधि (Retention-Interval) जैसे-जैसे अधिक होती जायगी वैसे-वैसे भूलने की मात्रा (Amount of forgetting) भी बढ़ती जायगी। इसका कारण यह है कि समय के बीतते जाने से उसके द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति-चिह्न (Memory traces) भी क्रमश क्षीण होते जाते हैं। इस तथ्य की पुष्टि एबिंगहौस (Ebbinghaus) ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों (Experimental studies) के द्वारा प्राप्त विस्मरण-रेखा (Forgetting curve) से भी किया है, जिसका उल्लेख विस्तार में आगे पृष्ठ २७९-२८० पर किया गया है।

परन्तु, मूलर, पिलजेकर, उडवर्थ तथा फ्रायड (Mullar, Pilzecker, Woodworth and Freud) इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों (Experimental studies) के आधार पर एबिंगहौस महोदय के उपर्युक्त विचार का खण्डन किया है। उनका विचार है कि 'विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रतिक्रिया नहीं है वरन् यह सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है' (Forgetting is not a passive mental process, rather it is an active mental process)। इस विचार की पुष्टि के लिए उन्होंने निम्नलिखित दो प्रमुख प्रमाणों को उपस्थित किया है—

हम काल व्यवधान (Lapse of time) के फलस्वरूप स्मृतिचिह्नों के क्षीण होने के कारण नहीं भूलते बल्कि इस काल व्यवधान मे किसी विषयों को सीखने तथा उसका प्रत्याह्वान करने के बीच की गयी अथवा सीखी गयी दूसरी बातों के अभाव के कारण ही भूलते हैं। पहली सीखी गयी बातों द्वारा बने स्मृति चिह्न को बाद म सीखी गयी बातों के स्मृति चिह्न क्षीण बना देते है। अर्थात्, पहले सीख हुए विषयो द्वारा बने स्मृति चिह्न सिर्फ अपने आप काल व्यवधान के कारण क्षीण नही होते वरन इस अवधि में किये गये कोई कार्य या सीखे गये अन्य विषयो के फलस्वरूप बने नये स्मृति चिह्न का पहले के सीखे हुए विषयो द्वारा मस्तिष्क मे बने स्मृति चिह्न के प्रत्याह्वान म रुकावट डालने के कारण ही क्षीण हो जाते है। इसके कारण हम पहले सीखे गये विषय का प्रत्याह्वान ठीक से कर पाने मे असमर्थ हो जाते हैं। इसे इन्होंने पश्चोन्मुख अवरोध (Retroactive-Inhibition) की सज्ञा दी है। इसका उल्लेख भूलने के कारणो पर प्रकाश डालते समय विस्तारपूर्वक आगे पृष्ठ २८ २८१ में किया गया है।

इस विचार के विरोध मे दूसरे मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जब हम एक अवस्था मे किसी विषय को सीखने के पश्चात् एक निश्चित समय के लिये आराम करते है अथवा सो जाते है और सोकर उठने के बाद जब उसका प्रत्याह्वान करते है तथा दूसरी अवस्था मे उसी या उसी के समान विषय को सीखने के बाद आराम करने या सोने के बजाय पहली अवस्था के बराबर समय के लिये काम में लग जाने के पश्चात् उसका प्रत्याह्वान करते है तब हम पाते हैं कि भूलने की मात्रा पहली अवस्था में दूसरी अवस्था की अपेक्षा कम ही होती है। इसे हम एक प्रयोगात्मक अध्ययन से प्राप्त 'सामग्रियो (Data) के सहारे अधिक स्पष्ट कर सकते हैं।

उनका कहना है कि चूंकि पहली अवस्था में आराम करने या सो जाने के कारण हम अपने को अन्य कार्यों मे नही लगाते हैं और दूसरी अवस्था में अपने को दूसरे कार्यों म लगा देते हैं इसलिए पहली अवस्था में दूसरी अवस्था के अपेक्षाकृत कम भूलते हैं। यदि भूलने की क्रिया एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया होती तो ऐसी बात की सम्भावना नही थी। अत उनके अनुसार भूलने की प्रक्रिया को एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया कहना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता है। परन्तु ऐसा कहना ठीक नही है क्योंकि जब हम आराम करते हैं अथवा सो जाते हैं तब उस अवस्था में भी हमारा स्नायुमण्डल (Nervous system) क्रियाशील (Active) रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस अवस्था म हमारा स्नायुमण्डल सदा किसी-न किसी रूप म प्रभावित होता ही रहता है जैसे—स्वप्न आदि द्वारा। चूंकि चेतनावस्था (Conscious state) म अचेतनावस्था (Unconscious) के अपेक्षाकृत हमारा स्नायुमडल अधिक क्रियाशील रहता है पहली अवस्था म दूसरी अवस्था की अपेक्षा हम कम भूलते है। अत भूलने को एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया की सज्ञा देना ही अधिक युक्तिसंगत मालूम पड़ता है।

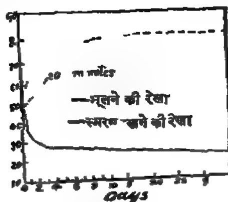
२ विस्मरण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है। इसका प्रमाण सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) नामक प्रसिद्ध मनोविश्लेषक की उस बात में भी मिलता है कि अपनी अप्रिय तथा दुःखद अनुभूतियों को भूल जाना चाहते हैं। चूँकि वे अनुभूतियाँ दुःखद होती हैं, उन्हें हम अपनी चेतना में नहीं रखना चाहते हैं, वरन् वे अचेतन में दबा दी जाती हैं। इसे फ्रायड महोदय ने दमन की क्रिया (Repression) की संज्ञा दी है। इस क्रिया के फलस्वरूप ये अप्रिय घटनाएँ अथवा अनुभूतियाँ हमारे, 'अचेतन मानस' (Unconscious mind) में चली जाती हैं। इस प्रकार के भूलने में हमारी अपनी इच्छा रहती है। साथ-ही-साथ ऐसा होने से हमारे किसी अभिप्राय की सिद्धि भी होती है। अतः इस प्रकार के भूलने को सक्रिय मानसिक प्रक्रिया कहते हैं। उदाहरण के लिए, जिस व्यक्ति को हम अधिक घृणा की दृष्टि से देखते हैं उसका नाम प्रायः भूल जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एबिंगहॉस का यह मत है कि भूलना एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया है, मूलर, पिलजेकर, उडवर्थ एवं फ्रायड इत्यादि मनोवैज्ञानिकों द्वारा खण्डित कर दिया गया है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। अतः निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि **भूलना एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है, न कि एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया** (Forgetting is not a passive mental process, rather it is an active process)

एबिंगहॉस महोदय की विस्मरण-रेखा (Ebbinghaus's Curve of Forgetting)—एबिंगहॉस (Ebbinghaus) महोदय का नाम उनके द्वारा स्मरण की क्रिया पर सर्वप्रथम प्रायोगिक अध्ययन करने के कारण मनोवैज्ञानिकों के लिए चिरस्मरणीय है। सन १८८५ ई० में उन्होंने सर्वप्रथम काल-व्यवधान के कारण धारण-क्रिया में हुई क्षति का परिमाण-सम्बन्धी अध्ययन (Quantitative study of the loss of retention with the lapse of time) किया था। उन्होंने स्वयं निरर्थक शब्द-खण्डों की एक सूची को पूर्णतः याद किया और विभिन्न काल-व्यवधान के पश्चात् जैसे—२ मिनट, १ दिन, २ दिन, ६ दिन, ३१ दिन के बाद उसका प्रत्याह्वान किया जिसके फलस्वरूप उन्होंने पाया कि पूर्व-सीखे हुए विषय में ४७%, ६६%, ७१%, ७५% तथा ७६% विषयों को क्रमशः वे भूल गये, अर्थात् जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे उस विषय द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति चिन्ह (Memory trace) क्षीण होते जाते हैं। फलतः विभिन्न काल-व्यवधान के पश्चात् पूर्व-सीखे हुए विषय के प्रत्याह्वान की मात्रा में अन्तर होता है। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए एबिंगहॉस (Ebbinghaus) की विस्मरण-रेखा (Curve of forgetting) को दे दिया गया है। चित्र ३१ पृष्ठ २८० को ध्यानपूर्वक देखने पर उपर्युक्त सभी बातें बिलकुल ही स्पष्ट हो जायेंगी।

चित्र ३१ में एबिंगहॉस महोदय की 'विस्मरण-रेखा' पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होगा कि भूलने की क्रिया आरम्भ में बहुत तेजी से होती है, परन्तु जैसे-

जसे समय बीतता जाता है क्रमश यह धीरे धीरे कम होती जाती है। अन्त इसी प्रयोग द्वारा प्राप्त सामग्रियों के आधार पर ही एबिंगहॉस महोदय (Ebbinghaus)



(दिन)

चित्र ११—(एबिंगहॉस महोदय की विस्मरण रेखा)
(Forgetting Curve of Ebbinghaus)

ने विस्मरण को एक निष्क्रिय प्रतिक्रिया (Passive process) की संज्ञा दी है जिसका खण्डन हम पीछे कर चुके है।

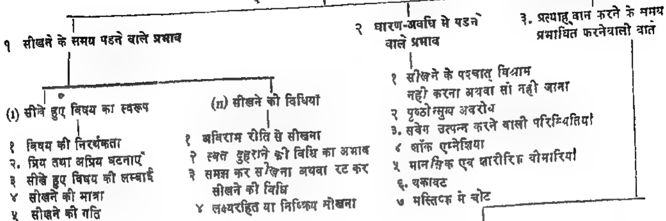
भूलने के कारण
(Causes of Forgetting)

स्मृति का उल्लेख करते समय ही यह स्पष्ट कर दिया गया कि किसी विषय सीखने के पश्चात् हमारे मस्तिष्क मे इसके प्रभाव पड़ते है जिन्हें हमारा मस्तिष्क स्मृति-चिह्नों (Memory traces) के रूप मे ही धारण करता है। स्मृति चिह्नो की रचना हमारे स्नायुओ द्वारा होती है। इन्ही स्मृति चिह्नों के क्षीण हो जाने के फलस्वरूप ही पहले की सीखी हुई बातो का ठीक-ठीक प्रत्याह्वान करने में समर्थ नही हो पाते हैं, अर्थात् उसमे से अधिकांश को भूल जाते हैं।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यदि किसी विषय को सीखा उसका प्रत्याह्वान करने तक की अवधि (Retention-interval) पर ध्यान दें तो उस भूलने की क्रिया को प्रभावित करने वाली बातों (प्रभावों) का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से कर सकते हैं और उन्ही प्रभावों के कारण ही हम प्राय भूलते हैं (पृष्ठ २८१ पर दी गयी तालिका 'क' को देखें)।

१ सीखने के समय पड़ने वाले प्रभाव
(Factors operating at the time of Learning)

किसी विषय को सीखने के समय पड़ने वाले कुछ प्रभाव निम्नलिखित बातों



उपर्युक्त तालिका को पाठकगण भूलने के कारणों को ठीक से समझ कर स्मरण रख सकते हैं।

[नोट—उपर्युक्त जितने भी कारण (Causes) हैं उनके सम्बन्ध में जो भी प्रयोगात्मक प्रमाण (Experimental evidences) दिये गये हैं, वे सभी उच्च वर्गों के छात्रों के लिए ही हैं। प्राक-विश्वविद्यालय के छात्र उन्हें नहीं भी पढ़ सकते हैं।]

पर निर्भर करते हैं—(i) सीखे हुए विषय का स्वरूप (Nature of the task learnt) तथा (ii) सीखने की विधि (Method of Learning)। अब हम एक एक कर इन पर प्रकाश डालेंगे।

(i) सीखे हुए विषय का स्वरूप (Nature of the task learnt)—इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

१ विषय की निरर्थकता (Unmeaningfulness of the material)—यह प्रयोग द्वारा प्रमाणित हो चुका है कि अन्य बातों में समान होने पर हम निरर्थक विषय को सार्थक विषय के अपेक्षाकृत अधिक शीघ्र भूल जाते हैं। साथ साथ निरर्थक विषयों के भूलने की गति तथा मात्रा भी सार्थक विषयों से अधिक रहती है। मनोवैज्ञानिकों ने इसके दो कारण बतलाये हैं—(१) निरर्थक विषय की छाप मस्तिष्क में गहरी नहीं पड़ पाती है तथा (२) निरर्थक होने के कारण उसका हमारे पूर्व तथा वर्तमान अनुभूतियों के साथ ठीक से साहचर्य स्थापित नहीं हो पाता है और न भविष्य में ही होने की सम्भावना रहती है। अतः इसके द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति चिह्न धीरे धीरे मिटते हैं। फलतः हम इन्हें भूल जाते हैं। साथ ही-साथ निरर्थक होने के कारण इसका हमारे जीवन के साथ किसी भी तरह का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता, फलस्वरूप इसकी किसी भी रूप में पुनरावृत्ति नहीं हो पाती है। इसके अतिरिक्त निरर्थक विषय को समझ कर नहीं सीखते बल्कि रट कर सीखते है तथा इसमें हमारी रुचि भी नहीं रहती है। यह देखा गया है कि जिस विषय में हमारी रुचि नहीं रहती है उसे हम जल्द ही भूल जाते हैं। प्रयोग द्वारा भी यह प्रमाणित हो चुका है कि निरर्थक शब्दों की सूची को हम सबसे अधिक भूलते हैं।

२ प्रिय तथा अप्रिय घटनाएँ (Pleasant and Unpleasant events or materials)—प्रिय घटनाओं के अपेक्षाकृत अप्रिय घटनाओं तथा विषयों को हम अति शीघ्र तथा अधिक मात्रा में भूल जाते हैं। फ्रायड (Freud) महोदय का कहना है कि हम अपनी अप्रिय अथवा दुःखद अनुभूतियों को इसलिए भूलते हैं कि उन्हें भूल जाने की हममें प्रबल इच्छा होती है। चूँकि इनके चेतना में रहने से मानसिक कष्ट होता है अतः चेतन मानस से निकाल कर उनका अचेतन में दमन कर दिया जाता है। फलतः हम उन्हें भूल जाते हैं।

जेरल्ड (Jerald) नामक मनोवैज्ञानिक ने भी अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि हम अपने जीवन की अप्रिय अथवा दुःखद घटनाओं को प्रिय अथवा सुखद घटनाओं के अपेक्षाकृत अधिक भूल जाते हैं। अप्रिय अथवा दुःखद होने के कारण हम उन्हें अपनी चेतना में रखना नहीं चाहते हैं। उन्होंने कालेज के विद्यार्थियों पर इसका प्रयोग किया। प्रयोग इस प्रकार किया गया था—विद्यार्थियों को एक लम्बी छुट्टी के बाद लौटने पर छुट्टी के बीच की अवधि में अनुभव की गयी प्रिय तथा अप्रिय घटनाओं को बारी बारी से प्रत्याह्वान कर लिखने को कहा गया। लड़कों को २१ दिन पश्चात् फिर पिछली लम्बी छुट्टी में अनुभव की

गयी अप्रिय तथा प्रिय घटनाओं का प्रत्याह्वान कर लिखने को कहा गया। इन अध्ययन के आधार पर प्राप्त औसत फल निम्नलिखित है—

प्रथम प्रत्याह्वान	२१ दिन के पश्चात् प्रत्याह्वान
प्रिय अनुभूतियाँ—१६ ३५—	७ ०—
अप्रिय अनुभूतियाँ—१३ ७—	३ १४—

हम अपनी प्रिय अनुभूतियों का मानसिक पर्यवेक्षण (Mental review) उनके प्रिय होने के कारण करते है, चूँकि ऐसा करने मे हमे आनन्द मिलता है। परन्तु इसके विपरीत अप्रिय अनुभूतियाँ चूँकि कष्टदायक होती हैं इसलिए हम उनका मानसिक पर्यवेक्षण ही नही करते, बल्कि उन्हे अपनी चेतना मे बाहर निकाल फेंकना भी चाहते हैं। यही कारण है कि हम अपने जीवन की अप्रिय घटनाओं की अपेक्षा-कृत अधिक भूलते है।

कौक (Kock) नामक मनोवैज्ञानिक ने भी इस सम्बन्ध मे प्रयोग किया है और इनके अध्ययन द्वारा प्राप्त 'फल' भी जेसिल्ड (Jersild) द्वारा प्राप्त फलों से करीब-करीब मिलते-जुलते है, अर्थात् यह कहा जाय कि वे भी इन्ही बातो की पुष्टि करते है कि हम अपने जीवन की अप्रिय घटनाओ को प्रिय घटनाओ के अपेक्षाकृत अधिक शीघ्र तथा तेजी से भूलते है। हालांकि सभी लोगो मे ऐसी बातें नही पायी जाती है, चूँकि कुछ ऐसे भी व्यक्ति है जो अपने जीवन की अप्रिय घटनाओ को प्रिय घटनाओं के अपेक्षाकृत अधिक याद रखते हैं। फिर भी, औसत फल 'जेसिल्ड' तथा 'कौक' द्वारा प्राप्त निष्कर्षो का ही पुष्टिकरण करते हैं।

३ **सीखे हुए विषय की लम्बाई** (Lengh of the material learn)—भूलने की गति का सीखे हुए विषय की लम्बाई के साथ गहरा सम्बन्ध है। अन्य अवस्थाओ के समान रहने पर छोटे विषय को हम लम्बे विषय की अपेक्षा अधिक शीघ्र भूल जाते है तथा भूलने की मात्रा भी पहली अवस्था मे दूसरी अवस्था से अधिक रहती है। साधारण लोगो को ये बातें नही जँचेगी चूँकि प्राय उनका विचार रहता है कि जितना अधिक सीखेंगे उतना ही अधिक भूलेंगे। पर वस्तुत बात इसके ठीक विपरीत है। इसको भी प्रयोग द्वारा सिद्ध किया गया है। मनोवैज्ञानिको का कहना है कि लम्बे विषय को सीखने के लिए छोटे विषयो को सीखने की अपेक्षा अधिक अभ्यास करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि हमे किसी १० निरर्थक शब्द-खण्डो की सूची को याद करने के लिए १० बार दुहराना पड़ता है, तो १५ निरर्थक शब्दखण्डो की सूची को याद करने में अधिक बार दुहराना होगा—मान लीजिए १४ बार दुह-राना पड़ता है। अर्थात् इस लम्बे पाठ्य-विषय को सीखने मे छोटे विषय को सीखने से चार बार अधिक दुहराना पड़ता है। फलस्वरूप, छोटे विषय की छाप मस्तिष्क मे लम्बे विषय की अपेक्षा कम गहरी पड़ती है। अत हम छोटे विषय को लम्बे विषय की अपेक्षा अधिक वेग (गति) से भूलते है।

४ **सीखने की मात्रा** (Amount or Degree of Learning)—मनोवैज्ञानिको के प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि अन्य अवस्थाओ के समान रहने पर भी कम

मात्रा मे सीखे हुए विषय का हम अधिक मात्रा में सीखे हुए विषय की अपेक्षा अधिक शीघ्र तथा वेग से भूलते हैं, अर्थात जिस विषय को हम अधिक अच्छी तरह सीखते हैं उसे हम अच्छी तरह सीखे हुए विषय से कम भूलते हैं। मात्रा के दृष्टिकोण से किसी भी विषय का सीखना दो प्रकार का हो सकता है— (१) अत्यधिक सीखना तथा (२) अल्प रूप से सीखना। जब हम किसी विषय को ठीक से सीख लेने के बाद भी इसे बार-बार दुहरा कर अत्यधिक ठीक रूप से सीख लेते है तब इसे अत्यधिक रूप से सीखना (Over learning) कहते हैं। पर जब हम ठीक से सीख लेने के पूर्व ही उस विषय को छोड देते है तब इसे अल्प रूप से सीखना (Under learning) कहा जायगा। उदाहरणार्थ मान लिया कि एक पाठ्य विषय को १ बार दुहराने पर यह पूर्ण रूप से याद हो जाता है तो यदि उसे ५ ही बार दुहरा कर छोड दिया जाय तो इसे अल्प रूप से सीखने की संज्ञा देंगे। परन्तु उसी को १४ बार यदि दुहराया जाय तो इसे अत्यधिक रूप से सीखने की संज्ञा देंगे। अल्प रूप से सीखने पर मस्तिष्क में जो स्मृति चिह्न (Memory traces) बनते हैं वे अत्यधिक रूप से सीखने के पश्चात बने हुए स्मृति चिह्न से कम दृढ रूप से अंकित होते है। इसके फलस्वरूप अल्प रूप से सीखे हुए विषय को हम अत्यधिक रूप से सीखे हुए विषय की अपेक्षा अल्प भूल जाते है।

सीखने की गति (Spead of learning) —जिस विषय को हम तेजी से सीखते है उसे धीरे-धीरे सीखने की अपेक्षाकृत शीघ्र तथा अधिक भूलते हैं, क्योंकि जो विषय धीरे धीरे सीखा जाता है उस विषय द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति चिह्नों को पुष्ट होने का अवसर अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। यह अवसर जल्दी-जल्दी सीखे हुए विषयो की दशा में उतना नही प्राप्त होता।

(ii) सीखने की विधियां (Method of learning)—१ अविराम रीति से सीखना (Massed Method of Learning)—किसी भी विषय को विराम अथवा अविराम रीति से सीखा जा सकता है। इसका उल्लेख सीखने की विधियों का वर्णन करते समय सीखने के अध्याय में पहले ही कर दिया गया है। प्रयोगो द्वारा यह साबित हो चुका है कि अन्य अवस्थाओ के समान रहने पर अविराम रीति से सीखे हुए विषय को हम विराम रीति द्वारा सीखे हुए विषय के अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से भूलते हैं इसका कारण यह है कि जब हम विराम रीति से सीखते है तब हमें सीखे हुए विषय का मानसिक पर्यवेक्षण करने का मौका मिलता है। साथ ही-साथ विराम की अवधि मे स्मृति चिह्न को दृढ होने का अवसर भी मिल जाता है। इसके फलस्वरूप इनके द्वारा मस्तिष्क मे बने स्मृति चिह्न दृढ रूप से अंकित हो पाते हैं। फलत इन्हें हम देर से भूलते हैं। ठीक इसके विपरीत अविराम रीति से सीखने पर उपयुक्त बातो के नही रहने के कारण स्मृति चिह्न गहरे नहीं हो पाते हैं। अत उनको हम जल्दी भूल जाते हैं। एबिंगहॉस (Ebbinghaus) द्वारा किये गये प्रयोगो मे प्राप्त निष्कर्ष इसके प्रमाणस्वरूप है।

२ स्वत दुहराने की विधि का अभाव — (Lack of Self-recitation) — गेट्स (Gates) महोदय ने अपने प्रयोगो द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि जिस विषय का हम स्वत दुहराने की विधि (Method of Self-recitation) से सीखते है उससे छाप मस्तिष्क मे इस विधि से नही सीखे हुए विषय की अपेक्षा अधिक दृढ पडती है। इसके फलस्वरूप हम उसे कम भूलते है तथा स्वत दुहराने की विधि द्वारा नही सीखे हुए विषय को अधिक शीघ्रता से भूलते है। कारण यह है कि जब हम किसी भी विषय को सीखने के पश्चात् बिना पाठ्य-विषय को देखे स्वत बार-बार दुहराते है तब उसको सीखना अत्यधिक रूप से हो जाता है तथा इस बात को ध्यान में रख कर सीखना कि सीखने के पश्चात् बिना पाठ्य-विषय को देखे हुए इसे स्वत दुहराना पड़ेगा, व्यक्ति मे सीखने की इच्छा उत्पन्न करता है और सीखने के लिए प्रेरित भी करता है।

३ समझ कर न सीखना अथवा रट कर सीखने की विधि (Rote memory) — हम कुछ विषयो को समझ कर नही सीखते है, बल्कि उन्हें रट कर सीखते है। हम उन्ही विषयो को रट लेते है जिनमे हमारी रुचि नही रहती अथवा जिन्हें हम समझ नही पाते है। प्रयोगात्मक अध्ययन के आधार पर मनोवैज्ञानिको ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जिन विषयो को सीखने मे हमारी रूचि नहीं रहती है उन्हें हम शीघ्र भूल जाते हैं, चूंकि उनका मानसिक पर्यवेक्षण हम नही करते हैं तथा जिन विषयो को हम समझ कर सीखते है उनका साहचर्य अपने जीवन की अन्य घटनाओ के साथ स्थापित कर लेते हैं। फलत समय-समय पर किसी-न-किसी रूप मे उनकी पुनरावृत्ति सम्भव है। इन्ही कारणो से उनका स्मृति-चिह्न मस्तिष्क मे सबल होता है और हम उन्हें अधिक दिनो तक याद रखते है। दूसरी ओर जिस विषय को हम रट कर सीखते है उनका हमारे जीवन की अन्य घटनाओ के साथ किसी भी प्रकार का साहचर्य स्थापित नही हो पाता है। अत इनकी पुनरावृत्ति होने की सम्भावना भी नही रहती है। फलत, इनके 'स्मृति चिह्न' हलके रहते है, जिसके फलस्वरूप उन्हें हम अधिक शीघ्रता से भूलते हैं।

४ लक्ष्यरहित या निष्क्रिय सीखना (Unintention or Passive Learning) — ऊपर ही कहा जा चुका है कि अन्य अवस्थाओं के समान रहने पर जिस विषय को सीखने मे हमारा कोई उद्देश्य नही रहता उस विषय को सीखने की इच्छा नही रहती है। अत उसको हम ठीक से नही सीखते है। इन्हें सीखने मे हम ठीक से ध्यान नही देते है। हम इसे सीखने के समय ऐसा नही सोचते हैं कि भविष्य मे कभी इसे दुहराने की आवश्यकता पड सकती है। यही कारण है कि हम सीखे हुए विषय का मानसिक पर्यवेक्षण (Mental review) भी नही करते है। इन्ही सब कारणो से मस्तिष्क मे इनके द्वारा बने हुए स्मृति-चिह्न कम गहरे रहते है और ये दृढ भी नही हो पाते हैं। फलत निष्क्रिय ढग से सीखी गयी बातो को हम शीघ्र तथा अधिक मात्रा मे भूलते हैं।

धारणा-अवधि में पड़ने वाले प्रभाव
(Factors operating during the retention interval)

१ सीखने के पश्चात् विश्राम नहीं करना अथवा सो नहीं जाना— इस विधि से सीखने पर भी हम अधिक शीघ्रता से भूलते हैं। अन्य अवस्थाओं के समान रहने पर जब हम किसी विषय को सीखने के बाद आराम करते हैं अथवा सो जाते है तब हम अपेक्षाकृत अधिक याद रखते हैं। इसके विपरीत, याद किये विषय को सीखने के बाद विश्राम नहीं किया जाय तो उस विषय की यादगारी क्रमशः घटती जाती है। जेनकिन्स (Jenkins) तथा डलेनेबच (Dallenbach) नामक दो मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों द्वारा यह पाया है कि भूलने की क्रिया जितनी पुराने चिह्नों के क्षीण होने के कारण नहीं होती है उससे अधिक पुराने चिह्नों पर नये-नये सीखे हुए विषय से मस्तिष्क के बने स्मृति चिह्नों द्वारा बाधा पहुँचाने से होती है। जब हम किसी विषय को सीख लेने के बाद सो जाते हैं तब सीखे हुए विषय द्वारा मस्तिष्क के बने स्मृति चिह्नों को दृढ़ होने का अवसर मिल जाता है।

परन्तु दूसरी ओर, जब एक विषय को सीखने के बाद सो नहीं जाते हैं वरन दूसरे कार्यों में लग जाते हैं तब नये नये कार्यों द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति चिह्न सीखे हुए विषय के स्मृति चिह्न के दृढ़ होने में बाधा पहुँचाते हैं। फलतः हम उन्हें अधिक शीघ्रता से भूल जाते हैं। यह सही है कि जब हम किसी विषय को सीखने के तुरत बाद भी सो जाते है तब हम नयी क्रियाओं को नहीं सीखते हैं फिर हमारा स्नायुमण्डल किसी-न किसी रूप में सक्रिय रहता है। यही कारण है कि जब सो कर उठने के बाद सोने के पहले सीखे हुए विषय का प्रत्याह्वान करते हैं तब उसे भी हम कुछ अंश में भूल जाते हैं। परन्तु, सोने के पूर्व सीखे हुए विषय द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति चिह्न को दृढ़ होने में उतनी बाधा नहीं पहुँचती है जितनी कि सीखने के पश्चात् सोने के बजाय दूसरी क्रियाओं के करने से पहुँचती है।

प्रयोग (Experiment)— १० निरर्थक शब्दखण्डों की सूचि को याद कर लेने या सीख लेने के बाद कुछ समय तक प्रयोज्य को एक अवस्था में सोने को दिया गया तथा दूसरी अवस्था में अन्य क्रियाओं में लगाया गया।

फल (Result)— दूसरी अवस्था में पहली अवस्था की अपेक्षा भूलने की मात्रा कहीं अधिक थी। उन्होंने यह भी पाया कि विषय को सीखने तथा उसके प्रत्याह्वान करने के बीच की अवधि में किये गये कार्यों के स्वरूप पर भी भूलने की मात्रा तथा गति निर्भर करती है।

पश्चोन्मुख-अवरोध (Retro active inhibition)— इस बात का पता मुलर (Muller) तथा पिलजेकर (Pilzecker) नामक दो मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर लगाया है। उनका कथन है कि अन्य परिस्थितियों के समान रहने पर पश्चोन्मुख-अवरोध भूलने का प्रमुख कारण है। यहाँ पर सबसे पहले यह जान लेना है कि पश्चोन्मुख-अवरोध किसे कहते हैं। जब

हम किसी एक विषय को सीखते हैं तथा उसका प्रत्याह्वान करने के बीच की अवधि जिसे धारण अवधि (Retention-interval) कहा जाता है, में हम एक दूसरे विषय को सीखते हैं तब यह दूसरा विषय पहले सीखे हुए विषय के प्रत्याह्वान में रुकावट डालता है। इसी रुकावट या अवरोध को पृष्ठोन्मुख-अवरोध की संज्ञा दी जाती है। उपर्युक्त मनोवैज्ञानिकों ने उपर्युक्त प्रयोग इस प्रकार किया है—(१) अवस्था नं० १ (Condition I)—सबक 'क' को सीखना (Learning Task A)—धारण-अवधि आधा घण्टा जिसमें आराम करना (Retention-interval—1/2 hour) सबक 'क' का प्रत्याह्वान करना (Recall of Task A) तथा (२) अवस्था नं० २ (Condition II)—सबक 'ख' को सीखना जो अपनी कठिनाई तथा स्वरूप में सबक 'क' के समान है (Learing of Task B which is similar in nature and difficulty to task A) आधे घण्टे की धारणा-अवधि में अन्य कोई कार्य करना (Doing some other Task during the Retention-interval of 1/2 hour)—सबक 'ख' का प्रत्याह्वान करना (Recall of Task B)।

इन दोनों अवस्थाओं में प्रत्याह्वान क्रमशः ५६% तथा २६% हुआ, अर्थात् इन दोनों अवस्थाओं में जो प्रत्याह्वान की मात्रा में ३०% का अन्तर हुआ वह पृष्ठोन्मुख-अवरोध के कारण हुआ। दूसरी अवस्था में पहली अवस्था से ३०% प्रत्याह्वान कम हुआ अर्थात् दूसरी अवस्था में अपेक्षाकृत भूलना अधिक हुआ। इसका कारण उन्होंने यह बतलाया है कि जब हम धारणा-अवधि में अन्य कार्य करते हैं तब वे पहले कार्य के करने से बने स्मृति-चिह्नों को दृढ़ होने में बाधा पहुँचाते हैं तथा उन्हें क्षीण कर देते हैं। फलतः हम इस अवस्था में अधिक शीघ्रता से भूलते हैं। बहुत हाल ही में हॉवलहन (Houlahan) नामक मनोवैज्ञानिक ने एक हजार स्कूल के विद्यार्थियों को 'पच्चीस' (२५) क्रियाओं (Verbs) की एक सूची याद करने को दी। फिर उन्हें २१ मिनट तथा २४ घण्टों के बाद उसका अलग-अलग प्रत्याह्वान करने को कहा। एक अवस्था में उन्हें इस धारणा अवधि में ७ मिनट तक कुछ संज्ञाओं को याद करने को कहा। कुछ लोगों ने क्रियाओं (Verb) को याद करने के तुरत बाद संज्ञाओं (Nouns) को याद किया, कुछ ने ४ मिनट के बाद और कुछ ने ८ मिनट के बाद। उन्होंने अपने प्रयोग द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि किसी भी विषय को सीखने के तुरत बाद आराम किया जाय तब उसका स्मृति-चिह्न अधिक टिकाऊ होता है, क्योंकि आराम करने पर सीखे हुए विषय द्वारा बने स्मृति-चिह्न को दृढ़ होने का अवसर मिल जाता है। साथ-साथ सीखने तथा प्रत्याह्वान करने के बीच में अन्य कार्यों के नहीं करने से पूर्व के स्मृति-चिह्नों में अवरोध नहीं हो पाता है। पृष्ठोन्मुख-अवरोध इन्टरपोलेटेड एक्टीविटी (Interpolated Activity) की मात्रा (Degree) के स्वरूप (Nature) तथा इसके टेम्पोरल लोकेशन (Temporal Location) या बीतते हुए समय में स्थान आदि पर निर्भर करता है, जिसका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

३ संवेग उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियाँ (Emotion-provoking situations)—हार्डन (Hardon) ने अपने प्रयोग द्वारा यह बतलाया है कि किसी भी विषय को सीखने और उसके प्रत्याह्वान करने के बीच की अवधि में यदि किसी भी प्रकार की संवेगात्मक परिस्थिति का सामना करना पड़ता है तो व्यक्ति सीखे हुए विषय में से अधिकांश को भूल जाता है। उन्होंने प्रयोग (Experiment) इस प्रकार किया था।

हार्डन का प्रयोग (Harden s Experiment)—एक अन्धकारमय कमरे में थोड़ा-सा प्रकाश कर कुछ कॉलेज के विद्यार्थियों को कुछ निरर्थक शब्दखण्डों की सूची को याद कराया। फिर कुछ हास्यपूर्ण घटनाओं का वर्णन उन्हें पढ़ने को दिया पर इसमें कोई ऐसा नहीं था जो बहुत ज्यादा हँसी उत्पन्न कर दे। इसके बाद पुन के सीखे हुए निरर्थक शब्दखण्डों की सूची का प्रत्याह्वान करने को कहा। दूसरी अवस्था में शब्दखण्डों की एक सूची को याद करने के पश्चात् अचानक एक विशिष्ट प्रकार का संवेगात्मक धक्का उन्हें पहुँचाया जैसे—जिस कुर्सी पर वे बैठे हुए थे उसके पीछे का हिस्सा टूट गया जिसके कारण वे गिर गये या उनकी बाँह में बिजली का धक्का (Shock) लगाया गया या अचानक पिस्तौल से आवाज की गयी या एकाएक बत्ती बुझा कर पूर्णरूपेण अंधकार कर दिया गया इत्यादि। इन धक्के पश्चात् जब उन्हें सीखे हुए निरर्थक शब्दखण्डों की सूची का प्रत्याह्वान करने को कहा गया तो यह पाया गया कि पहली अवस्था में दूसरी अवस्था के अपेक्षाकृत जब उन्हें संवेगात्मक धक्का पहुँचाया गया था पूर्व-सीखे हुए निरर्थक शब्दखण्डों की सूचियों में से कम ही को वे भूल गये थे। अर्थात संवेगात्मक धक्का (Emotional shock) पहुँचाने की अवस्था में भूलने की मात्रा अधिक थी तथा साथ-साथ यह अधिक तीव्रता से भी होती पायी गयी थी। भूलने की मात्रा बहुत हद तक संवेगात्मक धक्के की तीव्रता पर निर्भर करती है। अधिक तीव्र संवेगात्मक अवस्था में कम तीव्र संवेगात्मक अवस्था के अपेक्षाकृत भूलने की मात्रा काफी अधिक थी। किसी किसी व्यक्ति में तो यहाँ तक पाया गया कि पूर्व सीखे हुए निरर्थक शब्दखण्डों की सूची में से प्रत्येक को वह एकदम भूल गया। इस तरह स्पष्ट है कि धारणा अवधि (Retention interval) में जब किसी प्रकार का संवेगात्मक धक्का व्यक्ति को पहुँचाता है तो वह बहुत ही शीघ्र तथा बहुत ही अधिक मात्रा में पूर्व सीखे हुए विषयों को भूल जाता है। अत संवेगात्मक धक्का पहुँचना भी भूल का एक प्रमुख कारण है।

४ शॉक ऐम्नेसिया (Shock amnesia)—यदि किसी भी विषय को सीखने के बाद जोरों की मानसिक चोट पहुँचती है तो मनुष्य अपने पूर्व-सीखे हुए विषयों को भूल जाता है। किसी किसी स्थिति में तो यहाँ तक पाया गया है कि व्यक्ति यह भी भूल जाता है कि वह कौन है उसका नाम क्या है और वह कहाँ का रहने वाला है। —हिस्टीरिया (Hysteria) नामक मानसिक रोग से पीड़ित किसी किसी व्यक्ति

मे यह बात पायी जाती है। पर एक बात यहाँ स्मरण रखने योग्य है कि यह मानसिक चोट की मात्रा पर बहुत-कुछ निर्भर करता है।

५ मानसिक एव शारीरिक बीमारियाँ (Mental or Physical diseases) —यदि किसी विषय को सीखने के पश्चात् मनुष्य को कोई मानसिक बीमारी हो जाती है तो वह अपने पहले सीखे हुए विषयो मे से अधिकाश को भूल जाता है, क्योंकि ऐसी अवस्था मे उसका मानसिक सन्तुलन खो जाता है।

ठीक इसी प्रकार यदि व्यक्ति सीखने के पश्चात् किसी भयकर शारीरिक रोग से पीडित हो जाता है जिसके कारण उसका शरीर दुर्बल हो जाता है तब भी वह पूर्व सीखे हुए विषयो मे से अधिकाश का प्रत्याह्वान नही कर पाता है। कारण यह है कि शरीर और मन (Body and Mind) मे एक *अन्योन्याश्रय सम्बन्ध* है। जब शरीर रोगी होने के कारण दुर्बल हो जाता है तब इसका प्रभाव मस्तिष्क पर भी पडता है, जिसके फलस्वरूप स्मृति-चिह्न कमजोर पडते है। यही कारण है कि ऐसी अवस्था मे व्यक्ति अपने पहले के सीखे हुए विषयो मे से अधिकाश को भूल जाता है।

६ थकावट—किसी भी विषय को सीखने के बाद जब हमे किसी भी प्रकार ■ मानसिक या शारीरिक कार्य करने मे थकावट हो जाती है तो उस अवस्था मे यदि हम पहले सीखे हुए विषय का प्रत्याह्वान करना चाहे तो उनमे से अधिकाश को नही कर सकते है। कारण यह है कि चूँकि हम सीखने के पश्चात् आराम करने की जगह अपने को अन्य शारीरिक या मानसिक-कार्यों मे लगाते हैं, इसलिए पहले के सीखे हुए विषय का स्मृति-चिन्ह दृढ नही हो पाता है। फलत हम अधिक भूलते है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि शरीर और मन मे गहरा सम्बन्ध है, इसलिए शारीरिक थकावट होने पर भी इसका असर मस्तिष्क पर पडता है। परिणामस्वरूप, स्मृति-चिह्न दृढ होने की जगह दुर्बल होते जाते है।

७ मस्तिष्क मे चोट (Brain injury)—शरीर-शास्त्रज्ञो (Physiologists) ने अपने अध्ययनो द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि किसी विषय को सीखने के बाद यदि प्राणी के मस्तिष्क मे चोट पहुँचने के कारण कोई क्षति पहुँचती है तो वह अपने पहले के सीखे हुए विषयो मे से अधिकाश को भूल जाता है। किसी-किसी स्थिति मे तो वह भूतकाल की सारी बातें एकदम भूल जाता है। उन्होने बतलाया है कि इसका कारण यह है कि मस्तिष्क मे चोट पहुँचने के कारण पूर्व के सीखी हुई या अनुभव की गयी बातो का जो स्मृति-चिन्ह मस्तिष्क मे बना रहता है वह बहुत अ श मे नष्ट हो जाती है (Brain traces are damaged and, as such obliterated)।

३ प्रत्याह्वान करने के समय प्रभावित करने वाली बातें
(Factors operating at the time of Recall)

१ समान विषयो की स्मृति मे बाधा (Blocking by the memori-

zation of the similar material)—मान लीजिए कि हम अभी अपने एक मित्र के नाम का प्रत्याह्वान करना चाहते हैं जिसका नाम कामेश्वर है परन्तु वह नाम हमे याद नही आ पा रहा है। ऐसी अवस्था में साधारणत यह पाया जाता है कि हमे कामेश्वर से मिलते-जुलते दूसरा नाम जैसे—भुवनेश्वर दिनेश्वर राजेश्वर इत्यादि याद पड़े। हमारे उपर्युक्त अन्य मित्रों के नाम जिन्हें हम पहले से जानते हैं वे नाम हमारे मित्र कामेश्वर के नाम का प्रत्याह्वान करने मे बाधा डालते हैं।

गलत मानस स्थिति या वृत्ति (Wrong mental set)—यदि हम अभी अपने मित्र मोहन के नाम का प्रत्याह्वान करना चाहते हैं और हमारे मन मे पहले से ही यह बात चली आती है कि उसका नाम र अक्षर से आरम्भ होता है तो निश्चित रूप से हम उसके नाम का सही प्रत्याह्वान करने में असफल होंगे। उस समय इस गलत मानसिक स्थिति के कारण हमे ऐसे ही नाम याद पड़ते हैं जिनका आरम्भ 'र' अक्षर से होता है जैसे—रवीन्द्र रमेश राजेश्वर इत्यादि। चूँकि हमारे मस्तिष्क मे पहले से यह बात बैठी है कि र अक्षर से ही हमारे मित्र का नाम शुरू होता है। इसीलिए हमारी चेतना मे र अक्षर से शुरू होने वाले नाम आते ही नही फलत हम मोहन के नाम का प्रत्याह्वान नही कर पाते हैं।

वे प्रत्याह्वान करने की इच्छा का अभाव (Lack of intention of recall)—किसी विषय का प्रत्याह्वान करने के समय यदि उसका प्रत्याह्वान करने की हमारी चेतना अथवा अचेतन इच्छा नही हो तो हम उसका प्रत्याह्वान कदापि नही कर पा सकेंगे।

इस तरह उपर्युक्त विवेचनो से स्पष्ट है कि भूलने के कई एक कारण है।

भूलने के कारणों के दो मुख्य भाग
(Two main divisions of causes of forgetting)

परन्तु भूलने के उपर्युक्त सभी कारणो को साधारणत निम्नलिखित दो मुख्य भागो मे बाँट सकते हैं—

(1) पूर्व सीखे हुए विषय द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति चिन्हों का क्षीण होना—यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि स्मृति चिन्ह बिलकुल क्षीण होते हैं या नहीं ? (Do memory traces fade completely ?)—कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि स्मृति चिन्ह काल-व्यवधान के कारण पूर्ण रूपेण क्षीण हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत दूसरे मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि कोई भी स्मृति चिन्ह कभी भी पूर्णरूपेण क्षीण नहीं होता है। परन्तु इसकी प्रत्यक्ष जाँच सम्भव नही है। फिर भी ऐसे बहुत से सबूत हैं जिनके आधार पर उपयुक्त विचार का समर्थन भी कर सकते हैं जैसे—ऐसी अवस्था मे जब प्राय देखा जाता है कि हम सीखी हुई बातों का न तो प्रत्याह्वान कर सकते हैं, न उसकी प्रतिभिज्ञा हमें हो पाती है। फिर भी क्या हम कह सकते हैं कि उन सीखी हुई बातों से उत्पन्न स्मृति चिन्ह सर्वथा लुप्त हो गया है। सम्मोहनावस्था (Hypnosis) मे प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि व्यक्ति बहुत-सी ऐसी बातों का फिर से प्रत्याह्वान कर पाता है जिसे वह अपनी

चेतनावस्था मे न दुहरा ही सकता था न उनको पहचान ही सकता था। यदि हमारे स्मृति चिन्ह पूर्णत लुप्त हो गये होते तो सम्मोहनावस्था मे भी उनका प्रत्याह्वान सभव नहीं था। अस्तु, कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कोई भी स्मृति-चिन्ह पूर्णत लुप्त नही होता है।

(ii) एक सीखे हुए विषय द्वारा मस्तिष्क मे बने स्मृति-चिह्न पर दूसरे विषय से बने स्मृति-चिह्न द्वारा रुकावट डालना—रुकावट डालने वाली बात अधिकतर धारण अवधि (Retention-interval) मे तथा प्रत्याह्वान करने के समय लागू होती है।

हम कभी-कभी उस विषय अथवा अनुभूति का भी प्रत्याह्वान नही कर पाते है जिसे बहुत हाल मे सीखा है या अनुभव किया है। यह इसलिए नही होता है कि उनके द्वारा मस्तिष्क मे बने स्मृति-चिह्न क्षीण हो गये हैं, वरन् इसलिए होता है कि उस विषय से मिलते-जुलते विषयो एव अनुभूतियो के स्मृति-चिह्न जो हमारे मस्तिष्क मे पहले से है या जो इस विषय के सीखने एव अनुभव करने के बाद बने है, वे उसका सही-सही प्रत्याह्वान करने मे रुकावट डालते हैं और जब कुछ समय के लिए उनका प्रत्याह्वान करना छोड देते हैं तो रुकावट डालने वाले स्मृति-चिह्नो मे रुकावट डालने की शक्ति धीरे-धीरे कम हो जाती है। अत वे रुकावट नही डालते है और थोडी देर के बाद उस विषय का जिसका हम प्रत्याह्वान करना चाहते है, करने मे समर्थ हो पाते हैं।

भूलने के कारणो का उल्लेख करते समय यह स्पष्ट हो गया है कि पृष्ठोन्मुख अवरोध के कारण भी हम किसी पूर्व के सीखे हुए विषय अथवा अनुभव की गयी घटना का पूर्ण रूप से सही-सही प्रत्याह्वान नही कर पाते है। अर्थात् किसी विषय को सीखने तथा उसका प्रत्याह्वान करने के बीच की अवधि मे अन्य सीखे गये विषयो या किये गए कार्यों से बने स्मृति-चिह्न पूर्व के सीखे हुए विषय का प्रत्याह्वान करने मे रुकावट डालते हैं।

अत हम देखते हैं कि रुकावट डालने की क्रिया धारण-अवधि तथा प्रत्याह्वान करने का समय इन दोनो अवस्थाओ मे होती है। [पृ० २८१ पर दी गयी तालिका (ख) को देखें]।

स्मृति-शिक्षण
(Memory Training)

हम अपने सीखे हुए विषयो मे से अधिकाश को भूल जाते हैं जिनके अनेक कारण हैं और उनका उल्लेख भी ऊपर किया जा चुका है। यह तो ठीक है कि भूल जाने की उपयोगिताएँ भी है, जैसे—यदि हम अपने जीवन की दुखद तथा कष्टदायक घटनाओ को भूल जाते हैं तो हमारा मानसिक सन्तुलन नही खोता है। इसके साथ साथ जब हम अपनी पुरानी बातो को भूल जाते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि उनके द्वारा मस्तिष्क मे बने स्मृति-चिन्ह क्रमश क्षीण पडते जाते हैं जिनके फलस्वरूप हमे नयी घटनाओ को सीखने का अवसर मिल पाता है। कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना

zation of the similar material)—मान लीजिए कि हम अभी अपने एक मित्र के नाम का प्रत्याह्वान करना चाहते हैं जिसका नाम कामेश्वर है परन्तु यह नाम हमे याद नही आ पा रहा है। ऐसी अवस्था में साधारणत यह पाया जाता है कि हमें कामेश्वर से मिलते-जुलते दूसरा नाम जैसे—भुवनेश्वर, दिनेश्वर राजेश्वर इत्यादि याद पड़े। हमारे उपर्युक्त अन्य मित्रों के नाम जिन्हें हम पहले से जानते हैं वे नाम हमारे मित्र कामेश्वर के नाम का प्रत्याह्वान करने मे बाधा डालते है।

गलत मानस स्थिति या वृत्ति (Wrong mental set)—यदि हम अभी अपने मित्र मोहन के नाम का प्रत्याह्वान करना चाहते है और हमारे मन मे पहले से ही यह बात चली आती है कि उसका नाम र अक्षर से आरम्भ होता है तो निश्चित रूप से हम उसके नाम का सही प्रत्याह्वान करने मे असफल होंगे। उस समय इस गलत मानसिक स्थिति के कारण हमे ऐसे ही नाम याद पड़ते हैं जिनका आरम्भ 'र' अक्षर से होता है जैसे—रवीन्द्र रमेश राजेश्वर इत्यादि। चूंकि हमारे मस्तिष्क मे पहले से यह बातें बैठी है कि र अक्षर से ही हमारे मित्र का नाम शुरू होता है। इसीलिए हमारी चेतना मे म अक्षर से शुरू होने वाले नाम आते ही नही फलत हम मोहन के नाम का प्रत्याह्वान नही कर पाते हैं।

प्रत्याह्वान करने की इच्छा का अभाव (Lack of intention of recall)—किसी विषय का प्रत्याह्वान करने के समय यदि उसका प्रत्याह्वान करने की हमारी चेतना अथवा अचेतन इच्छा नही हो तो हम उसका प्रत्याह्वान कदापि नही कर पा सकेंगे।

इस तरह उपर्युक्त विवेचनो से स्पष्ट है कि भूलने के कई एक कारण है।

भूलने के कारणों के दो मुख्य भाग
(Two main divisions of causes of forgetting)

परन्तु भूलने के उपर्युक्त सभी कारणो को साधारणत निम्नलिखित दो मुख्य भागों मे बाँट सकते हैं—

(1) पूर्व सीखे हुए विषय द्वारा मस्तिष्क में बने स्मृति चिन्हों का क्षीण होना—यहाँ पर यह प्रश्न उठता है की स्मृति चिन्ह बिलकुल क्षीण होते हैं या नहीं ? (Do memory traces fade completely ?)—कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि स्मृति चिह्न काल-व्यवधान के कारण पूर्ण रूपेण क्षीण हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत दूसरे मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि कोई भी स्मृति चिन्ह कभी भी पूर्णरूपेण क्षीण नहीं होता है। परन्तु इसकी प्रत्यक्ष जाँच सम्भव नही है। *फिर भी ऐसे बहुत-से सबूत हैं जिनके आधार पर उपर्युक्त* विचार का समर्थन भी कर सकते हैं जैसे—ऐसी अवस्था मे जब प्राय देखा जाता है कि हम सीखी हुई बातों का न तो प्रत्याह्वान कर सकते है, न उसकी प्रतिभिज्ञा हमें हो पाती है। फिर भी क्या हम कह सकते हैं कि उन सीखी हुई बातों से उत्पन्न स्मृति चिन्ह सर्वथा लुप्त हो गया है। सम्मोहनावस्था (Hypnosis) मे प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि व्यक्ति बहुत-सी ऐसी बातों का फिर से प्रत्याह्वान कर पाता है जिसे वह अपनी

है कि यदि मनुष्य सीखी हुई बातों को भूले नहीं तो वह नयी बातों को सीख नहीं सकता है। पर इसका यह मतलब नहीं हुआ कि हम अपने पहले के सीखे हुए सभी विषय तथा घटनाओं को सदा भूल ही जाते हैं। बहुत सी ऐसी घटनाएं रहती हैं जिनका भूल जाना हमारे लिए बहुत ही हानिकारक होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण विषयों एवं घटनाओं को अधिक मात्रा तथा ज्यादा अवधि तक याद रखें तथा हमारे लिए वे लाभप्रद सिद्ध होंगी। इसके लिए अच्छी स्मृति का होना आवश्यक है। पर स्मृति को अच्छा कैसे बनाया जाय? जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया जा चुका है स्मृति कोई मांसपेशी (Muscle) नहीं है जिसको मजबूत बनाया जा सकता हो परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने यह अवश्य बतलाया है कि यदि भूलने के जो-जो कारण हैं उनको हम यथासम्भव दूर कर सकने की कोशिश करें तो हमारी स्मृति बहुत अंश तक अच्छी हो सकती है अर्थात् हम कम भूल सकते हैं। पर इन बातों का उल्लेख करने के पूर्व यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि अच्छी स्मृति से हमारा क्या मतलब है।

अच्छी स्मृति किसे कहते हैं? (What is good memory?)—कुछ लोगों का कहना है कि अच्छी स्मृति उसे ही कहेंगे जब कि सीखे हुए विषयों और अनुभव की गयी घटनाओं को हम भली भाँति अपने मस्तिष्क में धारण कर सकें। पर ऐसा कहना उचित नहीं क्योंकि कभी कभी ऐसा पाया गया है कि हम जिस विषय को धारण किये रहते हैं उसका प्रत्याह्वान इच्छित समय पर नहीं कर पाते हैं। परन्तु, बाद में जब उनको याद करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती है तब उनका प्रत्याह्वान आप-से आप हो जाता है जैसे—प्रायः यह प्रत्येक छात्र का अनुभव है कि परीक्षाभवन में प्रश्नों के उत्तर लिखते समय उन्हें बहुत सी आवश्यक बातें याद पड़ जाती हैं। परीक्षा भवन में प्रश्नोत्तर भूल जाने का यह अर्थ नहीं था कि उस छात्र के मस्तिष्क में पठित विषय की कोई धारणा ही नहीं रह गयी थी।

यदि हम अच्छी स्मृति का अर्थ धारण करने की क्रिया को ही मानते हैं तो प्रत्याह्वान नहीं होने पर भी हम कह सकते हैं कि हमारी स्मृति अच्छी है परन्तु ऐसा कहना पूर्णतः ठीक नहीं है। सिर्फ अच्छी तरह धारण करने की क्रिया को हम अच्छी स्मृति की संज्ञा नहीं दे सकते हैं। उपर्युक्त उदाहरण को ही ले लें। छात्र को परीक्षा भवन में प्रश्नोत्तर का प्रत्याह्वान नहीं होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके मस्तिष्क में उनकी कोई धारणा है ही नहीं। यदि ऐसी बात होती तो परीक्षा भवन से बाहर आने पर उन्हें अचानक उन्हीं प्रश्नों के उत्तर याद नहीं पड़ते। फिर भी हम इसे अच्छी स्मृति की संज्ञा नहीं दे सकते हैं। अच्छी स्मृति उसी को कहेंगे जिसमें निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हों।

(ख) अच्छी स्मृति की विशेषताएँ (Characteristics of good Memory)

१ शीघ्रता एवं आसानी से याद हो जाना (Quick and Easy recall)—

फलत बाद में यदि दोनों को जिसमे सीखने की इच्छा थी और जिसमे नहीं थी, शिक्षक द्वारा बतलायी गयी बातो का प्रत्याह्वान करने को कहा जाय तो जिसने इच्छानुकूल सीखा है वह अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे उनका प्रत्याह्वान कर पायेगा। अर्थात उसमे भूलने की मात्रा कम होगी।

२ ठीक से ध्यान देकर सीखना और समझ कर सीखना (Learning with care and understanding)—जब किसी पाठ्य विषय को सीखने की इच्छा हममे रहती है तब यह स्वाभाविक है कि हम उस पर पूरा पूरा ध्यान देते हैं। ऊपर दिये हुए उदाहरण को ही हम लें तो पायगे कि जिस विद्यार्थी ने शिक्षक द्वारा बतायी गयी बातो पर पूरा पूरा ध्यान दिया है वह एकाग्रचित्त होकर शिक्षक द्वारा बतलायी गयी बातों को सुनेगा तथा समझने का प्रयास करेगा। उनमें किन बातों की मुख्यता है तथा किनकी नहीं यह सब समझेगा। साधारणतः यह बात सभी के साथ पायी जाती है कि जब हम किसी पाठ्य विषय को समझ कर सीखते [illegible] तब उसे अधिक दिनों तक याद रखते है अर्थात हम इसे कम भूलते हैं। किसी विषय को समझने के लिए यह अति आवश्यक है कि हम उस पर पूरा-पूरा ध्यान दें।

३ सीखने के समय मानसिक प्रतिमाओं का यथासम्भव उपयोग करना (To make use of mental images as far as practicable at the time of learning)— यदि हम किसी व्यक्ति को अधिक दिनों तक याद रखना चाहते है तो यह आवश्यक है कि उस व्यक्ति को ठीक से देखें उसकी शारीरिक बनावट पर ध्यान दें, जैसे—उसकी आँख कैसी है चेहरा कैसा है रंग कैसा है बाल कैसे है कद कैसा है कपड़ा कैसा पहने हुए है चलता कैसे है बोलता कैसे है इत्यादि। इन सब चीजों की दृष्टि एवं श्रवण प्रतिमाएँ हमारे मस्तिष्क मे बन कर स्मृति चिह्न के रूप में रह जाती हैं और इनकी मदद से आगे चलकर जब वे चीजें हमारे सामने नहीं भी रहती हैं तब भी उसके बारे मे पूछने पर हम उनका सही-सही प्रत्याह्वान कर पाते हैं। जितनी अधिक प्रतिमाएं हमारे मस्तिष्क में उसके बारे में रहेंगी उतनी ही अधिक हममे समयानुकूल ठीक-ठीक प्रत्याह्वान करने की सम्भावना होगी। ये प्रतिमाएं हमें उसका प्रत्याह्वान करने में मदद पहुँचाती हैं (Images serve as aid in recall)। इसलिए कहा गया है कि यदि हम किसी व्यक्ति अथवा विषय को अधिक दिनों तक याद रखना चाहें तो यह आवश्यक है कि उनकी हम अधिक मानसिक प्रतिमाएं (Mental images) बना लेने की चेष्टा करें।

४ साहचर्य का उपयोग करना (To make use of association)— इसका अर्थ हुआ कि नये सीखे हुए विषयों का पहले से सीखे हुए विषयों के साथ यथासम्भव सम्बन्ध स्थापित कर लेना। ऐसा करने से नयी बातो को शीघ्र तथा आसानी से सीख जाते [illegible]। इतना ही नहीं बल्कि उन्हें अधिक दिनो तक याद भी रख पाते हैं।

उदाहरण के लिए यदि हम निरर्थक शब्दखण्डों की एक सूची याद करनी है जैसे—ZUL, NIM, LUK RAH DEK SUF इत्यादि

१० लय का सहारा लेकर सीखना (To make use of rhythm at the time of learning)—सार्थक बातों को सीखने के अपेक्षाकृत य० बात निरर्थक बातों को सीखने में अधिक लाभप्रद होता है क्योंकि ऐसा करने से निरर्थक बातों में एक प्रकार की सार्थकता आ जाती है। अत इन्हें हम सीख पाते हैं और इस प्रकार इनकी स्मृति अच्छी रहती है।

११ किसी भी विषय को एक विशिष्ट लक्ष्य से सीखना तथा उसका सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पहलुओं से स्थापित करना (To learn with a definite aim and to associate the material learnt with different aspects of life)—प्राय जिन विषयों का सम्बन्ध हमारे जीवन की आवश्यकताओं से जितना ही अधिक रहता है तथा जिससे हमारा कुछ अभिप्राय भी सिद्ध होता है उनको हम अक्सर नहीं भूलते क्योंकि वे सदा हमारे साहचर्य मे किसी-न किसी रूप में आते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि हम उन्हें अत्यधिक रूप मे सीख जाते (Overlearn) हैं जैसे—हम अपने परिवार के व्यक्तियों के नाम तथा खाद्य पदार्थों का नाम एवं जीवन-लक्ष्य से सम्बन्धित अन्य बातों को सदा याद रखते हैं।

१२ तेजी से नहीं सीखना (To avoid speedy learning)—प्रयोग द्वारा यह पता चला है कि जिन बातों को हम तेजी से सीखते हैं उन्हें बहुत जल्द भूल जाते हैं और उन्हें अपेक्षाकृत धीरे धीरे कि तु ठीक से सीखते हैं उनकी स्मृति अच्छी रहती है।

स्मृति में सुधार लाने के लिए ऊपर जिन तरीकों का उल्लेख किया गया है उनसे यह समझना चाहिए कि हमारी स्मृति का सुधार प्रत्येक विषय के क्षेत्र में सम्भव है। एक व्यक्ति सारे विषयों को अच्छी तरह सीख नहीं सकता है क्योंकि सीखने की क्रिया बहुत हद तक वंशानुक्रम व्यक्ति द्वारा अर्जित मनोवृत्ति अभिरुचि एवं सीखने की विधियों इत्यादि पर निर्भर करती है। चू कि वंशानुक्रम मे सुधार एव परिवर्तन लाना असम्भव जैसा है अस्तु हम सिर्फ व्यक्ति की मनोवृत्ति अभिरुचि पाठन विधियाँ इत्यादि को ध्यान में रखते हुए केवल कुछ ही विषयों से सम्बन्धित स्मृति में सुधार ला सकते हैं। जिस विषय को सीखने की योग्यता व्यक्ति म है ही नहीं उस विषय की स्मृति अच्छी बनाने का प्रश्न उठता ही नहीं क्योंकि जैसा कि आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि सीखना स्मृति का प्रथम अंग (Factor) है।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि स्मृति का सुधार सिर्फ उन्ही विषयों के क्षेत्र म सम्भव है जिन विषयों को सीखने की योग्यता व्यक्ति म है। अर्थात किसी व्यक्ति विशेष के लिए कुछ विषयों को छोड़कर प्राय अन्य सभी विषयों की स्मृति में सुधार लाना असम्भव-जैसा है।

१० लय का सहारा लेकर सीखना (To make use of rhythm at the time of learning)—सार्थक बातों को सीखने के अपेक्षाकृत य० बात निरर्थक बातों को सीखने में अधिक लाभप्रद होता है क्योंकि ऐसा करने से निरर्थक बातों में एक प्रकार की सार्थकता आ जाती है। अत इन्हें हम सीख पाते हैं और इस प्रकार इनकी स्मृति अच्छी रहती है।

११ किसी भी विषय को एक विशिष्ट लक्ष्य से सीखना तथा उसका सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पहलुओं से स्थापित करना (To learn with a definite aim and to associate the material learnt with different aspects of life)—प्राय जिन विषयों का सम्बन्ध हमारे जीवन की आवश्यकताओं से जितना ही अधिक रहता है तथा जिससे हमारा कुछ अभिप्राय भी सिद्ध होता है उनको हम अक्सर नही भूलते क्योंकि वे सदा हमारे साहचर्य मे किसी-न किसी रूप मे आते रहते है। परिणाम यह होता है कि हम उन्हें अत्यधिक रूप मे सीख जाते (Overlearn) हैं जैसे—हम अपने परिवार के व्यक्तियों के नाम तथा खाद्य पदार्थों का नाम एव जीवन-लक्ष्य से सम्बन्धित अन्य बातों को सदा याद रखते हैं।

१२ तेजी से नहीं सीखना (To avoid speedy learning)—प्रयोग द्वारा यह पता चला है कि जिन बातो को हम तेजी से सीखते है उन्हें बहुत जल्द भूल जाते हैं और उन्हें अपेक्षाकृत धीरे धीरे, किन्तु ठीक से सीखते हैं उनकी स्मृति अच्छी रहती है।

स्मृति में सुधार लाने के लिए ऊपर जिन तरीकों का उल्लेख किया गया है उनसे यह समझना चाहिए कि हमारी स्मृति का सुधार प्रत्येक विषय के क्षेत्र में सम्भव है। एक व्यक्ति सारे विषयों को अच्छी तरह सीख नही सकता है क्योंकि सीखने की क्रिया बहुत हद तक वंशानुक्रम व्यक्ति द्वारा अर्जित मनोवृत्ति, अभिरुचि एवं सीखने की विधियों इत्यादि पर निर्भर करती है। चूकि वंशानुक्रम म सुधार एव परिवर्तन लाना असम्भव जैसा है अत हम सिर्फ व्यक्ति की मनोवृत्ति अभिरुचि पाठन विधियों इत्यादि को ध्यान में रखते हुए केवल कुछ ही विषयों से सम्बन्धित स्मृति मे सुधार ला सकते है। जिस विषय को सीखने की योग्यता व्यक्ति म है ही नही उस विषय की स्मृति अच्छी बनाने का प्रश्न उठता ही नही क्योंकि जसा कि आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि सीखना स्मृति का प्रथम अग (Factor) है।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि स्मृति का सुधार सिर्फ उन्ही विषयों के क्षेत्र मे सम्भव है जिन विषयों को सीखने की योग्यता व्यक्ति म है। अर्थात किसी व्यक्ति विशेष के लिए कुछ विषयों को छोडकर प्राय अन्य सभी विषयों की स्मृति में सुधार लाना असम्भव जैसा है।

भूलने की उपयोगिताएँ
(Uses of Forgetting)

साधारणतः लोग कहते हैं कि भूल की कोई उपयोगिता नहीं है, परन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि भूलने की निम्नलिखित उपयोगिताएँ हैं —

१ हमारे जीवन की कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जिनको भूल जाने से ही हमारा मानसिक सन्तुलन (Mental equilibrium) बना रहता है और हम अपने जीवन से सम्बन्धित परिस्थितियो से सफल अभियोग करने मे समर्थ हो पाते हैं, जैसे — दुःखद घटनाओ को भूल जाने मे ही लाभ है। जैसा कि भूलने के कारणो पर प्रकाश डालते समय यह स्पष्ट कर दिया गया है कि दमन करना (Repression) भी भूलने का प्रमुख कारण है। इससे हमारे इस अभिप्राय की पूर्ति होती है कि हम इसके द्वारा अपने जीवन की दुःखद एव अप्रिय घटनाओ को भूल जाते है जिनको अपनी चेतना (Consciousness) मे रखने से हमे अत्यधिक मानसिक कष्ट (Mental trouble) होता है।

२ यदि हमे जो भी एक बार सीख लें, उसे कभी नही भूलें तो यह हमारे लिए लाभप्रद होने की जगह हानिकारक होगा। हम कुछ ऐसी बातें सीख लेते हैं या कहा जाय कि हमारी कुछ ऐसी आदतें बन जाती है जो व्यक्ति (Individual) एवं समाज (Society) दोनो दृष्टकोण से गलत एव बुरे है। यदि हम इन बुरी गलत आदतो या बातो को भूल नही जायें तो ये हमारे लिए बहुत ही अधिक हानिकारक होगी। साथ-साथ, बिना उसको भूले हम उसकी जगह सही तथा अच्छी बातो को नही सीखते हैं और अच्छी आदतो का निर्माण भी नही हो सकता है (Breaking up wrong habits is essential otherwise good habits connot be developed)।

३ जब हम कुछ पूर्व की सीखी हुई बातो को भूल जाते है तब इसका यह अर्थ हुआ कि उसके द्वारा मस्तिष्क मे जो स्मृति-चिह्न बने हुए थे वे अधिकांश क्षीण पड गये है। परिणामस्वरूप, वे नयी बातो या विषयो को सीखने तथा उनके द्वारा मस्तिष्क मे स्मृति-चिह्न बनने का मौका देते हैं (The obliteration of old traces makes room for new one)।

— —

१० लय का सहारा लेकर सीखना (To make use of rhythm at the time of learning)—सार्थक बातों को सीखने के अपेक्षाकृत यह बात निरर्थक बातों को सीखने में अधिक लाभप्रद होता है क्योंकि ऐसा करने से निरर्थक बातों में एक प्रकार की सार्थकता आ जाती है। अतः इन्हें हम सीख पाते हैं और इस प्रकार इनकी स्मृति अच्छी रहती है।

११ किसी भी विषय को एक विशिष्ट लक्ष्य से सीखना तथा उसका सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पहलुओं से स्थापित करना (To learn with a definite aim and to associate the material learnt with different aspects of life)—प्रायः जिन विषयों का सम्बन्ध हमारे जीवन की आवश्यकताओं से जितना ही अधिक रहता है तथा जिससे हमारा कुछ अभिप्राय भी सिद्ध होता है उनको हम अक्सर नहीं भूलते क्योंकि वे सदा हमारे सामने किसी-न किसी रूप में आते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि हम उन्हें अत्यधिक रूप से सीख जाते (Overlearn) हैं जैसे—हम अपने परिवार के व्यक्तियों के नाम तथा खाद्य पदार्थों का नाम एवं जीवन-लक्ष्य से सम्बन्धित अन्य बातों को सदा याद रखते हैं।

१२ तेजी से नहीं सीखना (To avoid speedy learning)—प्रयोग द्वारा यह पता चला है कि जिन बातों को हम तेजी से सीखते हैं उन्हें बहुत जल्द भूल जाते हैं और उन्हें अपेक्षाकृत धीरे धीरे किन्तु ठीक से सीखते हैं उनकी स्मृति अच्छी रहती है।

स्मृति में सुधार लाने के लिए ऊपर जिन तरीकों का उल्लेख किया गया है उनसे यह समझना चाहिए कि हमारी स्मृति का सुधार प्रत्येक विषय के क्षेत्र में सम्भव है। एक व्यक्ति सारे विषयों को अच्छी तरह सीख नहीं सकता है क्योंकि सीखने की क्रिया बहुत हद तक वंशानुक्रम व्यक्ति द्वारा अर्जित मनोवृत्ति, अभिरुचि एवं सीखने की विधियों इत्यादि पर निर्भर करती है। चूँकि वंशानुक्रम में सुधार एवं परिवर्तन लाना असम्भव जैसा है अतः हम सिर्फ व्यक्ति की मनोवृत्ति अभिरुचि पाठन विधियों इत्यादि को ध्यान में रखते हुए केवल कुछ ही विषयों से सम्बन्धित स्मृति में सुधार ला सकते हैं। जिस विषय को सीखने की योग्यता व्यक्ति में है ही नहीं उस विषय की स्मृति अच्छी बनाने का प्रश्न उठता ही नहीं क्योंकि जैसा कि आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि सीखना स्मृति का प्रथम अंग (Factor) है।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्मृति का सुधार सिर्फ उन्हीं विषयों के क्षेत्र में सम्भव है जिन विषयों को सीखने की योग्यता व्यक्ति में है। अर्थात् किसी व्यक्ति विशेष के लिए कुछ विषयों को छोड़कर प्रायः अन्य सभी विषयों की स्मृति में सुधार लाना असम्भव जैसा है।

भूलने की उपयोगिताएँ
(Uses of Forgetting)

साधारणत लोग कहते है कि भूल की कोई उपयोगिता नही है, परन्तु बात ऐसी नही है, क्योकि भूलने की निम्नलिखित उपयोगिताएँ है —

१ हमारे जीवन की कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जिनको भूल जाने से ही हमारा मानसिक सन्तुलन (Mental equilibrium) बना रहता है और हम अपने जीवन से सम्बन्धित परिस्थितियो से सफल अभियोग करने मे समर्थ हो पाते हैं, जैसे—दुखद घटनाओ को भूल जाने मे ही लाभ है। जैसा कि भूलने के कारणो पर प्रकाश डालते समय यह स्पष्ट कर दिया गया है कि दमन करना (Repression) भी भूलने का प्रमुख कारण है। इससे हमारे इस अभिप्राय की पूर्ति होती है कि हम इसके द्वारा अपने जीवन की दुखद एव अप्रिय घटनाओ को भूल जाते है जिनको अपनी चेतना (*Consciousness*) मे रखने से हमे अत्यधिक मानसिक कष्ट (*Mental trouble*) होता है।

२ यदि हमे जो भी एक बार सीख लें, उसे कभी नही भूलें तो यह हमारे लिए लाभप्रद होने की जगह हानिकारक होगा। हम कुछ ऐसी बातें सीख लेते हैं या कहा जाय कि हमारी कुछ ऐसी आदतें बन जाती है जो व्यक्ति (Individual) एवं समाज (Society) दोनो दृष्टकोण से गलत एव बुरे हैं। यदि हम इन बुरी गलत आदतो या बातो को भूल नही जायें तो ये हमारे लिए बहुत ही अधिक हानिकारक होगी। साथ-साथ, बिना उसको भूले हम उसकी जगह सही तथा अच्छी बातो को नहो सीखते है और अच्छी आदतो का निर्माण भी नही हो सकता है (Breaking up wrong habits is essential otherwise good habits connot be developed)।

३ जब हम कुछ पूर्व की सीखी हुई बातो को भूल जाते हैं तब इसका यह अर्थ हुआ कि उसके द्वारा मस्तिष्क मे जो स्मृति-चिह्न बने हुए थे वे अधिकाश क्षीण पड गये हैं। परिणामस्वरूप, वे नयी बातो या विषयो को सीखने तथा उनके द्वारा मस्तिष्क मे स्मृति-चिह्न बनने का मौका देते हैं (The obliteration of old traces makes room for new one)।

चौथा अध्याय

प्रतिमा और साहचर्य

(Imagery and Association)

(क) प्रतिमा

भूमिका—प्रतिमा का स्वरूप और प्रत्यक्ष प्रतिमा से अन्तर ।

प्रतिमा के प्रकार—दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्पर्श, स्वाद और गति प्रतिमाएं तथा अनुबिम्ब, प्रत्यक्ष प्रतिमा, स्मृति प्रतिमा और काल्पनिक प्रतिमा ।

(ख) साहचर्य

साहचर्य के नियम—(१) प्रधान नियम तथा (२) सहायक नियम ।

(१) प्रधान नियम—समीपता, समानता तथा विरोध का नियम ।

सहायक नियम—प्राथमिकता, आसन्नता, बारम्बारता तथा स्पष्टता का नियम

(क) प्रतिमा

(Imagery)

किसी भी वस्तु अथवा परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के लिए यह आवश्यक है कि वह वस्तु अथवा परिस्थिति हमारी ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क में आये। इस सम्पर्क के फलस्वरूप हमारे मस्तिष्क में जो चित्र अंकित होते हैं उन्हें प्रत्यक्ष कहा गया है। परन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि पहले पूर्व अनुभव किये वस्तु अथवा परिस्थिति के अभाव में भी उसका चित्र हमारे मानस-पटल पर आ जाता है। इस मानचित्र को प्रतिमा की संज्ञा दी गयी है। प्रतिमाओं का हमारे जीवन में एक प्रमुख स्थान है। प्रतिमाओं की सहायता से हम अपनी पूर्व अनुभूतियों का प्रत्याह्वान करने में समर्थ होते हैं। यह तो पिछले अध्याय में ही स्पष्ट कर दिया गया है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि प्रतिमाओं के अभाव में चिन्तन क्रिया का होना सम्भव ही नहीं। इस पर हम पिछले अध्याय में प्रकाश डाल चुके हैं।

कल्पना में भी प्रतिमाओं का सहयोग व्यक्ति लेता है।

प्रतिमा और साहचर्य मे निकट सम्बन्ध है। पूर्व अनुभूतियो का प्रत्याह्वान करने मे 'प्रतिमा' और 'साहचार्य' दोनो का हाथ रहता है। साहचर्य की मदद से हम दो प्रतिमाओ मे सम्बन्ध स्थापित कर पाते हैं और आगे चलकर भविष्य मे एक प्रतिमा के मस्तिष्क मे आ जाने से ही दूसरे का भी प्रत्याह्वान हो जाता है। साहचर्य के अनेक नियम है जो इसमे बहुत ही मदद पहुँचाते हैं।

प्रतिमा का स्वरूप (Nature of Image) —बाह्य मौलिक उत्तेजना-विशेष (External original stimulus) के अभाव मे कभी-कभी मनुष्य उसका मानचित्र (Mental picture) प्राप्त करता है। ऐसे प्राप्त मानचित्र को प्रतिमा की संज्ञा दी जाती है। प्रतिमा प्रत्यक्ष एवं अनुप्रतिमा या अनुबिम्ब (After image) से भिन्न है। प्रतिमा मे वातावरण से उपस्थित उत्तेजना का अभाव होता है। उत्तेजना का एक मानचित्र मनुष्य को प्राप्त होता है जिसे प्रतिमा कहते हैं।

परन्तु प्रत्यक्ष मे उत्तेजना वातावरण मे उपस्थित होती है जिसका प्रत्यक्षीकारण मनुष्य को होता है। इसके फलस्वरूप उस उत्तेजना का मानचित्र मनुष्य के मस्तिष्क मे पडता है। ऐसे प्राप्त मानचित्र को प्रत्यक्ष की संज्ञा दी जाती है। एक तीसरे मानसिक क्रिया, जो बहुत-कुछ प्रतिमा एवं प्रत्यक्ष से मिलती-जुलती है, उसे अनुप्रतिमा (After-image) कहते है। भौतिक उत्तेजना का ज्ञानेन्द्रियो के सम्पर्क से हटने के बाद भी ज्ञानेन्द्रियाँ क्रियाशील रहती है, ऐसी स्थिति मे हमे उस उत्तेजना-विशेष का एक मानचित्र उपस्थित दीखता है। ऐसी उपस्थित मानचित्र को 'अनुप्रतिमा' या अनुसंवेदना (After-sensation) कहते हैं। प्रतिमा प्रत्यक्ष एवं अनुप्रतिमा अनुसंवेदना के आपसी भेद को एक उदाहरण द्वारा अत्यधिक स्पष्ट किया जा सकता है, जैसे—मनोविज्ञान की पुस्तक सामने रखे रहने पर व्यक्ति इस पुस्तक (उत्तेजना) का एक मानचित्र (Mental picture) प्राप्त करता है जिसे प्रत्यक्ष (Percept) की संज्ञा दी जाती है। पुस्तक को अधिक देर तक रहने के बाद यदि अचानक सामने से पुस्तक हटा ली जाती है तो पुस्तक मे ज्ञानेन्द्रियो के सम्पर्क मे आने से ज्ञानेन्द्रियो मे उत्पन्न क्रियाएँ तुरत समाप्त नही होती वरन् ज्ञानेन्द्रियो के सम्पर्क से उत्तेजना को हटा लेने के बाद भी कुछ समय (सेकेण्डो या कुछ मिनटो) तक क्रियाशील ही रहती है। फलस्वरूप, पुस्तक का मानचित्र मानस-पटल पर थोडी देर के लिए बना रहता है। ऐसे प्राप्त मानचित्रो को अनुप्रतिमा (After-image) या अनुसंवेदना (After-sensation) कहा गया है। एक तीसरी मानसिक प्रतिक्रिया जिसे प्रतिमा कहते हैं, पुस्तक के अभाव मे मनुष्य के मानस पटल पर प्राप्त उसका मानचित्र ही है। प्रतिमा के स्वरूप के आधार पर हम प्रत्यक्ष और प्रतिमा के वर्तमान अन्तरो के विश्लेषण को इस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं—

प्रत्यक्ष और प्रतिमा में अन्तर
(Distinction between Percept and Image)

प्रत्यक्ष (Percept)	प्रतिमा (Image)
(क) बाह्य उत्तेजना का उपस्थित रहना आवश्यक है। उत्तेजना के प्रत्यक्षीकरण से उत्पन्न मानचित्र को प्रत्यक्ष कहते हैं।	(क) बाह्य उत्तेजना का अभाव। उत्तेजना की अनुपस्थिति में भी उसके एक मानचित्र का दीखना प्रतिमा कहलाता है।
(ख) प्रत्यक्ष में उत्तेजना के प्रत्येक अंश स्पष्ट दीखते हैं।	(ख) उत्तेजना के अभाव में मनुष्य उत्तेजना के कुछ अंशों को भूल जाता है। अतः स्पष्टता का अभाव भी प्रतिमा में रहता है।
(ग) प्रत्यक्ष स्थिर होता है।	(ग) प्रतिमाएं स्थिर नहीं होतीं। विभिन्न प्रतिमाएँ मानस-पटल पर आती हैं और विलीन होती रहती हैं। अतः उनमें बराबर परिवर्तन होता रहता है।
(घ) प्रत्यक्ष में हमारी मनोवृत्ति (Attitude) विषयात्मक (Objective) होती है। एक पुस्तक के प्रत्यक्षीकरण के समय हमारा ध्यान पुस्तक पर ही होता है उससे सम्बन्धित अनुभवों पर कम या एकदम नहीं। अतः मनोवृत्ति को यहाँ विषयात्मक कहते हैं।	(घ) प्रतिमा में हमारी मनोवृत्ति आत्मगत (Subjective) रहती है। प्रतिमा का अनुभव करते समय हमारा ध्यान अपने मानसिक अनुभवों पर होता है। प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव आत्मनिष्ठ होता है। अतः *प्रतिमा में पायी जाने वाली मनोवृत्ति* को आत्मगत कहते हैं।
(ङ) प्रत्यक्ष में उत्तेजना ज्ञानेन्द्रियों के सामने रहती है। अतः उत्तेजना के प्रति इन्द्रिय विशेष का अभियोजन भी आवश्यक है।	(ङ) प्रतिमा में बाह्य उत्तेजना का अभाव रहता है जिसका प्रत्यक्ष में होने वाले इन्द्रिय अभियोजन की आवश्यकता नहीं पड़ती।
(च) प्रत्यक्ष में उत्तेजनाएँ ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करती हैं जिससे स्नायुप्रवाह ज्ञानेन्द्रिय विशेष में पहुँचता है और तब प्रत्यक्ष का *अनुभव होता है।*	(च) प्रतिमा में ज्ञानेन्द्रिय-विशेष को उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि इसका अनुभव सिर्फ मस्तिष्क के उपयुक्त स्नायुकेन्द्रों *के उत्तेजित होने से ही होता है।*

प्रतिमा के प्रकार
(Kind of Image)

प्रतिमाएँ अनेक प्रकार की होती हैं। प्रतिमाओं को विभिन्न वर्गों में विभक्त किया गया है। प्रतिमाओं के वर्गीकरण का आधार या तो (क) ज्ञानेन्द्रियाँ हैं या (ख) प्रत्यक्षीकरण से सादृश्यता अथवा विभिन्नता है। इनकी चर्चा आगे की जा रही है—

(अ) ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्धी प्रतिमाएँ—

ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्धी प्रतिमाओ का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को होता है। अन्तर केवल इस बात का है कि कुछ व्यक्तियों मे विशेष रूप से दृष्टि-प्रतिमा का अनुभव होता है तो कुछ मे 'श्रवण-प्रतिमा' का। अर्थात्, प्रतिमाओ के अनुभव में वैयक्तिक 'विभिन्नता' पायी जाती है। इस विभिन्नता के आधार पर प्राचीन मनोवैज्ञानिको ने व्यक्ति का वर्गीकरण किया। जिस व्यक्ति मे दृष्टि-प्रतिमा का अनुभव विशेषकर होता है, उस व्यक्ति को चाक्षुषी (Visile) की सज्ञा मनोवैज्ञानिको ने दी। इस प्रकार श्रवण-प्रतिमा की अनुभूति, जिसे विशेषकर होती थी, उस व्यक्ति को श्रावक (Audile) के वर्ग मे रखा गया है। परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिको को यह वर्गीकरण मान्य नही। इसका एकमात्र कारण यह है कि सभी मनुष्यो मे प्रत्येक प्रकार की प्रतिमाओ की अनुभूति होती है, अन्तर केवल उनमे से किसी एक विशेष रूप से पाया जाना ही है। अत प्रतिमाओ के आधार पर व्यक्तियो का वर्गीकरण ठीक नही जँचता। फिर भी, सक्षेप मे इनका वर्णन नीचे कर दिया जाता है—

१ दृष्टि-प्रतिमा (Visual-image)— आँखो के सामने किसी व्यक्ति या वस्तु के अभाव मे पहले की देखी हुई चीज के मानचित्र का आना दृष्टि-प्रतिमा का परिचायक है। उदाहरणार्थ, एकान्त मे बैठे विद्यार्थी के मानस-पटल पर गत रात्रि मे देखे फिल्म के प्रिय दृश्यो का आना। इस अवस्था मे ऐसा जान पडता है कि वह उस फिल्म को दुबारा देख रहा हो, यद्यपि बात वैसी नही रहती। फिल्म के उन दृश्यो की अनुपस्थिति मे प्राप्त ऐसे अनुभव को दृष्टि-प्रतिमा की सज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार प्राय लोगो का अनुभव है कि अपने माता-पिता, भाई-बहनो से बहुत दिनो तक अलग रहने पर हम सब उनके बारे मे कभी सोचने लगते है तब उनका दृश्य हमारे मानस-पटल पर आने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमारे सामने बैठे है और हम उनसे बातें कर रहे हैं। पर यह बात उनकी अनुपस्थिति मे ही होती है।

२ श्रवण-प्रतिमा (Auditory-image)— वास्तविक आवाज के अभाव मे पहले सुनी आवाज का अनुभव होने को ही श्रवण-प्रतिमा कहते है। अपने माता पिता से दूर छात्रावास मे रहनेवाला विद्यार्थी यदि उनकी आवाज का अनुभव करता है तो इसे उस विद्यार्थी की श्रवण प्रतिमा कहेंगे।

३ घ्राण-प्रतिमा (Olfactory-image)— सुगन्धित पदार्थ के अभाव मे पहले से परिचित सुगन्ध का अनुभव अगर कोई व्यक्ति करता हो, तो हम निस्सदेह इसे उसकी घ्राण-प्रतिमा कहेंगे। चमेली के फूल के अभाव मे अगर किसी को इसकी सुगन्ध का अनुभव हो, तो यह निश्चय ही उस व्यक्ति का घ्राण-प्रतिमा कही जायगी।

४ स्पर्श-प्रतिमा (Tactual-image)— यदि भूतकाल मे स्पर्श किये हुए कोमल शरीर के अभाव मे व्यक्ति इनके स्पर्श का अनुभव करता है तो स्पष्ट ही यह उसकी स्पर्श प्रतिमा कही जायगी। अर्थात् वास्तविक स्पर्श के अभाव मे स्पर्श का

अनुभव यदि किसी व्यक्ति को हो तो स्पष्टतया वह उसकी स्पर्श प्रतिमा कही जायगी ।

५ स्वाद-प्रतिमा (Gustatory image)— किसी चीज का स्वाद उसे खाने पर प्राप्त होता है । कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति उस वस्तु को उस समय नही खाता रहता है फिर भी उसे उस वस्तु का स्वाद मिलता है जैसे— आम का स्वाद आम खाने पर ही मिल सकता है । पर आम के नही खाने पर भी मनुष्य कभी-कभी ऐसा अनुभव करता है कि वह आम के स्वाद को पा रहा है । यदि मनुष्य मे आम के अभाव मे उससे प्राप्त स्वाद का अनुभव हो तो इसे उसकी स्वाद-प्रतिमा (Gustatory image) कहते है ।

६ गति प्रतिमा (Motor image)— कभी-कभी मनुष्य शान्तिपूर्वक बैठे बैठे ऐसा अनुभव करता है कि जैसे वह चल रहा हो या किसी चीज को चला रहा हो । एक खिलाड़ी को खेल के मैदान मे दौड़ लगाने का अनुभव चुपचाप बैठ रहने पर भी होता है । इसी प्रकार बैडमिन्टन के खिलाड़ी बैठे-बैठे कभी ऐसा महसूस करते है कि वे खेल रहे हों । शान्त बैठ रहने पर भी अपनी गति का अनुभव करने को ही गति प्रतिमा की संज्ञा दी जाती है ।

(ख) प्रत्यक्षीकरण से सादृश्यता अथवा विभिन्नता के आधार पर प्रतिमाओं का वर्गीकरण—

१ अनुबिम्ब (After-image)— भौतिक उत्तेजनाओं के वर्तमान रहने पर व्यक्ति को उसका प्रत्यक्षीकरण होता है । इस समय उसके मानस पटल पर उस उत्तेजना विशेष का एक मानचित्र (Mental picture) बनता है, जिसे प्रत्यक्ष कहते है । परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उस उत्तेजना का ज्ञानेन्द्रिय विशेष से सम्पर्क हट जाने पर भी व्यक्ति को उसका अनुभव कुछ सेकेण्ड अथवा कुछ मिनटों तक होता रहता है । यह अनुभव प्रत्यक्ष से सर्वदा भिन्न है । इस अनुभव को ही मनोवैज्ञानिकों ने अनुबिम्ब (After-image) की संज्ञा दी है उदाहरणार्थ—किसी सुगन्धित फूल का सम्पर्क नाक से हटा लेने पर भी कभी-कभी कुछ क्षणों तक व्यक्ति को ऐसा मालूम पड़ता है कि उसको सुगन्ध का अनुभव अभी हो रहा है ।

परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि वास्तविक रूप में इसको प्रतिमा नही कहना चाहिए । इनको 'अनुसंवेदना (After sensation) की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त होगा । ऊपर के उदाहरण को ही ले लें । फूल के अभाव में भी उसकी सुगन्ध का अनुभव करना प्रतिमा नही है वरन् यह अनुसंवेदना है क्योंकि लगातार उस समय तक उस सुगन्धित फूल की घ्राण संवेदना होते रहने पर इसका नाक से सम्पर्क हटा लेने पर भी व्यक्ति को ऐसा मालूम पड़ता है कि उसे सुगन्ध की घ्राण-संवेदना हो रही है । अस्तु उत्तेजना विशेष के हटा लेने पर कुछ क्षणों तक हुई संवेदना का ही अनुसंवेदना कहा गया है ।

२ प्रतिबिम्ब प्रतिमा (Eidetic-image) — यह पहले ही स्पष्ट कर दिया गया

है कि प्रत्यक्ष और प्रतिमा मे अन्तर है। फिर भी, ऐसा पाया गया है कि कभी-कभी प्रतिमाएँ भी प्रत्यक्ष की ही तरह अत्यधिक स्पष्ट और प्रबल होती है। अनुभव-कर्त्ता को ऐसा मालूम पडता है कि जिस वस्तु-विशेष की प्रतिमाएँ उसके मानस-पटल पर आती हैं। वे उसके सामने साक्षात रूप से वर्त्तमान है और उससे उनका प्रत्यक्षीकरण ही हो रहा है। परन्तु वास्तविकता यह है कि यह सब किसी भौतिक उत्तेजना के अभाव मे होता है, जैसे—अपने माता-पिता से दूर छात्रावास मे रहने वाले बालक को, जो अपने माता-पिता के बारे मे उस समय सोचता है, कभी-कभी ऐसा मालूम पडता है कि वे उसके सामने ही खडे हो और उनका प्रत्यक्षीकरण ही हो रहा है। ऐसी प्रतिमाओ को 'प्रत्यक्ष प्रतिमा' की सज्ञा दी जाती है। यह बात विशेषकर बालको मे पायी जाती है। परन्तु, इसका यह अर्थ नही हुआ कि यह बात प्रौढ व्यक्तियो मे एकदम नही पायी जाती। परन्तु यह सत्य है कि प्रौढ व्यक्तियो को इस प्रकार का अनुभव बालको की अपेक्षा बहुत-ही कम होता है।

यहाँ स्मरण रखने योग्य एक बात है कि 'प्रत्यक्ष', 'प्रतिमाओ' की अपेक्षा अधिक प्रबल एव स्पष्ट होते हुए भी 'प्रत्यक्षीकरण' से भिन्न है। वह बच्चा, जिसे किसी पूर्वानुभूत घटना या परिस्थिति का अनुभव रहा हो 'प्रत्यक्ष-प्रतिमा' के रूप मे हो, यदि इसके आधार पर उनका वर्णन करें तो उसका उस पूर्वानुभूत घटना अथवा परिस्थिति के भूतकाल मे हुए प्रत्यक्षीकरण की हू-बहू नकल (True copy) नही होगी।

३ स्मृति प्रतिमा (Memory-image)—स्मृति-प्रतिमा, प्रत्यक्ष प्रतिमा के समान प्रबल एव स्पष्ट नही होती है। प्रत्यक्ष-प्रतिमा की तरह उसमे और प्रत्यक्षीकरण मे समानता भी नही रहती। यहाँ सिर्फ समय और स्थान का निरूपण होता हैं। अर्थात्, व्यक्ति पूर्व अनुभव की गयी घटना की स्मृति प्रतिमा के आधार पर सिर्फ इतना ही बतला सकता है कि 'कब और कहाँ' उसको इसका अनुभव हुआ था। पर कभी-कभी तो इन बातो का भी अभाव-सा पाया जाता है। यहाँ व्यक्ति को सिर्फ इतना ही मालूम पडता है कि उसे कभी इसका अनुभव भूतकाल मे हुआ था, परन्तु कब और कहाँ इसके बारे मे कुछ निश्चित रूप से कहने मे असमर्थ रहता है।

हम पूर्व के अनुभव की गयी घटना अवस्था विषय का प्रत्याह्वान इन्ही स्मृति प्रतिमाओ के आधार पर कर पाते है। स्मृति-प्रतिमाएँ तथा साहचर्य मे एक घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसे - कभी नालन्दा के खडहरो की 'स्मृतिप्रतिमा' का अनुभव होने पर हमें इस बात की स्मृति हो आती है कि 'कब', 'किसके' साथ और 'किस' सिलसिला मे हम नालन्दा गये थे।

४. काल्पनिक प्रतिमा—(Imagination-image)—जैसा कि इनके नाम से ही प्रतीत होता है, इस प्रकार की प्रतिमाओ का आधार हमारी कल्पनाएँ ही हैं। 'काल्पनिक प्रतिमा' की उत्पत्ति कई एक विभिन्न स्मृति-प्रतिमाओ के तत्त्वो के मिलने के फलस्वरूप भी होता है। परन्तु ये प्रत्यक्षीकरण मे सर्वदा भिन्न हैं। इस दृष्टि-

जोण से यह उपयुक्त दूसरी और तीसरी तरह की अन्य प्रतिमाओं से भिन्न हैं क्योंकि उनका आधार तो भूतकाल में हुआ एक वस्तु का प्रत्यक्षीकरण ही है। काल्पनिक प्रतिमाएं विशेषकर अमूर्त विचारों (Abstract ideas) की ही हुआ करती हैं। काल्पनिक प्रतिमाएं बच्चों तथा स्वप्नद्रष्टा (Day-dreamer) में अधिकतर पायी जाती हैं। पागलों में तो इस बात की कमी नहीं है।

पंख वाले घोड़े' अथवा सोने की चिड़िया 'स्वर्ग-नरक' सिंह का सर तथा "मनुष्य के धड़ वाले प्राणी इत्यादि की प्रतिमाएं काल्पनिक प्रतिमा के सुंदर उदाहरण हैं।

(ख) साहचर्य
(Association)

साहचर्य का हमारे जीवन में प्रमुख स्थान है। इसके कई एक नियम हैं। अरस्तु (Aristotle) ही सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'साहचर्य के नियमों का प्रतिपादन किया। साहचर्य के नियमों का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने अध्ययन के आधार पर किया है। साहचर्य के मुख्यतः दो नियम हैं—(क) 'प्रधान नियम (Primary Law) तथा (ख) 'सहायक नियम Secondary Law)। इन दोनों नियमों के अन्तर्गत भी कई नियम हैं।

(क) साहचर्य के प्रधान नियम (Primary Law of Association)—साहचर्य के निम्नलिखित तीन प्रधान नियम हैं—

१ समीपता का नियम (Law of Contiguity)—जैसे तो ऊपर बतलाया गया है कि साहचर्य के तीन प्रधान नियम हैं परन्तु समीपता के नियम को ही हम साहचर्य का मूल नियम मान सकते हैं, क्योंकि अन्य बातों में समान रहती हुई दो अनुभूतियों में उनके स्थान तथा समय सम्बन्धी समीपता के कारण ही साहचर्य स्थापित हो जाता है जैसे—एक ही समय या एक ही स्थान में होने वाली कई प्रकार की अनुभूतियों में साहचर्य स्थापित हो जाता है। उदाहरण के लिए यह कह सकते हैं कि एक ही समय या एक स्थान में दो व्यक्तियों राम और श्याम से भेंट होने पर राम को देखने या उसके बारे में सोचने पर श्याम की भी याद आ जायगी। यह उनकी समीपता के कारण स्थापित साहचर्य के फलस्वरूप होता है।

२ समानता का नियम (Law of Similarity)—इस नियम से यह पता चलता है कि अन्य बातों में समान रहते हुए समान घटनाओं अथवा अनुभूतियों में साहचर्य स्थापित हो जाता है। इसके फलस्वरूप इन दोनों में एक के उपस्थित होने पर भी दूसरे का स्मरण हो जाने की बहुत संभावना रहती है। यहाँ पर समानता का यह अर्थ हुआ कि दो घटनाओं में समान तरह के विशेष गुण वर्तमान हों न कि दोनों अभिन्न हों (Not alike but similar)। उदाहरणार्थ—सड़क पर टहलते समय यदि एक दुर्घटना होते हम देखते हैं तो भूतकाल में हुई दुर्घटना के अनुभव

का स्मरण हमे हो जाता है। पर इसका यह अर्थ कदापि नही कि दोनो प्रकार की घटनाएँ एक ही तरह से हुई हो, बल्कि इन घटनाओ मे समानता, एक विशेष गुण 'दुर्घटना' के कारण है। हो सकता है कि पहली वाली दुर्घटना मोटर तथा रिक्शे मे टक्कर लग जाने के कारण हुई हो और वर्त्तमान वाली दुर्घटना रिक्शे और एक पैदल चलने वाले व्यक्ति मे टक्कर लग जाने के कारण हुई हो। फिर भी, दोनो घटनाओ के विशेष गुण मे समानता है, जिसे हम 'दुर्घटना' कहकर पुकारते हैं।

३ विरोध का नियम (Law of Contrast) — अन्य बातो मे समान रहते हुए भी दो अनुभूतियो अथवा घटनाओ मे साहचर्य उनमे परस्पर विरोध होने के कारण भी हो जाता है। अर्थात दो परस्पर-विरोधी अनुभूतियो अथवा घटनाओं मे सहज ही साहचर्य स्थापित हो जाता है। फलत उनमे से एक घटना की उपस्थिति रहने पर दूसरी विरोधी घटना का भी स्मरण हो जाता है। उदाहरणार्थ—सुख का अनुभव करते समय भूतकाल मे अनुभव किये दु ख का स्मरण हो जाना या रात्रि का ख्याल करते वक्त दिन का याद आ जाना आदि।

(ख) साहचर्य के सहायक नियम (Secondary Laws of Association)—साहचर्य के निम्नलिखित चार नियम हैं—

१ प्राथमिकता का नियम (Law of Primacy)—यह नियम इस बात पर जोर देता है कि अन्य बातो के समान होने पर मस्तिष्क पर पड़े हुए प्रथम प्रभाव तथा पूर्व-अनुभूतियो के साथ स्थापित प्रथम साहचर्य बहुत टिकाऊ (Lasting) होते है। फलत, उनका प्रत्याह्वान बहुत ही आसानी से संभव है, जैसे—हम अपने स्कूल या कॉलिज के आरंभिक दिनो की अनुभूतियो का प्रत्याह्वान बहुत सुलभता से कर सकते है।

२ आसन्नता का नियम (Law of Recency)—इनका उल्लेख करते हुए यह कहा जा सकता है कि अन्य बातो मे समान होते हुए भी, आसन्न अनुभूतियो' (Recent experiences) का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर ताजा रहता है तथा उनका साहचर्य हमारी पूर्व-अनुभूतियो से आसानी से हो जाता है। अत हम उनका प्रत्याह्वान बहुत ही सुगमता मे कर पाते है, जैसे—हाल ही मे देखे फिल्म या पढ़ी हुई पुस्तक को हम अपने अन्य अनुभूतियो से अधिक याद रखते है, फलत उनका प्रत्याह्वान अधिक सुगमता से कर पाते है।

३ बारम्बारता का नियम (Law of Frequency) यह नियम यह बतलाता है कि अन्य बातो मे समान रहने पर जिस अनुभव का प्रभाव मस्तिष्क पर बार-बार पड़ता है तथा साहचर्य बार-बार स्थापित होता है, उनका प्रत्याह्वान बहुत ही आसानी से होता है, जैसे—अपने पाठ्य-विषय के जिस भाग (Portion) को हम बार-बार (Frequently) पढ़ते हैं उसे अन्य भागो से अधिक याद कर पाते हैं। अत इनका प्रत्याह्वान भी अधिक आसानी से होता है।

४ स्पष्टता का नियम (Law af Vividness) —अन्य बातो में समान होते

हुए भी जिन अनुभूतियों का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर अपेक्षाकृत स्पष्ट पड़ता है तथा जो साहचर्य स्पष्ट होते हैं, उनका प्रत्याह्वान भी सुलभ हो जाता है जैसे-समाचारपत्र में मोटे मोटे काले अक्षरों में छपे समाचारों को अन्य छोटे-छोटे साधारण अक्षरों में छपे समाचारों से अधिक याद कर पाते हैं जिनके फलस्वरूप उनका ज्ञान भी आसानी से हो जाता है।

इस तरह हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि साहचर्य प्रत्याह्वान में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है। इस बात का स्पष्टीकरण मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा प्राप्त फलों के आधार पर भी किया है।

नीचे दिये गये निरर्थक शब्दखण्डों की सूची (List of Nonsense syllables) पर ध्यान दिया जाय तो साहचर्य के उपर्युक्त चारों सहायक नियम अत्यधिक रूप से स्पष्ट हो जायेंगे।

निरर्थक शब्दखण्डों की सूची (List of Nonsense syllable)—

LUX
QOS
RAV
BIJ
COQ
DIR
RAV
NUZ
XOL
SAB
FIK
RAV
VIP
GEC
RAV
MUQ

—यदि किसी प्रयोज्य (Subject) को इन १६ निरर्थक शब्दखण्डों की सूची (List of 16 nonsense syllable) को याद करने को दिया जाय तो वह LUZ, RAV XOL and MUQ इन चार शब्दखण्डों को अन्य शब्दखण्डों के अपेक्षाकृत आसानी से तथा शीघ्र सीख लेगा। इसके अतिरिक्त इस पूरी सूची को सीख लेने के कुछ समय बाद यदि प्रयोज्य को इनका प्रत्याह्वान करने को कहा जाय तब भी इन्हीं चार शब्दखण्डों का प्रत्याह्वान करने की सम्भावना अन्य शब्दखण्डों से अधिक रहेगी।

इन चार शब्दों में LUZ का प्रत्याह्वान होने की सम्भावना इसलिए अधिक रहती है कि यह सूची के आरम्भ में आता है। फलतः प्रयोज्य के मस्तिष्क पर इसका प्रभाव सबसे पहले पड़ता है। अस्तु यह प्राथमिकता का नियम (Law of Primacy) का ही फल है।

RAV चूँकि इस सूची में बार बार आया है, इसलिए यहाँ बारम्बारता का नियम (Law of Frequency) काम करता है जिसके कारण मस्तिष्क में इनका साहचर्य आसानी से स्थापित हो जाता है तथा वह अधिक टिकाऊ भी होता है। फलतः इसके प्रत्याह्वान होने की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक रहती है। यह स्पष्टता के नियम (Law of Vividness) का ही परिणाम है कि इस सूची में 'XOL शब्दखण्ड के प्रत्याह्वान होने की सम्भावना अधिक रहती है। इसके कारण प्रयोज्य के मस्तिष्क पर इस शब्दखण्ड द्वारा पड़े प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं टिकाऊ रहते हैं।

MUQ शब्दखण्ड का प्रत्याह्वान होने की सम्भावना इसलिए अधिकरहती

है कि यह सूची के अन्त मे आता है। अन्य शब्दखण्डो के अपेक्षाकृत यह एक आसन्न अनुभव (Recent experience) है। अस्तु, यहाँ आसन्नता का नियम (Law of Recency) काम करता है।

इस तरह हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहचर्य प्रत्याह्वान में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है। इस बात की पुष्टिकरण मनोवैज्ञानिको ने अपने प्रयागो द्वारा प्राप्त फलो के आधार पर भी किया है जिसका वर्णन यहाँ अभीष्ट नही।

पाँचवाँ अध्याय

चिन्तन

(Thinking)

भूमिका—चिन्तन क्रिया का विश्लेषण—चिन्तन क्रिया—चिन्तन और कल्पना में अन्तर—चिन्तन और स्मृति क्रिया—चिन्तन भाषा और चिन्तन—चिन्तन एवं प्रतिमा—मस्तिष्क और चिन्तन—चिन्तन में धारणा और अप्रत्यय धारणा का विकास—रचनात्मक चिन्तन।

मनुष्य और पशु में एक अन्तर यह है कि जहाँ मानव चिन्तन कर सकता है वहाँ प्रायः पशुओं में इसका अभाव पाया जाता है। सीखने के अध्याय में मानवों तथा पशुओं के सीखने में अन्तर पर प्रकाश डालते समय बतलाया गया है कि मनुष्य सीखने में चिन्तन का उपयोग करते हैं परन्तु विकासवाद की दृष्टि से उच्च कोटि के पशुओं जैसे—बन्दर और वनमानुष को छोड़कर दूसरे पशु सीखने के समय चिन्तन का उपयोग नहीं करते हैं और जो करते भी हैं उनके चिन्तन की मात्रा मनुष्य से कम होती है। साथ-साथ उनकी चिन्तन क्रिया मनुष्यों की चिन्तन क्रिया की अपेक्षा सरल होती है। जहाँ मनुष्य अधिकांशतया सूझ (Insight) द्वारा सीखता है वहाँ पशु सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन (Conditioning) प्रयत्न और भूल (Trial and Error) तथा दूसरे व्यवहारों का अनुकरण (Imitation) कर सीखते हैं। यह अन्तर इसलिए होता है कि पशुओं का स्नायुमण्डल मनुष्यों के अपेक्षाकृत सरल एवं कम विकसित होता है। चिन्तन क्रिया तथा बुद्धि में एक गहरा सम्बन्ध है। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि चिन्तन क्रिया आरम्भ कब होती है तथा इसके कौन-कौन से अंग (Stages) हैं। हमारे जीवन में नित्यप्रति कोई-न-कोई समस्या उठती ही रहती है जिनका समाधान अथवा हल करना वातावरण के साथ सफल अभियोजन के लिए आवश्यक है। इन समस्याओं का समाधान चिन्तन के अभाव में सम्भव नहीं। इस पर प्रकाश डालने के समय यह जान लेना आवश्यक है कि समस्या (Problem) किसे कहते हैं। समस्या या समस्या-जन्य परिस्थिति उसे कहते हैं जिनका समाधान व्यक्ति वर्तमान परिस्थिति में तुरत नहीं पा रहा है अर्थात् जिसका तत्कालीन हल नहीं हो पा रहा है जैसे—यदि गणित का कोई प्रश्न एक बालक तुरत हल कर देता है तो यह उसके लिए समस्या नहीं हुई क्योंकि वह उसको हल करना जानता है, इसलिए उसने उसका तत्काल हल कर लिया। पर यदि किसी दूसरे प्रश्न का तात्कालिक हल वह

नही कर पा रहा हो तो अब उसके लिए यह एक समस्या हो जाती है। इस समस्या को हल करने के लिए उसे सोचना पडता है। अर्थात् चिन्तन करना पडता है कि इसे कैसे हल करें। इसको हल करने के लिए वह भिन्न-भिन्न तरीको का उपयोग करता है। एक तरीका के गलत साबित होने पर दूसरे का उपयोग करता है और वह तब तक सोचता जाता है जब तक वह उस प्रश्न का सही हल (Solution) प्राप्त नही कर पाता है। अस्तु, चिन्तन की क्रिया समस्या के प्रस्तुत होने के साथ प्रारम्भ होती है और तब तक समाप्त नही होती है जब तक कि उस समस्या-विशेष का समाधान नही हो जाता है। अन्त मे हम कह सकते है कि चिन्तन-क्रिया एक मानसिक प्रक्रिया है जो हमे समस्याओ के समाधान मे सहायता प्रदान करता है। इस क्रिया का आरम्भ समस्या के उपस्थित होने पर होता है और यह समस्या समाधान होने तक जारी रहती है।

चिन्तन-क्रिया का विश्लेषण
(Analysis of thought process)

चिन्तन-क्रिया का विश्लेषण करने से हम उसमे निम्नलिखित कुछ मुख्य बात पाते है जो उपर्युक्त विवेचनो से भी स्पष्ट है—

१ समस्या या समस्यापूर्ण-परिस्थिति का उपस्थिति होना— जैसा कि ऊपर कहा गया है, चिन्तन-क्रिया के आरम्भ अथवा समस्यापूर्ण परिस्थिति का उपस्थित होना आवश्यक है। जब तक समस्या उपस्थित नही होगी, तब तक चिन्तन-क्रिया की आवश्यकता ही नही पडेगी, जैसे — एक गणित का प्रश्न, जो एक बालक तुरत नही बना पाता है उसके लिए यह समस्या है और वह उसको हल करने के लिए सोचता है अथवा चिन्तन करता है।

२ समस्या के समाधान के हेतु विभिन्न प्रकार के विचारो का आना— उपस्थित समस्या को हल करने अथवा उसका समाधान करने के लिए व्यक्ति के मन मे विभिन्न प्रकार के विचार एक के बाद दूसरे आते है, जैसे— प्रश्न के नही बनने पर बालक के मन मे उसको हल करने के हेतु विभिन्न विचार एक के बाद दूसरे आते है।

३. समस्या के समाधान के लिए व्यक्ति के मन मे आने वाले विभिन्न विचारो का एक लक्ष्य (समस्या का समाधान करना) की ओर निर्देशित होना— समस्या के समाधान करने के लिए व्यक्ति के मन मे उठनेवाले विभिन्न विचार निरर्थक नही होते है वरन् उनका एकमात्र लक्ष्य उस समस्या-विशेष का समाधान करना ही होता है, जैसे— प्रश्न के नही बनने पर बालक के मन मे उठने वाले विविध विचार उस प्रश्न को हल करने के हेतु ही उठते है।

४ समस्या का समाधान करने के लिए प्रयत्न और भूल की विधि का उपयोग करना— यह प्राय देखा जाता है कि जब किसी समस्या का समाधान आसानी से नही हो पाता है तब व्यक्ति उसका समाधान करने के लिए 'प्रयत्न और —

भूल की विधि का उपयोग करता है। अर्थात् उस समस्या को हल करने के हेतु उसके मन में विभिन्न विचार एक एक कर उठते है। इन विचारों का उपयोग वह उस समस्या का समाधान करने के लिए करता है। परन्तु, जब इनकी सहायता से भी उस समस्या का समाधान नही हो पाता है तब इस विचार अर्थात् समस्या समाधान की विधि का परित्याग कर देता है। तत्पश्चात् उसके मन में उस समस्या को हल करने के लिए एक दूसरा विचार या उसको हल करने का एक दूसरा तरीका उसके मन मे आता है और फिर इनका भी उपयोग वह इसके समाधान के हेतु करता है। समस्या के समाधान में इस विधि को भी असफल पाकर वह तीसरी विधि का उपयोग इसके समाधान के लिए करता है। यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक उसे समस्या का सही-सही समाधान करने का तरीका नही मिल जाता है जैसे— प्रश्न के हल नही होने पर बालक एक विचार या तरीके के असफल होने पर दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे का उपयोग करता है जब तक कि वह उसे ठीक-ठीक हल करने में समर्थ नही हो जाता है।

५ व्यक्ति का सक्रिय होना— ऊपर न० ४ से भी यह स्पष्ट हो गया है कि समस्या के हल करने के लिए व्यक्ति के मन मे केवल विभिन्न विचार ही नही आते हैं वरन् वह उन विचारो का उपयोग कर उस समस्या को हल करने की चेष्टा भी करता है। अर्थात् इस समय व्यक्ति मे सक्रियता भी देखी जाती है। यह सक्रियता उसमें तब तक दृष्टिगत होती है जब तक वह उस समस्या का ठीक-ठीक समाधान नही कर पाता है।

६ आन्तरिक सम्भाषण— यह प्राय: पाया गया है कि जब कोई व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करने के लिए कुछ सोचता रहता है तब उसके चेहरे को देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि वह भीतर-ही भीतर कुछ बोल भी रहा है। यही कारण है कि कुछ मनोवैज्ञानिको ने चिन्तन को अन्दर-ही-अन्दर बोलने की क्रिया की संज्ञा दी है, जैसे— प्रश्न को बनाते समय प्राय बालक अन्दर ही अन्दर कुछ बोलते पाये जाते है।

७ समस्या का समाधान होने पर उपर्युक्त सभी बातों का अन्त हो जाना— व्यक्ति जब अपनी समस्या का समाधान करने में समर्थ हो जाता है तब उसकी चिन्तन क्रिया समाप्त हो जाती है। अस्तु, चिन्तन क्रिया के उपर्युक्त सभी अंगो का भी अन्त हो जाता है।

सरल समस्याओ को छोड़कर प्राय सभी कठिन समस्याओ के समाधान में चिन्तन क्रिया के उपर्युक्त सभी अंगो का समावेश देखा गया है।

चिन्तन क्रिया
(Thought Process)

चिन्तन क्रिया किसी समस्या के उपस्थित होने से आरम्भ होती है और जब तक उसका समाधान नही हो पाता है तब तक यह समाप्त नही होती है। चिन्तन क्रिया

के आरम्भ तथा समाप्त होने के बीच मे अनेक अवस्थाएँ होती है, जिन्हे चिन्तन-के आवश्यक अगो के नाम से ही पुकारा गया है। इनका सक्षेप मे यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है।

(क) चिंतन क्रिया मे 'दिशा' का होना (Direction in Thinking)— चूँकि चिन्तन-क्रिया की उत्पत्ति ही एक समस्या-विशेष के उपस्थित होने से होती है, इसलिए यह सदा उस समस्या के समाधान की ओर ही निर्देशित रहते है। अर्थात् व्यक्ति के विचार समस्या के समाधान से ही सम्बन्धित रहते है। उस समय व्यक्ति की मानस -वृत्ति ऐसी हो जाती है कि उसके मन मे आने वाले प्रत्येक विचार उस समस्या के समाधान से ही सम्बद्ध रहते है। अर्थात्, उसके मन मे वैसे ही विचार आते है जो सम्भवत उस समस्या का समाधान कर सकें। इनके साथ-साथ व्यक्ति मे वैसी ही प्रतिक्रियाएँ देखी जाती हैं जिनका उनके अनुसार समस्या के समाधान से ही सम्बन्ध रहता है। उदाहरणार्थ, जब किसी की मोटर अचानक सडक पर चलते-चलते रुक जाती है तब उसके मन मे विभिन्न विचार उठते है, परन्तु वे विचार उस समस्या से सम्बन्धित रहते है, जैसे—हो सकता है, पेट्रोल कम हो गया हो, इजिन मे पानी नही हो या कोई तार अलग हो गया हो इत्यादि। इन सभी विचारो की जाँच वह एक एक कर करता है और तब वही वह मोटर के अचानक रुक जाने के सही-सही कारण (जो उसके लिए उस समय एक समस्या है) का पता लगा पाता है।

(ख) चिन्तन मे 'प्रयत्न और भूल' (Trial and Error in Thinking)— इस अध्याय के आरम्भ मे तथा 'सीखने के अध्याय' मे भी यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पशु तथा मनुष्य दोनो 'प्रयत्नो और भूल' द्वारा सीखते हैं। परन्तु दोनो के प्रयत्न और भूल की मात्रा मे अन्तर है। मनुष्य की अपेक्षा पशु के सीखने मे प्रयत्न और भूल की मात्रा अधिक पायी जाती है। 'सीखना और चिन्तन मे निकट सम्बन्ध है।' किसी भी समस्या का समाधान कर लेने को भी हम सीखना कह सकते हैं, चूँकि सीखने मे भी किसी समस्या का समाधान ही करना पडता है, जैसे—थार्नडाइक के भूलभुलैया तथा भ्रान्ति-बक्स' वाले प्रयोगो मे भी क्रमश भूलभुलैया (Maze problem) तथा भ्रान्ति-बक्स' (Puzzle-box) से बाहर निकल जाना सीख लेना भी क्रमश चूहे और बिल्ली के लिए एक समस्या थी। यहाँ भी चूहे तथा बिल्ली ने चिन्तन का प्रयोग किया, हालांकि कम विकसित तथा सरल स्नायुमण्डल होने के कारण चिन्तन की मात्रा नही के बराबर थी। मनुष्यो पर किये गये 'भूलभुलैया सम्बन्धी प्रयोगो (Maze learning experiments) मे भी मनुष्यो मे प्रयत्न और भूल की विधि का प्रयोग पाया गया है। परन्तु, पशुओ तथा मनुष्यो के प्रयत्न और भूल मे अन्तर है। जहाँ पशुओ मे 'गतिवाही प्रयत्न और भूल' (Motor Trial and Error) पाया जाता है वहाँ मनुष्यो मे 'मानसिक प्रयत्न और भूल'

(Mental Trial and Error) की प्रधानता रहती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्यों में गतिवाही प्रयत्न और भूल का सर्वथा अभाव रहता है। इस तरह स्पष्ट है कि पशुओं तथा मनुष्यो, दोनों के चिन्तन में प्रयत्न और भूल की प्रधानता है। मनुष्य अपने इस प्रयत्न और भूल को प्रकट नही करता है परन्तु पशुओं मे इसका प्रकटीकरण उनके व्यवहारों से प्राय हो जाता है। मोटर के *अचानक रुक जाने वाली समस्या को ही ले लें। यहाँ भी व्यक्ति के मन में विभिन्न* विचार उठते है और वह उनकी जाँच करता है। एक विचार के गलत साबित होने पर एक दूसरा विचार उसके मन मे उठता है और वह फिर उसकी भी जाँच करता है। यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक उस समस्या के सही सही कारण का पता नहीं लगा लेता है। यहाँ व्यक्ति 'समस्यापूर्ण स्थिति' का समाधान तुरत नही कर पाता है। कभी कभी अपने विचारो की जाँच व्यक्ति सक्रिय होकर नहीं करता है बरन मन-ही-मन उस सम्बन्ध मे तर्क वितर्क करने के पश्चात् कर लेता है जैसे—यदि उसके मन मे यह विचार उठता है कि मोटर इसलिए रुक गयी है कि उसमे पेट्रोल कम हो गया हो तो इस बात की जाँच पेट्रोल की टकी को न देखकर न कि सिर्फ यह सोचकर कर सकता है कि कल ही उसने तीन लीटर पेट्रोल अपने मोटर मे भराया था और उसकी गाडी मुश्किल से दस मील चली होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्यो की चिन्तन क्रिया मे 'मानसिक तथा 'गतिवाही दोनों प्रकार के प्रयत्न और भूल' पाए जाते हैं। इसमें सन्देह नही कि दूसरे प्रकार के प्रयत्न और भूल की मात्रा पहले प्रकार के अपेक्षाकृत बहुत ही कम रहती है।

यहाँ पर स्मरण रखने योग्य एक बात है कि प्रयत्न और भूल का चिन्तन क्रिया मे होना चिन्तन क्रिया की व्याख्या नहीं करता बल्कि यह चिन्तन क्रिया का सिर्फ वर्णन ही प्रस्तुत करता है। अर्थात् यह कह सकते है कि 'प्रयत्न और भूल चिन्तन क्रिया का एक अंग मात्र ही है।

चिन्तन और कल्पना में अन्तर
(Distinction between Thinking and Imagination)

चिन्तन तथा कल्पना में निम्नलिखित अन्तर है—

१ चिन्तन क्रिया और कल्पना के बीच के अन्तर को जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि किन किन अवस्थाओं तथा परिस्थितियों में क्रमश चिन्तन और कल्पना की उत्पत्ति होती है।

चिन्तन क्रिया का उत्पन्न होना एक समस्या विशेष के उपस्थित होने पर ही होता है परन्तु कल्पना की उत्पत्ति के लिए किसी समस्या का उपस्थित होना आवश्यक नही है। कल्पना प्राय किसी समस्या के अभाव में ही उत्पन्न होती है और यदि समस्या रहती भी है तो यह समस्या चिन्तन क्रिया को उत्पन्न करने वाली समस्या की तरह वास्तविक समस्या न होकर काल्पनिक समस्या रहती है।

२ इन दोनो मे दूसरा अन्तर यह है कि वहाँ चिन्तन में लक्ष्य निर्देशन का होना अनिवार्य है वहाँ कल्पना के साथ वैसी बात नही है। कल्पना सदा 'लक्ष्यरहित' है, अर्थात् यह किसी लक्ष्य की ओर निर्देशित नही रहती है। कारण यह है कि जैसा ऊपर बतलाया गया है, यह किसी वास्तविक समस्या की अनुपस्थिति मे ही उत्पन्न हो जाती है।

३ कल्पना तथा चिन्तन मे तीसरा अन्तर यह है कि कल्पना मे यथार्थता (Reality) का अभाव रहता है, परन्तु चिन्तन सदा यथार्थ होता है। चूँकि कल्पना की उत्पत्ति का कारण ही अयथार्थ रहता है, इसलिए इसमे अयथार्थता का होना स्वाभाविक है। दूसरी ओर, क्योकि चिन्तन-क्रिया किसी वास्तविक समस्या-विशेष के समाधान के हेतु ही प्रारम्भ होती है, इसलिए यह यथार्थता के अति निकट होती है।

४. चिन्तन और कल्पना मे आखिरी अन्तर यह है कि चिन्तन तर्कपूर्ण (Logical) होता है, किन्तु कल्पना तर्करहित (Illogical)। काल्पनिक उत्पत्ति होने के फलस्वरूप कल्पना का तर्करहित होना कोई आश्चर्यजनक नही, स्वाभाविक है। परन्तु चिन्तन-क्रिया एक वास्तविक समस्या (Real Problem) के समाधान के निमित्त ही उत्पन्न होता है, अर्थात् इसका एकमात्र ध्येय समस्या समाधान (Problem-solving) ही है। अत इसका तर्कसगत (Logical) होना अनिवार्य है। इसके अभाव मे समस्या का सही-सही समाधान असम्भव है परन्तु इसका यह अर्थ नही कि चिन्तन के तर्कसगति (Logical consistency) का अभाव कभी भी नही पाया जाता है। पर निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कल्पना मे प्राय इसका अभाव-सा रहता है।

चिन्तन और स्मृति
(Thinking and Remembering)

चिन्तन और स्मृति दोनो ही व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाएँ है पर चिन्तन स्मृति की अपेक्षा अधिक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। चिन्तन मे स्मृति से अधिक उपक्रियाएँ (Sub-process) पायी जाती है। रचनात्मक चिन्तन (Creative Thinking) मे तो तथ्य-सग्रह (Preparation), गर्भीकरण (Incubation), स्फुरण (Illumination), प्रमापन (Verification) इत्यादि की कई एक अवस्थाओ के कारण इसकी जटिलता और भी बढ जाती है।

जब व्यक्ति के सामने कोई समस्या उत्पन्न होती है तो उसमे चिन्तन की क्रिया का उदय होता है और चिन्तन की क्रिया प्राय तब तक चलती रहती है जब तक उस समस्या का समाधान (Solution of the problem) नही हो जाता है। पर स्मृति की क्रिया समस्याओ के अभाव मे यदि हो जाती है और इसका सम्बन्ध किसी समस्या-विशेष के समाधान मे ही हो, यह कोई आवश्यक नही है। अर्थात् जहाँ स्मृति का प्रकट (Direct) का सम्बन्ध समस्याओ के समाधान मे नही, बल्कि विगत अनुभवो (Past experiences) को फिर से अपनी चेतना के केन्द्र मे लाने मे है।

स्मृति की मानसिक प्रक्रिया का भी स्वभाव (Nature) रचनात्मक (Creative) है, परन्तु चिन्तन की क्रिया में रचनात्मक की मात्रा अत्यधिक पायी जाती है। जब कोई वैज्ञानिक 'चाँद पर व्यक्ति कैसे पहुँच पायें', इस विषय को लेकर रचनात्मक चिन्तन करता है तो निश्चय ही उसके मस्तिष्क में स्मृति की क्रिया से कहीं अधिक रचनात्मकता की आवश्यकता पड़ती है।

स्मृति की प्रक्रियाओं में भी भूलें (Errors) होती हैं। पर चिन्तन में भूल और सुधार होने की क्रिया अधिक देखी जाती है। वैज्ञानिक अपनी समस्या सम्बन्धी चिन्तन में बार बार भूलें करता है। परन्तु, एक बार समस्या का समाधान हो जाने पर चिन्तन की क्रिया समाप्त हो जाती है। उस समाधान को प्राप्त करने के लिए फिर से उसी प्रकार का चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन स्मृति की प्रक्रिया अपेक्षाकृत स्थायी (Relatively permanent) रहती है।

समस्याओं के समाधान के प्रयासों के कारण ही चिन्तन में अमूर्त धारणाओं (Abstract concepts) का सहारा लेने की आवश्यकता पड़ती है। पर स्मृति में तो विगत अनुभवों (Past experiences) के सिर्फ प्रत्याह्वान (Recall) का प्रयास होता है।

चिन्तन और स्मृति दोनों में व्यक्ति को अपनी भाषा (Language) विशेष का सहारा लेना पड़ता है, पर चिन्तन की अवस्था में व्यक्ति में अन्दर ही-अन्दर बोलने की क्रिया में काम आने वाले अवयवों में अप्रस्फुटित वाणी की क्रिया (Sub vocal talking) भी देखी जाती है। परन्तु स्मृति की क्रिया में ऐसी बात नहीं देखी जाती है।

यहाँ यह भी कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि चिन्तन की प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलने के लिए व्यक्ति में अन्य मानसिक क्रियाओं के साथ-साथ स्मृति की क्रिया की भी अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। लेकिन स्मृति की प्रक्रिया में चिन्तन की इस प्रकार की आवश्यकता नहीं पड़ती।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि चिन्तन और स्मृति दो मानसिक प्रक्रियाएं हैं जिनमें सम्बन्ध होते हुए भी काफी विभिन्नता है।

क्रिया और चिन्तन
(Action and Thinking)

समस्याजनक परिस्थिति अथवा किसी समस्या के उपस्थित होने पर उसके समाधान के लिए व्यक्ति के मन में विचारों का ताँता सा लग जाता है, अर्थात् एक के बाद दूसरे विचार तब तक आते रहते हैं जब तक वह समस्या का समाधान करने में समर्थ नहीं हो जाता है। उसके उन विचारों को हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते हैं। परन्तु इन विचारों के साथ व्यक्ति कुछ कार्य भी करता है। चिन्तन क्रिया के बीच की अवस्थाओं पर प्रकाश डालते समय यह स्पष्ट कर दिया गया है कि व्यक्ति इस समय सक्रिय दीख पड़ता है। अर्थात् वह अपने विचारों (Hypotheses) की जाँच करने के लिए कुछ न-कुछ कार्य जरूर करता है जैसे— जब मोटर अचानक

सडक पर रुक जाती है तो ड्राइवर पहले सोचता है कि उसकी मोटर क्यो रुकी और फिर अपने उस विचार की जाँच करने के लिए वह उससे सम्बन्धित कार्य भी करता है, जैसे—यदि उसके मन मे यह विचार आता है कि शायद पेट्रोल कम हो जाने के कारण मोटर रुक गयी है तो वह टंकी को खोल कर देखता है कि मोटर मे पेट्रोल सचमुच है या नही। यदि उसका यह विचार गलत साबित होता है तो फिर दूसरा विचार उसके मन मे आता है और वह इसकी जाँच के लिए कुछ कार्य या व्यवहार करता है। अस्तु, चिन्तन-क्रिया मे प्राय व्यक्ति कुछ-न-कुछ कार्य करता दीख पडता है। चिन्तन के अमूर्त-क्षेत्र (Abstract sphere) मे भी व्यक्ति कुछ-न-कुछ कार्य अवश्य ही करता है।

यहाँ पर स्मरण रखने योग्य एक बात यह है कि चिन्तन-क्रिया के समय व्यक्ति के मन मे आने वाले विचार जिस तरह समस्या के समाधान की ओर निर्देशित रहते है, ठीक उसी प्रकार इस समय व्यक्ति द्वारा किये गये कार्य भी समस्या के समाधान की ओर ही निर्देशित रहते है। चिन्तन-क्रिया मे व्यक्ति के द्वारा किये गये कार्य व्यक्ति के मन मे उस समस्या के समाधान के लिए आये विभिन्न विचारो से ही सम्बन्धित रहते है। जिस प्रकार कभी कभी कुछ विचार भी समस्या के समाधान की ओर निर्देशित नही रहते है उसी प्रकार चिन्तन-क्रिया मे किये गये कुछ कार्य भी कभी-कभी समस्या के समाधान की ओर निर्देशित नही रह सकते है। परन्तु, हम यह निस्सन्देह कह सकते हैं कि चिन्तन-क्रिया मे किये गये कार्य प्राय समस्या-विशेष के समाधान की ओर निर्देशित रहते हैं। जब तक व्यक्ति समस्या का समाधान नही कर लेता, उसमे यह क्रियाशीलता वर्त्तमान रहती है।

भाषा और चिन्तन
(Language and Thought)

कुछ मनोवैज्ञानिको ने चिन्तन को प्रतिबन्धित रूप से बोलना (Restrained speaking) या आन्तरिक भाषण या मन ही मन बोलना (Subvocal talking or Internal speech) या आन्तरिक भाषा (Implicit language) की संज्ञा दी है। यह स्पष्ट है कि चिन्तन मे 'भाषा' सदा वर्त्तमान रहती है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि चिन्तन 'भाषा' के अभाव मे नही होता है। पशुओ पर किये गये प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि भाषा के बिना भी चिन्तन-क्रिया सम्भव है।

इसका यह अर्थ हुआ कि हालाँकि चिन्तन क्रिया मे भाषा (Language) वर्त्तमान रहती है, फिर भी कुछ चिन्तन-क्रियाएँ भाषा के अभाव मे भी होती है। उदाहरणार्थ, हम उन चीजो के बारे मे भी सोचते है जिनका हम कोई नाम नही जानते है। ऐसी अवस्थाओ मे प्राय हमलोगो के मस्तिष्क मे उन चीजो की दृष्टि प्रतिमा या अन्य प्रकार की प्रतिमाएँ आती है, जिनके माध्यम से हम इनके बारे मे सोचते हैं। लेकिन कुछ मनोवैज्ञानिको ने तो यहाँ तक कहा है कि 'शब्दो' या 'प्रतिमाओ' के अभाव मे भी चिन्तन-क्रिया सम्भव है।

परन्तु यह प्रमाणित हो चुका है कि हमारे जीवन की अधिकांश चीज़ों का मणन (Represent) करने वाले प्रतीक (Symbol) भाषा प्रतीक (Language symbol) ही है, जो या तो मौखिक (Oral or verbal) या हाव भाव (Gesture) या लिखित (Written) है। हमारे अधिकांश चिन्तन इन्हीं प्रतीकों के आन्तरिक चयन (Internal manipulation) है।

यदि चिन्तन क्रिया का विश्लेषण किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि आन्तरिक सम्भाषण (Internal speech) से इसका निकट सम्बन्ध है। यदि अपनी चिन्तन क्रिया का विश्लेषण करें तो हम स्पष्ट रूप से हर जगह शब्दों (Words) को वर्तमान पायेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि सोचने के समय हम अपने-आप से बातें कर रहे हों। बालकों में तो यह अक्सर पाया जाता है कि वे ज़ोर-ज़ोर से बोल कर सोचते हैं जिसे प्रत्येक व्यक्ति सुन सकता है। वे तब तक इस प्रकार से सोचना बन्द नहीं करते हैं जब तक उन्हें यह नहीं मालूम हो जाता है कि ज़ोर ज़ोर से बोल कर सोचने की आदत ठीक नहीं है तथा अपने चिन्तन को अपने ही तक सीमित रखना चाहिए। गूंगे (Dumb) एवं बहरे (Deaf) लोग जो कि चिन्हों की भाषा (Sign Language) सीखे रहते है वे भी सोचने के समय अपनी अंगुलियों को उसी प्रकार घुमाते दीख पड़ते है जैसा कि वे किसी से बोलते समय करते हैं। लिखने तथा पढ़ने के समय क्रमशः जिस प्रकार व्यक्ति अपने हाथों तथा आँखों को घुमाता है ठीक उसी प्रकार सोचने के समय भी करता है। जैकोब्सन (Jacobson) महोदय ने बिजली के विशिष्ट यन्त्रों के द्वारा यह पता लगाया है कि चुपचाप अन्दर ही अन्दर गिनती (Counting) करने के समय भी शक्तियों की जीभ तथा गले में गतिशीलता पायी जाती है। इन सभी से भी इस बात का पुष्टिकरण हो जाता है कि चिन्तन करने के समय व्यक्ति भाषा का उपयोग करता है।

चिन्तन एवं प्रतिमा
(Thinking and Imagery)

भाषा और चिन्तन का उल्लेख करते समय यह स्पष्ट हो चुका है कि चिन्तन में प्रतिमाएं (Images) वर्तमान रहती हैं। जब हम किसी चीज या समस्या के सम्बन्ध में उसका समाधान करने के हेतु सोचते हैं तो हम उससे सम्बन्धित अपनी पूर्व अनुभूतियों की सहायता भी लेते हैं। पूर्व अनुभूतियों की सहायता हम उनके बारे में हमारे मानस-पटल में वर्तमान मानचित्र अथवा प्रतिमाओं के माध्यम से ही करते हैं। विभिन्न प्रकार की प्रतिमाएं हमारे मानस-पटल पर आती है जिनका उपयोग हम उस समस्या विशेष का समाधान करने के लिए करते हैं। जिस व्यक्ति म जिस प्रकार की प्रतिमा की प्रधानता रहेगी उसी प्रकार की प्रतिमा का उपयोग वह अपनी चिन्तन क्रिया में समस्या के समाधान करने के सिलसिले में करेगा। बुहलर (Buhler) नामक मनोविज्ञानिक ने अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि (Introspective method) के द्वारा किये गये अपने प्रयोगों के आधार पर कहा है कि 'चिन्तन क्रिया

का होना प्रतिमाओ के अभाव मे भी सम्भव है ।" परन्तु, यह विचार अधिकाश मनोवैज्ञानिको को मान्य नही है । उनका कहना है कि हम अपनी चिन्तन क्रिया मे सदा प्रतिक्रियाओ की सहायता लेते है और ये हमारी समस्याओ के समाधान मे मदद पहुँचाती है । वुडवर्थ (Woodworth) महोदय का तो यहाँ तक कहना है कि "हम प्रतिमाओ के अभाव मे सोच ही नही सकते है । प्रतिमाओ के बिना किसी पूर्व-अनुभूति का प्रत्याह्वान किया जा सकता है, परन्तु उसके बारे मे चिन्तन नहीं किया जा सकता ।" उन्होने इस विचार को अपनी प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के पुस्तक मे इस प्रकार से व्यक्त किया है—What is imageless is not thought so much as recall अर्थात्, प्रत्याह्वान की तरह चिन्तन प्रतिमाहीन नहीं होता ।

मस्तिष्क और चिन्तन
(Brain Thinking)

चिन्तन करते समय व्यक्ति का सारा शरीर क्रियाशील रहता है या सिर्फ उसका मस्तिष्क ? इस प्रकार मनोवैज्ञानिको मे मतभेद है । कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि हम सिर्फ अपने मस्तिष्क के सहारे सोचते है । इसे चिन्तन क्रिया का केन्द्रीय सिद्धान्त (Central theory of thinking) कहते है । पर दूसरी ओर अन्य मनोवैज्ञानिको का विचार है कि 'हम अपने सारे शरीर के सहारे सोचते हैं" अर्थात् सोचने के समय हमारा सारा शरीर क्रियाशील रहता है । इसे चिन्तन क्रिया का गतिवाही सिद्धान्त (Motor theory of thinking) की सज्ञा दी गयी है । पर अब यह प्रश्न उठता है कि दोनो मे कौन-कौन-सा सिद्धान्त सही है । यहाँ पर निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है । वर्तमान परिस्थिति मे हम सिर्फ इतना ही कह सकते है कि दोनो सिद्धान्त आशिक रूप मे सही है । अर्थात्, हम शरीर तथा मस्तिष्क (Body and Brain or Mind) दोनो के सहारे सोचते हैं ।

जेम्स (James) आदि मनोवैज्ञानिको ने बिजली के विशिष्ट यन्त्रो के द्वारा इस बात का पता लगाया है कि "सोचने के समय व्यक्ति की जीभ तथा गले मे ठीक इसी प्रकार की गतिशीलता देखी जाती है जैसा कि बोलने के समय देखी जाती है ।" फिर जब बहरे और गूँगे व्यक्तियो को गणित के कुछ प्रश्न हल करने को दिये गये तो उस सम्बन्ध मे चिन्तन करने के समय उनके हाथो मे गतिशीलता पायी गयी । इस प्रकार की गतिशीलता सामान्य (Normal) व्यक्तियो मे पायी जाती है । परन्तु, बहरे और गूँगे व्यक्तियो मे पायी जाने वाली गतिशीलता सामान्य व्यक्तियों से करीब चार गुनी अधिक थी । इसके अतिरिक्त, टोटेन (Totten) तथा इवार्ट (Ewert) महोदय ने अपने अध्ययनो के आधार पर इस बात का पता लगाया है कि सोचने के समय नेत्रो मे ठीक इसी प्रकार की गतिशीलता पायी जाती है जैसा कि इन चीज का वास्तविक निरीक्षण करने तथा उनको पढने के समय होती है । अस्तु, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि "सोचने के समय हमारे शरीर के विभिन्न अगो की मासपेशियो मे क्रियाशीलता या तनाव उत्पन्न हो जाता है ।" समस्या

जितनी ही कठिन होगी और जितना काफी व्यक्ति को सोचना पड़ेगा उतनी ही अधिक क्रियाशीलता उसकी मांसपेशियों में पायी जायगी।

मस्तिष्क के विभिन्न अंगों की क्रियाओं का उल्लेख करते समय यह पहुँ भाग के चौथे अध्याय में स्पष्ट कर दिया गया है कि चिन्तन क्रिया में मस्तिष्क के अग्रखण्ड (Frontal lobe) की ही प्रधानता है। मस्तिष्क के इस खण्ड में क्षति पहुँचने पर व्यक्ति की चिन्तन क्रिया में कमी हो जाती है। फ्रीमन (Freeman) तथा वाट्स (Watts) नामक शल्य चिकित्सकों (Surgeons) ने इस बात का पता लगाया है कि पशुओं के मस्तिष्क से उसके अग्रखण्ड को काट कर बिलकुल निकाल देने पर उनमें चिन्तन क्रिया एकदम नहीं देखी जाती।

अतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'चिन्तन क्रिया में व्यक्ति का शरीर और मस्तिष्क (Body and Brain) दोनों क्रियाशील रहते हैं अर्थात् चिन्तन क्रिया के केन्द्रीय (Central) तथा गतिवाही (Motor) दोनों सिद्धान्त सही हैं।

चिन्तन में 'धारणा' और 'अर्थ'

(Concept and meaning in Thinking)

धारणा एक प्रक्रिया है जो विभिन्न वस्तुओं परिस्थितियों या घटनाओं के बीच की समानता (Similarities) का प्रतिनिधित्व (Reprensent) करती है जैसे—आदमी बन्दर घोड़ा पेड़ इत्यादि उन्हीं वस्तुओं को कहा जाता है कि जिनमें कुछ सामान्य गुण हों। चिन्तन के फलस्वरूप ही धारणाओं की उत्पत्ति होती है। और एक बार उत्पन्न हो जाने पर बाद के चिन्तन में इनका प्रधान हाथ रहता है। किसी जटिल भाषा के अधिकांश शब्दों द्वारा ही धारणाओं का वर्णन होता है। उदाहरणार्थ—बिल्ली आदमी पेड़ पक्षी नदी इत्यादि सभी विभिन्न वस्तुओं के समान पहलुओं)Common aspects) का वर्णन करते हैं। हालांकि प्रत्येक आदमी एक दूसरे से भिन्न होते हैं फिर भी उनमें कुछ समान विशेषताएं रहती हैं जिनका ही वर्णन आदमी नामक धारणा (Concept) में किया जाता है।

धारणा का विकास

(Development of Concept)

धारणा के विकास में क्रमशः निम्नलिखित दो क्रियाओं का समावेश रहता है—(१) पृथक्करण (Abstraction) तथा (२) सामान्यीकरण (Generalization)। कभी-कभी तो इनको स्पष्टतया एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। परन्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये दोनों प्रक्रियाएं धारणा के विकास में सदा पायी जाती हैं।

विभिन्न वस्तुओं के समान गुण अथवा विशेषता को अलग कर लेने अथवा उसका निरीक्षण करने को ही पृथक्करण की संज्ञा दी गयी है। समान गुणों के पृथक्करण के अभाव में धारणाओं का निर्माण सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ—

जिस व्यक्ति ने पहले-पहल पशु नामक धारणा (Concept) का निर्माण किया होगा उसने इनमे वर्त्तमान विभिन्नता रहने पर भी कुछ सामान्य विशेषता अथवा गुण को पाया होगा और इसी गुण के आधार पर 'पशु' नामक धारणा का निर्माण किया होगा। यहाँ पर वह समान गुण अवश्य ही 'चौपाया' होगा, अर्थात् जो चार पैरो से चले। इसमे कोई सन्देह नही कि विभिन्न प्रकार के पशुओ से जैसे— घोडे, हाथी, बाघ, कुत्ते, बिल्ली इत्यादि मे भी काफी विभिन्नता है, फिर भी 'चौपाया' होने का विशेष गुण उन सबमे बिना किसी अपवाद के वर्त्तमान है। अस्तु, अपने इस अनुभव के आधार पर ही उस व्यक्ति ने सर्वप्रथम सामान्य पशुओ के सम्बन्ध मे एक सामान्य धारणा बनायी होगी। इसी सामान्य धारणा (Common idea) बनाने की प्रक्रिया को 'साधारणीकरण' की सज्ञा दी गयी। पृथक्करण के होने पर साधारणीकरण नही भी हो सकता है, परन्तु साधारणीकरण का होना पृथक्करण के अभाव मे कदापि सम्भव नही है।

यहाँ पर स्मरण रखने योग्य एक बात यह है कि यह कोई आवश्यक नही कि सदा पृथक्करण तथा साधारणीकरण की प्रक्रियाएँ चेतना मन द्वारा सम्पन्न होती हो या प्राणी इसे जान-बूझ कर ही करता हो।

धारणा-निर्माण (Concept Formation) सम्बन्धी बहुत-से टेस्ट (Test) मनोवैज्ञानिको द्वारा बनाये गये है जिनके द्वारा व्यक्ति के 'धारणा-निर्माण' करने की क्षमता की जाँच की जाती है। इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको द्वारा कई 'प्रयोग' भी किये गये है जिसका वर्णन यहाँ पर करना अभीष्ट नही है। धारणाएँ दो प्रकार की होती है— (१) अमूर्त्त धारणा (Abstract concept) तथा (२) मूर्त्त धारणा (Concrete concept)। इन दो प्रकार की धारणाओ के निर्माण मे व्यक्तियो को चिन्तन करना पडता है। 'अमूर्त्त' धाराणओ, की अभिव्यक्ति शब्दो (Words) द्वारा होती है या कहा जाय कि इसमे 'भाषा' का विशेष हाथ रहता है। किसी शब्द द्वारा अभिव्यक्त धारण को स्पष्ट रूप से समझने के लिए उस शब्द-विशेष के 'अर्थ' को जानना आवश्यक है अन्यथा उससे अभिव्यक्त धारणा का कोई अर्थ ही नही रह जाता।

बच्चो और वयस्को के धारणा-निर्माण (Concept Formation) मे अन्तर है। बच्चो मे वयस्को की अपेक्षा धारणाओ का विकास देर से होता है। कारण यह बतलाया गया है कि बालको तथा वयस्को की परिपक्वता मे अन्तर है। साथ-साथ बालको के अनुभवो का क्षेत्र वयस्कों को अपेक्षा अधिक सीमित रहता है।

रचनात्मक चिन्तन
(Creative Thinking)

अभी तक हमने साधारण प्रकार की चिन्तन-क्रिया का वर्णन किया है जो किसी एक मूर्त्त समस्या-विशेष के उपस्थित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है और उस समस्या का समाधान हो जाने पर समाप्त हो जाती है। अत यह स्पष्ट है कि

न्म प्रकार की भी चिन्तन क्रिया की अवधि बहुत ही कम होती है। परन्तु इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार की भी चिन्तन क्रिया होती है जिसकी अवधि पहली प्रकार की चिन्तन क्रिया से कही अधिक होती है और जिसे 'रचनात्मक चिन्तन क्रिया' कहते है। कोई भी वैज्ञानिक अन्वेषण तथा आविष्कार करने या किसी प्रमुख सिद्धान्त का प्रतिपादन करने इत्यादि क्रियाएँ जिसे रचनात्मक काय (Constructive work) कहते है रचनात्मक चिन्तन के बिना कदापि सम्भव नही है।

विशिष्ट अध्ययनो के आधार पर पता लगता है कि रचनात्मक चिन्तन क्रिया के निम्नलिखित चार मुख्य अग है— (क) तथ्य-संग्रह अथवा तयारी (Collection of facts or preparation) (ख) गर्भीकरण (Incubation) (ग) स्फुरण (Illumination or Inspiration) (घ) प्रमापन (Verification)।

अब हम चारों अगों का व्याख्या उदाहरणों की सहायता से करेंगे—

(क) तथ्यसंग्रह तथा तयारी (Collection of facts or preparation) — प्रत्येक प्रकार की शिक्षा (Education) रचनात्मक चिन्तन के लिए तैयारी करने के हेतु दी जाती है जसे—पेनिसिलिन (Pencillin)। इसका निर्माण करने वाला इस काय म समथ नही होता यदि उससे पहले चिकित्सा-शास्त्र में पर्याप्त शिक्षा नही मिली होती। रचनात्मक चिन्तन करने के लिए आवश्यक तथ्यों का पता लगाना पडता है जो रचनात्मक काय विशेष को करने में सहायता प्रदान करता है। आवश्यक तथ्यों का सग्रह करने में व्यक्ति को प्रयत्न और भूल की विधि का उपयोग करना पडता है।

(ख) गर्भीकरण (Incubation)—गर्भीकरण रचनात्मक चिन्तन क्रिया का दूसरा प्रमुख अग है। इस अवस्था में बाह्य व्यवहार का अभाव रहता है और किसी किसी अवस्था मे तो उस समस्या विशेष के सम्बन्ध से व्यक्ति कुछ सोचता तक भी नही है। फिर कभी-कभी बीच मे उस समस्या से सम्बन्धित कुछ विचार उस व्यक्ति के मस्तिष्क मे आते है। गर्भीकरण के बाद आने वाली अवस्था को देख कर कुछ *मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि जब रचनात्मक चिन्तन करने वाला अपना ध्यान* समस्या विशेष से दूसरी ओर लगाता है तब इसी बीच मे उसकी समस्या का समाधान अचेतन रूप से (Unconsciously) हो जाता है। इस बात को गलत साबित करना या इसका पुष्टिकरण करना असम्भव नही तो कठिन जरूर है। कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति जब अपनी समस्या को छोड भी जाता है तो स्वप्न (Dream) मे भी वह अपनी समस्या से सम्बन्धित बातों को देखता है। ये सम्बन्धित क्रियाएँ (Associative activities) जो एक बार शुरु हो जाती है वे सदा किसी-न किसी रूप में तब तक जारी रहती है जब तक रचनात्मक कार्य विशेष को नही कर लेता है। इस क्रिया को दीर्घा (Perseverance) करने की सज्ञा दी गयी है। इस अवस्था में 'रचनात्मक' विशेष काय करने मे प्रगति नही दीख पडती है। अस्तु इसे सीखने की क्रिया के पठार के समान माना गया है।

(ग) **स्फुरण** (Illumination or Inspiration)—यह 'रचनात्मक चिन्तन क्रिया' का तीसरा अंग है। अधिकांश रचनात्मक चिन्तन-कर्त्ताओं का कहना है कि **गर्भीकरण** की अवस्था के पश्चात् उनके **रचनात्मक विचार** (Creative ideas) अचानक चले आते हैं। इसे ही स्फुरण की क्रिया की संज्ञा दी गयी है। यह **स्फुरण** कभी भी स्वप्न की अवस्था में व्यक्ति में आ सकता है। यह समस्या-विशेष का समाधान करने में व्यक्ति को समर्थ बनाता है। इस अवस्था को सीखने की क्रिया की **सूझ की प्रक्रिया** (Process of Insight) के अनुरूप माना गया है।

साधारणतः 'प्रयत्न और भूल' की प्रक्रिया रचनात्मक चिन्तन के गर्भीकरण की अवस्था से अधिक तथ्य-संग्रह की अवस्था में पायी जाती है। अनेक रचनात्मक चिन्तन-क्रियाओं ने यह बतलाया है कि 'प्रयत्न और भूल-प्रक्रिया' रचनात्मक चिन्तन की किसी भी अवस्था में वर्त्तमान नहीं रहती है तथा समस्या विशेष से ध्यान हटा लने के पश्चात् ही अचानक उनमें स्फुरण की अवस्था देखी जाती है, जो उस समस्या विशेष का समाधान करा देती है।

(घ) **प्रमापन** (Verification)—रचनात्मक चिन्तन की सबसे आखिरी अवस्था को प्रमापन की अवस्था के नाम से पुकारा गया है। स्फुरण ही कभी-कभी रचनात्मक चिन्तन की अन्तिम अवस्था होती है। अधिकांश अवस्थाओं (Instances) में स्फुरण की अवस्था में आये विचारों की जाँच आवश्यक होती है। यहाँ यह पता लगाना आवश्यक हो जाता है कि कहाँ तक विचार **तर्कपूर्ण** (Logical) है और यह रचनात्मक कार्य को करने में समर्थ होगा। अर्थात् 'स्फुरण की अवस्था में प्राप्त समस्या-समाधान-विधि का पुनः निरीक्षण एक **नियन्त्रित अवस्था** (Controlled condition) में काम करता है। अस्तु, इस प्रकार स्फुरण के आधार पर बनाये सिद्धान्तों की पुनः जाँच की जाती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि इसी अवस्था में स्फुरित विचारों की **विश्वसनीयता** (Reliability) **तथा सत्यता** (Validity) की जाँच की जाती है।

अब हम एक उदाहरण से रचनात्मक चिन्तन-क्रिया के उपर्युक्त चारों अवस्थाओं को अत्यधिक रूप में स्पष्ट करेंगे। एक वैज्ञानिक को किसी विशेष चीज का आविष्कार (Invention) करने के लिए रचनात्मक चिन्तन करना पड़ता है। अस्तु रचनात्मक चिन्तन क्रिया के उपर्युक्त चारों अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। पहले वह आविष्कार के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्यों का संग्रह करता है, फिर **गर्भीकरण** की अवस्था आती है जिनमें कुछ समय के लिए वह प्रत्यक्ष रूप में अपने आविष्कार के सम्बन्ध में चिन्तन करना स्थगित कर देता है। इस अवस्था को **मुर्गी** के अण्डे-सेवन की अवस्था से मिलाया गया है, चूँकि इसी अवस्था के बाद वह अवस्था आती है जब अचानक समस्या-समाधान ठीक उसी प्रकार स्फुरित हो उठता है जिस प्रकार अण्डा-सेवन के बाद उसमें से मुर्गी का बच्चा निकल आता है। इसे स्फुरण की

अवस्था कहते है। तत्पश्चात वैज्ञानिक (Scientist) अपने आविष्कार विशेष को करने मे समर्थ हो जाता है। यह रचनात्मक चिंतन की तीसरी अवस्था है। अन्त में वह, अपने इस स्फुरित विचार की विश्वसनीयता तथा सत्यता (Reliability and Validity) की जाँच अथवा प्रमापन अपनी प्रयोगशाला (Laboratory) मे उस अवस्था में पुन दुहराकर तथा उनका नियन्त्रित निरीक्षण (Controlled observation) करता है।

छठा अध्याय

क्रिया

(Action)

भूमिका— क्रियाओ का वर्गीकरण— (१) अनैच्छिक एव (२) ऐच्छिक क्रियाएँ।

१. अनैच्छिक क्रियाएँ— सहज-क्रियाएँ तथा मूल प्रवृत्ति की क्रियाएँ।

(क) सहज क्रियाएँ— सहज-क्रियाओ की विशेषताएँ— सहज-क्रियाओ के प्रकार— 'शारीरिक सहज-क्रिया' तथा ज्ञानात्मक सहज-क्रिया।

(ख) मूल प्रवृत्त्यात्मक क्रियाएँ— मूल प्रवृत्तियो से सम्बन्धित संवेग तथा मैकडूगल महोदय के अनुसार मूल प्रवृत्तियो की सख्या— मूल प्रवृत्तियो का वर्गीकरण— मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया की विशेषताएँ तथा (ग) सहज क्रिया और मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया मे अन्तर।

२ ऐच्छिकक्रियाएँ— (क) ऐच्छिक क्रियाओ की विशेषताएँ एव (ख) आदतें अथवा अभ्यासजन्य क्रियाएँ।

मनुष्य जब तक जीवित रहता है तब तक कुछ-न-कुछ क्रिया एव प्रतिक्रिया करता ही रहता है। इसके बिना वातावरण से उसका अभियोजन होना सम्भव नहीं। अगर उसकी सारी क्रियाओ का एक अध्ययन किया जाय तो पाया जायगा कि उसकी कुछ क्रियाएँ स्वत होती है और अन्य क्रियाओ के लिए उन्हे जान-बूझ कर प्रयास करना पडता है।

आँखो मे कोई कण पड जाने पर पानी का निकलने लगना अथवा उँगली मे अगर कही 'पिन' चुभ गयी तो उँगली का झट पीछे की ओर बचाव के लिए खीच लेना आदि कुछ ऐसी क्रियाएँ है जो मनुष्य मे उत्तेजना-विशेष के होते ही आप-से आप सचालित हो जाती है। ये क्रियाएँ स्वत उत्पन्न हो जाती है। इसके लिए मनुष्यों को तर्क, चिन्तन अथवा मानसिक विचार-विमर्श करने की एक दम आवश्यकता नही पडती। इस प्रकार को क्रियाओ को स्वत सचालित अथवा अनैच्छिक क्रियाएँ (Involuntary actions) कहते हैं। इस प्रकार की क्रियाएँ अनार्जित होती हैं— अनसीखी (Unacquired or unlearnt) होती हैं।

दूसरी प्रकार की वे प्रतिक्रियाएँ हैं जो मनुष्य सोच-समझ कर करते है। ये

क्रियाएं स्वतः संचालित नहीं होती वरन् इन्हें मनुष्य अपनी इच्छा रुचि अथवा अपने किसी उद्देश्य की पूर्ति आदि के लिए जानकर (Consciously or knowingly) करते हैं। इस प्रकार की क्रियाओं को ऐच्छिक क्रियाएं (Voluntary activities) कहते हैं। ऐसी क्रियाएं अर्जित होती हैं अर्थात् सीखी (Learned) जाती हैं।

अस्तु मनुष्य की सारी प्रतिक्रियाओं को निम्नलिखित प्रकार से बाँटा जा सकता है जो पृष्ठ ३२५ पर दी गयी तालिका से अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगा। अब हम एक-एक कर इनका अध्ययन करेंगे।

(१) अनैच्छिक क्रियाएं

(Non-voluntary Actions)

मनुष्य में अनैच्छिक अर्थात् स्वतः संचालित प्रतिक्रियाओं को भी मनोवैज्ञानिकों ने कई भागों में बाँटा है जिनमें दो प्रमुख हैं— (क) सहज क्रियाएं (Reflex Actions) तथा (ख) मूलप्रवृत्यात्मक क्रियाएं (Instinctive Actions)।

(क) सहज क्रियाएं

(Reflex Actions)

सहज क्रियाएं मनुष्यों की ऐसी क्रियाएं हैं जो किसी उत्तेजना विशेष के सम्पर्क में आते ही आप-से-आप होती हुई पायी जाती हैं।[१] मान लीजिए कि आपके जीभ पर किसी ने अचार का टुकड़ा रख दिया है। टुकड़ा को जीभ के सम्पर्क में आते ही आपके मुंह में लार आने लगती है। अचार का टुकड़ा एक उत्तेजक (Stimulus) है और लार का निकलना एक प्रतिक्रिया (Response) है। परन्तु अचार (Pickle) के टुकड़े को जीभ पर आने के बाद आपके मुंह से लार आप-से-आप निकलने लगती है। इसके लिए आपको किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता है।

ठीक इसी प्रकार किसी का हाथ कभी खूब गर्म लोहे पर पड़ जाता है तो हाथ पड़ते ही वह तुरत अपना हाथ पीछे खींच लेता है। गर्म लोहे पर से तुरत हाथ हटा लेने की क्रिया स्वतः हो जाती है। इसमें कोई विलम्ब नहीं लगता। ऐसे ही तुरत हो जाने वाली स्वतः संचालित क्रियाओं को सहज क्रिया (Reflex action) कहते हैं।

सहज क्रियाओं का शारीरिक आधार (Physiological basis of Reflex Action)—

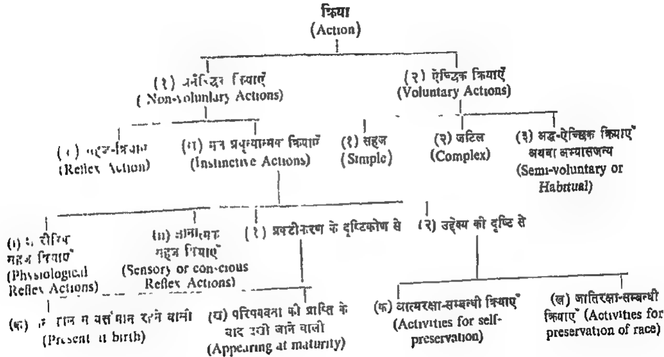
सहज क्रिया पर अगर ध्यान से विचार किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा

---

१ अंग्रेजी में सहज क्रियाओं की परिभाषा इस प्रकार है—

A reflex action is usually defined as 'an inherited or glandular reaction which is determind immediately by the stimulation of a receptor and consequent excitation of an afferent sensory neuron and which follows immediately upon such stimulation and excitation

—Collins & Drever


क्रिया
(Action)
(२) ऐच्छिक क्रियाएँ
(Voluntary Actions)
(Non-voluntary Actions)
(Reflex Action)
(Instinctive Actions)
(१) सहज
(Simple)
(२) जटिल
(Complex)
(३) अर्द्ध-ऐच्छिक क्रियाएँ
अथवा अभ्यासजन्य
(Semi-voluntary or
Habitual)
(Physiological
Reflex Actions)
(Sensory or conscious
Reflex Actions)
(१) प्रकटीकरण के दृष्टिकोण से
(२) उद्देश्य की दृष्टि से
(Present at birth)
(Appearing at maturity)
(क) आत्मरक्षा-सम्बन्धी क्रियाएँ
(Activities for self-
preservation)
(ख) जातिरक्षा-सम्बन्धी
क्रियाएँ (Activities for
preservation of race)

कि यह क्रिया प्राय पूर्णत शारीरिक आधार पर ही अवलम्बित है। सहज क्रियाओं का शारीरिक आधार सहज क्रिया-धनु (Reflex Arc) है। सहज क्रिया-धनु में निम्नलिखित अवयव की आवश्यकता पड़ती है— (i) ग्राह्यकेंद्रिय (A receptor organ) (ii) अन्तर्वाहक-स्नायु (Sensory nerve) (iii) सुषुम्ना (Spinal cord) (iv) बहिर्वाहक स्नायु (Motor nerve) तथा (v) ग्रन्थि अथवा मांसपेशियाँ (Glands and Muscles or Effectors)।

सबसे पहले उत्तेजना को ग्राह्यकेंद्रिय ग्रहण करती है। फलतः ग्राह्यकेन्द्रियों से लगे स्नायुओं से स्नायु प्रवाह (Nerve-impulse) उत्पन्न होते हैं जो अन्तर्वाहक स्नायुओं (Sensory nerves) द्वारा सुषुम्ना (Spinal cord) तक पहुँचते हैं। फिर वहाँ से बहिर्वाहक स्नायु (Motor nerves) द्वारा ये स्नायु प्रवाह (Nerve impulse) ग्रन्थि अथवा मांसपेशियों (Glands or muscles) तक पहुँचाते हैं जिसके फलस्वरूप प्राणी में क्रिया होती है। उंगली गर्म लोहे से जलन ग्रहण करती है और इसी जलन के कारण उंगली के अन्दर स्नायुओं में स्नायुप्रवाह उत्पन्न होते हैं। ये स्नायु प्रवाह सुषुम्ना में पहुँचते हैं। फिर वहाँ से स्नायु-प्रवाह लौटकर उंगलियों की मांसपेशियों तक जाते हैं जिसके कारण उंगलियों की मांसपेशियाँ सक्रिय हो उठती हैं और तब हम व्यक्ति से गर्म लोहे पर से हाथ खींच लेने की सहज क्रिया देखते हैं।

इसी प्रकार सहज क्रिया के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। एक नवजात शिशु के कण्ठ में यदि थोड़ा तरल पदार्थ डाल दिया जाय तो हम पाते हैं कि बच्चे के कण्ठ से लगे घोंटने (Swallowing) की क्रिया से सम्बन्ध रखने वाली मांसपेशियों में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप शिशु इस तरल पदार्थ को स्वतः निगल जाता है। एकाएक बहुत जोर से आवाज होने पर चौंक उठना अचानक अधिक प्रकाश हो जाने पर पलकों का झपक जाना आदि सहज क्रिया के अनेक उदाहरण हैं। नवजात शिशु की हथेली पर यदि पेन्सिल रख दें तो बच्चे की हथेली में उसे पकड़ने की सहज क्रिया देखी जाती है जिसे पकड़ने की सहज क्रिया (Grasping Reflex) कहते हैं।

इसी प्रकार कुछ मनोवैज्ञानिकों की राय में बच्चों का जन्म रुदन (Birth cry) उपयुक्त उत्तेजना के उपस्थित होने पर रोंगटों का खड़ा होना आदि सहज क्रिया के ऐसे उदाहरणों में हैं जिन पर हमारा ध्यान अधिक नहीं जाता। इसका अर्थ यह नहीं कि सहज क्रिया केवल मांसपेशियों में ही देखी जाती है। सहज क्रिया पिण्डों में भी होती है जैसे— लालास्रावी रिफ्लेक्स (Salivary Reflex) टियर रिफ्लेक्स (Tear reflex) आदि।

सहज क्रियाओं पर न केवल शरीर-शास्त्रज्ञों एवं मनोवैज्ञानिकों का ही ध्यान रहा है, बल्कि प्राचीन काल में ही डेकार्ट (Descartes) जैसे भी इस विषय की चर्चा की है।

सहज-क्रियाओं की विशेषताएं (Characteristics of

हो जाने वाली क्रिया है। साधारणतः ऐसी क्रियाओं का मनुष्य को चेतना भी नहीं हो पाती है। जब आँखों के सामने बहुत तेज प्रकाश चला आता है तब आँखों की पुतलियाँ आप-से-आप छोटी होती जाती है। मनुष्यों को यह चेतना नहीं हो पाती है कि उसकी आँखों की पुतलियाँ छोटी होती जाती हैं परन्तु कुछ सहज-क्रियाएँ ऐसी भी है जिनकी चेतना हो जाती है, जैसे अगर शरीर पर कोई कीड़ा चलता रहता है। तो मनुष्य उसे तुरन्त झटक कर गिरा देता है। यहाँ झटक देने की क्रिया इसलिए होती है क्योंकि मनुष्य में कीड़ा चलने की चेतना हो जाती है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि सहज-क्रियाओं मे, चेतना की तीव्रता (Intensity of consciousness) अधिक नहीं रहती है।

२ सहज क्रिया मनुष्य की एक जन्मजात (Inborn) प्रक्रिया है। सहज-क्रियाओं को सीखने के लिए किसी शिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक नवजात शिशु मे प्यूपिलरी रिफ्लेक्स (Pupillary reflex), सलाइवरी रिफ्लेक्स (Salivary reflex), टियर रिफ्लेक्स (Tear reflex) बेबिन्स्की रिफ्लेक्स (Babinski refelex) इत्यादि देखने को मिलते हैं। हालांकि ऐसी सहज-क्रियाएँ भी है जिन्हें प्राणी-विशेष मे सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन (Conditioning) द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है, 'पावलव' (PavloV) ने अपने प्रयोग द्वारा यह दिखलाया कि घण्टी की आवाज सुनने पर भी कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगी। ऐसी सहज-क्रियाओं को हम 'स्वाभाविक सहज-क्रिया (Natural reflex action) नहीं कह कर अगर कृत्रिम सहज-क्रिया (Artificial reflex action) कहे तो अधिक उचित होगा जो परिस्थिति विशेष तथा पद्धति विशेष मे उत्पन्न हो जाती है।

३ सहज-क्रियाओं पर प्राणी का प्राय नियन्त्रण (Control) नहीं होता है। मनुष्य लाख चाहने पर भी आँखों मे धूल का एक कण पड जाने पर उसमें से पानी का निकलना नहीं रोक सकता। मुँह मे भोजन पड़ते ही लार का निकलना नहीं रोका जा सकता। जलते लोहे पर उँगली पड जाने पर उँगली पीछे की ओर खींच ही ली जायगी। अगर कोई व्यक्ति जान-बूझ कर काफी देर तक किसी विशेष कारणवश खूब गर्म लोहा पकड़े रह जाता है तो इस क्रिया को सहज-क्रिया की सज्ञा न देकर हम एक ऐच्छिक-क्रिया (Voluntary action) की सज्ञा देंगे।

४. यह क्रिया उत्तेजना-विशेष के उपस्थित होते ही 'तत्काल' हो जाती है। तात्कालिकता (Immediateness) इसका विशेष गुण है। आँखों के नजदीक जैसे ही कोई पदार्थ अचानक झटके से चला आता है, तुरत इसकी पलकें गिर जाती है और आँखें बन्द हो जाती हैं। उत्तेजना के उपस्थित होने तथा इस क्रिया के उत्पन्न होने के बीच मे जो समय लगता है वह इतना कम होता है कि यह क्रिया तत्काल घटती प्रतीत होती है। यदि वर्ग मे आगे बैठे लड़के को पीछे से कोई बदमाश लड़का पिन चुभा देता है तो आगे के लड़के का शरीर तुरत आगे की ओर उचक उठता है। यह सहज-क्रिया तत्काल होती है। ऐसी बात नहीं होती है कि

कि यह क्रिया प्रायः पूर्णतः शारीरिक आधार पर ही अवलम्बित है। सहज क्रियाओं का शारीरिक आधार सहज क्रिया-चाप (Reflex Arc) है। सहज क्रिया-चाप में निम्नलिखित अवयव की आवश्यकता पड़ती है— (i) ग्राहकेन्द्रिय (A receptor organ) (ii) अन्तर्वाहक-स्नायु (Sensory nerve) (iii) सुषुम्ना (Spinal cord) (iv) बहिर्वाहक स्नायु (Motor nerve) तथा (v) पिण्ड अथवा मांसपेशियाँ (Glands and Muscles or Effectors)।

सबसे पहले उत्तेजना को ग्राहकेन्द्रिय ग्रहण करती है। फलतः ग्राहकेन्द्रियों से लगे स्नायुओं में स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulse) उत्पन्न होते हैं जो अन्तर्वाहक स्नायुओं (Sensory nerves) द्वारा सुषुम्ना (Spinal cord) तक पहुँचते हैं फिर वहाँ से बहिर्वाहक स्नायु (Motor nerves) द्वारा ये स्नायु प्रवाह (Nerve impulse) पिण्ड अथवा मांसपेशियों (Glands or muscles) तक पहुँचते हैं जिसके फलस्वरूप प्राणी में क्रिया होती है। उँगली गर्म लोहे से जलन ग्रहण करती है और इसी जलन के कारण उँगली के अन्दर स्नायुओं में स्नायुप्रवाह उत्पन्न होते हैं। ये स्नायु प्रवाह सुषुम्ना में पहुँचते हैं। फिर वहाँ से स्नायु प्रवाह लौटकर उँगलियों की मांसपेशियों तक जाते हैं जिसके कारण उँगलियों की मांसपेशियाँ सक्रिय हो उठती हैं और तब हम व्यक्ति में गर्म लोहे पर से हाथ खींच लेने की सहज क्रिया देखते हैं।

इसी प्रकार सहज क्रिया के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। एक नवजात शिशु के कण्ठ में यदि थोड़ा तरल पदार्थ डाल दिया जाय तो हम पाते हैं कि उसके कण्ठ से लगे घोंटने (Swallowing) की क्रिया से सम्बन्ध रखने वाली मांसपेशियों में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप शिशु इस तरल पदार्थ को स्वतः निगल जाता है। एकाएक बहुत जोर से आवाज होने पर चौंक उठना अचानक अधिक प्रकाश हो जाने पर पलकों का झपक जाना आदि सहज क्रिया के अनेक उदाहरण हैं। नवजात शिशु की हथेली पर यदि पेन्सिल डाल दें तो बच्चे की हथेली में उसे पकड़ने की सहज क्रिया देखी जाती है जिसे पकड़ने की सहज क्रिया (Grasping Reflex) कहते हैं।

इसी प्रकार कुछ मनोवैज्ञानिकों की राय में बच्चों का जन्म रुदन (Birth cry) उपयुक्त उत्तेजना के उपस्थित होने पर रोंगटे का खड़ा होना आदि सहज क्रिया के ऐसे उदाहरणों में हैं जिन पर हमारा ध्यान अधिक नहीं जाता। इसका अर्थ यह नहीं कि सहज क्रिया केवल मांसपेशियों में ही देखी जाती है। सहज क्रिया पिण्डों में भी होती है जैसे— सलाइवरी रिफ्लेक्स (Salivary Reflex) टियर रिफ्लेक्स (Tear reflex) आदि।

सहज क्रियाओं पर न केवल शरीर-शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों का ही ध्यान रहा है बल्कि प्राचीन काल में ही डेकार्ट (Descartes) जैसे प्रमुख दार्शनिक ने भी इस विषय की चर्चा की है।

सहज-क्रियाओं की विशेषताएं (Characteristics of Reflex Action)—

हो जाने वाली क्रिया है। साधारणतः ऐसी क्रियाओं का मनुष्य को चेतना भी नहीं हो पाती है। जब आँखों के सामने अचानक तेज प्रकाश चला आता है तब आँखों की पुतलियाँ आप-से-आप छोटी होती जाती हैं। मनुष्यों को यह चेतना नहीं हो पाती है कि उसकी आँखों की पुतलियाँ छोटी होती जाती हैं परन्तु कुछ सहज-क्रियाएँ ऐसी भी हैं जिनकी चेतना हो जाती है, जैसे अगर शरीर पर कोई कीड़ा चलता रहता है। तो मनुष्य उसे तुरन्त झटक कर गिरा देता है। यह झटक देने की क्रिया इसलिए होती है चूँकि मनुष्य में कीड़ा चलने की चेतना हो जाती है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि सहज-क्रियाओं में, चेतना की तीव्रता (Intensity of consciousness) अधिक नहीं रहती है।

२ सहज क्रिया मनुष्य की एक जन्मजात (Inborn) प्रक्रिया है। सहज-क्रियाओं को सीखने के लिए किसी शिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक नवजात शिशु में प्यूपिलरी रिफ्लेक्स (Pupillary reflex), सलाइवरी रिफ्लेक्स (Salivary reflex), टियर रिफ्लेक्स (Tear reflex), बेबिन्स्की रिफ्लेक्स (Babinski refelex) इत्यादि देखने को मिलते हैं। हालाँकि ऐसी सहज-क्रियाएँ भी हैं जिन्हें प्राणी-विशेष में सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन (Conditioning) द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है, 'पावलव' (Paviov) ने अपने प्रयोग द्वारा यह दिखलाया कि घण्टी की आवाज सुनने पर भी कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगी। ऐसी सहज-क्रियाओं को हम स्वाभाविक सहज-क्रिया (Natural reflex action) नहीं कह कर अगर कृत्रिम सहज-क्रिया (Artificial reflex action) कहें तो अधिक उचित होगा जो परिस्थिति विशेष तथा पद्धति विशेष में उत्पन्न हो जाती है।

३ सहज-क्रियाओं पर प्राणी का प्रायः नियन्त्रण (Control) नहीं होता है। मनुष्य लाख चाहने पर भी आँखों में धूल का एक कण पड़ जाने पर उसमें से पानी का निकलना लगना नहीं रोक सकता। मुँह में भोजन पड़ते ही लार का निकलना नहीं रोका जा सकता। जलते लोहे पर उँगली पड़ जाने पर उँगली पीछे की ओर खींच ही ली जायगी। अगर कोई व्यक्ति जान-बूझ कर काफी देर तक किसी विशेष कारणवश खूब गर्म लोहा पकड़े रह जाता है तो इस क्रिया को सहज-क्रिया की संज्ञा न देकर हम एक ऐच्छिक-क्रिया (Voluntary action) की संज्ञा देंगे।

४. यह क्रिया उत्तेजना-विशेष के उपस्थित होते ही 'तत्काल' हो जाती है। तात्कालिकता (Immediateness) इसका विशेष गुण है। आँखों के नजदीक जैसे ही कोई पदार्थ अचानक झटके से चला आता है, तुरत इसकी पलकें गिर जाती हैं और आँखें बन्द हो जाती हैं। उत्तेजना के उपस्थित होने तथा इस क्रिया के उत्पन्न होने के बीच में जो समय लगता है वह इतना कम होता है कि यह क्रिया तत्काल घटती प्रतीत होती है। यदि वर्ग में आगे बैठे लड़के को पीछे से कोई बदमाश लड़का पिन चुभा देता है तो आगे के लड़के का शरीर तुरत आगे की ओर उचक उठता है। यह सहज-क्रिया तत्काल होती है। ऐसी बात नहीं होती है कि

पिन अभी चुभायी जाय और कुछ देर के बाद शरीर के चुभाये गये भाग को हटा लेने की क्रिया देखी जाय।

५. सहज-क्रियाओं को देख कर ऐसा लगता है जैसे उसमें भावी उद्देश्य की सर्वथा अनुपस्थिति रहती हो। कुछ अर्थों में ऐसा कहना उचित भी है। परन्तु ध्यान से देखा जाय तो प्रत्येक सहज क्रिया के पीछे एक महान उद्देश्य छिपा है और वह उद्देश्य है प्राण की जीवन रक्षा का। नाक की नली में जब कोई अनावश्यक पदार्थ किसी प्रकार पहुँच जाता है और साधारण साँस की क्रिया द्वारा वह पदार्थ बाहर नहीं निकल पाता है तो छींक आने की सहज-प्रक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप वह अनावश्यक चीज को नली से बाहर निकाल दी जाती है। अगर यह चीज नाक से बाहर न निकाल फेंकी जाय तो साँस नली में या फेफड़ों में कोई विकार उत्पन्न हो सकता है जो मनुष्य के लिए घातक सिद्ध हो। ठीक इसी प्रकार आँखों में धूल के कण पड़ने के बाद पानी न निकलना शुरू हो जाय तो उस कण का बाहर निकालना कठिन हो जायगा। कण का आँखों से छूट जाने से आँखों में भयंकर बीमारी अथवा घाव उत्पन्न हो जा सकता है। ठीक इसी प्रकार लार का निकलना भोजन को पचाने के लिए आवश्यक है जिसका मनुष्य के जीवन को बनाये रखने से घना सम्बन्ध है। अस्तु सहज क्रियाओं की तह में जीवन रक्षा का उद्देश्य अवश्य रहता है।

६. सहज क्रिया में शरीर का अंग विशेष ही मूलतः शामिल होता है। कौन-सा अंग कब सहज क्रिया प्रकट करेगा यह उत्तेजना की उपस्थिति एवं स्वभाव पर निर्भर करता है। प्रकाश की उत्तेजना से उत्पन्न सहज क्रिया आँखों में ही होगी। जब हाथ जलने लगता है तब हाथ को पीछे खींचने की सहज क्रिया देखी जाती है। शरीर के अन्य अवयव अपेक्षाकृत अप्रभावित रहते हैं। एक विशेष तरह की उत्तेजना के प्रभाव से एक विशेष तरह की सहज क्रिया देखी जाती है। अर्थात् सहज क्रिया में स्थानीयकरण (Localisation) सम्भव है। इस परिस्थिति में मनुष्य का व्यवहार यांत्रिक (Mechanical) होता है।

७. सहज क्रियाओं का हजार बार दुहराये जाने पर भी उनमें सुधार सम्भव नहीं हो पाता। नाक में मल पड़ जाने पर छींक आ जाने की क्रिया की पुनरावृत्ति होने पर भी उसके प्रकटीकरण के रूप में सुधार नहीं होता। जीभ पर कुछ खाद्य पदार्थ पड़ने पर लार (Saliva) निकलने की क्रिया जिस प्रकार पहली बार होती है, उसी प्रकार अन्य बार भी होती पायी जाती है। यह बात दूसरी है कि भोज्य पदार्थ की मात्रा एवं स्वाद के अन्तर के कारण कभी कम लार (Saliva) निकले अथवा कभी अधिक। परन्तु लार निकलने का प्रतिक्रिया के तरीके (Process) में कोई अन्तर नहीं होता।

सहज-क्रियाओं के प्रकार (Kinds of Reflex Action)—

सहज-क्रियाएं व्यक्ति में जन्मकाल से ही देखने को मिलती हैं जैसे—टेण्डन रिफ्लेक्स (Tendan reflex) ग्रास्पिंग रिफ्लेक्स (Grasping reflex) वर्णित रहती

है सहज-क्रिया अत्यन्त ही सरल तक सारी [illegible] में [illegible] शीघ्रता से [illegible] रिफ्लेक्स या प्लेण्टर रिफ्लेक्स (Babinski Reflex or Planter Reflex) इत्यादि। इन सहज क्रियाओं की विशद् व्याख्या यहाँ [illegible] नहीं है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि व्यावहारिक दृष्टिकोण से सहज क्रियाओं को मनोवैज्ञानिक ने निम्नलिखित दो प्रमुख भागों में बाँटा है—

(i) शारीरिक सहज-क्रिया (Physiological Reflex Action)—उन क्रियाओं को शारीरिक सहज क्रिया कहते हैं जो मनुष्य में घटित हो जाती हैं, पर जिनका ज्ञान उन्हें नहीं हो पाता है। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण प्यूपिलरी रिफ्लेक्स (Pupillay reflex) है। आँखों के सामने तेज रोशनी आने पर उपतारा (Iris) नामक मांसपेशी की सहज-क्रिया द्वारा आँखों की पुतली आकार छोटा हो जाती है तथा कम तीव्र प्रकाश होने पर उस पुतली का आकार बड़ा होने अथवा [illegible] छोटा होने का ज्ञान मनुष्यों को नहीं हो पाता है। ऐसी सहज-क्रियाओं को शारीरिक सहज-क्रिया (Physiological Reflex action) कहते हैं।

(ii) ज्ञानात्मकसहज-क्रिया (Sensory or Conscious Reflexaction)—ये ऐसी सहज क्रियाएँ हैं जिनके होते ही मनुष्य को यह भी ज्ञान हो जाता है कि अमुक क्रिया उसके द्वारा हो गयी है, जैसे— भोजन का मुँह में पड़ते ही लार का आना। लार आते ही मनुष्य को इस बात का ज्ञान भी हो जाता है कि उसके मुँह में लार आ रही है। इस प्रकार की सहज क्रियाओं की विशेषता यह है कि इन्हें रोका नहीं जा सकता। जलने पर हाथ पीछे खींच लेना, खाँसना, छींकना इत्यादि इसके कई उदाहरण दिये जा सकते हैं।

सहज क्रियाओं की उत्पत्ति (Origin) और प्रकटीकरण (Expression) को ध्यान में रखकर इन्हें दो अन्य भागों में बाँटा जा सकता है। एक को प्राथमिक या स्वाभाविक सहज-क्रिया (Primary or Natural action) कहते हैं और दूसरे को सम्बन्ध प्रत्यावर्तित सहज-क्रिया (Conditioned Reflex action)।

भोजन को देखकर लार का आना एक प्राथमिक अथवा स्वाभाविक सहज-क्रिया है। अचानक भयकर ध्वनि से भयभीत होना स्वाभाविक सहज-क्रिया है।

परन्तु, यदि घण्टी की आवाज सुनकर लार निकलने लगे अथवा कोई गुलाब के सुन्दर फूल को देखकर भयभीत हो जाय तो इसे हम सम्बन्ध प्रयावर्तित सहज-क्रिया (Conditioned Reflex action) कहेंगे। इस विषय की चर्चा पावलव (Pavlov) के सीखने के सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन के सिद्धान्त (Theory of Conditioning) की व्याख्या करने के सिलसिले में की जा चुकी है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने प्राथमिक सहज-क्रिया (Primary Reflex action) की जगह स्वाभाविक सहज क्रिया (Natural Reflev action) तथा सम्बन्ध प्रत्यावर्तित सहज-क्रिया (Conditioned Reflex action) की जगह कृत्रिम सहज-क्रिया (Artificial Reflex action) कहना 'सहज-क्रियाओं का अधिक उपयुक्त वर्गीकरण माना है।

फिर अभी चुभायी जाय और कुछ देर के बाद शरीर के चुभाये गये भाग को हटा लेने की क्रिया देखी जाय।

५ सहज-क्रियाओं को देख कर ऐसा लगता है कि उसमें भावी उद्देश्य की सर्वथा अनुपस्थिति रहती हो। कुछ अर्थों में ऐसा कहना उचित भी है। परन्तु ध्यान से देखा जाय तो प्रत्येक सहज क्रिया के पीछे एक महान उद्देश्य छिपा है और वह उद्देश्य है प्राण की जीवन रक्षा का। नाक की नली में जब कोई अनावश्यक पदार्थ किसी प्रकार पहुँच जाता है और साधारण साँस की क्रिया द्वारा वह पदार्थ बाहर नहीं निकल पाता है तो छींक आने की सहज प्रक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप वह अनावश्यक चीज को नली से बाहर निकाल दी जाती है। अगर वह चीज नाक से बाहर न निकाल फेंकी जाय तो साँस नली में या फेफड़ों में कोई विकार उत्पन्न हो सकता है जो मनुष्य के लिए घातक सिद्ध हो। ठीक इसी प्रकार आँखों में धूल के कण पड़ने के बाद पानी न निकलना शुरू हो जाय तो उस कण का बाहर निकालना कठिन हो जायगा। कण का आँखों से छूट जाने से आँखों में भयंकर बीमारी अथवा घाव उत्पन्न हो जा सकता है। ठीक इसी प्रकार लार का निकलना भोजन को पचाने के लिए आवश्यक है जिसका मनुष्य के जीवन को बनाये रखने से घना सम्बन्ध है। अस्तु सहज क्रियाओं की तह में जीवन रक्षा का उद्देश्य अवश्य रहता है।

६ सहज क्रिया में शरीर का अंग विशेष ही मूलतः शामिल होता है। कौन-सा अंग कब सहज क्रिया प्रकट करेगा यह उत्तेजना की उपस्थिति एवं स्वभाव पर निर्भर करता है। प्रकाश की उत्तेजना से उत्पन्न सहज क्रिया आँखों में ही होगी। जब हाथ जलने लगता है तब हाथ को पीछे खींचने की सहज क्रिया देखी जाती है। शरीर के अन्य अवयव अपेक्षाकृत अप्रभावित रहते हैं। एक विशेष तरह की उत्तेजना के प्रभाव से एक विशेष तरह की सहज क्रिया देखी जाती है। अर्थात् सहज क्रिया में स्थानीयकरण (Locaisation) सम्भव है। इस परिस्थिति में मनुष्य का व्यवहार यांत्रिक (Mechanical) होता है।

७ सहज-क्रियाओं का सुधार बार दुहराये जाने पर भी उनमें सुधार सम्भव नहीं हो पाता। नाक में नस पड़ जाने पर छींक आ जाने की क्रिया की पुनरावृत्ति होने पर भी उसके प्रकटीकरण के रूप में सुधार नहीं होता। जीभ पर कुछ खाद्य पदार्थ पड़ने पर लार (Saliva) निकलने की क्रिया जिस प्रकार पहली बार होती है उसी प्रकार अन्य बार भी होती पायी जाती है। यह बात दूसरी है कि भोज्य पदार्थ की मात्रा एवं स्वाद के अन्तर के कारण कभी कम लार (Saliva) निकले अथवा कभी अधिक। परन्तु लार निकलने की प्रतिक्रिया के तरीके (Process) में कोई अन्तर नहीं होता।

सहजक्रियाओं के प्रकार (Kinds of Reflex Action)—

सहज क्रियाएं व्यक्ति में जन्मकाल से ही देखने को मिलती हैं जैसे—टण्डन रिफ्लेक्स (Tendan reflex) ग्रास्पिंग रिफ्लेक्स (Grasping reflex) बबिन्स्की

१ सहज-क्रिया अत्यन्त ही सरल एवं सारी अन्य क्रियाओं से अधिक शीघ्रता से सम्पन्न रिफ्लेक्स या प्लेण्टर रिफ्लेक्स (Babinski Reflex or Planter Reflex) इत्यादि। इन सहज क्रियाओं की विशद् व्याख्या पाठक बालमनोविज्ञान मे पढेंगे। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि व्यावहारिक दृष्टिकोण से सहज-क्रियाओं को मनोवैज्ञानिक ने निम्नलिखित दो प्रमुख भागों मे बाँटा है—

(1) शारीरिक सहज-क्रिया (Physiological Reflex Action)— ऐसी-क्रियाओं को शारीरिक सहज-क्रिया कहते हैं जो मनुष्य मे घटित हो जाती है, पर जिनका ज्ञान उन्हें नही हो पाता है। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण प्यूपिलरी रिफ्लेक्स (Pupillay reflex) है। आँखो के सामने तेज रोशनी आने पर उपतारा (Iris) नामक मांसपेशी की सहज-क्रिया द्वारा आँखो की पुतली आकार छोटा हो जाती है तथा कम तीव्र प्रकाश होने पर इस पुतली का आकार के बडा होने अथवा क्रमश छोटा होने का ज्ञान मनुष्यो को नही हो पाता है। ऐसी सहज-क्रियाओं को शारीरिक सहज-क्रिया (Physiological Reflex action) कहते है।

(ii) ज्ञानात्मकसहज-क्रिया (Sensory or Conscious Reflexaction)— मे ऐसी सहज क्रियाएँ हैं जिनके होते ही मनुष्य को यह भी ज्ञान हो पाता है कि अमुक क्रिया उसके द्वारा हो गयी है, जैसे— भोजन का मुँह मे पडते ही लार का आना। लार आते ही मनुष्य को इस बात का ज्ञान भी हो जाता है कि उसके मुँह मे लार आ रही है। इस प्रकार की सहज क्रियाओं की विशेषता यह है कि इन्हें रोका नही जा सकता। जलने पर हाथ पीछे खीच लेना, खाँसना, छीकना इत्यादि इसके कई उदाहरण दिये जा सकते है।

सहज क्रियाओं की उत्पत्ति (Origin) और प्रकटीकरण (Expression) को ध्यान मे रखकर इन्हे दो अन्य भागो मे बाँटा जा सकता है। एक को प्राथमिक या स्वाभाविक सहज-क्रिया (Primary or Natural action) कहते है और दूसरे को सम्बन्ध प्रत्यावर्तित सहज-क्रिया (Conditioned Reflex action)।

भोजन को देखकर लार का आना एक प्राथमिक अथवा स्वाभाविक सहज-क्रिया है। अचानक भयकर ध्वनि से भयभीत होना स्वाभाविक सहज-क्रिया है।

परन्तु, यदि घण्टी की आवाज सुनकर लार निकलने लगे अथवा कोई गुलाब के सुन्दर फूल को देखकर भयभीत हो जाय तो इसे हम सम्बन्ध प्रत्यावर्तित सहज-क्रिया (Conditioned Reflex action) कहेंगे। इस विषय की चर्चा पावलव (Pavlov) के सीखने के सम्बन्ध प्रत्यावर्तन के सिद्धान्त (Theory of Conditioning) की व्याख्या करने के सिलसिले मे की जा चुकी है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने प्राथमिक सहज-क्रिया (Primary Reflex action) की जगह स्वाभाविक सहज क्रिया (Natural Reflev action) तथा सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तित सहज-क्रिया (Conditioned Reflex action) की जगह कृत्रिम सहज-क्रिया (Artificial Reflex action) कहना 'सहज-क्रियाओं का अधिक उपयुक्त वर्गीकरण माना है।

(ख) मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाएं
(Instinctive Action)

सहज क्रियाओं की तरह मूल प्रवृत्ति की क्रियाएं भी अनर्जित या अनसीखी (Unacquired or unlearnt) होती हैं। ये क्रियाएं भी प्राणी में स्वतः संचालित होती पायी जाती हैं। इनके लिए भी किसी प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती। मुर्गी का बच्चा अण्डा से बाहर निकलते ही दाना चुगना शुरू कर देता है। मनुष्य का बच्चा जन्म के तुरत बाद ही माँ का स्तन चूसना शुरू कर देता है। न किसी को मुर्गी के बच्चे को दाना चुगने की क्रिया सिखलाने की जरूरत पड़ती है और न किसी को यह आवश्यकता पड़ती है कि बच्चे को यह शिक्षा दें कि माँ के स्तन से किस प्रकार दूध पीना चाहिए।

यह मूल प्रवृत्ति की क्रिया का ही परिणाम है कि बया नामक सारे पंछी अपने घोंसले एक ही प्रकार के बनाते हैं। मकड़ों के जाल को ध्यान से देखा जाय तो सभी मकड़ों के जाल की विधि एवं रूप में समानता पायी जायगी। मधुमक्खियों द्वारा एवं मधु के छत्तों का निर्माण, रेशम के कीड़ों का अवस्था विशेष होने पर रेशम निकालने की क्रिया कोयल का समय आते ही कूकने लगना इत्यादि मूल प्रवृत्ति की क्रियाओं के उदाहरण हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि मूल प्रवृत्ति की क्रियाएं सिर्फ जानवरों अथवा पक्षियों में ही देखने को मिलती हैं। मनुष्यों में भी ऐसी क्रियाओं की कमी नहीं। फर्क इतना ही है कि जानवरों में मूल प्रवृत्ति की क्रियाओं का अपेक्षाकृत आधिक्य पाते हैं। मनुष्यों में सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव के कारण इनके रूप बहुत अंशों में बदले नजर आते हैं। हर मनुष्य में भय से भागना (Escape), साथ-साथ रहना (Gregariousness) जिज्ञासा (Curiosity) इत्यादि मूल प्रवृत्ति की क्रियाएं पायी जाती हैं।

मैकडूगल (McDougall) नामक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक ने मूल प्रवृत्तियों की एक वृहत सूची तैयार की थी। उन्होंने मनुष्यों के सारे व्यवहारों की व्याख्या मूल प्रवृत्तियों के आधार पर करने का प्रयास किया। उनके अनुसार व्यक्ति में चौदह प्रमुख मूल प्रवृत्तियाँ हैं जो उनके व्यवहारों में प्रदर्शित होती हैं। हरएक मूल प्रवृत्ति के साथ किसी-न किसी भाव (Feeling) अथवा संवेग (Emotion) भी सम्बन्धित होता है। वे इस प्रकार है—

मैकडूगल के अनुसार प्रवृत्तियाँ तथा उनसे सम्बन्धित संवेगों की सूची
(List of instinct and their related emotions McDougall)

मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts)	सम्बन्धित संवेग (Related Emotions)
1 Escape	Fear
2 Combat	Anger
3 Repulsion	Disgust
4 Parental	Tender emotion

मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts)	सम्बन्धित संवेग (Related Emotions)
5 Appeal	Distress
6 Mating	Lust
7 Curiosity	Wonder
8 Submission	Negative self-feeling
9 Self-assertion	Postive self-feeling
10 Gregariousness	Feeling of loneliness
11 Food seeking	Gusto
12 Acquisition	Feeling of ownership
13 Construction	Feeling of creativeness
14 Laughter	Amusement

ऊपर की सूची से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ कोई-न-कोई भाव अथवा संवेग लगा रहता है। अचानक जंगल से शेर की आवाज सुनकर प्राणी डरके से भागता है (Instinct Escape), परन्तु इस भागने की मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया मे भय का संवेग (Emotion) शामिल है। ठीक उसी प्रकार लड़ने-झगड़ने की मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहारो के अध्ययन मे संवेगात्मक पहलू की अपेक्षा नही की जा सकती।

इन चौदह प्रमुख मूल प्रवृत्तियो के अलावे मैकडूगल महोदय (McDougall) ने और भी कई मूल प्रवृत्तियो का नामकरण किया, परन्तु सारजेंट (Sargent) ने मैकडूगल के इन चौदह मूल प्रवृत्तियो की जगह सिर्फ तीन ही मूल प्रवृत्तियो को माना है— (१) सेक्स (Sex), (२) हर्ड (Herd), और (३) सेल्फ (Self)।

सेक्स (Sex) के अन्दर वह दो प्रमुख मूल प्रवृत्तियो की चर्चा करता है— (क) यौन-समागम (Mating) और (ख) वात्सल्य (Paiental)। 'Appeal' और 'Gregarious instincts' को वह 'Herd instinct' के वर्ग मे ही मानता है। मैकडूगल द्वारा वर्णित अन्य मूल प्रवृत्तियो को वह (Self) के वर्ग मे रखता है। जो भी हो, कुछ मनोवैज्ञानिको के अनुसार मूल प्रवृत्तियो की संख्या सौ से भी अधिक है और कुछ मनोवैज्ञानिको के अनुसार मूलतः इसकी संख्या दो अथवा एक से अधिक नही।

चाहे मूल प्रवृत्तियो की संख्या कितनी भी हो, हमे इतना अवश्य समझना चाहिए कि इन क्रियाओ के पीछे कुछ उद्देश्य छिपा होता है। मूल प्रवृत्तियो की कुछ क्रियाओ द्वारा प्राणी के अपने जीवन की रक्षा होती है, जैसे— Instinct of food seeking' अर्थात् भोजन खोजने की मूल प्रवृत्ति के पीछे प्राणी की भूख एवं जीवन निर्वाह का प्रश्न है। आत्मरक्षा (Self-preservation) के अतिरिक्त प्रवृत्ति की क्रियाओ के पीछे जाति-विशेष की रक्षा (Preservation of the race) का भी उद्देश्य रहता है। यौन-समागम (Sexual intercoures) की मूल प्रवृत्ति सन्तानोत्पत्ति अथवा जाति-रक्षा के लिए आवश्यक है। परन्तु मूल प्रवृत्ति के कार्य करते समय प्राणी को इन उद्देश्यो का ज्ञान नही रहता है।

मैकडूगल (McDougall) के द्वारा दी गयी परिभाषा[1] के आधार पर भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने हिन्दी में मूल प्रवृत्ति की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से देनी चाही है—

जब प्राणी आत्मरक्षा या जातिरक्षा के निमित्त किसी निश्चित फलप्राप्ति के लिए अर्जित एवं क्रमबद्ध (Unacquired and Systematic) क्रियाओं को उद्देश्य के ज्ञान के बिना अथवा पूर्व ज्ञान के अभाव में करता है तो उसे मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया कहते हैं।

परन्तु, इसके विपरीत कुछ ऐसी भी क्रमबद्ध एवं अनर्जित क्रियाएं हैं जो प्राणी की आत्मरक्षा और जातिरक्षा दोनों के लिए घातक हैं — पतिंगा का चिराग पर उड़-उड़कर मडराना तथा अन्त में झुलस मरना। इस प्रकार की क्रियाओं को ट्रौपिस्टिक बिहेवियर (Tropistic behaviour) अथवा अन्य व्यवहार की संज्ञा दी गयी है जिसकी विशेष चर्चा यहाँ करना अभीष्ट नहीं है।

मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया को एक अलग प्रकार की क्रिया न मान कर कुछ दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने इसे सहज क्रियाओं की श्रृंखला (Chain of reflexes) की संज्ञा दी। हर्बट स्पेंसर (Herbert Spencer) का नाम उनमें प्रमुख है। कुछ अन्य लोगों ने सहज क्रियाओं की श्रृंखला न कह कर सहज क्रियाओं का समन्वय कहना अधिक उचित समझा है। परन्तु इतना तो सभी ने स्वीकार किया है कि एक ऐसी मनोदैहिक प्रवृत्ति (Psycho-physical disposition) है जो प्राणी के व्यवहारों के पीछे मूल प्रेरक शक्ति (Primary motivating force) के रूप में काम करती है।

अनेक कारणों से वर्तमान युग के मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्ति (Instinct) शब्द का प्रयोग नहीं करते। आजकल इस शब्द की जगह पर (Basic need Urge, Drive) इत्यादि शब्दों का प्रयोग (Use) अधिक उचित माना जाता है—

मूल प्रवृत्तियों का वर्गीकरण
(Division of Instinct)

प्राणी के सारे-के सारे प्रवृत्यात्मक व्यवहार जन्म के समय ही नहीं देखे जाते हैं। उनमें से कुछ जन्म के समय से ही वर्तमान रहते हैं और कुछ बाद में चल कर प्रकट होते हैं। अस्तु प्रकटीकरण के दृष्टिकोण से प्रवृत्यात्मक क्रियाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

---

१ **McDougall's Definition of Instinct—**

Instinct is an inherited or innate Psycho-physical disposition which determines its possessor to perceive and to pay attention to objects of certain class to experience an emotional excitement of a particular quality upon perceiving such an object and to act in regard to it in particular manner or at least to experience an impulse to such action — William McDougall

उपर्युक्त परिभाषा (जो मैकडूगल महोदय का है) का भारतीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा

१ प्रकटीकरण के दृष्टिकोण से वर्गीकरण—(क) जन्मकाल से वर्त्तमान रहने वाले मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ (Instinctive actions present at birth)—वे मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार जो प्राणी मे जन्म के समय ही वर्त्तमान रहते है, जैसे—मुर्गी के बच्चे का अण्डो मे बाहर निकलते ही दाना चुगने लगना अथवा मानव-शिशु का जन्म के बाद तुरत ही माँ का स्तन चूसने लगना आदि।

(ख) परिपक्वता की प्राप्ति के बाद देखे जाने वाले मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ (Instinctive actions appearing at maturity)—दूसरे प्रकार कुछ मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार वे हैं जो प्राणी मे परिपक्वता (Maturity) की प्राप्ति के बाद देखे जाते है, जैसे—बुलबुल जवान होते ही सुरीला गाना गाने लगती है। इसी प्रकार प्राणियो मे विशुद्ध शारीरिक यौन-प्रवृत्यात्मक व्यवहार भी परिपक्वावस्था की प्राप्ति के बाद ही देखे जाते है। इस प्रकार की मूल प्रवृत्तियो को विलम्बी मूल प्रवृत्ति (Delayed instinct) की सज्ञा दी गयी है।

इनके अतिरिक्त, कुछ मनोवैज्ञानिको ने उद्देश्य के दृष्टिकोण से मूल प्रवृत्यात्मक को निम्नलिखित वर्गों मे बाँटा है—

२. उद्देश्य के दृष्टिकोण से वर्गीकरण—(क) आत्मरक्षा के लिए किए गये मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार (Instinctive actions for self preservation) तथा (ख) जातिरक्षा के लिए किये गये मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार (Instinctive actions for the preservation of the race)—इन वर्गों की चर्चा पाठको के लिए पहले ही की जा चुकी है।

मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया की विशेषताएँ (Characteristics of Instinctive Actions)—

मूल-प्रवृत्यात्मक क्रिया की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१ जन्मजात एव वांशिक (Inborn and Hereditary)—मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ जन्मजात होती है। प्राणी को ये क्रियाएँ सीखने की जरूरत नही पडती। इसे करने के लिए किसी प्रकार की पूर्व-शिक्षा अथवा गत अनुभव की आवश्यकता नही होती। बन्दर का बच्चा अपनी माँ की पेट से इस तरह चिपक जाता है कि माँ-बन्दर दौडती, उछलती-कूदती रहती है तो भी वह नही गिरता है। पेट मे चिपकने की कला बन्दरो मे जन्मजात है। यह प्राणी को वशानुक्रम (Heredity) से प्राप्त होता है। वस्तु, इसे वांशिक (Hereditary) भी कहा गया है।

भावात्मक तथा संवेगात्मक पहलू (Feeling and emotional aspect)—प्रत्येक मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया मे एक-न-एक संवेगात्मक पहलू भी होता ही है।

किया हुआ हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"मूल प्रवृत्ति एक ऐसी जन्मजात मनोदैहिक प्रवृत्ति है जिससे प्रभावित होकर व्यक्ति किसी उत्तेजना की ओर ही अपना ध्यान देता है, किसी विशेष प्रकार के सवेग अथवा आवेश का ही अनुभव करता है तथा उस उत्तेजना विशेष के प्रति विशिष्ट ढग की ही प्रतिक्रिया करता है।"—विलियम मैकडूगल

मकडगल (McDougall) महोदय द्वारा दी गयी मूल प्रवृत्तियों की सूची से इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है (पृष्ठ ३३०-३१ देखें) बिल्ली को देख कर जब चूहा भागता है तो यहाँ पलायन (Escape) की मूल प्रवृत्ति कार्य करती है। परन्तु इस पलायन की क्रिया में भय का संवेग भी निहित होता है। इस प्रकार हँसने में आनन्द का और जिज्ञासा में आश्चर्य का भाव छिपा रहता है। ध्यान से देखा जाय तो मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहारों में मानव-जीवन के ज्ञानात्मक (Cognitive) भावात्मक (Affective) एवं क्रियात्मक (Conative) सभी पहलू छिपे होते हैं। एक तितली उड़कर जब एक फूल से दूसरे फूल पर बैठती-उड़ती रहती है तब इस मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार में उपर्युक्त तीनों पहलू स्पष्ट दिखलाई पड़ता है जैसे (१) तितली को फूल के होने का ज्ञान ज्ञानात्मक पहलू (Cognotive aspect) (२) विशेष भाव एवं संवेग का अनुभव भावात्मक पहलू (Affective aspect) तथा (३) उड़-उड़कर फूलों पर जाना क्रियात्मक पहलू (Conative aspect) है।

३ जाति भर में पाया जाना (In the whole of the race)—एक प्राणी में पाये जाने वाले मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार उसकी जाति (Race) के सभी प्राणियों में पाये जाते हैं। घोंसला बनाने की क्रिया पक्षी विशेष की जाति के किसी एक ही पक्षी को नहीं आता बल्कि जाति भर के सारे पक्षी इस कला को करते दिखाई देते हैं। जवान होने पर सिर्फ एक-दो बुलबुल नहीं गाने लगती बल्कि उस जाति की उस उम्र की सभी बुलबुल गाती पायी जाती हैं। यदि जाति भर में उस प्रकार के व्यवहार को नहीं पाया जाय तो बुलबुल के गाने की क्रिया को मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार की संज्ञा नहीं दी जायगी।

४ उद्देश्य की पूर्ति परन्तु प्राणी को ध्येय-पूर्ति का ज्ञान नहीं (Aims obtained without their complete knowledge to the organism)—इन क्रियाओं के पीछे आत्मरक्षा अथवा जातिरक्षा का उद्देश्य छिपा होता है। परन्तु व्यवहार करते समय प्राणी को इस विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होता कि उसके द्वारा किए गए अमुक व्यवहार से आत्मरक्षा अथवा जातिरक्षा के उद्देश्यों की किसी प्रकार पूर्ति हो रही है। जब मुर्गी का बच्चा दाना चुगता रहता है उस समय उसका ध्यान आत्मरक्षा से अधिक भोज्य-पदार्थ पर रहता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य जब यौन-समागम (Sexual intercourse) में लगा होता है तब उसे विशेष आनन्द का ज्ञान भले ही होता हो परन्तु उस समय इस बात का ज्ञान शायद ही होता है कि यह क्रिया जातिरक्षा के लिए आवश्यक है।

५ जटिलता (Complexity)—पहले ही संकेत किया गया है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहारों को सहज क्रियाओं की शृंखला कहा है। स्पष्ट है कि मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार सरल नहीं होकर जटिल होते हैं और कभी कभी इन व्यवहारों में इतनी अधिक जटिलता देखी जाती है कि आश्चर्य होता है कि छोटे-छोटे जीव-जन्तु अथवा छोटी-छोटी चिड़ियाँ किस प्रकार इतने जटिल व्यवहारों

को ठीक-ठीक कर सकने मे समर्थ होती है। मधुमक्खियो का मधु का छत्ता बनाने की कला की जटिलता पर विचार किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार कौओ का घोसला बनाना या मकडो का जाल बुनने की क्रियाओ पर भी ध्यान दिया जा सकता है।

६ **शारीरिक बनावट** (Congenital determination)—प्राणी-विशेष मे होने वाले विशेष मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार उस प्राणी की शारीरिक बनावटो से विशेष सम्बन्ध रखते है। बुलबुलो के शरीर, कण्ठ आदि की बनावट एव उसका परिपक्वीकरण ही इस प्रकार का होता है कि युवावस्था होते ही उनकी आवाज सुरीली हो जाती है। यदि कण्ठ आदि की बनावट किसी दूसरे ढग की होती तो यह सम्भव नही हो पाता।

७ **विलम्ब होना** (Takes time in performance)—यह इसी जटिलता का परिणाम है कि मूल-प्रवृत्यात्मक व्यवहार के होने मे सहज-क्रियाओ की अपेक्षा अधिक समय लगता है। कुछ जातियो के पक्षियो मे अण्डे देने पर उन्हे 'सेने' की क्रिया कुछ काल तक चलती रहती है। घोसला बनाना, मधु-सचय करना आदि क्रियाएँ भी देर तक होती रहती है। प्राणियो को इनमे भिन्न-भिन्न प्रकार की **विधियो** (Methods) को अपनाना होता है।

८ **एक से अधिक ग्राहकेन्द्रिय एव मासपेशियो के सहयोग का होना** (More than one receptor or effector involved)— मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार मे एक से अधिक ग्राहकेन्द्रियो के सहयोग की आवश्यकता होती है। पूर्ण शरीर अथवा शरीर के अवयवो का एक बडा हिस्सा इस प्रकार के व्यवहार को करने मे प्रयुक्त होता है।

९ **सुधार सम्भव** (Modification Possible)—पहले मनोवैज्ञानिको का विचार था कि मूल-प्रवृत्यात्मक व्यवहार मे सुधार अथवा किसी प्रकार का परिवर्तन लाना सम्भव नही। परन्तु, अभावो एव प्रयोगो के आधार पर **पेकहम** (Pekham) आदि मनोवैज्ञानिको ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जानवर अथवा मनुष्य सभी की मूल-प्रवृत्यात्मक व्यवहारो मे **परिवर्तन अथवा परिमार्जन** (Modification) सम्भव है। मनुष्य का बच्चा बचपन से लडाई का मूल-प्रवृत्यात्मक व्यवहार जिस प्रकार तथा जिन परिस्थितियो मे प्रकट करता है, वयस्क होने पर यह अपने क्रोध को दूसरे ढग से अभिव्यक्त करना प्रारम्भ कर देता है। दुश्मन के प्रति वह छिप-छिप कर षड्यन्त्र करता है परन्तु सामने होने पर परम मित्र-जैसा मुस्कुरा कर बातें भी करता है।

सहज-क्रियाओ एव मूल-प्रवृत्यात्मक क्रियाओ में अन्तर

(Distinction between Reflex Action and Instinctive Action)

अब तक हम इतना तो अवश्य समझ चुके है कि सहज-क्रियाएँ तथा मूल-प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ दोनो **अनसीखी** (Unlearned) अर्जित है। दोनो क्रियाएँ

जन्म के समय से ही देखी जाती हैं। दोनों का उद्देश्य है प्राणी की रक्षा करना। वातावरण से जीव का समुचित अभियोजन कराने में दोनों का विशेष सहयोग है। दोनों प्रकार की क्रियाएं हमारी अनैच्छिक क्रियाएं हैं परन्तु इनमें समानताओं के साथ साथ दोनों प्रकार की क्रियाओं के आपसी अन्तर पर भी ध्यान देना आवश्यक है जो निम्नलिखित है—

१ दोनों प्रकार की क्रियाओं में सबसे पहला अन्तर यह है कि सहज क्रियाएँ सरल होती हैं परन्तु मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाएं जटिल (Complex)। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहारों को सहज क्रियाओं की शृंखला (Chain of reflexes) की संज्ञा दी है। घोंसला बनाने की क्रिया निश्चित ही मुँह में लार आ जाने की क्रिया से कहीं अधिक जटिल है।

२ सहज क्रियाओं में एक ज्ञानेन्द्रिय एवं कुछ ही स्नायु-मांसपेशियाँ सम्मिलित होती हैं। परन्तु मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाओं में कई एक ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कई एक जोड़े मांसपेशियाँ एवं स्नायु की आवश्यकता पड़ती है। एक तितली जब उड़ उड़ कर एक फूल से दूसरे फूल पर जा कर पराग अथवा रस का पान करती है तब उसमें उसकी आँखें उसकी नाक उसके मुँह इत्यादि के अतिरिक्त पंख पर लगे मांसपेशियों की भी आवश्यकता पड़ती है। मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाओं में प्राणी के शरीर का अपेक्षाकृत एक बड़ा भाग सक्रिय होता है—कभी-कभी तो पूरा सक्रिय होता है। परन्तु सहज क्रिया में ऐसी बात नहीं पाते।

३ यही कारण है कि सहज क्रियाओं का स्थाननिरूपण (Localisation) करना सम्भव है। छींक की क्रिया आँख से आँसू आना अथवा मुँह में लार निकलने की सहज क्रिया मुँह से ही होती है। परन्तु मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाओं का स्थान निरूपण (Localisation) करना सम्भव नहीं क्योंकि मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाओं में विशेष ज्ञानेन्द्रिय अथवा अन्य कोई अवयव विशेष ही नहीं कार्य करता होता है बल्कि प्रायः सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील होता पाया जाता है। यदि कोई पलायन करता है तो प्रायः पूरे शरीर के अवयवों की सक्रियता की आवश्यकता पड़ती है। ठीक इसी प्रकार एक ही मांसपेशी अथवा ज्ञानेन्द्रिय के क्रियाशील होने से युद्ध की मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया (Instinct to combat) सम्भव नहीं हो सकती।

४ सहज क्रियाओं की भी कितनी भी पुनरावृत्ति (Repetition) हो उनमें किसी प्रकार का सुधार सम्भव नहीं है। परन्तु मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाओं में सुधार सम्भव है।

५ सहज क्रिया उपयुक्त उत्तेजना विशेष के उपस्थित होने पर उससे सम्बन्धित इन्द्रिय विशेष में होती है। परन्तु मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ परिस्थिति विशेष से उत्पन्न होती हैं। आँखों से पानी निकलने की सहज क्रिया आँखों में कुछ पड़ जाने की उत्तेजना उपस्थित होने पर होती है। मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाओं के लिए उत्तेजना से अधिक उस परिस्थिति का महत्त्व है जिसमें वह उत्तेजना प्राणी के सामने आती है। जंगल में शेर को देखते ही पलायन की मूल प्रवृत्यात्मक

क्रिया देखा जाना स्वाभाविक है। परन्तु जब यही शेर किसी पिंजडे मे बन्द होता है तब मनुष्यो मे पलायन की क्रिया नही देखते। शेर (उत्तेजना) तो दोनो हालतो मे है, परन्तु एक परिस्थिति ऐसी है कि मूल-प्रवृत्यात्मक क्रिया उत्पन्न करने मे समर्थ है और दूसरी परिस्थिति मे वैसी बात नही। अस्तु, मूल-प्रवृत्यात्मक व्यवहारो मे उत्तेजना से अधिक परिस्थिति का महत्त्व है।

६ सहज-क्रियाएँ तुरत हो जाती है। वे तात्कालिक (Immediate) है। जब हाथ जलने लगता है तब तुरत मनुष्य हाथ पीछे खीच लेता है। परन्तु मूल-प्रवृत्यात्मक क्रिया विलम्ब से होती है, जैसे—मकरे की जाल बुनने मे काफी देर लगती है।

७ सहज-क्रियाओ के लिए बाह्य उत्तेजनाओ का महत्त्व अधिक है परन्तु मूल-प्रवृत्यात्मक क्रियाओ मे प्राणी की आन्तरिक, मानसिक अथवा शारीरिक आवश्यकताओ एव प्रेरणाओ का महत्त्व प्रमुख है। भूख लगने पर ही भोजन खोजने की मूल-प्रवृत्यात्मक क्रिया प्राणी मे देखी जाती है।

८. सहज-क्रियाओ के होने का ज्ञान अथवा चेतना मनुष्यो को अपेक्षाकृत बहुत कम होती है। परन्तु-मूल-प्रवृत्यात्मक क्रियाओ के होने के सिलसिले मे मनुष्यो को इतना ज्ञान अथवा चेतना अवश्य होती रहती है कि कौन-कौन-सी क्रियाएँ करता जा रहा है। यह बात अलग है कि दोनो ही अवस्थाओ मे छिपे हुए चरम उद्देश्यो की जानकारी उन्हे सर्वथा हो अथवा नही।

९ सहज क्रियाओ मे उद्देश्य की पूर्ति मूल-प्रवृत्यात्मक क्रियाओं की उद्देश्य-पूर्ति से अधिक जल्द हो जाती है। शरीर के किसी भाग पर चढा हुआ कीटाणु तुरत हाथ के एक झटके से छिटक कर सहज-क्रिया द्वारा गिरा दिया जाता है इसलिए वह कीटाणु मनुष्य को कोई क्षति नही पहुँचा पाता है। प्राणी को इस सम्भावित क्षति से बचाने का उद्देश्य सहज-क्रिया द्वारा तुरत पूर्ण हो जाता है। ठीक इसी तरह छीकने, आँसू निकलने आदि सहज-क्रियाओ द्वारा भी मनुष्यों को आशकित क्षति से बचाने के उद्देश्य की पूर्ति तत्काल हो जाती है। पर मूल-प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ द्वारा इसी प्रकार के उद्देश्य की पूर्ति मे अपेक्षाकृत कही अधिक विलम्ब लगता है।

ऐच्छिक क्रियाएँ
(Voluntary Actions)

ऐच्छिक-क्रियाएँ ऐसी क्रियाओ को कहते है जिन्हे प्राणी जान-बूझकर किसी उद्देश्य की प्राप्ति के विचार से करता है। इस प्रकार की क्रियाएँ सहज अथवा मूल-प्रवृत्यात्मक क्रियाओ की तरह उत्तेजना-विशेष अथवा परिस्थिति-विशेष की उपस्थिति के बाद स्वत सचालित ढग से नही होती। ऐच्छिक क्रियाओ पर व्यक्ति की चेतना का पूर्ण नियन्त्रण होता है। ऐच्छिक व्यक्ति की पूर्णत चेतन-क्रिया (Conscious activity) है। व्यक्ति सोचता है कि ऐसा करना अच्छा है अथवा नही। ऐसा करने से लाभ है अथवा हानि है, इस कार्य को ऐसा नही करके यदि इस प्रकार किया जाये

तो क्या हल है। अमुक कार्य के सम्पादन की सबसे अच्छी विधि क्या होती है? अमुक कार्य करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए आदि।

और तब चिन्तन अथवा लाभ-हानि पर विचार विमर्श के बाद मनुष्य एक कार्य को करता है अथवा नहीं करता है। यदि मनुष्य स्वयं किसी निश्चित दिशा में निर्णय नहीं कर पाता है तो वह किसी दूसरे से राय भी लेता पाया जाता है। ऐच्छिक क्रिया उस समय उत्पन्न होती है जब मनुष्य के सामने कई एक विकल्प (Alternatives) उपस्थित हो जाते हैं और उसके सामने यह समस्या हो जाती है कि इस रास्ते (विकल्प) को अपनाया जाय अथवा दूसरे को। विकल्पों की संख्या कम से-कम दो होती है जैसे—मान लिजिए किसी गरीब लड़के की माँ बीमार है। उसे माँ की दवा भी खरीदनी है तथा युनिवर्सिटी परीक्षा की फीस भी देनी है और उसके पास सिर्फ इतने ही रुपये हैं जिससे युनिवर्सिटी फीस दी जा सकती है तो उसके सामने यह समस्या हो जाती है कि माँ का इलाज कराये अथवा युनिवर्सिटी की फीस दाखिल करे। प्रिय माँ का इलाज भी उतना ही आवश्यक है जितनी युनिवर्सिटी की फीस। एक ओर अपना भविष्य है, दूसरी ओर माँ का जीवन। कहीं से कर्ज मिलने की सम्भावना नहीं है। ऐसी परिस्थिति में उस छात्र के सामने दो ही रास्ते (Alternative) हैं पहला यह कि छात्र अपनी बीमार माँ की इलाज के बिना मरती छोड़ दे और युनिवर्सिटी की फीस दाखिल कर परीक्षा देकर अपने भविष्य को बनाने का प्रयास करे। दूसरा यह है कि अपने भविष्य को सुधारने का ख्याल छोड़कर वह अपनी माँ के इलाज के लिए उस पैसे को लगा दे। तीसरा कोई रास्ता नहीं।

दोनों विकल्प उस छात्र को भिन्न भिन्न तरह से इस परिस्थिति से बाहर करने के लिए प्रेरित करते हैं। छात्र के सामने एक समस्या हो जाती है। उसके अन्दर विरोधी प्रेरक-शक्तियों का संघर्ष होने लगता है। बहुत चिन्तन विचार विमर्श आदि के बाद छात्र इस निर्णय पर पहुँचता है कि माँ का इलाज कराना अधिक उपयुक्त है। फिर वह संकल्प करता है कि इन रुपयों को युनिवर्सिटी फीस के रूप में जमा न कर उन्हें वह अपनी माँ के इलाज में लगायेगा। फलस्वरूप रुपयों को दवा दारू में खर्च करने लगता है। इलाज में खर्च करने की इस क्रिया को छात्र की ऐच्छिक क्रिया (Voluntary Action) कहेंगे।

जीवन में ऐसे अनेक अवसर चले आते हैं जब मनुष्यों के सामने दो अथवा दो से कहीं अधिक विकल्प उपस्थित हो जाते हैं। कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जिनमें कि किस विकल्प अथवा रास्ते को अपनाया जाये इस संबंध का निर्णय करना आसान होता है। परन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जब यह निर्णय एक महान् कठिन कार्य होता है अस्तु कुछ ऐच्छिक क्रियाएं बहुत आसानी से हो जाती हैं जिन्हें अपेक्षाकृत आसान ऐच्छिक क्रिया (Simple voluntary action) कहा जा सकता है जैसे यदि इस बात का निर्णय करना हो कि आज रोटी खाऊँ अथवा भात सिनेमा देखने जाऊँ अथवा पढ़ने कालेज जाऊँ अथवा घर पर चान्द्र स्नान कर आराम

करू, पास के दो पैसे भिखारी को दूँ अथवा खुद पान खाऊँ, महीने के बचे हुए पैसे से अपनी धोती खरीद लूँ अथवा श्रीमती जी की साडी, इस कालेज मे भरती हो जाऊँ अथवा दूसरे मे, पढाई के विषय मे मनोविज्ञान को रखूँ अथवा इतिहास को इत्यादि। तो ऐसी अवस्थाओ मे मनुष्य को निर्णय करने मे बहुत कम समय लगता है तथा वे इस बात का बहुत जल्द निर्णय कर लेते हैं कि वे क्या करेंगे। ऐसी परिस्थिति मे आसान ऐच्छिक क्रिया (Simple voluntary action) देखी जाती है।

परन्तु ऐच्छिक क्रिया कठिन (Difficult) तब हो जाती है जब उपस्थित सारे के-सारे विकल्प एक-से-एक महत्त्वपूर्ण होते हे। ऐसी स्थिति मे मनुष्य परेशान हो जाता है कि करे तो क्या (Dilemma)। उदाहरणार्थ—

(i) भारतीय झगडालू परिवार मे नौकरी करते हुए सबसे बड़े लडके के सामने की यह समस्या कि वह अपनी विधवा माँ की बातो का अधिक ध्यान रखे अथवा अपनी नव विवाहिता पत्नी की बातो का।

(ii) अपने पिता अथवा अभिभावक की मृत्यु के बाद विद्यार्थी के सामने यह समस्या उपस्थित हो जाती है कि वह अपने भूख एव गरीब परिवार के कष्ट को दूर करने के लिए, कोई कम पैसों की नौकरी पकड ले अथवा अच्छी नौकरी की आशा मे किसी तरह उच्च पढाई के लिए प्रयत्नशील रहे और परिवार के लोगो के वर्तमान सुख का ख्याल छोड दे।

(iii) डाक्टरो के सामने यह समस्या अक्सर उपस्थित हो जाती है कि गाँवो मे जाकर अधिक पैसे कमाऊँ, किन्तु उजाड जीवन बितावें अथवा बहुत कम पैसे कमा कर भी किसी शहर की चहल-पहल मे जीवन बिताता रहूँ।

(iv) आज के समाज मे एक अविवाहित किन्तु समझदार युवक के सामने यह समस्या आती है कि क्या वह किसी मनचाही अच्छी लडकी से शादी करे, भले ही वह अत्यन्त गरीब परिवार की क्यो न हो, अथवा वह लडकी के रूप एव गुणो से अधिक महत्व दहेज मे मिलने वाले रुपयो को दे तथा किसी ऐसे घर मे शादी करे जहाँ से उसे काफी रुपये मिले जिन रुपयो को मिलने से युवक के पिता को आनन्द एव सन्तोष मिले अथवा उसकी छोटी बहन की शादी मे दहेज देने मे कुछ असुविधा हो अर्थात् 'युवक अच्छी पत्नी स्वीकार करे या अधिक पैसे।'

उपर्युक्त लिखी गयी परिस्थितियो मे मनुष्य एक गहरी विचारणा (Deliberation) मे पड जाता है कि वह किस मार्ग को अपनाये। ऐसे विषय (Difficult to decide) विकल्पो (Alternative) के बीच बहुत मुश्किल से किये गये निर्णय के अनुसार होनेवाले कार्य को हम कठिन ऐच्छिक क्रिया (Difficult voluntary action) की सज्ञा देते हैं।

अन्तिम उदाहरण मे हो सकता है कि विकल्पो के आपसी गुण-दोष एव होने वाले परिणामो की विषमता के कारण युवक यह निर्णय करने मे असमर्थ हो जाय कि वह शादी के लिए लडकी को अधिक महत्व दे अथवा दहेज के पैसो को। ऐसी

परिस्थिति में उसके मस्तिष्क में विरोधी विचारों का एक कठिन संघर्ष उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण वह अपने में अत्यधिक तनाव (Tension) का अनुभव करता है। इस कष्टदायक तनाव (Tension) से बचने के लिए हो सकता है कि वह आगे बिना सोचे एक रुपये को उछाल (By tossing the coin) कर गिरे हुए रुपये के चित्त (Head) अथवा पट (Tail) होने की अवस्था के अनुसार यह निर्णय करे कि वह क्या करेगा। यदि इसी तरह की किसी अन्य विधि के अनुसार किये गये निर्णय के आधार पर वह व्यवहार करता देखा जाता है तो उसे हम सधाग ऐच्छिक क्रिया (Change voluntary action) की संज्ञा देते हैं। ऐसी ऐच्छिक क्रियाएं साधारण व्यक्ति में अत्यन्त विषम विकल्पों के बीच होती पायी जाती हैं। इन क्रियाओं का प्रादुर्भाव जीवन में शायद ही कभी-कभी देखा जाता है।

(ब) ऐच्छिक क्रियाओं की विशेषताएं (Characteristics of Voluntary action)।

वुडवर्थ (Woodworth) की राय में ऐच्छिक क्रियाओं का सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है वातावरण से व्यक्ति का समुचित अभियोजन (Adjust) कराने में सहायता प्रदान करना। चूंकि व्यक्तियों को अपनी ऐच्छिक क्रियाओं के उद्देश्य का पूर्ण ज्ञान रहता है अस्तु क्रियाएं अभियोजन के दृष्टिकोण से बहुत दुरुस्त अथवा यथार्थ (Precise and accurate from the point of view of adjustment) होती हैं। अथवा इस प्रकार की क्रियाएं एक निश्चित मार्ग के अनुसार की जाती हैं जो एक खास ध्येय की प्राप्ति के लिए व्यक्ति द्वारा सबसे अधिक दुरुस्त मानी जाती हैं।

बदलती हुई परिस्थितियों के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताओं में भी परिवर्तन होते जाते हैं। नयी आवश्यकताएं व्यक्ति के सामने नये उद्देश्यों का सृजन करती हैं जिनकी प्राप्ति बदलती हुई परिस्थितियों से अभियोजन करने के लिए आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि ऐच्छिक क्रियाओं की कार्यप्रणाली में भी परिवर्तन होते हैं। इसलिए ऐच्छिक क्रियाओं द्वारा किये गये अभियोजनों की विधि में सदा कुछ-न कुछ नवीनता Novelty in adjustment) आती जाती है।

अगर ऐच्छिक क्रियाओं के होने में कोई रुकावट आ जाती है तो इन क्रियाओं की प्रबलता (Intensity) और भी अधिक बढ़ जाती है।

एक ऐच्छिक क्रिया में कुछ अनैच्छिक क्रियाएं एवं अन्य क्रियाएं भी सम्मिलित होती हैं जिनके कारण इन क्रियाओं द्वारा किये गये अभियोजन का क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है। अस्तु इसका अभियोजन विस्तार (Breadth of adjustment) भी अधिक होता है।

(स) आदतें अथवा अभ्यासजन्य क्रियाएं
(Habits or Habitual Action)

आदतों अथवा अभ्यासजन्य क्रियाओं को भी कुछ मनोवैज्ञानिकों ने ऐच्छिक क्रियाओं की कोटि में ही रखा है क्योंकि हमारी आदतों की शुरुआत प्रायः हमारी

इच्छाओं के अनुकूल ही होती है। प्रारम्भ मे अनैच्छिक नही होती, परन्तु एक बार शुरू हो जाने के बाद बार-बार किये जाने वाले अभ्यासो के फलस्वरूप धीरे-धीरे एक ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है जब हमारी अभ्यस्त क्रियाएँ बार-बार स्वत (Automatically) दुहरायी जाने लगती है। अस्तु, इन्हें अर्द्ध इच्छित क्रियाएँ भी कहते है। उदाहरणस्वरूप—पान, सिगरेट, गांजा, शराब, चाय इत्यादि की आदतो को ही ले ले। शुरू-शुरू मे शराबी व्यक्ति बुरी सगति मे पड कर अथवा जान-बूझ कर अपने दु ख को भूलने के लिए शराब पीना शुरू करता है। शराब का पीना दु ख को भुलाने का एक साधन मात्र है। परन्तु, धीरे-धीरे शराब पीने की ऐसी आदत पड जाती है कि व्यक्ति प्रसन्नता के क्षणो मे भी शराब पीने लगता है और इस तरह चाहे वह दु ख मे हो या सुख मे बिना शराब पीये नही रह सकता और जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है तब हम कहते है कि अमुक की शराब पीने की आदत पड गयी है। अन्त मे, शराब पीने की क्रिया एक साधन (Means) न रह कर स्वय साध्य (End in itself) बन जाता है।

आदत बुरी भी है और भली भी। तम्बाकू, अफीम, मदिरा इत्यादि की आदते बुरी हैं क्योकि इनका व्यक्ति के ऊपर बहुत बुरा प्रभाव पडता है। इसी प्रकार हमारे अचेतन (Unconcious) मे दबे हुए कुछ कारणो के परिणामस्वरूप किसी किसी व्यक्ति मे अन्धकार से डरने की आदत, नवागन्तुको के सामने होने पर लजाने अथवा झेंपने की आदत, दूसरो को चिढाने की आदत अकेले मे पड कर घबराने की आदत इत्यादि भी देखी जाती है।

परन्तु, कुछ आदते अच्छी है जिनका व्यक्ति के विकास पर अच्छा असर पडता है, जैसे—हमेशा किसी-न-किसी कार्य मे लगे रहने की आदत, सदा प्रसन्नचित रहने की आदत, तर्कपूर्ण ढग से सोचने की आदत, सिष्ट व्यवहारो के करने की आदत तथा अधिक पढने या लिखने की आदत इत्यादि। इसी तरह थैंक यू (Thank you) अथवा सॉरी (Sorry) कहने की आदत से भी समाज मे बहुत-सी उलझनें आसान होती दिखाई पडती हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति प्रौढता (Maturity) प्राप्त करता है, वैसे-वैसे उसमे कपडा पहनने, खाना खाने तथा खेलने इत्यादि के व्यवहार भी आदत जैसे पड जाते हैं जिन पर शिक्षण (Training) का बहुत प्रभाव पड़ता है। इन क्रियाओ को बार-बार करने (Practise) के कारण उन्हें शीघ्र सेना है और अन्त मे ये आदतें (Habits) व्यक्ति के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाती है।

———

बुद्धि
(Intelligence)

बुद्धि का स्वरूप—परिभाषाएं—स्पीयरमन का 'द्वितत्व सिद्धान्त' तथा थार्नडाइक, थस्टन आदि का बहुतत्व सिद्धान्त ।

बुद्धि-माप—बुद्धि परीक्षण वैयक्तिक एवं सामूहिक बुद्धि-परीक्षण वाचिक' तथा क्रियात्मक परीक्षण—(१) वाचिक वयक्तिक बुद्धि परीक्षण तथा इसकी विशेषताएं एवं त्रुटियाँ, (२) क्रियात्मक वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षण (३) वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण—वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण का उपयोग करते समय ध्यान मे रखने योग्य कुछ प्रमुख बातें—वाचिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण की त्रुटियाँ तथा (४) क्रियात्मक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण ।

'बुद्धि परीक्षण-फलों की व्याख्या—मानसिक आयु—बुद्धि लब्धि' निकालने का तरीका 'बुद्धि लब्धि स्थिरता—बुद्धि-लब्धि में परिवर्तन होने के कारण—बुद्धि लब्धि निर्धारण की उपयोगिताए ।

बुद्धि का स्वरूप
(Nature of Intelligence)

मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि का सम्बन्ध व्यक्ति की विभिन्न वातावरण में अभियोजन की क्षमता से बतलाया है। जो व्यक्ति जितनी ही सरलता एवं सुगमता से अपने आपको वातावरण म अभियोजित करता है उसकी बुद्धि उतनी ही अधिक तीव्र समझी जाती है। परन्तु प्रत्येक अभियोजन म बुद्धि की आवश्यकता नहीं पडती है। मनुष्यों का कुछ अभियोजन मूल प्रवृत्यात्मक (Instinctive) तथा सहज क्रियाओं (Reflex Action) पर निर्भर करता है। मनुष्यों में क्रियाएँ जन्मजात होती है और स्वत-ब-खुद आवश्यकता पडने पर क्रियाशील हो जाती हैं। इन क्रियाओं द्वारा हुए अभियोजन में बुद्धि का हाथ नहीं रहता।

बुद्धि की दूसरी विशेषता इसकी परिवर्तनशीलता (Flexibility) है। मनुष्य के व्यवहार में परिमार्जन (Modification) परिपक्वता (Maturation) तथा सीखने (Learning) से होता है। व्यक्ति के व्यवहारों में हुए इस परिमार्जन के

फलस्वरूप बुद्धि मे भी विकास या परिवर्तन पाया जाता है। फलत मनोवैज्ञानिको ने कहा है कि प्राणी के विकास (Growth) तथा व्यवहारो मे, परिपक्वता सीखने के फलस्वरूप परिवर्तन एव परिमार्जन के समावेश से बुद्धि मे भी विकासात्मक परिवर्तन होता है।

बुद्धि प्राणी के शरीर के विशेष भाग (Specific structure) पर निर्भर नही करती वरन् प्राणी समग्र रूप से (As a whole) बौद्धिक क्रियाओ मे क्रियाशील पाया जाता है। अत यह कहना कि बुद्धि ग्राह्ययकेन्द्रियो या कर्मेन्द्रियो (Receptors or Effectors) पर निर्भर है, भूल होगी। यह क्षमता शरीर के समग्र रूप से क्रियाशील होने पर निर्भर है।

प्रत्येक प्राणी मे समान रूप से बुद्धि नामक क्षमता नही पायी जाती है। विकास की सीढी मे जो प्राणी जितना ही निम्न स्तर पर होता है उसमे बुद्धि की क्षमता उतनी ही कम होती है। जैसे-जैसे विकास की सीढी पर आगे की ओर बढते जाते है, वैसे-वैसे बुद्धि की क्षमता मे वृद्धि देखने को मिलती है। इस क्षमता मे वृद्धि के फलस्वरूप प्राणी अपने को अधिक-से अधिक जल्द एव सुगमता से वातावरण से अभियोजित कर पाता है। अब प्रश्न है कि बुद्धि मे विकास के फलस्वरूप परिवर्तन देखने को क्यो मिलता है। इस प्रश्न का उत्तर मनोवैज्ञानिको के विकास के फलस्वरूप प्राणी मे जटिलता के आधार पर दिया है। विकास के फलस्वरूप प्राणी के स्नायु-मण्डल तथा अन्य आकृतियो मे जटिलता आती गयी। जिस प्राणी मे जितनी ही आकृतियों की जटिलता विशेष रूप से पायी जाती है उसकी बुद्धि भी अविकसित प्राणियो की (जिनकी आकृतियो का विकास कम हुआ हो) बुद्धि से उतनी ही अधिक रहती है। विकसित प्राणी की बुद्धि विशेष होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राणियो के बीच बुद्धि-विभिन्नता पायी जाती है। एक ही वर्ग के प्राणियो मे भी बुद्धि समान नही होती। उदाहरणार्थ— एक मनुष्य दूसरे से बुद्धि में अधिक तेज हो सकता है। मनुष्यो के बीच बुद्धि की इस असमानता का अनुमान मनुष्यो के अभियोजन करने की क्षमता मे अन्तर द्वारा लगाया जाता है। कुछ व्यक्तियो मे जल्द एव सुगमता से अपने को अभियोजित करने की क्षमता वर्तमान होती है तो कुछ व्यक्ति उस परिस्थिति मे अपने को अभियोजित करने मे समय लेते हैं, जैसे— गणित के प्रश्न का हल करने मे कुछ विद्यार्थी अतिशीघ्र उसे हल कर देते हैं तो कुछ उसे हल करने मे घण्टो समय लगाते है। यहाँ गणित के प्रश्न को हल करना ही व्यक्ति का अभियोजन है। स्पष्ट है कि एक व्यक्ति की बुद्धि दूसरे से भिन्न हो सकती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुद्धि एक क्षमता (Ability) है जो व्यक्तियो के वातावरण के प्रति अभियोजन (Adjustment) करने मे सहायक होता है। साथ-साथ यह प्रत्येक मनुष्य मे समान रूप से नही पायी जाती हैं। पर प्रश्न है बुद्धि क्या है ? यह सर्वमान्य है कि यह अभियोजन मे सहायक होती है। मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि को परिभाषित करने की कोशिश की है, पर यह प्रयत्न

असफल ही रहे। जिस प्रकार विद्युत (Electricity) की परिभाषा आज तक कोई न दे पाया है, उसी प्रकार बुद्धि की परिभाषा मनोवैज्ञानिकों द्वारा नहीं दी जा सकी। बुद्धि के उपयोग (Use) पर सभी ने प्रकाश डाला है। कुछ लोगों ने तो बुद्धि को परिभाषित करते समय बुद्धि के किसी एक या दो उपयोगों का वर्णन किया है जैसे— स्टर्न (Stern) ने व्यक्ति के वातावरण या वातावरण के कुछ एक पहलुओं के प्रति अभियोजन की क्षमता (Ability to adjust) को ही बुद्धि की संज्ञा दी है। टरमन (Terman) ने अमूर्त (Abstract) चिन्तन करने की 'योग्यता' को ही बुद्धि कहा है। फिर वेक्सलर (Wechsler) ने व्यक्ति द्वारा किसी अभिप्राय की पूर्ति के लिए कार्य करने तर्कपूर्ण चिन्तन करने तथा अपने वातावरण से उचित एवं प्रभावपूर्ण ढंग से अभियोजन करने की सम्पूर्ण या सार्वभौम क्षमता (Global capacity) को ही बुद्धि की संज्ञा दी है। इस प्रकार दिये गये प्रत्येक परिभाषाओं में बुद्धि की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। कुछ लोगों के अनुसार बुद्धि अभियोजन में सहयोग देती है (Helps in adjustment) तो कुछ लोगों के अनुसार यह अमूर्त चिन्तन में सहयोगी है तो कुछ लोगों के अनुसार तर्कयुक्त चिन्तन बुद्धि पर ही आश्रित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्धि को परिभाषित करना कठिन है। इस कठिनाई को देखते हुए हिलगार्ड (Hilgard) ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि बुद्धि परीक्षा जो कुछ मापता है बुद्धि वही किसी भी प्रकार के विवाद की गुंजाइश नहीं रही है।

दूसरा प्रश्न जो बहुधा मनोवैज्ञानिकों के सामने आया करता है वह यह है कि बुद्धि के अन्तर्गत वे कौन-कौन से तत्त्व (Factors) पाये जाते हैं जिनके रहने से अभियोजन में व्यक्ति को आसानी होती है। कौन-कौन से तत्त्व तथा कितने तत्त्व (Elements or Factors) बुद्धि में हैं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि में केवल एक तत्त्व जिसे सामान्य तत्त्व (General Factors कहा गया है की चर्चा की है तो किसी ने एक से अधिक अर्थात् दो-तीन या अनेक तत्त्वों का समावेश बुद्धि में किया है। इन विभिन्न या किसी एक तत्त्व का मात्रा में पाये जाने वाले अन्तर के कारण व्यक्तियों की बुद्धि में भी अन्तर पाया जाता है। स्पीयरमैन (Spearman) के अनुसार मनुष्यों की बौद्धिक योग्यता में दो तत्त्वों का समावेश— (१) सामान्य तत्त्व (General Factors) और (२) विशिष्ट तत्त्व (Specific Factors)। सामान्य तत्त्व को स्पीयरमैन (Spearman) ने मानसिक शक्ति (Mental energy) की संज्ञा दी है। वैयक्तिक विभिन्नता की व्याख्या करते हुए स्पीयरमैन ने कहा है, दो व्यक्तियों में सामान्य बौद्धिक स्तर (General intellectual level) में अन्तर होने के कारण विभिन्नता हो सकती है या यह विभिन्नता विशिष्ट तत्त्वों के कारण हो सकती है। कभी-कभी इन दोनों तत्त्वों की विभिन्नता के फलस्वरूप दो व्यक्तियों में अन्तर पाया जा सकता है। स्पीयरमैन के इस विचार को स्पीयरमैन का द्वितीय सिद्धान्त (Two-Factor Theory of Spearman) भी कहा गया है। इसका विशद् उल्लेख करना यहाँ अनिवार्य नहीं।

दो से अधिक तत्वो पर विश्वास रखने वाले मनोवैज्ञानिको मे थॉर्नडाइक (Thorndike) तथा थर्स्टन (Thurstone) का नाम उल्लेखनीय है। इस तरह के विचार को बुद्धि का बहुतत्व-सिद्धान्त के नाम से पुकारा जाता है। थॉर्नडाइक के अनुसार बुद्धि का निर्माण कई-एक विभिन्न तत्वो से होता है। थर्स्टन (Thurstone) ने भी बुद्धि मे निम्नलिखित छ तत्वो (Six elements or Factors) का उल्लेख किया है—(क) स्थान सम्बन्धी योग्यता (Special ability), (ख) सांख्यिक योग्यता (Numerical ability), (ग) वाचिक योग्यता (Verbal ability), (घ) स्मृति-सम्बन्धी योग्यता (Memory ability) (ड) वाक्पटुता (Word fluency) तथा (च) विचार-शक्ति (Reasoning ability)।

केली (Keli) ने अपने विवेचन मे नौ तत्वो (Nine elements) का वर्णन किया है।

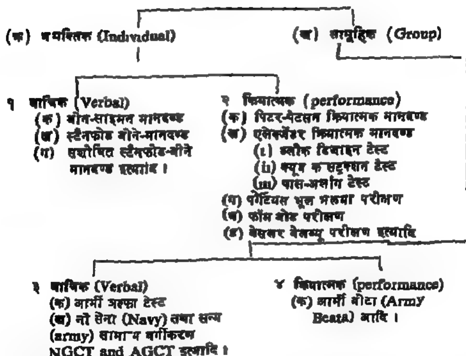
इस प्रकार बुद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने विभिन्न तत्वो (Elements) की चर्चा की है। बुद्धि मे पाये जाने वाले तत्वो के सम्बन्ध मे एकमत का अभाव है। अत यह कहना कि बुद्धि एक सार्वभौम क्षमता (Global capacity) है जो अभियोजन मे सहयोग देती है तथा यह क्षमता सभी व्यक्तियो मे समान रूप से वर्तमान नही रहती, बुद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है।

बुद्धि-माप
(Measurement of Intelligence)

बुद्धि-माप आन्दोलन का प्रारम्भ उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे सर फ्रैंसिस गाल्टन (Sir Francis Galton) से हुआ। इन्होंने ऐन्द्रिक विभेदीकरण (Sensors discrimination), ऐन्द्रिक प्रत्यक्षीकरण (Sensory Perception) तथा ऐन्द्रिक तीक्ष्णता (Sensory acquity) की माप के लिए सर्वप्रथम अनेक प्रकार के ऐन्द्रिक परीक्षणो (Sensory tests) का निर्माण किया। धीरे-धीरे अन्य मनोवैज्ञानिको, कैटेल (Cattell), बीने (Binet), साइमन (Simon) इत्यादि का ध्यान बुद्धि-माप की ओर गया। फलस्वरूप 'बुद्धि-माप' के अनेक परीक्षणो का विकास हुआ। बुद्धि-माप के सभी परीक्षण एक ही तरह के नहीं थे। कुछ तो ऐसे थे जिनका उपयोग व्यक्ति एक समय एक ही मनुष्य पर बुद्धि मापने के लिए कर सकता है। ऐसे परीक्षण (Tests) जिनका प्रयोग बुद्धि को मापने के लिए एक समय एक ही व्यक्ति पर होता है उन्हे वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षण (Individual intelligence test) की सज्ञा दी गयी है। परन्तु कुछ ऐसे भी 'परीक्षण' (Tests) थे जिनका प्रयोग एक ही समय एक से अधिक व्यक्तियो पर किया जा सकता है। ऐसे परीक्षण जिनका उपयोग एक ही समय अनेक व्यक्तियो की 'बुद्धि-जाँच' के लिए हो सकता है उन्हे सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group tests of intelligence) कहते हैं। इन दो विभिन्न परीक्षणो (Tests) के अन्तर्गत भी दो प्रकार के परीक्षण

देखने को मिलते हैं। एक परीक्षण वह है जिसमें व्यक्ति भाषा (Language) के माध्यम से ही अपने प्रत्युत्तर प्रकट करता है और दूसरा वह जिसमें व्यक्ति अपने प्रत्युत्तर प्रकट करने के लिए कार्यों (Performance) का आश्रय लेता है। पहली तरह के परीक्षण को वाचिक बुद्धि परीक्षण (Verbal intelligence test) तथा दूसरे को क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (Verbal intelligence test) कहते हैं। निम्नांकित तालिका से ऊपर के विश्लेषण को अत्यधिक स्पष्ट किया जा सकता है —

बुद्धि-परीक्षण
(Intelligence Test)



उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि बुद्धि-माप के लिए इन चार प्रकार के परीक्षणों (Test) का उपयोग किया जाता है— (१) वाचिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण (Verbal individual intelligence tests) (२) क्रियात्मक वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षण (Performance lindividual intelligence) (३) वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण (Verbal group intelligence tests) तथा (४) क्रियात्मक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण (Performance group intelligence tests)।

इन विभिन्न परीक्षणों के अन्तर्गत अनेक परीक्षण आते हैं। पर सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहाँ अभीष्ट नहीं है यों तो उनके नाम ऊपर की तालिका में ही दिये गये हैं।

अब हम एक-एक कर संक्षेप मे इनका वर्णन करेंगे ।

१ वाचिक वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षण (Verbal individual intelligence test --

यहाँ पहली चीज जो ध्यान मे रखने योग्य है, वह यह कि जो परीक्षण वाचिक वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षण के अन्तर्गत आते है उनका प्रयोग एक समय एक ही व्यक्ति पर होता है । फलस्वरूप, ऐसे परीक्षणो से व्यक्ति-विशेष के सम्बन्ध मे विश्वसनीय सूचनाएँ (Reliable information) प्राप्त होती है । इस वर्ग के परीक्षण का सर्वप्रथम विकास प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बीने (Alfred Binet) द्वारा हुआ । उन्होने साइमन के सहयोग से पाठशाला मे पढने वाले बच्चो के बौद्धिक स्तर को मापने का प्रयास किया। 'बीने' ने अपने अनुसन्धान के सिलसिले मे पाया था कि बच्चो मे बुद्धि 'समान' नही होती है। एक प्रकार की शिक्षण-पद्धति से सभी बच्चे समान रूप से लाभ उठाने मे असमर्थ रहते है । अत. विभिन्न बुद्धि वाले बच्चो को विभिन्न प्रकार से शिक्षा दी जानी चाहिए । बीने ने अपने इस सामान्य नियम को उपयोग मे लाने के लिए बौद्धिक स्तर की माप को आवश्यक समझा । फलस्वरूप साइमन (Simon) के सहयोग से उन्होने एक मानदंड (Scale) का निर्माण किया । इस मानदण्ड मे तीस क्रियाओ (Tasks) को रखा गया । सभी क्रियाएँ समान विकलता (Difficulty) की नही थी, वरन् क्रियाओ मे जटिलता धीरे-धीरे बढती गयी थी । इन क्रियाओ को एक क्रम (Systematic order) के अनुसार रखा गया । सबसे पहले सरल क्रिया, फिर उससे कठिन और अन्त मे सबसे कठिन क्रिया को रखा गया तथा इसे इसी क्रम मे बुद्धि मापन के लिए बच्चो को दिया जाता था । बीने ने इस प्रकार जो मानदण्ड साइमान के सहयोग से तैयार किया उसे बीने साइमान मानदण्ड (Binet-Simon scale) कहते है ।

अब प्रश्न है कि इस मानदण्ड द्वारा बुद्धि-स्तर की माप कैसे हो जाती है ? इन मनोवैज्ञानिको ने अपने मानदण्ड की क्रियाओ (Task) को विभिन्न अवस्था-स्तरो (Age-levels) के अनेक बच्चो को हल करने को दिया । तदुपरान्त यह पता लगा कि किस उम्र के लडके, औसत तौर पर (On the average) कितनी क्रियाओ को हल कर सकते हैं । क्रियाओ के हल करने के आधार पर विभिन्न अवस्था-स्तरो (Age-levels) के लिए प्रतिमान (Normal) स्थापित किये गये । अर्थात् आठ वर्ष के लडको ने अगर १२ प्रश्नो को हल कर पाया तथा सात वर्ष के लडको ने १० प्रश्नो को, तो इसका अर्थ यह हुआ कि दस प्रश्नो को हल करने वाले प्रत्येक सात साल के लडके की बुद्धि सामान्य (Normal) समझी जायगी । परन्तु, यदि एक साल का लडका १२ प्रश्नो को हल करता पाया जाय तो इसका अर्थ हुआ कि सात साल के लडका अपने बुद्धि-विकास मे एक साल आगे बढा है, अर्थात् उसकी बुद्धि आठ साल के लडके की बुद्धि के समान है । इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतिमानो के आधार पर बालको मे बौद्धिक विकास की जानकारी बीने साइमन ने सम्भव बनायी ।

बीने साइमन मानदण्ड का संशोधन चार बार हुआ। पहला संशोधन सन् १९०८ ई० में हुआ। दूसरा सन् १९१२ ई० में। इस संशोधन के फलस्वरूप (क) मानदण्ड की क्रियाओं (Tasks) की संख्या तीस (३०) से बढ़ा कर चौवन ५४ कर दी गयी (ख) विभिन्न अवस्था-स्तरों को ध्यान में रखते हुए क्रियाओं का समावेश किया गया। तीन साल के बालक से लेकर प्रौढ़ावस्था (Adulthood) तक के बालकों की बुद्धि मापने के लिए परीक्षण का निर्माण किया गया तथा (ग) जिन क्रियाओं का करना विशिष्ट नियुक्ता (Specific skill) पर निर्भर करता था उन्हें मानदण्ड (Scale) से निकाल दिया गया।

उपर्युक्त संशोधनों के अतिरिक्त सन् १९१६ ई० टरमन (Terman) ने भी कुछ संशोधन लाये। सन् १९३७ ई० में टरमन और मरील (Terman and Merril) ने मिल कर संशोधित किया जो स्टेनफोर्ड बीने मानदण्ड (Revised Stanford Binet scale) के नाम से प्रकाशित हुआ।

वाचिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण की विशेषताएं (Characteristics of the Verbal Individual Test)— (क) एक समय ही व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा की जाती है। फलतः व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त होती हैं। (ख) व्यक्ति विशेष की बुद्धि का विशद् विश्लेषण सम्भव है।

इस परीक्षण विधि की त्रुटियाँ (Defects of this testing method)— (क) यह परीक्षण एकमात्र उन्हीं लोगों तक सीमित है जिनकी भाषा विकसित हो अर्थात् जो अपने भाव को भाषा द्वारा व्यक्त कर सकते हों।

(ख) अधिक समय का व्यय होगा। चूंकि यहाँ एक समय में एक ही व्यक्ति की बुद्धि जाँच सम्भव है इसलिए बुद्धि जाँच में अधिक समय लगता है। एक साथ अनेक व्यक्तियों की बुद्धि जाँच यहाँ सम्भव नहीं।

(ग) एक साधारण व्यक्ति इसका प्रयोग नहीं कर सकता है। कारण एक ही समय प्रयोज्य (Subject) जिसकी बुद्धि जाँच हो रही हो उसे निर्देश देना उसके द्वारा दिये गये उत्तरों को लिखना तथा उनका मूल्यांकन करना आसान नहीं है।

(घ) प्रयोज्य द्वारा दिये गये उत्तरों के मूल्यांकन में परीक्षक के व्यक्तित्व का भी प्रभाव पड़ता देखा गया है। अतः मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि इस विधि द्वारा बुद्धि का सही सही ज्ञान नहीं हो पाता है।

२ क्रियात्मक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण (Performance individual intelligence tests)—

इस परीक्षण द्वारा भी एक ही व्यक्ति की बुद्धि जाँच की जाती है। परन्तु यह वाचिक बुद्धि परीक्षण से सर्वथा भिन्न है। इस परीक्षण का उपयोग उन बालकों या वयस्कों के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है जिनका भाषा विकास न हुआ हो अर्थात् वे जो अपने भावों को व्यक्त करने में असमर्थ हों। गूंगे तथा अनपढ़ लोगों की समाज में कमी नहीं। ऐसे व्यक्तियों की बुद्धि जाँच सामने दी गयी

वस्तुओं को हाथ मे उलट-पलट कर दुरुस्त करने की विधि तथा उसे दुरुस्त करने मे लगे समय द्वारा किया जाता है। बुद्धि-जाँच के इस परीक्षण को क्रियात्मक परीक्षण (Performance tests) की सज्ञा दी जाती है। अगर क्रियात्मक परीक्षण का प्रयोग एक व्यक्ति पर ही सम्भव हो, तो उस परीक्षण को क्रियात्मक वैयक्तित्व बुद्धि परीक्षण कहते है। परन्तु, कुछ ऐसे भी 'क्रियात्मक परीक्षण' है जिनका प्रयोग एक ही समय अनेक व्यक्तियो पर किया जा सकता है। ऐसे 'क्रियात्मक परीक्षण' को क्रियात्मक सामूहिक 'बुद्धि-परीक्षण' की सज्ञा दी जाती है।

क्रियात्मक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के अन्तर्गत आने वाले परीक्षणो (Test) मे फार्म बोर्ड परीक्षण (Form board, test) चित्र पूर्ति (Picture Completion), भूलभूलैया परीक्षण (Maze test) इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। यहाँ सभी परीक्षणो का वर्णन आवश्यक नही। उदाहरण के लिए 'फॉर्म बोर्ड परीक्षण' की चर्चा यहा यथेष्ट होगी। परीक्षक यहाँ प्रयोज्य को, अर्थात जिसकी बुद्धि-जाँच वह करने वाला हो, कुछ ब्लाक (Blocks) दे देता है। प्रयोज्य के सामने एक बोर्ड रखा रहता है। इसी बोर्ड मे ब्लॉको को यथास्थान ठीक ठीक एव शीघ्रता से रखना पडता है। यहाँ परीक्षण लब्धाक (Test score) निकालने मे ब्लॉको (Blocks) को रखने मे लगे समय तथा गलतियो (Time and Errors) जो ब्लॉको को यथास्थान नही रखने मे होती है, पर ध्यान दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त, अलेक्जेंडर क्रियात्मक मानदण्ड, भूल-भुलैया पार्टियर्स परीक्षण तथा बेसलर वेलक्यू परीक्षण इत्यादि भी वैज्ञानिक क्रियात्मक परीक्षण के सुन्दर उदाहरण है।

२ वाचिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Verbal group Intelligence tests)—

वैयक्तिक तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षणो मे अन्तर यह है कि वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षण एक समय एक ही व्यक्ति पर प्रयोग मे लाया जा सकता है, परन्तु सामूहिक बुद्धि परीक्षण का प्रयोग एक समय अनेक व्यक्तियो पर किया जाता है। अधिक व्यक्तियों पर एक समय इसका प्रयोग होने से समय की बचत होती है। समय के मूल्य को १९१७-१८ ई० मे अमेरिका के कुछ मनोवैज्ञानिको ने समझा। अत: वे उसी समय से ऐसे बुद्धि-परीक्षणो का निर्माण कर रहे थे जिनका प्रयोग व्यक्तियो के समूह (Group) पर किया जा सके। विश्व महायुद्ध (World War) शुरू होने तक दो प्रकार के सामूहिक बुद्धि-परीक्षणो का निर्माण किया गया। एक तो वह जिसका प्रयोग पढे लिखे (Literate) लोगो पर किया गया और दूसरा जिसका प्रयोग निरक्षर (Illiterate) व्यक्तियो पर किया गया। पहले का नाम आर्मी अल्फा (Army Alpha) तथा दूसरे का नाम आर्मी बीटा (Army Beta) था जिसकी चर्चा आगे क्रियात्मक सामूहिक बुद्धि परीक्षण के अन्तर्गत की गयी है। आजकल तो वाचिक सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का अत्यधिक निर्माण हो रहा है। आजकल बिहार में लडकों-

को बुद्धि जाँच के लिए डाक्टर एम० एम० मोहसीन द्वारा हिन्दी में बनाये गये वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षणों का उपयोग किया जा रहा है। इस प्रकार अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में ऐसे परीक्षण उपलब्ध हैं।

वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण को उपयोग में लाते समय परीक्षक (Tester) को कुछ बातों की ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

वाचिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण को उपयोग में लाते समय ध्यान में रखने योग्य कुछ प्रमुख बातें—(क) परीक्षक को परीक्षण (Test) की पूरी जानकारी कर लेनी चाहिए। यह जानकारी अगर परीक्षक परीक्षण के प्रयोग के पूर्व परीक्षण को स्वयं करे तो अति उत्तम है।

(ख) परीक्षक को परीक्षण-सम्बन्धी निर्देशनों (Instructions) का भी पूरा पूरा ज्ञान रहना चाहिए। प्रयोज्यों (Subject or Testers) को कैसे और किस तरह की पेन्सिल का उपयोग करना है इत्यादि सभी निर्देशनों के अन्तर्गत आते हैं।

वाचिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण की त्रुटियाँ Defect of the verbal group intelligence test) — वाचिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण त्रुटियों से परे नहीं है। इसमें निम्नलिखित दोष हैं—

(i) यहाँ अनेक व्यक्ति एक साथ बैठ कर काम करते हैं अतः यहाँ एक-दूसरे की नकल करने की सम्भावना रहती है, जो एक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण में नहीं रहती है।

(ii) साथ ही साथ यहाँ यह भी पता लगाना मुश्किल रहता है कि प्रयोज्य अपनी योग्यतानुसार काम में सहयोग दे रहा है अथवा नहीं। अगर वे सहयोग न दें तो परीक्षक ठीक ठीक बुद्धि की जाँच करने में असमर्थ रहेगा। कुछ तो ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अधिक लोगों को देख कर घबरा जाते हैं। ऐसी अवस्था में बुद्धि जाँच करना ठीक नहीं है।

(iii) सामूहिक बुद्धि-परीक्षण में शारीरिक एवं सांवेगिक सतुलन में गड़बड़ी होने पर बुद्धि का पता ठीक ठीक नहीं लग सकता है।

अतः मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि परीक्षण फल सामूहिक परीक्षण फल से अधिक विश्वसनीय होते हैं।

४ क्रियात्मक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण (Performance group intelligence tests)—इसकी कुछ चर्चा क्रियात्मक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के अन्तर्गत की जा चुकी है। यहाँ जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है प्रयोज्य कार्यों (Performance) द्वारा अपना उत्तर प्रकट करता है। भाषा की आवश्यकता यहाँ नहीं पड़ती। हाथ से या पेन्सिल की सहायता से कुछ रेखाएँ खींच कर या वस्तुओं को इधर उधर कर उत्तर प्राप्त करने की चेष्टा प्रायोज्य द्वारा काफी है। आर्मी बीटा (Army Beta) को मनोवैज्ञानिकों ने प्रथम सामूहिक क्रियात्मक परीक्षण (First group performance test) कहा है। यहाँ भाषा की थोड़ी-सी समस्या को हटाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षण की रीति को

प्रयोज्यों के सामने कर दिखला दिया और दिखलाने के बाद यह जानने के लिए कि उन लोगो ने रीति को भली-भाँति समझा है या नही, उन्हें इसी चीज को फिर से करने को दिया जाता है या उसी से मिलती-जुलती (Similar) दूसरी चीज करने को दी जाती है। जब परीक्षक यह समझ लेता है कि प्रयोज्यो ने इसे करने की रीति समझ ली तो उसे वह कार्य करने को दिया जाता है। इन कार्यों मे प्रयोज्य, कुछ रेखाएँ खीचकर या रिक्त पत्रो (Blanks) के कुछ स्थानो को चिह्नित कर या इसी प्रकार की अन्य सरल क्रियाओ द्वारा कार्य पूरा करता है। परीक्षक इन्ही सरल क्रियाओ के आधार पर प्रयोज्य के बौद्धिक स्तर (Mental level) का पता लगाता है।

क्रियात्मक (Performance) एव वाचिक (Verbal) बुद्धि परीक्षणो का मूल्याकन—

इस ओर जब मनोवैज्ञानिको का ध्यान जाता है तब कुछ मनोवैज्ञानिक क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण को वाचिक बुद्धि-परीक्षण से उत्तम बतलाते है और कुछ का विचार ठीक इसके विपरीत है। पर क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण के महत्त्व को न्यून (Minimise) नही कर सकते। इसका विशेष कारण यह है कि इसका सफल प्रयोग छोटे बच्चो, गूँगे तथा अनपढ व्यक्तियो पर होता है।

ऊपर इन दोनो प्रकार के परीक्षणो के गुण एवं दोष पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होगा कि इन दोनो की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। अतः इन दोनो का उपयोग आवश्यकतानुसार करना ही उचित होगा।

बुद्धि-परीक्षण-फलों की व्याख्या

(Interpretation of Intelligence Test Result)

मानसिक आयु (Mental age or M A)—विभिन्न अवस्था स्तरों (Mental age levels) के लिए अलग-अलग परीक्षणो को निर्धारित किया गया है। अगर एक खास उम्र का बालक अपने अवस्था स्तर (Age-level) के लिए निर्धारित परीक्षणो को हल कर दे तो उसकी मानसिक उम्र वह अवस्थ-स्तर होगी जिसके लिए वह परीक्षण (Test) बना हो। उदाहरणार्थ—सात साल के बालक को सात साल की अवस्था स्तर के लिए बने परीक्षण को दिया जाता है। अगर वह बालक उसे भली-भाँति हल कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु सात साल की समझी जायगी। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बालक अपनी उम्र के लडको के लिए बने परीक्षणो मे सफल नही होते। ऐसे बालको को उससे निम्न अवस्था स्तरो के लिए बने परीक्षणो को हल करने को दिया जाता है और वे इसे हल करते पाए जाते है। यहाँ अगर वह सात साल का बालक छ साल के बालको के लिए बने परीक्षण को ही हल कर पाता है, अपने स्तर के बालको के लिए बने परीक्षण को नही, तो इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि बालक का वास्तविक उम्र (Chronological age) सात साल की है, उसकी मानसिक उम्र (Mental age) छ. ही साल है। इसी प्रकार कुछ बालक अपनी उम्र से बडे बच्चो के लिए बने परीक्षणो को हल करते पाये जाते है। ऐसे बच्चो की मानसिक उम्र उसकी वास्तविक उम्र से

ज्यादा होती है। इस तरह स्पष्ट है कि मानसिक उम्र या तो वास्तविक उम्र के बराबर या उससे ज्यादा या कम होती है।

बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient or I Q)—सन १९१२ ई० में स्टर्न (Stern) नामक मनोवैज्ञानिक ने सर्वप्रथम बुद्धि-लब्धि का प्रयोग किया। मानसिक आयु से प्रयोज्यों की योग्यता के स्तर का ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु बुद्धि-लब्धि एक व्यक्ति की बुद्धि का मिलान उस व्यक्ति की उम्र के अन्य व्यक्तियों से कर यह बतलाती है कि यह व्यक्ति अपनी उम्र के अन्य व्यक्तियों से अधिक बुद्धि का है या कम बुद्धि का। मनोवैज्ञानिक क्रूज (Cruze) ने बुद्धि-लब्धि की परिभाषा देते हुए स्पष्ट कहा है कि यह एक तरीका है जिसके द्वारा एक मनुष्य का देश के अन्य लोगों की तुलना में बुद्धि की दृष्टि से क्या स्थान है जाना जा सकता है।

बुद्धि-लब्धि निकालने का तरीका (Determination of I Q)—मानसिक उम्र या आयु को वास्तविक आयु या उम्र से भाग दें और भागफल को सौ (१००) से गुणा करें। गुणा करने से प्राप्त फल बुद्धि-लब्धि होगा। अर्थात —

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times १०$$

यदि किसी व्यक्ति की मानसिक आयु १५ साल तथा वास्तविक आयु १

साल हो तो उस व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि $= \left(\frac{१५}{१०} \times १०० \right) = १५०$ होगी।

सामान्य बुद्धि वाले व्यक्तियों की वास्तविक एवं मानसिक उम्र एक ही होती है। अतः उनकी बुद्धि लब्धि १०० होती है। उन्हें सामान्य बुद्धि (average) के लोग कहते हैं। जिस व्यक्ति को मानसिक उम्र वास्तविक उम्र से कम होगी अर्थात् मन्दबुद्धि (Dull) के लोगों की बुद्धि-लब्धि १०० से कम होती है तथा जिन व्यक्तियों की मानसिक उम्र वास्तविक उम्र से ज्यादा होती है अर्थात तीव्र बुद्धि (Bright) के व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि १०० से ज्यादा होती है।

बुद्धि-लब्धि स्थिरता (I Q Constancy) कभी-कभी यह प्रश्न सामने आता है कि बुद्धि-लब्धि सर्वदा एक-सी रहती है या इसमें घट-बढ़ होता रहता है। दूसरे शब्दों में क्या एक मन्द बुद्धि का व्यक्ति सवदा मन्द बुद्धि का तथा एक तीव्र बुद्धि का व्यक्ति सर्वदा तेज बुद्धि का ही रहता है? इस प्रश्न के उत्तर में

---

४ I Q is merely a device used to indicate the relationship of an individual in intelligence to the general population of the country

—Cruce PSYCHOLOGY FOR COLLEGE STUDENTS

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों का भिन्न-भिन्न मत है। कुछ मनोवैज्ञानिक तो इस विचार के है कि बुद्धि-लब्धि मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही होता। कभी-कभी जो परिवर्तन देखने को मिलते है, परीक्षण (Test) मे दोप होने के कारण या माप-विधियो के स्वरूप मे अन्तर के कारण या प्रयोज्य को परीक्षण मे रखे प्रश्नो तथा उनके उत्तरो की जानकारी के कारण होते है। सावेगिक कठिनाइयां भी 'बुद्धि-लब्धि' मे परिवर्तन लाती पायी जाती है। 'बुद्धि-लब्धि' मे 'क्रमिक-विकास' या 'ह्रास' नही होता। जो मनोवैज्ञानिक उपर्युक्त विचार के मनाने वाले हैं वे बुद्धि को व्यक्ति मे वशानुक्रम (Heredity) की देन समझते है तथा उनका मत है कि वातावरण (Environment) का बुद्धि पर कोई प्रभाव नही पड़ता। परन्तु यह विचार सम्यक् नही है।

बुद्धि-लब्धि मे परिवर्तन के कारण (Causes of change I. Q)—आजकल के अध्ययनो से स्पष्ट है कि बुद्धिलब्धि मे औसत तौर पर पाँच अंको (+ या −) तक परिवर्तन हो सकता है। यह परिवर्तन निम्नलिखित कारणो से होता पाया जाता है—

(क) शारीरिक अवस्था की गड़बड़ी प्राय बुद्धि-लब्धि मे परिवर्तन लाती पायी जाती है जैसे थायरायड पिंड (Thyroid Gland) के रसस्राव मे कमी होने के फलस्वरूप बुद्धि-लब्धि मे परिवतन होते है, वीलर (Wheeler) महोदय ने पाया है तथा (ख) असामान्य वातावरण (Unusual environmental condition)—शिक्षण के अवसरो (Educational opportunities) के अभाव के कारण बुद्धि लब्धि मे परिवर्तन होते पाया जाता है। समान द्धि के दो बालकों मे एक को नर्सरी स्कूल (Nursery school) मे शिक्षा मिली तथा दूसरे को उस प्रकार की सुव्यवस्थित शिक्षा (Well-planned education) का अभाव था। फलस्वरूप सुव्यवस्थित शिक्षा पाये बालक की बुद्धि-लब्धि मे विकास तथा जिसे अच्छी शिक्षा नही मिली उसकी बुद्धि-लब्धि मे ह्रास पाया गया। इस प्रकार के अध्ययनो से स्पष्ट है कि असामान्य वातावरण बुद्धि-लब्धि मे परिवर्तन लाता है।

उपर्युक्त विवेचनो से स्पष्ट है कि 'बुद्धि-लब्धि' वातावरण तथा वशानुक्रम दोनो से प्रभावित होती है। वातावरण के प्रभाव के कारण बुद्धि-लब्धि मे परिवर्तन आना स्वाभाविक है, पर यह परिवर्तन बहुधा पाँच अंको (+ या −) से अधिक नहीं होता यद्यपि वेलमैन (Wellman)[1] ने एक साल मे सात तथा दो साल में दस अंको (Points) तक का परिवर्तन सुव्यवस्थित शिक्षा के कारण बुद्धि-लब्धि मे पाया है।

बुद्धि परीक्षण या बुद्धि लब्धि निर्धारण की उपयोगिताएं (Utility of Intelligence testing or I Q Determination)—

यो तो बुद्धि-परीक्षण अर्थात् बुद्धि-लब्धि निर्धारण की कई एक उपयोगिताएं बतायी गयी है, परन्तु उनमे निम्नलिखित मुख्य है—

---

1 Wellman B L Iowa "Studies on the effects of Schooling."

१ बच्चों की बुद्धि-लब्धि प्राप्त कर मनुष्य इसका उपयोग उनके शिक्षण तथा निर्देशन में कर सकता है। बुद्धि-लब्धि जिस बालक की अधिक तीव्र बतलाती है यदि उसकी शिक्षा मन्द बुद्धि के बालक से अलग कर दी जाय तो वह इससे अधिक फायदा उठायेगा। इसी प्रकार मन्द बुद्धि के बालकों को तीव्र बुद्धि के बालकों से अलग कर उनकी भी शिक्षा अधिक सोच समझकर देना अधिक लाभदायक होगा।

२ व्यवसाय निर्देशन तथा चुनाव (Vocational Guidance and selection)—बुद्धि-लब्धि के आधार पर किये गये व्यावसायिक चुनाव तथा निर्देशन आज कल अत्यन्त सफल सिद्ध हो रहे हैं। व्यवसाय में व्यक्ति की सफलता उनकी बुद्धि पर ही निर्भर करती है। अतः व्यक्ति की बुद्धि की जाँच कर उसकी बुद्धि के अनुरूप ही कार्य देना उसकी सफलता के लिए आवश्यक है।

३ बुद्धि परीक्षण द्वारा बुद्धि-लब्धि प्राप्त कर बालकों या प्रौढ़ का वर्गीकरण सम्भव हो पाया है। इस वर्गीकरण का महत्व मानसिक न्यूनता के निदान (Diagnosis of mental deficiency) में स्पष्ट दीख पड़ता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी लोगों ने अधिक तीव्र सामान्य तथा मन्द बुद्धि के बालकों के लिए भिन्न भिन्न पाठ्य क्रम को बनाया है जिनके बनाने का एकमात्र आधार बुद्धि लब्धि ही है।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि बुद्धि-परीक्षण से प्राप्त बुद्धि-लब्धि का उपयोग बालकों की शिक्षा उनके निर्देशन प्रौढ़ों के व्यवसाय-निर्देशन तथा चुनाव इत्यादि के क्षेत्र में विशेष रूप से हो रहा है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इसके द्वारा व्यक्तियों को उनके वातावरण से सफल अभियोजन (Successful adjustment) करने में सहायता मिल पाती है। फलतः उनका जीवन सुखमय हो पाता है।

आठवाँ अध्याय

व्यक्तित्व

(Personality)

परिभाषा—व्यक्तित्व के शील, गुण एवं विशेषताएँ—भीरुता या सकोच, सचाई, ईमानदारी तथा हठ या प्रसक्ति।

व्यक्ति का वर्गीकरण—क्रेश्चमर का वर्गीकरण—साइक्लायड तथा सिज्वायड, शेल्डन का वर्गीकरण—एण्डोमॉर्फिक, मेसोमॉर्फिक तथा ऐक्टोमॉर्फिक और युग का वर्गीकरण—बहिर्मुखी—अन्तर्मुखी एव प्रभुत्व अधीनता।

व्यक्तित्व के निर्धारक – वंश-परम्परागत एव वातावरण—

वंश परम्परागत—शरीर-रसायन, शारीरिक बनावट और स्नायु-मण्डल।

वातावरण—सामाजिक तथा सांस्कृतिक – सामाजिक वातावरण—जीवन के प्रारम्भिक वर्षों का महत्त्व, घर, एकलौता बच्चा और जन्मक्रम का प्रभाव, पड़ोस, स्कूल, समुदाय इत्यादि का प्रभाव तथा संस्कृति का प्रभाव।

व्यक्तित्व-मापन विधियाँ—व्यक्ति-इतिहास, 'इण्टरव्यू' या साक्षात्कार प्रश्नावलियाँ, श्रेणी-मूल्यांकन, मनोविश्लेषणात्मक परीक्षण, स्वप्न-विश्लेपण एव नियन्त्रित और अनियन्त्रित साहचर्य-विधि, परिस्थिति-परीक्षण तथा आरोपणात्मक विधियाँ या 'प्रोजेक्टिव टेस्टस'—प्रधानत. रोर्शाक का 'मसिचिह्न परीक्षण' तथा 'मर्रे का कथा-संस्कारण-परीक्षण'।

परिभाषा

(Definition)

'परसॉनेलिटी' (Personality) शब्द की उत्पत्ति "लैटिन' (Latin) शब्द परसॉना (Persona) से हुई है। 'परसॉना' (Persona) का अर्थ **बनावटी रूप** (False appearance) होता है। शाब्दिक अर्थ को देखते हुए जिन लोगो ने व्यक्तित्व को परिभाषित करने की चेष्टा की है उनलोगो ने मनुष्य के बाह्य रूप-रेखा, वेशभूषा आदि (Outward superficial appearance) को ही व्यक्तित्व की

संज्ञा दी है। इस दृष्टिकोण को साधारणदृष्टिकोण (Surface approach) कहते हैं। उदाहरणार्थ एक सैनिक जो देखने में सुन्दर तथा जिसकी पोशाक भड़कीली होती है उसके व्यक्तित्व को लोग अच्छा कहते हैं। पर यदि वही व्यक्ति गन्दे कपड़े में आता है तो उसके व्यक्तित्व को बुरा कहते है। इस दृष्टिकोण के सामने वाले वाटसन (Watson) और शरमैन (Sherman) आदि हैं।[1]

एक दूसरा दृष्टिकोण जिसे तात्विक दृष्टिकोण (Substance approach) कहते हैं वह मनुष्य के स्वाभाविक स्थायी गुणों (Inner essential nature) की ही व्याख्या व्यक्तित्व के अन्दर करता है। अतः महात्मा गाँधी के सुन्दर एवं भव्य न होते हुए भी उनका एक अपना व्यक्तित्व था। इस दृष्टिकोण के मानने वाले वारेन एवं कारमाइकल (Warren and Charmichael) थे जिन्होंने व्यक्तित्व को मनुष्य का मानसिक संगठन कहा है। इस संगठन के अन्दर उसके अनुसार बुद्धि (Intellect) आतुरस्वभाव (Temperament) कौशल (Skill), नैतिकता (Morality) इत्यादि विचार का समावेश है।[2] इस प्रकार मनोवैज्ञानिकों ने या तो मनुष्य के बाह्य रूप या वास्तविक एवं स्वाभाविक स्थायी गुणों के आधार पर व्यक्तित्व की परिभाषा दी है। इन दोनों तरह से दी गई परिभाषाओं में व्यक्ति को समझने की चेष्टा की गयी है।

लोगों ने व्यक्तित्व को समझने में भूल की। मनोविज्ञान के अन्दर व्यक्ति को समझने के लिए दोनों दृष्टिकोणों को शामिल करना आवश्यक है। अर्थात् व्यक्ति के अन्दर मनुष्य के बाहरी रंग वेश भूषा, चाल ढाल इत्यादि के साथ-साथ उसके अन्दर के गुण स्वभाव विचार इत्यादि सभी को सम्मिलित करते हैं। अस्तु, व्यक्तित्व बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के स्वाभाविक स्थायी गुणों का समन्वय कहा जा सकता है। जब कि हम व्यक्ति को एक बाह्य एवं आन्तरिक गुणों के समन्वय के रूप में प्रस्तुत करते हैं तो इससे हमारा तात्पर्य जीवधारी प्राणी (Biological organism) तथा सामाजिक एवं भौतिक जगत् (Social and Physical world) के बीच संघर्ष से उत्पन्न व्यक्तित्व (individuality) से होता है। अर्थात् प्राणी समाज एवं भौतिक जगत में अपने को अभियोजित

1 Personality is the sum of activities that can be observed over a long enough time to give reliable information. In other words, personality is but the end product of our habit system —Watson

Personality is the characteristic behaviour of an individual —Sherman

2 "Personality is the entire mental organization of a human being at any stage of his development It embraces every phase of human character intellect temperament skill morality and every attitude that has been built up in course of one's life

—Warren & Charmichael

करने की चेष्टा करता है। प्राणी अभियोजित करने की चेष्टा मे वातावरण के प्रभावो से आ टकराता है। वातावरण का प्रभाव प्राणियो पर पडता है और प्राणी भी अपनी क्रियाओ द्वारा वातावरण को प्रभावित करना चाहता है। एक-दूसरे को प्रभावित करने की क्रियाओ के आपसी घात-प्रतिघात (Mutual interaction) के फलस्वरूप प्राणी मे 'विशिष्ट गुणो' का प्रादुर्भाव होता है जो उसके व्यक्तित्व के विकास मे सहयोग देते है। कुछ लोग व्यक्तित्व को इन विशिष्ट गुणो का योग (Sum total) मानते हैं। पर दूसरे मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व को मनोदैहिक (Psycho-physical) गुणो का गत्यात्मक सगठन (Dynamic organization) माना है। सचमुच यह विचार मान्य है। ऐसे गत्यात्मक सगठन को अपनी विशिष्टता (Distinctiveness) होती है। इसके फलस्वरूप एक व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व से भिन्न पाया जाता है। हरेक व्यक्ति अपूर्व एवं अपने ढग का अकेला (Unique) होता है। ऑलपोर्ट (Allport) ने इस विचार की पुष्टि अपनी परिभाषा द्वारा की है। उन्होने कहा है कि व्यक्ति के अन्तर्गत उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक सगठन है जिन पर उसके वातावरण के प्रति होने वाले विशिष्ट अभियोजन निर्भर करते हैं।[1] व्यक्ति की अपूर्वता (Uniqueness) एव विशिष्टता (Distinctiveness) के कारण ही यह देखने को मिला है कि एक विद्यार्थी परीक्षा मे उत्तीर्ण न होने पर फिर परिश्रम कर दूसरी परीक्षा मे उत्तीर्ण होने का प्रयास करता है, परन्तु दूसरा विद्यार्थी, परीक्षा मे उत्तीर्ण न होने पर आत्महत्या कर लेता है। इस तरह स्पष्ट है कि एक ही परिस्थिति मे भिन्न-भिन्न व्यक्ति विभिन्न तरह के व्यवहार प्रकट करते है। इस अपूर्वता के कारण ही एक व्यक्ति से दूसरा शीघ्र ही अलग (Distinguish) कर लिया जाता है।

व्यक्तित्व के शील-गुण
(Traits of Personality)

मनोवैज्ञानिक मनुष्यो के व्यवहारो का विश्लेषण (Analysis) करता है। इस विश्लेषण का एक मात्र उद्देश्य 'व्यवहार' क्यो और कैसे होते है, जानना है। इस विश्लेषण के फलस्वरूप दो विचारो की अभिव्यक्ति हुई। एक विचारक व्यक्तित्व-गुण पर विश्वास करते है, पर दूसरी परिस्थिति पर ही व्यवहारो को आश्रित बतलाते है। पहले विचारक के अनुसार मनुष्यो के अन्दर ऐसे शील-गुण है जो उन्हे वातावरण मे खास ढग से व्यवहार करने को प्रेरित करते है। अत परिस्थितियो मे भिन्नता होने पर भी व्यवहार मे भिन्नता नही आती। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति अगर परिस्थिति 'क' मे ईमानदार है तो वह दूसरी परिस्थिति 'ख' मे भी ईमानदारी

१ "Personality is the dynamic organization within the individual of these Psycho physical systems that determine the unique adjustment to his environment"—G W Allport

बरतेगा। इस प्रकार उस व्यक्ति में ईमानदारी का गुण है जो उसे हर परिस्थिति में ईमानदार रखेगा।

कुछ मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार ये विशेषताएँ सामान्य ढग (General nature) की होने के कारण अपेक्षाकृत स्थायी तथा क्रमबद्ध होती है। इन गुणों के स्थायी होने के कारण मनुष्य के व्यक्तित्व में भी स्थिरता (Stability) एव क्रमबद्धता (Consistency) आ जाती है। व्यक्तित्व के प्रमुख गुण की चर्चा मनोवैज्ञानिकों ने की है उनमे से कुछ का उल्लेख यहाँ करना आवश्यक है।

१ भीरुता या सकोच (Shyness)—जिस व्यक्ति मे भीरुता या सकोच की विशेषता पायी जाती है वह व्यक्ति प्राय असामाजिक होता है। उसमे अधिक लोगों से सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता का अभाव होता है। कुछ ही मित्रों के बीच वह रहता है। सामाजिक सस्थाओ एव सभाओ का सदस्य बनने मे वह हिचकिचाता है। ऐसे लोग अगर किसी सभा या सस्था के सदस्य हो भी गये तो वे उस सभा का नेतृत्व नही कर सकते। तात्पर्य यह है कि ऐसे व्यक्ति जिनमें भीरुता का गुण पाया जाता है सकोचशील लजालु एव भीरु होते है। अर्थात् समाज से अलग रहने की प्रवृत्ति उनमे अत्यधिक रहती है।

२ खिन्नता (Depression) जिस व्यक्ति में खिन्नता का गुण पाया जाता है उस व्यक्ति का जीवन चिन्ताग्रस्त तथा दुखमय होता है। वह सदा भविष्य मे आने वाले दु:खो पर विचार करके ही अत्यधिक हतोत्साह तथा चिन्ताग्रस्त हो जाता है। यदि उसे जीवन मे किसी क्षण प्रसन्नता का अनुभव होता भी है तो वह शीघ्र ही विलीन हो जाता है। इस प्रकार उसके जीवन में खिन्नता की ही प्रधानता रहती है।

३ सचाई (Truthfulness)—इस विशेषता से युक्त व्यक्ति सदा सच बोलने वाला होता है। उसे अगर अपने प्राण का भी बलिदान करना पड़े तो भी वह अपने सत्यवचन व सत्यमार्ग को नही छोडेगा।

४ ईमानदारी (Honesty)—ऐसे व्यक्ति जिनके व्यक्तित्व मे ईमानदारी का शील गुण पाया जाता है, सर्वदा ईमानदार होते है। परिस्थिति कितनी भी गंभीर हो पर ईमानदारी छोड कर बेईमानी की ओर कभी नहीं झुकते। न्याय के क्षेत्र मे ऐसे ही व्यक्ति दूध का दूध और पानी का पानी करने वाले होते है।

५ हठ या प्रसक्ति (Persistence)– जिस व्यक्ति मे हठ का गुण वर्त्तमान रहता है वह व्यक्ति कठिनाइयो एव बाधाओ के बीच भी तात्कालिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करता रहता है।

व्यक्तित्व की उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य विशेषताओ का भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन हुआ है। पर उसका विवेचन यहाँ अपेक्षित नही है। व्यक्ति की उन विशेषताओ के अन्दर सवेगात्मक अस्थिरता (Emotional instability) चिन्तनशीलता (Reflectiveness) बुद्धि वायु-स्वभाव इत्यादि आते है।

अब तक हमलोगो ने मनोवैज्ञानिकों को व्यक्तित्व गुण के आधार पर व्यक्

हारो का विश्लेषण करने की चेष्टा को देखा। व्यवहार मे उनके अनुसार व्यक्तित्व गुण की ही अभिव्यक्ति होती है, अत मनुष्यो के व्यवहार मे 'समता एव क्रमबद्धता' देखने को मिलती है। जिन लोगो ने इस मत का खण्डन किया है उनके अनुसार व्यवहार मे समता का आधार व्यक्तित्व-गुण नही वरन् विभिन्न परिस्थितियो के बीच वर्तमान आपसी समानता है। अत एक व्यवहार दूसरी परिस्थिति के व्यवहार से परिस्थितियो मे समानता रहने के कारण मिलता है। जितनी ही अधिक दो परिस्थितियो मे समानता होगी, उतनी ही ज्यादा सम्भावना है कि मनुष्य के व्यवहार इन दोनो परिस्थितियो मे समान होगे। इस प्रकार परिस्थिति 'क' मे ईमानदारी बरतने वाला व्यक्ति उसी हालत मे परिस्थिति 'ख' मे ईमानदार होगा जब कि परिस्थिति 'क' और 'ख' आपस मे समान होगे। इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य के होने वाले व्यवहारो के पीछे उनके व्यक्तित्व-गुण का हाथ नही रहता, बल्कि परिस्थिति ही उन व्यवहारो का कारण होती है। व्यक्तित्व अस्थायी (Unstable) तथा क्रमहीन (Inconsistent) होता है। कारण, परिस्थितियो मे विभिन्नता आने के फलस्वरूप व्यवहार बदलते रहते है। 'मे' (May) 'मालरी (Maller) एवं 'हार्टसोन' (Hartshone) ने प्रयोग द्वारा प्रमाणित किया है कि जो व्यक्ति कुछ परिस्थितियो मे ईमानदारी का ही व्यवहार करते है वे ही व्यक्ति जीवन की सभी परिस्थितियो मे ईमानदारी का ही व्यवहार करें, कोई आवश्यक नही है। यह एक साधारण अनुभव है कि एक दफ्तर मे काम करने वाला व्यक्ति जो कभी भी घूस लेता नही पाया गया है या कोई बेईमानी का काम नही किया है' वह किसी परिस्थिति-विशेष के आगमन पर जैसे घर मे बच्चे की भयकर रुग्नावस्था, के कारण पैसे की आवश्यकता का होना या लड़की की शादी के लिए रुपये की आवश्यकता का होना आदि समय मे बेईमानी का व्यवहार करता पाया जाता है। इस प्रकार व्यक्ति की कुछ विशेषताएँ अस्थायी, परिवर्तनशील तथा क्रमहीन हो सकती है।

हमलोगो ने व्यक्तित्व-गुण पर आस्था रख कर व्यवहारो को समझने वाले तथा व्यक्तित्व गुण पर विश्वास नही रखने वाले दोनो विचारको के विचारो को देखा, पर प्रश्न है कि व्यवहारो की व्याख्या के लिए कौन-सा विचार उपयुक्त है, मनोवैज्ञानिको का प्रयास इन दोनो मतो मे समन्वय स्थापित करना है। जो इन दोनों मतो मे समन्वय स्थापित करते है उनके मतानुसार व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ 'सामान्य ढंग' की हैं तथा कुछ विशिष्ट ढग की। अत. व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ 'स्थायी एव क्रमबद्ध' हो सकती है तथा कुछ 'अस्थायी या परिवर्तनशील तथा क्रमहीन' हो सकती हैं। व्यक्ति मे अधिकाश परिस्थितियो मे विलक्षण रूप से होने वाले समान व्यवहारो को व्यक्तित्व-गुण की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

व्यक्तित्व का वर्गीकरण
(Types of personality)

मनोवैज्ञानिको ने समझाने की सहुलियत के लिए व्यक्तित्व का ,वर्गीकरण

किया है। भिन्न भिन्न लोगों ने अपने ढंग के व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है। कुछ ने तो 'शारीरिक बनावट' को ही वर्गीकरण का आधार माना है। इस सम्बन्ध में क्रेश्मर (Kreschmer) द्वारा किए गए व्यक्तित्व का वर्गीकरण उल्लेखनीय है। इन्होने मनुष्यों को दो वर्गों में बाँटा है—साइक्लायड (Cycloid) और सिज़ायाड (Schizoid)।

शेल्डन (Sheldon) ने शारीरिक बनावट को वर्गीकरण का आधार मानते हुए व्यक्तित्व को तीन वर्गों मे बाँटा—एन्डोमार्फिक (Endomorphic) मेसोमॉर्फिक (Mesomorphic) और एक्टोमॉर्फिक (Ectomorphic)।

युंग (Jung) महोदय ने भी व्यक्तित्व को दो वर्गों में बाँटा है—(क) एक को उन्होंने बहिर्मुखी व्यक्तित्व (Extroverted personality) तथा (ख) दूसरे को अन्तर्मुखी व्यक्तित्व (Introverted personality) कहा है। एक दूसरा भी वर्गीकरण है जिसके अनुसार व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिकों ने प्रभुत्व अधीनता (Ascendence-submission) के वर्गों मे रखा है। इस प्रकार अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने मत से व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। यहाँ युंग (Jung) महोदय के वर्गीकरण बहिर्मुखी अन्तर्मुखी व्यक्तित्व' तथा दूसरे वर्गीकरण प्रभुत्व अधीनता तक ही अपने को सीमित रखेंगे।

(क) अन्तर्मुखता बहिर्मुखता (Introversion Extroversion)—युंग (Jung) महोदय के विचारानुसार मनुष्य का वातावरण के साथ जो सम्बन्ध है उसे समझने का एकमात्र जरिया मनुष्य (Subject) अथवा बाहरी जगत (External world or object) ही है। अनुभवो के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनकी अभिरुचि (Interest) मुख्यतः वातावरण के पहलुओं में रहती है। ऐसे व्यक्ति शारीरिक इच्छाओं या इच्छाओं की अवहेलना करते पाये जाते हैं जिनसे उनको फायदा पहुँचने वाला हो। वे संसार में दूसरों के लिए जीते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों की गणना युंग ने बहिर्मुखी व्यक्तित्व के अन्तर्गत किया है। संक्षेप मे बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति वातावरण में उपस्थित विषयों में अपनी शारीरिक इच्छाओं के अपेक्षाकृत विशेष अभिरुचि रखते हैं।

एक दूसरे प्रकार के भी व्यक्ति होते हैजो सांसारिक पदार्थों तथा वातावरण की उत्तेजनाओ से उदासीन रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए कल्पना का अपना एक संसार होता है। वे अपने इस काल्पनिक संसार मे विचरते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति प्राय कभी भी अपने सिवा दूसरों के विषय में नहीं सोचते। उनके इस सोचने मे भी कुछ-न कुछ अनुभव छिपा है। अनुभव प्राप्त करने की इस विधि को युंग ने अन्तर्मुखता तथा ऐसे अनुभव प्राप्त करने वाले व्यक्ति को अन्तर्मुखी व्यक्तित्व (Introverted personality) की संज्ञा दी है।

उपर्युक्त दो प्रकार के व्यक्तियों को अपना-अपना विशेष गुण है, जो अधलिखित है—

बहिर्मुखी (Extrovert)	अन्तर्मुखी (Introvert)
१ अपने को अभियोजन करने के समय ये अपनी इच्छाओ की अवहेलना करते है। बाह्य आवश्यकता का विशेष ख्याल रखते हैं।[1]	१ वातावरण के वस्तुओ की प्रधानता अभियोजन मे ये नही देते। अपनी इच्छाओ को प्रधान मानते है।
२. समीप के वातावरण मे इनका सफल अभियोजन देखा जाता है। इसका एकमात्र कारण है कि ये सासारिक पदार्थो मे विशेष दिलचस्पी रखते हैं।	२ सासारिक पदार्थ मे दिलचस्पी का अभाव तथा अपने (Self) मे ही विशेष दिलचस्पी का होना। अत ऐसे व्यक्ति अकेला समाज से दूर बैठे चिन्तन विशेष मे आनन्द लेते हैं।
३ ये अन्त प्रेरणा की अवहेलना करते है। साथ-ही-साथ इनमे गलत सामाजिक विषयो को बिना किसी हिचकिचाहट के अपना लेने की प्रवृत्ति भी होती है।	३ भीतर की प्रेरणाएँ कार्यों को भला या बुरा कराने मे सहयोगी होती हैं। समाज के नियमो का इनके लिए कोई महत्त्व नही होता।
४ मन, शरीर आदि को विशेष कष्ट देते है।	४ शारीरिक सुख की ओर विशेष ध्यान देना। समाज के लोगो का ये तिरस्कार करते तथा उसके विचारो को कोई महत्त्व नही देते।
५. समाज मे, विशेष सक्रिय (Active) होते है। अत नेता व्यापारी आदि होने की क्षमता इनमे विशेष होती है।	५. अपने कल्पना-ससार मे ही विशेष रहते है। अत ऐसे व्यक्ति सफल कवि, दार्शनिक हो सकते हैं।
६ दूसरे के विचारो को ग्रहण करने के लिए सर्वदा तत्पर होते हैं।	६. दूसरो के विचारो की अवहेलना तथा अपने विचार मे परिवर्तन लाने के लिए कभी भी तैयार नही रहते।
७ ऐसे व्यक्तियो को विशेष कर हिस्टीरिया (Hysteria) नामक मानसिक रोग होता है।	७ ऐसे व्यक्तियो मे ओबसेसन और कम्पल्शन (Obsession and Compulsion states) की अवस्था होती है।
८ बहिर्मुखी व्यक्तित्व के व्यक्ति चूँकि भावुक कम होते है अत अपनी आलोचनाओ अथवा विरोधो का सामना अपेक्षाकृत अधिक सन्तुलित ढग से करते है।	८ अन्तर्मुखी व्यक्ति वाले व्यक्ति चूँकि अधिक भावुक होते है, वे अपने विषयो मे की गयी छोटी-छोटी आलोचनाएँ अथवा अफवाहो को सुन कर अपेक्षाकृत कही अधिक रूप मे अपना सवेगात्मक सन्तुलन खो बैठते हैं।

पाठको को यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि समाज मे बहुत ही कम व्यक्ति पूर्ण रूप मे बहिर्मुखी (Extrovert) अथवा अन्तर्मुखी (Introvert) होते हैं।

१. "This type lives according to external necessity"

इन दोनों ढंग के लोग विरले (Extreme cases) है । अधिकतर लोग एक परिस्थिति में बहिर्मुखी तथा दूसरी परिस्थिति में अन्तर्मुखी देखे जाते है । एक ही व्यक्ति एक अवसर पर समाज सुधार के लिए सभा करते तथा व्याख्यान आदि देते नजर आता है तो वही व्यक्ति दूसरे अवसर पर एकान्त मे बैठकर आत्मचिन्तन मे लीन देखा जाता है । अस्तु ऐसे व्यक्ति को मनोवैज्ञानिको ने उभयमुखी (Ambivert) की संज्ञा दी है ।

(ख) प्रभुत्व अधीनता (Ascendance Submission)—कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जिनमें प्रभुत्व की प्रवृत्ति की प्रधानता पायी जाती है परन्तु दूसरी ओर कुछ व्यक्तियों में अधीनता की प्रवृत्ति विशेषकर पायी जाती है । पहले प्रकार के व्यक्ति वे हैं जो सदा सक्रिय रहते हैं और दूसरे के ऊपर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं । ऐसे लोगो को सामाजिक मनोवैज्ञानिकों (Social psychologists) ने नेता (Leader) की संज्ञा दी है । परन्तु दूसरी तरह के अर्थात् अधीनता की प्रवृत्ति वाले व्यक्तित्व के लोग वे है जो सदा शान्त रहते हैं । वे आसानी से दूसरो की बात मान लेते हैं तथा उनका प्रभुत्व स्वीकार कर लेते हैं । इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों को सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने अनुयायी (Follower) कह कर पुकारा है ।

व्यक्तित्व के निर्धारक

(Determinants of Personality)

मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य मनुष्यो के व्यवहार एवं अनुभवों का विश्लेषण करना है । मनोवैज्ञानिक यह जानने की कोशिश करता है कि मनुष्य क्यों (Why) और कैसे (How) व्यवहार (Behave) करता है । प्रत्येक व्यवहार एवं अनुभव का कुछ न कुछ कारण होता है । इन कारणों को दो श्रेणियों में विभक्त कर सकने का प्रयास अधिक उचित होगा । मनुष्य के व्यवहारों के कुछ निर्धारक तो वे है जो मनुष्य में जन्मकाल से ही वर्तमान रहते हैं । ऐसे निर्धारक वंश परम्परागत (Hereditary Factors) निर्धारक के अन्दर रख जाते हैं । व्यक्तित्व के दूसरे निर्धारक वे है जिन्हें मनुष्य अपने ही वातावरण मे उपस्थित पाता है । ऐसे व्यक्तित्व के निर्धारक को वातावरण सम्बन्धी गुण (Environment Factor) की संज्ञा दी जाती है । वातावरण-सम्बन्धी गुण भी दो तरह के होते हैं—एक वह जिसे मनुष्य समाज (Society) की सहायता के कारण उपलब्ध करता है और दूसरा वह जिसे संस्कृति (Culture) के नाम से पुकारते हैं—

१ वंश परम्परा

(Heredity)

वंश-परम्परागत गुणो के अन्तर्गत शरीर रासायन शारीरिक बनावट एवं स्नायु मण्डल (Nervous system) का चर्चा व्यक्तित्व पर उसके प्रभावों को स्पष्ट

करने हुए की जायगी। वे नीचे की तालिका से अधिक स्पष्ट किये जा सकते है—

वंश-परम्परागत गुण (Hereditary Quality)

(क) शरीर रसायन (Body chemistry)	(ख) शारीरिक बनावट और धातु-स्वभाव (Physique and Temperament)	(ग) स्नायुमण्डल (Nervous system)

(क) शरीर-रसायन (Body chemistry) और अन्त स्रावी पिण्ड (Endocrine glands) —

लहू मे रसस्राव (Harmones) के बहाव का होना शारीरिक विकास तथा उसके बलिष्ठ होने के लिए आवश्यक है। अन्त स्रावी पिण्डो की चर्चा पहले भाग के चौथे अध्याय मे विशेष रूप से की जा चुकी है।

अन्त. स्रावी पिण्डों का रस-स्राव एक समान नहीं रहता। रस स्राव मे भिन्नता के फलस्वरूप व्यक्तित्व पर इनका असर भी भिन्न होता है; उदाहरणार्थ— कण्ठ की गुठली के ऊपर दोनो ओर पाये जाने वाले पिण्ड, जिन्हें थायराइड पिण्डो (Thyroid gland) की संज्ञा दी जाती है, इनके अधिक क्रियाशील (Over or hyper functioning) होने के फलस्वरूप मांसपेशियां का तनाव बढ जाता है और व्यक्ति चिन्तित, बेचैन तथा चिडचिडा नजर आता है। इसके विपरीत, मनुष्यो मे इस पिंड के शिथिल पडने के कारण (Under or hypo functioning) मनुष्य सुस्त तथा किसी काम को करने से अत्यधिक जल्द ही थक जाता है। दूसरी ओर पीट्यूटरी ग्लैंड (Pituitary gland) के कार्यों की शिथिलता के फलस्वरूप मनुष्य की हड्डियो की बनावट ढीली पड जाती है। साथ ही साथ, मांसपेशियो मे भी कमजोरी आ जाती है जिससे व्यक्ति डरपोक हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पिण्डो के कार्यो मे किसी भी प्रकार के परिवर्तन के फलस्वरूप शरीर-रसायन मे परिवर्तन होता है, जो मनुष्य के व्यवहारो को भी किसी न किसी रूप मे प्रभावित करता है। शरीर-रसायन के इस प्रभाव को वैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा स्पष्ट करने का भी प्रयत्न किया गया है। आक्सीजन (oxygen) की मात्रा मे कमी लाने पर शरीर-रसायन मे परिवर्तन होता है। हल्डन (Halden) ने मनुष्य मे 'आक्सीजन' की मात्रा को कम करने के बाद पाया कि मनुष्यो मे आत्मसमालोचना (Self-Criticism) तथा आलोचना शक्ति (Critical ability) का विनाश हो जाता है। इस प्रयोग मे जिन लोगों मे आक्सीजन की कमी हो गयी थी उन लोगो के सम्मुख आइना रखने पर भी उन्होने आइने मे अपनी तस्वीर देखने के लिए आइने के पिछले भाग को ही अपने सामने रखा। इसके अतिरिक्त मानस द्वन्द्व (Mental Confusion) अचानक प्रकटित संवेगात्मक व्यवहार (Emotional Out-burst) आदि परिवर्तन भी देखने को मिले।

व्यक्तित्व, लहू मे वर्तमान चीनी की मात्रा मे (Blood Sugar level)

निर्भर करता है। खून में चीनी की मात्रा मे अधिक कमी-बेशी होने के फलस्वरूप व्यक्ति में निम्नलिखित परिवर्तन पाये गये है (क) चेतना विहीनता (Loss of Consciousn.ss) (ख) वाक्-असन्तुलन (Speech disturbance) (ग) स्मृति विनाश (Loss of Memory) तथा (घ) संवेगात्मक अस्थिरता (Emotional instability) इत्यादि।

जिन पिण्डों की चर्चा ऊपर की गयी है उनके अतिरिक्त निम्नलिखित पिण्ड शरीर में पाये जाते है जिनका प्रभाव व्यक्ति के प्रभावों पर पड़ता है—

पाराथायराय"—इसके रसस्राव मे कमी होने से फलस्वरूप व्यक्ति की एकाग्रता जाती रहती है। वह न तो पढ़ने मे एकाग्रता कर सकता है और न किसी चीज को एकाग्रचित देख सकता है। इसके विपरीत अगर इस पिण्ड का बहाव अत्यधिक हो जाता है तो व्यक्ति बेचैन एवं अत्यधिक कामशील हो जाता है। अधिक दिनों तक अगर इस पिण्ड का स्राव अधिक ही रह जाय तो व्यक्ति धीरे-धीरे अपना वजन भी खो बैठता है। शारीरिक वजन की कमी व्यक्ति को चिन्तित बना देती है।

२ एड्रीनल—एड्रीनल बहाव (Adrenal Secretion) व्यक्ति को कठिनाइयों एवं संवेगात्मक परिस्थितियों का सामना करने योग्य बनाता है।

३ पीनेल—इसके स्राव का प्रभाव बाल्यकाल मे अधिक परिलक्षित रहता है। बच्चों मे यौन भाव का विकास इसी पिण्ड के रसस्राव के फलस्वरूप नहीं होता है। अत मनोवैज्ञानिकों का मत है कि यह पिण्ड अपने स्राव द्वारा बच्चों मे यौन भाव के विकास के न होने मे सहायक है।

४ थाइमस—इनकी क्रियाओं का अभी ठीक-ठीक पता नहीं लगा है अत इनकी क्रियाओं को पता लगाने के लिए इस क्षेत्र में अनुसन्धान की आवश्यकता है।

५ पंक्रियस—इसका स्राव मांसपेशियों को चीनी की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। मांसपेशियों मे अगर चीनी की मात्रा मे कमी हो जाती है तो यह अपने स्राव द्वारा उसकी पूर्ति करता है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि आवश्यकता से अधिक पैंक्रियस के स्राव के फलस्वरूप व्यक्ति उदास एवं चिन्तित हो जाता है।

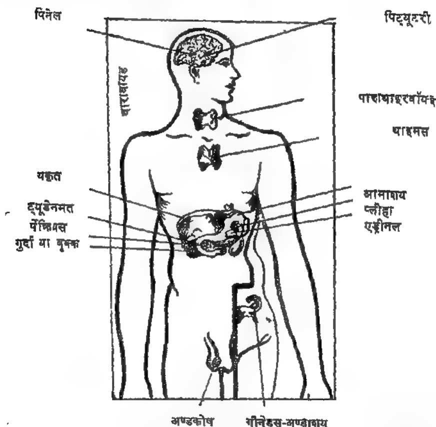
गोनडस —मर्दों मे इसका बहाव (Secretion) मूँछ आवाज आदि के विकास मे सहायक होता है।

औरतों मे इसके बहाव पर ही नारी सुलभ सभी विशेषताएं निर्भर हैं।

व्यवहार और पिण्डों के बीच के सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से व्यक्त करना कठिन है। इसका एकमात्र कारण है कि व्यवहार और पिण्ड एक-दूसरे को सदा प्रभावित करते हैं जैसे—गुस्सा होने पर एड्रीनल का बहाव आरम्भ हो जाता है। साथ ही-साथ, व्यक्ति में एड्रीनल का स्राव वर्तमान रहता है उस समय भी वह क्रोधित

दीखता है। इस प्रकार गुस्सा होने का व्यवहार पिण्ड के कार्यशील होने पर स्वयं उत्पन्न भी होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यवहार पिण्डो को प्रभावित करते हैं तथा ये स्वयं भी पिण्डो द्वारा प्रभावित होते हैं।

व्यक्ति के शरीर मे पाये जाने वाले अन्त स्रावी पिण्डो को नीचे के चित्र न० ३२ मे अत्यधिक स्पष्ट रूप से दिखलाया गया है।



[चित्र न० ३२— अन्त स्रावी पिण्डो (Endocrine Glands) का मानव-शरीर मे स्थान दिखाने वाला चित्र]

(ख) शारीरिक बनावट एव धातु स्वभाव (Physique and Temperament)।

शारीरिक बनावट जिसमे लम्बाई (Height), स्वास्थ्य (Health), वजन (Weight) तथा भिन्न-भिन्न अगो इत्यादि की अनुपात-प्रधान विशेषताए शामिल हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह प्राय:

देखा गया है कि हम सुन्दर व्यक्तियों की ओर आकर्षित होते हैं तथा कुरूप व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि शारीरिक बनावट में भिन्नता होने के कारण उसके प्रति मनुष्यों द्वारा की गयी प्रतिक्रियाओं में विभिन्नता पायी जाती है। परन्तु यहाँ पर स्मरण रखने योग्य एक बात यह है कि शारीरिक बनावट स्वयं में (In itself) व्यक्तित्व निर्धारण में महत्त्व नहीं रखती।

यहाँ इन शारीरिक बनावटों के प्रति व्यक्तियों द्वारा की गयी प्रतिक्रियाओं पर ही व्यक्तित्व का निर्माण निर्भर करता है जैसे— यदि कोई व्यक्ति नाटा या काना है इससे उसके व्यक्तित्व के निर्माण में कोई बुरा असर नहीं पड़ेगा यदि समाज के अन्य लोग उसे बुरी दृष्टि से नहीं देखें। परन्तु, यदि लोग उसे नाटा एवं काना कहकर चिढ़ाएं तो निस्सन्देह उसमें 'हीनता' का भाव जागरूक हो जायगा। अर्थात् वह अपने में एक प्रकार की कमी का अनुभव करने लगेगा। फलतः वह इस कमी की क्षतिपूर्ति करने के लिए कुछ क्षतिपूर्त्यात्मक व्यवहार (Compensatory behaviour) करेगा जो समाज के लिए बुरा हो सकता है या भला जैसे— अपनी इस कमी की पूर्ति कोई एक डाकू बनके कर सकता है या एक बड़ा लेखक अथवा वैज्ञानिक।

अस्तु हम संक्षेप में कह सकते हैं कि शारीरिक बनावट स्वयं व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण नहीं वरन् शारीरिक बनावट के प्रति दूसरों द्वारा की गयी प्रतिक्रियाएँ ही व्यक्तित्व निर्धारण में महत्त्वपूर्ण (Imprortant) है ("Physique does not matter in the development of personality but the matter of importance is how people react to it")। एक प्रयोग (Experiment), पंगु (Crippled) एवं सामान्य (Normal) लड़कियों पर किया गया है। लड़कियों की संवेगात्मक स्थिरता (Emotional stability) का टेस्ट (Test) किया गया। पंगु लड़कियों को अत्यधिक क्षुब्ध दृष्टि से देखी जाती थी उनमें संवेगात्मक अस्थिरता (Emotional instability) उन लड़कियों के बनिस्बत अधिक थी जिनके अंगों में किसी प्रकार का दोष नहीं था। अस्तु, शारीरिक बनावटों का प्रभाव व्यक्तित्व निर्माण पर अप्रत्यक्ष रूप से (Indirectly) पड़ता है।

आजकल शारीरिक बनावट तथा धातुस्वभाव (*Physique and Temperament*) के प्रारम्भिक सम्बन्ध का भी अध्ययन शारीरिक बनावट के विश्लेषण (Constitutional Analysis) द्वारा किया गया है। इस प्रयत्न की ही देन है कि मनोवैज्ञानिकों ने एक खास तरह के धातु स्वभाव का सम्बन्ध खास तरह की शारीरिक बनावट के साथ स्थापित कर दिया है। क्रेश्मर शेल्डन आदि मनोवैज्ञानिकों ने शारीरिक बनावट के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है। क्रेश्मर (Kretschmer) के अनुसार व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं— एक साइक्लोयड (Cycloid) और दूसरा सिज्वायड (Schizoid)। पहले वर्ग के व्यक्ति मोटे तथा दूसरे वर्ग के लम्बे और दुबले-पतले होते हैं।

धातु-स्वभाव (Temperament) की दृष्टि से क्रेश्चमर ने साइक्लोथायड लोगो मे निम्नलिखित गुणो का समावेश पाया है, जैसे — वस्तुवादिता, सामाजिकता, व्यवहारकुशलता इत्यादि। दूसरा ओर सिज्वायड विशेषकर आत्म-केन्द्रित (Self-centered) होते है। ये अकेला रहना अधिक पसन्द करते है। इन्हे दूसरो से बोलने मे सकोच होता है। अत ये एकान्त मे चुपचाप बैठे रहते है। ऐसे लोगो म भावुकता की प्रधानता रहती है।

क्रेश्चमर के अनुसार उपर्युक्त दोनो वर्गों को भी निम्नलिखित और भी छोटे-छोटे वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है, जैसे — (क) ऐस्थेनिक (Asthenic) (ख) ऐथलेटिक (Athletic) तथा (ग) पिकनिक (Pyknic)।

शारीरिक बनावट तथा धातु-स्वभाव दोनो के दृष्टिकोण से ये एक दूसरे से भिन्न होते है जिसे हम नीचे दी गयी तालिका से स्पष्ट कर सकते है—

क्रेश्चमर का व्यक्तित्व-सम्बन्धी वर्गीकरण[1]

क्रेश्चमर का व्यक्तित्व-सम्बन्धी वर्गीकरण	शारीरिक बनावट (Physique)	धातु स्वभाव (Temperament)
(क) 'ऐस्थेनिक'	दुबले-पतले तथा छोटे कन्धे।	आत्मकेन्द्रित, एकान्तप्रिय, शान्त, स्वप्नद्रष्टा, भावुक तथा निष्क्रिय।
(ख) 'ऐथलेटिक'	पतली कमर, चौडा कन्धा तथा सुन्दर शारीरिक गठन।	सामाजिक, सक्रिय तथा व्यवहार कुशल।
(ग) 'पिकनिक'	मोटा, गोल मुँह, निकले पेट तथा मासो से लदा हुआ शरीर।	प्रसन्नचित तथा मिलनसार।

शेल्डन (Sheldon) ने भी शारीरिक बनावट तथा धातु-स्वभाव पर प्रकाश डाला है। शारीरिक बनावट के अनुसार इन्होने व्यक्तियो को निम्नलिखित तीन वर्गों मे विभक्त किया है— (१) एण्डोमॉर्फिक (Endomorphic), (२) मेसोमॉर्फिक (Mesomorphic) तथा (३) एक्ट्रोमार्फिक (Ectomorphic)। प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियो की शारीरिक बनावट तथा धातु-स्वभाव अपने ढग का होता है।

१ शेल्डन (Sheldon) के अनुसार एक्ट्रोमॉर्फिक व्यक्ति प्राय मोटे तथा बड़े पेट के होते हैं। और 'पाचन-क्रिया सम्बन्धी अँतडियो' मे विकास भी इनमे अधिक देखा जाता है। इन व्यक्तियो के धातु स्वभाव को विसरोटोनिया (Viscerotonia) की सज्ञा दी जाती है। ऐसे धातु-स्वभाव वाले व्यक्ति खाने-पीने की चीजो मे अधिक दिलचस्पी लेते हैं। ये ऐश और आराम पसन्द होते हैं। ऐसे व्यक्ति हमेशा किसी का प्यार पाने के इच्छुक रहते है।

२. मेसोमॉर्फिक व्यक्तियो के शरीर मे हड्डियो तथा मासपेशियो का विकास

१. Kretschmer, E Physique and Temperament,

अधिक देखा जाता है। फलतः ये भारी तथा कड़े शरीर के होते है। ऐसे व्यक्ति सोमैटोटोनिक (Somatotonic) धातु स्वभाव के होते है। इस प्रकार के व्यक्ति में धैर्य और साहस पूर्ण रूप से पाये जाते हैं। ये किसी से दबने वाले नहीं होते वरन् दूसरो पर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं तथा प्रायः जोर-जोर से बोलते पाये जाते है।

३ एक्टोमॉर्फिक व्यक्ति कमजोर शारीरिक बनावट के होते हैं। फलतः उनकी हड्डियाँ लम्बी तथा कोमल होती है। ऐसे व्यक्तियों में पाये जाने वाले धातु स्वभाव को सेरीब्रोटोनिक (Cerebrotonic) की संज्ञा दी जाती है। ये अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं होने देते। दूसरे शब्दों में ये सकोचशील होते हैं। सकोचशील होने के अतिरिक्त ये एकान्तप्रिय भी होते हैं। ऐसे व्यक्ति की आवाज बड़ी धीमी होती है और वे दुःख पड़ने पर भी दूसरों के सामने अपना दुखड़ा रोना नही चाहते है।

उपयु क्त वर्गीकरणों से स्पष्ट है कि एक व्यक्ति के धातु स्वभाव को शारीरिक बनावट के आधार पर भी समझा जा सकता है। अर्थात् शारीरिक बनावट भी अप्रत्यक्ष रूप से (Indirectly) व्यक्तित्व निर्माण मे सहायक हैं। जहाँ तक उपयु क्त वर्गीकरणों की उपयुक्तता का प्रश्न है, हम इन्हे अंशतः ही ठीक मान सकते है, क्यू कि अधिकांश व्यक्तियों मे शारीरिक बनावट तथा उनके धातु स्वभाव में उपयु क्त सभी वर्गों का समन्वय किया जाता है। फलतः व्यक्तियों को निश्चित रूप मे किसी एक वर्ग में रखना असम्भव सा है।

(ग) स्नायुमण्डल
(Nervous System)

व्यक्तित्व को परिभाषित करते समय हमलोगों ने वातावरण में अभियोजन करने की चर्चा की थी। मनुष्य का अभियोजन वातावरण सम्बन्धी गुणों एवं व्यक्ति के अन्दर वर्तमान गुणों के बीच उत्पन्न सघर्ष पर निर्भर करता है। इस संघर्ष के बीच मनुष्य द्वारा किया गया अभियोजन ही व्यक्तित्व है। इस अभियोजन मे प्राणी तथा वातावरण के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्नायुमण्डल की नितान्त आवश्यकता है। अत मनोवैज्ञानिकों ने स्नायुमण्डल का महत्त्वपूर्ण स्थान व्यक्तित्व निर्धारण में दिया है। इसके अभाव में मनुष्य वातावरण को समझने मे असफल रहेगा। ब्रूडा (Beuda) महोदय ने एक मनुष्य पर एक प्रयोग किया। उस मनुष्य का मस्तिष्क अलग कर दिया गया जिसके फलस्वरूप उसमें निम्नांकित परिवर्तन पाये गये—

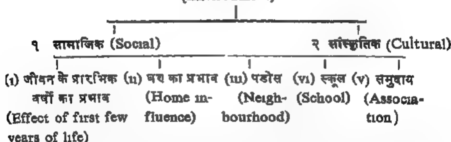
(क) बोलने और सोचने की क्रियाओं की गति मन्द पड़ जाना (Slowing down of speech and thought) तथा (ख) समस्याओं को समझने में कठिनाई का होना (Difficulty in grasping problems)। इस प्रकार स्पष्ट है कि मस्तिष्क के रहने के कारण ही व्यक्ति वातावरण मे उपस्थित वस्तुओं को समझ पाते

हैं। इस समझ पर ही उसके व्यवहार आश्रित हैं। केम्फ (Kemf) ने भी अपने व्यक्तित्व-सम्बन्धी जीवन-शास्त्रीय सिद्धान्त (Biological theory of Personality) मे वातावरण मे सफलतापूर्वक अभियोजित करने के लिए स्नायुमण्डल की आवश्यकता पर जोर दिया है। उनके अनुसार अभियोजन की विधि ही व्यक्तित्व है जो स्नायुमण्डल पर आश्रित है।

२ वातावरण
(Environment)

व्यक्तित्व-निर्माण मे दो प्रकार के वातावरणो का प्रभाव पडता है—(क) एक तो सामाजिक वातावरण (Social environment) और (ख) दूसरा सांस्कृतिक वातावरण (Cultural environment)।

(क) सामाजिक वातावरण (Social Environment)— सामाजिक वातावरण (Social environment) का प्रभाव जन्मकाल से ही आरम्भ हो जाता है। इस वातावरण मे विशेष कर जिन अगो का व्यक्तित्व निर्माण मे विशेष रूप से हाथ है उनको निम्नलिखित तालिका से अधिक स्पष्ट किया गया है।



(i) **जीवन के प्रारम्भिक वर्षों का महत्त्व** (Importance of the first few years of life)—जीवन के प्रारम्भिक वर्षों की महत्ता की विशेष चर्चा फ्रायड (Freud) महोदय ने की है। इसके अनुसार मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार का बीजारोपण बचपन के प्रारम्भिक पाँच वर्ष मे हो जाता है। मनुष्य एक अनुभवशील प्राणी है। वह प्रारम्भ से ही अनुभव प्राप्त करता है। व्यक्ति के इस अनुभव पर ही व्यक्तित्व का निर्माण निर्भर है। फ्रायड ने चरित्र-निर्माण (Character-formation) की व्याख्या करते हुए चर्चा की है कि बाल्यावस्था मे खाद्य-सामग्री के अभाव के कारण कुछ लोगो मे सचय की प्रवृत्ति हो जाती है। कुछ बच्चो को दूध पिलाना बन्द (weaning) कर दिया जाता है तो कुछ को दूध पिलाना देर मे बन्द किया जाता है। दूध पिलाने की क्रिया को देर तक जारी रखने या जल्द छुडाने के फल स्वरूप बालको को कुछ अनुभव होता है। बाल्य-काल के इस अनुभव की अभिव्यक्ति मनुष्य मे सुरक्षित एवं असुरक्षित होने की भावना (Feeling of security and insecurity) के रूप मे होती है। उसी

प्रकार बालक का साधारण-सा अनुभव मल मूत्र को दबाये रखना या जल्द-जल्द बाहर फेंकना भी अपनी छाप व्यक्तित्व निर्माण पर छोड़ता है। लड़के मल-मूत्र की एक अवस्था विशेष (Anal Retentive Period) में अपने अन्दर संचित करने में एक आनन्द का अनुभव करते है। अत वे बिना डाँट फटकार के मल मूत्र को बाहर निकालने के लिए तैयार नहीं होते है। कभी-कभी ऐसा होता है कि बालक शिक्षा (Training) के अभाव में इस अवस्था में बहुत ही अधिक दिन गुजार लेता है। इस अवस्था मे रहने से प्राप्त अनुभव का ही असर है कि बड़े होने पर बहुधा ऐसे बालक एक कंजूस मनुष्य के रूप मे समाज मे अपने को प्रस्तुत करते है। जिस बालक को अपने पिता के बहुत बड़े अनुशासन (Rigid Discipline) में पलना पड़ता है वह बालक आगे चलकर पिता की मृत्यु के बाद भी ईश्वर से अधिक भयभीत रहता है। अत स्पष्ट है कि प्रारम्भिक अनुभूतियाँ व्यक्तित्व पर अपना अमिट छाप छोड़ जाती है।

(ii) घर का प्रभाव (Home influence)— बालक को अपने माता पिता से सहानुभूति मिलती है। घर मे प्राप्त इस सहानुभूति का भी व्यक्तित्व पर असर पड़ता है। माता पिता से प्राप्त अधिक सहानुभूतियों का ही परिणाम है कि बालक बड़ा होने पर भी आश्रय (Dependence) की आवश्यकता का अनुभव करता है। ऐसे बालक बचपन में अपने माता पिता को ही प्रत्येक शक्तियों का केन्द्र मानते हैं। इस शक्ति की खोज बड़ होने पर भी जारी रहती है। फलत वे एक नेता का आश्रय लेते हैं। इसके विपरीत स्नेह के अभाव मे लड़का बड़े होने पर स्नेह की पूर्ति की कोशिश में कल्पना के ससार मे या दिवा स्वप्नों (Day-dreams) मे अधिक समय बिताना शुरू करता है। जिन लोगो में कल्पना में विचरने या दिवास्वप्नों मे अधिक लिप्त रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है उनके व्यक्तित्व को अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की संज्ञा दी जाती है। विलियम ह्वाइट (William White) के अनुसार बच्चे के व्यक्तित्व के लिए अत्यधिक प्यार)Over affection) तथा अत्यधिक डाँट फटकार (Over punishment) दोनों ही हानिकारक है। घर के अन्दर सहानुभूति (Symp athy) के अतिरिक्त हमें निम्नलिखित तीन प्रमुख सम्बन्ध माता पिता और बच्चों के बीच देखने को मिलते हैं— (१) 'माता और पिता का आपसी संबध (२) माता पिता का बच्चों से सम्बन्ध तथा (३) घर के बच्चों का एक दूसरे से सम्बन्ध। अब हम सक्षेप में एक-एक कर इन पर प्रकाश डालेंगे।

१ माता और पिता का आपसी सम्बन्ध—सिरिल बर्ट (Cyril Burt) का कहना है कि जिस घर के माता पिता सदा आपस में कलह करते हैं उनके बच्चों मे भी सतुलित व्यक्तित्व (Balanced personality) का विकास नहीं हो पाता है। ऐसे घरों म उचित अनुशासन की कमी होने के कारण बच्चे बाल-अपराध (Delinquency) के शिकार हो जाते हैं। इस प्रकार के घरों को सरल बर्ट (Cyril Burt) ने ब्रोकेन होम (Broken Home) की संज्ञा दी है।

२ माता पिता का बच्चों से सम्बन्ध—कभी-कभी बच्चे के जन्म को माता

पिता स्वागत (Wanted child) की नजर से देखते है। परन्तु, कभी-कभी खास कर गरीब परिवार मे अधिक बच्चे बेजरूरत या अनावश्यक (Unwanted) समझे जाने लगते है। अगर माता-पिता अपने बच्चे को बेजरूरत (Unwanted) समझने लगते है तो बच्चे मे एक क्षोभ (Frustration) उत्पन्न होता है जिसका व्यक्तित्व पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है। ऐसे घरो मे जहाँ लडकियो का पैदा होना अशुभ अथवा लडको की तुलना मे निम्नकोटि का माना जाता है वहाँ लडकियो के व्यक्तित्व का उचित विकास नहीं हो पाता है। उनमे हीनता का भाव (Feeling of inferiority) उत्पन्न हो जाता है। वे सदा अपने को पुरुषो से हीन समझने लगती है।

माता-पिता (Parents) हैं अथवा नही, इस दृष्टि से बच्चो का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है (क) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता—दोनो जीवित है,(ख) ऐसे बच्चे जिनके पिता है, माता नही, (ग) ऐसे बच्चे जिनकी माता है, पिता नही, (घ) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता दोनो मर चुके है, (ङ) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता का पता नही और (च) ऐसे बच्चे जिन्हे सौतेली माँ या सौतेला बाप या अन्य कोई आया (Nurse) पालते है, इत्यादि।

उपर्युक्त सभी अवस्थाओ मे बच्चो के अन्दर अपने माता-पिता के भिन्न-भिन्न प्रकार की मनोवृत्ति जगती है जिनका उनके व्यक्तित्व के विकास पर स्पष्ट प्रभाव पडता है। परन्तु विस्तार मे इनका उल्लेख करना यहाँ अभीष्ट नही है।

३ घर के बच्चो को एक दूसरे से सम्बन्ध अर्थात् उनका आपसी सम्बन्ध—इसके अन्तर्गत सबसे प्रमुख बात है—एकलौता बच्चा तथा जन्म-क्रम (The only child and birth-order) जो उनके व्यक्तित्व पर विशेष रूप से प्रभाव डालते हैं।

सामाजिक अभियोजन (Social adjustment) व्यक्तित्व का एक विशेष गुण है। इसकी शिक्षा व्यक्ति को अपने घर से ही मिलनी आरम्भ हो जाती है। एक घर मे अगर एक से अधिक बालक होते है तो वे एक-दूसरे के विचारो से अवगत हो सचमुच अभियोजन का प्रयास करते है। इसी शिक्षा का प्रभाव है कि व्यक्ति बड़ा होने पर पहले की सीखी हुई अभियोजन-विधि द्वारा अपने को अभियोजित करने के प्रयास मे सफल होता है। परिवार मे एक ही बालक के रहने पर ऐसी शिक्षा को प्राप्त करने का अवसर नही होता है। फलत, ऐसे बालक आगे चलकर सामाजिक अभियोजन मे कठिनाई का अनुभव करते है।

कुछ मनोवैज्ञानिको का विचार है कि बच्चे का परिवार मे 'जन्म क्रम' (Birth order) भी व्यक्तित्व के निर्माण मे सहयोग देता है। इस विचार के रखने वालो मे प्रधान मनोवैज्ञानिक अलफ्रेड एडलर (Alfred Alder) है इनके मतानुसार एकलौते बच्चे के आराम एव अधिकार मे भाग (Share) लेने वाला कोई दूसरा नही होता है। फलत ऐसे व्यक्ति आगे चलकर एकाधिपत्य की भावना से ग्रसित होते है। साथ-ही-साथ ऐसा व्यक्ति परावलम्बी हो जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने बतलाया

है कि परिवार के बच्चे अधिकारप्रिय व्यक्तित्व (Authoritarian type of personality) के हो जाते हैं। सबसे एन सबसे छोट बच्चे के व्यक्तित्व का भी अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के फलस्वरूप पता लगता है कि सबसे बच्चे स्पर्द्धायुक्त (Competitive) व्यक्तित्व के हो जाते हैं। परिवार के सबसे छोटे बच्चे म लाइमलाइट व्यक्तित्व (Lime-light personality) पाया जाता है अर्थात् वह बच्चा आगे चलकर अपने को बहुत ही प्रमुख समझने लगता है। वह हमेशा किसी भी काम मे बिना पूछे ही राय देने लगता है। ऐसा इसलिए होता है कि अन्तिम बच्चा होने के कारण उसे परिवार के अधिक लोगो का अत्यधिक प्यार मिलता है जिसके कारण उसमें अपने को संरक्षित समझने की मात्रा (Co-efficient of safety) अधिक होती जाती है।

(iii) पड़ोस (Neighbour)—व्यक्तित्व-निर्माण मे पड़ोस का भी कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं होता है। व्यक्ति अपने समीप इन दो तरह के पड़ोसों में किसी एक प्रकार के पड़ोस के बीच रहता चला जाता है। एक पड़ोसी तो वह है, जो सदा उस व्यक्ति के समीप सतमान रहता है। दूसरे प्रकार का पड़ोस जिसका व्यक्ति को सामना करना पड़ता है वह सदा बदलने वाला पड़ोस है। ऐसी भी जातियाँ हैं जो सदा एक स्थान मे दूसरे स्थान को जाती रहती है। ऐसी जातियों का कोई अपना एक निश्चित एव स्थायी पड़ोसी नहीं होता। इन दो भिन्न पड़ोसो के बीच पहले व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न पाया जाता है। साधारणत पड़ोस का उसपर प्रभाव उस समय से पड़ने लगता है जब बच्चा चलना फिरना शुरू करता है तथा घर से बाहर निकल कर पड़ोस के घरों में जाने लगता है। जिन बालकों का पड़ोस तुरत तुरत बदलता रहता है उनके व्यक्तित्व मे हिल मिल कर रहना तथा साहचर्य की भावना अधिक रूप मे नहीं विकसित हो पाती है। ये बातें बन्जारो या नोमडिक ट्राइब्स' (Nomedic Tribes) के बच्चो के व्यक्तित्व के विकास मे अत्यधिक देखी जाती है।

(iv) स्कूल (School)—पड़ोस के अतिरिक्त व्यक्ति पर प्रभाव डालने वाले कारकों (Factors) में स्कूल का भी स्थान है। स्कूल में बालक प्रवेश करने पर तीन प्रकार के लोगों से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है—एक तो अपने शिक्षक से जो उसके लिए पिता तुल्य होते है और वह उनके आचार का अनुकरण करता है। कभी-कभी पिता और शिक्षक के व्यवहारो मे विरोधाभास होता है जैसे—पिता पुजारी हैं तो शिक्षक पूजा में अविश्वास रखने वाला। ऐसी अवस्था म बालक का व्यक्तित्व सन्तुलित नहीं हो पाता है। अत व्यक्तित्व म सन्तुलन के लिए यह भी आवश्यक है कि पिता और शिक्षक के व्यवहार एक समान हों। बालक का दूसरा सम्बन्ध अपने वर्ग के लड़को से एव तीसरा सम्बन्ध अपने वग से ऊँचे एव नीचे वर्गों के विद्यार्थियों से होता है।

बालक के साथ ऊँचे के बालको जैसा व्यवहार होता है, प्राय वैसा ही व्यवहार वे अपने से नीचे व र्गों के बालको के प्रति करना सीख लेते हैं ।

स्कूल मे खेलते समय बच्चे सहकारिता, अनुशासन, एव टीम की भी भावना (Team spirit) इत्यादि सभी बातो को सीखते है। उसमे सवेगात्मक सतुलन (Emotional stability) का विकास होता है। इन्ही कारणो से खेल के मैदानो को खुले स्कूलो (Open schools) की सज्ञा दी गयी है। स्कूल की पढाई और खेल दोनो का प्रभाव बालको के विकास पर पडता है।

(v) ग्रूप, गैग एव क्लब (Group, Gang and Club) इसी प्रकार 'दल' (Group), 'गिरोह' (Gang) तथा 'क्लब' (Club) इत्यादि का प्रभाव भी बच्चो के व्यक्तित्व के विकास पर कुछ कम नही पडता है।

सामाजिक प्रभावो (Social effects) के कारण ही व्यक्ति विकसित होकर समाज का नमूना (Sample of Society) के रूप मे हो जाता है।

(ख) सस्कृति का प्रभाव या सांस्कृतिक वातावरण (Influence of Culture or Cultural Environment)—

व्यक्तित्व के निर्धारण मे मनुष्य के अपने जीवन-काल मे प्राप्त अनुभवो के अतिरिक्त रहन-सहन, विचार आदि का भी कम महत्त्व नही होता। रहन-सहन, वेष-भूषा, विचार इत्यादि, जिन्हे सस्कृति की संज्ञा दी जाती है, व्यक्तित्व को इन दो तरीको से प्रभावित करते है—

१ समाज मे जन्म लेने के कारण बालक वहाँ की सस्कृति को अपना लेना है (Interiorizing the norms, views and values etc), फलत समाज के रहन-सहन, वेश-भूषा, विचार इत्यादि से उसे अलग रखना सम्भव नही है।

२ सस्कृति के अन्तर्गत आने वाली कुछ ऐसी भी बातें है जिन्हे मनुष्य अपनाना नही चाहता, परन्तु सामाजिक दबाव (Social pressure) या अपने को अन्य सामाजिक प्राणी के ही अन्तर्गत रखे जाने की इच्छा के कारण वह सस्कृति-विशेष को अपनाता है।

उपर्युक्त दो विभिन्न प्रभावो के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति पर अपनी सस्कृति-विशेष की छाप रहती है। लिण्टन (Linton) एव कार्डिनर (Kardiner) महोदय ने कुछ जातियो का अध्ययन संस्कृति एव व्यक्तित्व के पारस्परिक सम्बन्ध के विश्लेषण के लिए किया। इस विश्लेषण के फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भिन्न-भिन्न सस्कृतियो मे पले लोगो के व्यक्तित्व मे भिन्नता होती है। परन्तु यहाँ उनका वर्णन विस्तार मे करना अभीष्ट नही है।

मीड (Mead)[1] का न्यूगीनी (Newguinea) मे रहने वाली विशेष जाति

---

[1] Mead, M—Sex and Temperament in Three Primitive Societies, New York, Morrow, 1935 Pp 29-30

अरापेश (Arapesh) का अध्ययन यहाँ उल्लेखनीय है। इस जाति के लोगों की प्रमुख विशेषता एक-दूसरे से आगे बढ़ने तथा अपनी जाति का अगुआ होने की नेता तथा दूसरों पर अपना आधिपत्य जमाने की आकांक्षा नहीं रहती। स्पर्धा की भावना का अभाव है। संस्कृति विशेष के प्रभाव के कारण ही इस वर्ग के लोगों में (Ruth Benedict)[१] ने भी ज़ूनी इंडियन (Zuni Indian) जाति के लोगों के अध्ययन में स्पर्धा नामक गुण का उनके व्यक्तित्व में अभाव पाया। स्पर्धा के अभाव का विश्लेषण करते समय बेनेडिक्ट ने स्पष्टतया बतलाया है कि उनमें स्पर्धा का अभाव जन्मजात (Innate) नहीं होता वरन् उसकी संस्कृति ही ऐसी होती है कि उनके व्यक्तित्व में स्पर्धा नामक गुण नहीं विकसित हो पाता।

यह संस्कृति का ही प्रभाव है कि एक भारतीय का व्यक्तित्व एक जापानी से तथा एक जापानी का अमेरिकी से सर्वथा भिन्न होता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास अथवा किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को एक खास ढाँचे में ढालने का श्रेय संस्कृति को भी है।

यहाँ अन्त में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि व्यक्तित्व के निर्धारण में वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों का सहयोग होता है। इस विचार की विशुद्ध व्याख्या प्राणी और वातावरण के अध्याय (तीसरे खंड के प्रथम अध्याय में देखें) में की गयी है जहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि व्यक्तित्व वातावरण एवं वंशानुक्रम का योगफल नहीं वरन् गुणनफल है।

• व्यक्तित्व-मापन
(Measurement of Personality)

व्यक्तित्व मापन पर मनोवैज्ञानिकों ने विशेष जोर दिया है। इस विशेष जोर का उद्देश्य व्यक्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर उन्हें वातावरण से उचित अभियोजन में सहयोग देना है। फलतः व्यक्ति को एक खास प्रकार का कामभार सौंपने के पहले उस व्यक्ति की जाँच कर ली जाती है। जाँच करने से यह पता लग जाता है कि व्यक्ति किसी कार्य को अधिक सफलता पूर्वक सम्पन्न कर सकता है। व्यक्तित्व की जाँच करने की अनेक विधियाँ हैं जैसे—व्यक्तित्व इतिहास (Case history) इंटरव्यू या साक्षात्कार (Interview) प्रश्नावलियाँ (Questionnaires) श्रेणी-मूल्यांकन (Rating scales) परिस्थिति परीक्षण (Situation Tests) मनोविश्लेषणात्मक परीक्षण (Pyschoanalytic Test) जैसे—स्वप्न विश्लेषण (Dream analysis) नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित साहचर्य विधि (Controlled and uncontrolled or free association method) तथा आरोपणात्मक परीक्षण (Projective Tests) जैसे— रोर्शाक का मसि-चिह्न परीक्षण (Rorschach's Ink blot Tests) एवं मरे का कथा संस्कार परीक्षण (Murray's Thematic Apperception Test) इत्यादि।

---

१ Benedict R—Patterns of Culture—Boston Hughton Mifflin, 1934

इन तरीको मे जिनका उपयोग विशेषकर आजकल पाया जाता है उनके प्रमुख (क) साक्षात्कार विधि (Interview), (ख) प्रश्नावली (Questionnaire) और (ग) प्रक्षेपण विधि या आरोप्यात्मक परीक्षण (Projective Tests) इत्यादि हैं, जिनकी चर्चा नीचे सक्षेप मे दी जाती है ।

(क) साक्षात्कार-विधि (Interview) —इसका उपयोग आरम्भ से ही हो रहा है। यहाँ पर मनोवैज्ञानिक जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व को मापता है उसे अपने सम्मुख बुला, एक व्यक्ति की जीवन-सम्बन्धी चर्चा उसकी अपनी सम्मता इत्यादि को सुनाता है। मनोवैज्ञानिक कुछ प्रश्नो को व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित करता है। इन प्रश्नो का उत्तर व्यक्ति देता है। परन्तु, ऐसे प्रश्न व्यक्ति को अपने जीवन की घटनाओ की चर्चा करने के लिए पूछे जाते हैं। व्यक्ति मनोवैज्ञानिक की अपेक्षा अधिक सक्रिय रहता है। मनोवैज्ञानिक, व्यक्ति से प्राप्त सूचना को जीवन-इतिहास से सहायता लेकर उससे व्यक्तित्व के विषय मे जानकारी प्राप्त करते हैं। इस विधि मे विशेषकर व्यक्ति के बोलने का ढग, सवेगात्मक व्यवहार का अन्य हिचकिचाहटो की ओर ध्यान दिया जाता है। इन्ही के आधार पर व्यक्तित्व के विषय मे अनुमान लगाया जाता है।

यह विधि सम्यक् विधि नही समझी जाती है। इसका एकमात्र कारण है कि इससे प्राप्त सूचनाएँ बहुधा असत्य निकलती हैं। असत्यता का कारण साक्षात्कार करने की कला का अभाव है। इसके अतिरिक्त दो व्यक्तियो द्वारा किये गये एक व्यक्ति के साक्षात्कार का फल भी एक नही होता। इस फल की असमानता का कारण दो व्यक्तियो मे साक्षात् करने की अपनी कला का अन्तर है। इन दोषो के कारण इस विधि का व्यक्तित्व-मापने मे प्रयोग नही किया जाता है। परन्तु, इसका यह मतलब नहा कि यह विधि एकदम बेकार है। आजकल भी इस विधि का उपयोग अन्य विधियो के साथ किया जाता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि यह विधि भी व्यक्तित्व पर कुछ प्रकाश डालने मे समर्थ है।

(ख) प्रश्नावली विधि (Questionnaire)—इस विधि के अन्तर्गत प्रश्नो के उत्तर के आधार पर व्यक्तित्व-विश्लेषण किया जाता है। पहले से छपे हुए प्रश्नो को उस व्यक्ति के सामने, जिसका व्यक्तित्व-विश्लेषण करना है, प्रस्तुत किया जाता है। व्यक्ति उन प्रश्नो का उत्तर लिख कर या लिखे हुए उत्तरो मे कौन सही या गलत है, दाग लगाकर देता है। इन दिये गये उत्तरो के आधार पर व्यक्तित्व-विश्लेषण किया जाता है।

इस जाँच-विधि द्वारा समान रूप से सभी लोगो के विषय मे जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यहा "साक्षात्कार-विधि" की तरह साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति की अपनी कला का प्रभाव नही पड़ता है। अत प्राप्त जानकारी की सत्यता की जाँच अन्य लोग भी किसी समय कर सकते है। इस विधि का प्रथम प्रयोग सैनिको मे सवेगात्मक असन्तुलन की जाच करने के लिए प्रथम विश्व महायुद्ध (First World)

शब्द सूची	समय (सेकेण्ड मे	बोले गये शब्द	दुबारा शब्द को प्रस्तुत करने पर बोले गये शब्द
कुत्ता	१ ५ से०	लाल	,,
बिल्ली	१ ४ से०	घर	,,
लडकी	० ४ से०	बहन	भाभी
घर	१२ से०	दूर	भगिना
पेड़	१ ५ से०	आम	,,
खून	१ २ से०	भय	,,

कुछ सवेगात्मक शब्दो को सुनकर व्यक्ति शीघ्र कोई दूसारा शब्द बोलता है और कुछ शब्दो के सुनने के उपरान्त काफी समय गुजारने के बाद कुछ बोलता है। इन दोनो तरह के शब्दो की गणना व्यक्तित्व-विश्लेषण मे की जाती है । ऐसा समझा जाता है कि व्यक्ति जिस क्षेत्र मे असन्तुलित है, उसे क्षेत्र की चर्चा करने पर वह उस क्षेत्र से भागना चाहता है। अत उस क्षत्र से सम्बन्धित अनुभवो को जल्द किसी दूसरे शब्दो की अभिव्यक्ति द्वारा पर्दा डाल देता है। अगर वह सम्भव नही हुआ तो वह सवेगात्मक रुकावट के फलस्वरूप उस विषय की चर्चा होने पर जल्द अपना कुछ निर्णय नही कर पाता है जिससे दूसरे शब्द प्रस्तुत करने मे विशेष समय लगता है।

शब्दो को एक-एक कर दुबारा प्रस्तुत करने पर कभी-कभी व्यक्ति पहले के कहे गये शब्द को दुहराने मे असफल रहता है। व्यक्ति की यह असफलता भी रहस्यमय होती है। इसका भी विश्लेषण व्यक्तित्व के ऊपर प्रकाश डालने मे समर्थ रहता है।

फ्रायड के अतिरिक्त, इस सम्बन्ध मे यू ग (Gung) महोदय की शब्द साहचार्य सूची (Word-association list) प्रमुख एव काफी उपयोगी है।

इस विधि द्वारा व्यक्तित्व के विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु, यह विधि अकेले व्यक्तित्व के विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त कराने मे असफल रहती है।

२ रोर्शाक का मसि-चित्र-परीक्षण (The Rorsachachach's Test) इस विधि की व्याख्या सन् १९२१ ई० मे 'हरमन रोर्शाक' महोदय (Swiss Psychiatrist) ने की थी। इसके अन्तर्गत 'दस स्याही के धब्बे, जैसी बनी तस्वीरे रहती है। इस दस स्याही के धब्बे मे पाँच तो काले रहते है, दो लाल और काला मिले होते हैं और बाकी तीन रगीन होते हैं। इस दस धब्बो को एक-एक कर व्यक्ति के सामने रखा जाता है। रखने के समय उनसे पूछा जाता है कि आप इसमे क्या देखते है ?

उनके दिये गये उत्तर को तीन प्रधान आधार पर तोला जाता है—

(1) स्थान (Location)—पूरे चित्र के आधार पर जवाब देते हैं या चित्र के कुछ अंश के आधार पर (ii) जवाब क्यों देते हैं (Determining quality) —रंगों के आधार पर या छाया अथवा गति के आधार पर और (iii) क्या बताते हैं ? (Content)—मनुष्य जानवर, पहाड़, चित्र शरीर का कोई भाग इत्यादि।

दस धब्बों (Ten Ink blots) से प्राप्त उत्तर को समानता के आधार पर अलग अलग वर्गों में रखने के उपरान्त व्यक्तित्व विश्लेषण किया जाता है। व्यक्तित्व विश्लेषण में यह ख्याल किया जाता है कि अगर अधिकांश उत्तर का आधार पूरा धब्बा हुआ तो व्यक्तित्व प्राय: सैद्धान्तिक (Theoretical) होता है व्यावहारिक (Practical) नहीं। इसके अतिरिक्त अगर व्यक्ति साधारण एवं छोटी चीजों को ही अपने बोलने का आधार बना लेता है तो ऐसे व्यक्ति को क्षुद्र प्रकृति की श्रेणी में रखते हैं। धब्बों में गति का प्रत्यक्षीकरण अन्तर्मुखी व्यक्तित्व का द्योतक है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि व्यक्ति के विषय में जानकारी की सत्यता पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

२ गर्भित कथा सत्कार-परीक्षण (Thematic Apperception Test)—इसके अन्तर्गत कुछ चित्र होते हैं। इन चित्रों को देख कर भिन्न भिन्न अर्थ लगाये जा सकते हैं। अर्थ का लगाना व्यक्ति की इच्छा एवं मनोवृत्ति से प्रभावित होता रहता है। चित्र उपस्थित करने के उपरान्त व्यक्ति को निर्देश दिया जाता है कि इन चित्रों को देख कर कहानी की रचना करे जिसमें भूत वर्तमान एवं भविष्य की घटनाओं का वर्णन हो। यह कहानी व्यक्ति की अपनी जीवनी के रूप में उपस्थित होती है जिसके आधार पर व्यक्ति का विश्लेषण सम्भव होता है।

यहाँ चित्र को देख कर व्यक्तित्व को अपने विचार मनोवृत्ति एवं भावों की अभिव्यक्ति करने की प्रेरणा मिलती है। इस प्रेरणा के फलस्वरूप वह कहानी के रूप में अपने विचार को व्यक्त करता है। जो विचार भिन्न भिन्न चित्रों में बार-बार उपस्थित होते पाये जाते हैं उनका सम्बन्ध व्यक्ति से स्थायी समझा जाता है। अत: बार बार उपस्थित होने वाले विचारों के विश्लेषण द्वारा व्यक्ति के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है।

अब प्रश्न है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को हम क्यों मापने की कोशिश करते हैं? व्यक्तित्व के मापने के पीछे दो उद्देश्य हैं—एक सैद्धान्तिक और दूसरा व्यावहारिक। व्यक्तित्व विश्लेषण के द्वारा हम व्यक्ति के स्वभाव तथा व्यक्तित्व विकास से अवगत होते हैं। इस अध्ययन के फलस्वरूप हम उन कारकों (Factors) से भी व्यक्तित्व विकास में सहायक कारकों (Factors) के ज्ञान से व्यक्तित्व के भिन्न भिन्न पहलू के विकास में सहायता पहुँचा सकते हैं। अत: व्यावहारिक दृष्टि से व्यक्तित्व विश्लेषण से व्यक्ति के अभियोजन में सहायता पहुँचायी जा सकती है। यह सहायता उनकी दिक्कतों को जान कर उन्हें दूर कर दी जाती है।

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक उपचार गृह (Clinics) बने हैं जहाँ मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की मदद के लिए रहते है।

व्यक्तित्व-विश्लेषण के द्वारा ऐसे लोगो का, जिनके व्यक्तित्व मे सम्बन्ध (integration), का अभाव है, पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार की खोज का एकमात्र उद्देश्य उलझे हुए व्यक्तियो (Disintegrated Personality) के व्यक्तित्व मे सुधार लाना हैं।

विभिन्न कार्यों के सम्पादन के लिए विभिन्न प्रकार के लोगो की आवश्यकता होती है। सभी कार्य सभी कर सकते हैं। अत. कार्यो के अनुरूप व्यक्ति को चुनना आवश्यक है। व्यक्तित्व-मापन विधि द्वारा व्यक्ति का चुनाव सफलता से किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व मापन विधि हमे व्यक्ति के चुनाव अभियोजन तथा व्यक्ति के स्वभाव से परिचय कराता है। अतः सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो दृष्टिकोणों से व्यक्तित्व-मापन लाभप्रद है।

तीसरा भाग
PART (III)

[विशेषकर डिग्री (दर्शन शास्त्र) के छात्रो के लिए—Specially for Degree (Philosophy) students of Universities of Bihar]

पहला अध्याय

प्राणी और वातावरण

(Organism and Environment)

भूमिका—प्राणी क्या करता है—वातावरण अभियोजन। प्राणी किस प्रकार करता है—'उत्तेजनाएँ-प्रतिक्रियाएँ' 'उत्तेजना-प्रतिक्रिया सूत्र' तथा इसकी आलोचना, उत्तेजनाएं-प्राणी प्रतिक्रिया सूत्र'। मनुष्य किस कार्य को क्यों करता है—प्रेरक—प्रेरकों का स्वरूप एवं उनका वर्गीकरण प्रेरक शक्तियों में परिमार्जन तथा परिवर्तन।

वशानुक्रम एवं वातावरण भूमिका—वशानुक्रम किसे कहते है तथा व्यक्तित्व-विकास पर उसका प्रभाव - वशानुक्रम-सम्बन्धी अध्ययन-वातावरण—वातावरण किसे कहते है तथा व्यक्तित्व-विकास पर इसका प्रभाव—वातावरण-सम्बन्धी अध्ययन— व्यक्तित्व = वशानुक्रम × वातावरण × समय।

मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय प्राणियों का व्यवहार एव उनकी अनुभूति है। निर्जीव पदार्थों से मनोविज्ञान का कोई सम्बन्ध नही।

प्राणी (Organism) भी तो अनेक है। एक एमीवा (Amoeba) से लेकर मनुष्य तक लाखो प्राणी है। परन्तु, मनोविज्ञान का सम्बन्ध सबसे अधिक मनुष्यो से है। इसका अर्थ यह नही कि यह पशु-पक्षियो अथवा कीडे-मकोडे जैसे प्राणियो के व्यवहारो के अध्ययन मे रुचि नही रखता है।

प्राणी शब्द आज अपने मे एक बहुत विस्तृत अर्थ रखता है। विज्ञान के नये आविष्कारो ने तो यह भी सिद्ध कर दिया है कि पेड-पौधे भी एक प्रकार के प्राणी ही है। उनमे भी प्रतिक्रियाएँ होती है, वे भी दुःख सुख का अनुभव करते है। परन्तु, अभी तक मनोविज्ञान पेड-पौधो के व्यवहारो एव उनकी अनुभूतियो को वस्तुत अपने अध्ययन का विषय नही बना सका है। प्राणी उसे कहते है कि जिनमे प्राण हो। प्राणी का जन्म होता है, विकास होता है, अन्त मे मृत्यु भी हो जाती है। कोई भी प्राणी साधारणत अपने ही जैसे जीवो मे जन्म लेता है तथा प्राय अपने ही जैसे जीवो का जन्म देने मे समर्थ होता है। यदि ऐसा नही होता तो एक ही माँ-बाप से उत्पन्न परिवार मे भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव-जन्तु सहोदर भाई-बहन के रूप मे पाये जाते।

प्राणी जब तक जीवित है तब तक साधारणतः उसमें कोई-न कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न होती रहती है। वह कोई-न-कोई व्यवहार करता ही रहता है। प्रतिक्रियाशीलता प्राणी का सर्वप्रमुख लक्षण है।

इन प्रतिक्रियाओं के सम्यक् अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिकों के सामने निम्न लिखित प्रश्न खड़े होते है—

(१) प्राणी क्या करता है (What the organism does) और (२) प्राणी किस प्रकार या कैसे करता है (How the organism does) और (३) प्राणी क्यों करता है (Why the organism does)।

प्राणियों की प्रतिक्रियाओं से सम्बन्धित इन What How और Why प्रश्नों के उत्तर मनोवैज्ञानिक बहुत जमाने से देने का प्रयास करते आ रहें हैं।

सबसे पहले प्रश्न पर विचार करें

१ प्राणी क्या करता है (What the orgnism does)—प्राणी अपने वातावरण में अपना समुचित अभियोजन करने का प्रयास करता है। कभी यह प्रयास सफल होता है तो कभी असफल भी। जो प्राणी अपने विकास की सीढ़ी (Ladder of evolution) पर जितना ही ऊपर पहुँचा रहता है उसमें अपने वातावरण में सफल अभियोजन करने की शक्ति उतनी ही अधिक रहती है। अभियोजनशीलता का अभाव प्राणी के लिए घातक सिद्ध होता है।

मनुष्यों में अन्य प्राणियों की अपेक्षा अभियोजनशीलता अधिक वर्तमान है क्योंकि वह संसार का सबसे उच्च स्तर का विकसित (Highest in the ladder of evolution) प्राणी है।

वातावरण के अभियोजन करने की शक्ति का अर्थ होता है वातावरण में होने वाले भिन्न भिन्न परिवर्त्तनों के मुताबिक अपने व्यवहारों एवं अनुभूतियों में भी परिवर्तन या परिमार्जन लाने की क्षमता। यह परिवर्तन प्राणी के विकास में सहायक होता है।

प्राणी का अपनी अस्तित्व बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि जैसा उसका वातावरण हो उसी के मुताबिक अपने व्यवहारों में भी वह तबदीली ला सके। यह तबदीली वातावरण के प्रति किये गये उसकी समुचित प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप होगी।

मान लीजिए की पानी बरस रहा हो। इस समय सड़क पर चलनेवाले राही के पास यदि छाता है तो वह छाता तान लेगा और अपने को पानी से भीगने से बचा लेगा। अगर वह छाता नहीं तानता है तो वह भीग जायगा जिसके कारण उसे सर्दी हो जा सकती है अथवा और कोई क्षति पहुँच सकती है। यहाँ पानी से बचने के लिए छाता को तान लेने की क्रिया वातावरण से अपने को अभियोजित करने की क्रिया हुई। साँप को देख कर उससे डर कर भाग जाना ठण्डक में गर्म कपड़ा पहन लेना गर्मी में गर्म कपड़ा नहीं पहनना इत्यादि ऐसी प्रतिक्रियाएं हैं जिनके द्वारा अभियोजन का क्रियाएँ एवं उनके महत्त्व को समझा जा सकता है।

ठीक इसी प्रकार मित्रमण्डली मे अपने को अभियोजित करने के लिए मनुष्यो को जिस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करनी पडती है वे ही प्रतिक्रियाएँ अपने पिता के सामने बैठे रहने पर वे नही करते। कहने का अभिप्राय यह है कि वातावरण की बदलती हुई भिन्न-भिन्न परिस्थिति के साथ अपने को अभियोजित करने के लिए प्राणियो को अपनी प्रतिक्रियाओ के प्रकटीकरण के रूप मे भी परिवर्त्तन लाना पडता है।

पेड़-पौधो मे भी पतझड का होना तथा फिर से पत्तो का निकलना आदि ऐसी प्रतिक्रयाएँ है जो वातावरण से अभियोजन के कारण ही होती है। यदि ऐसा अभियोजन हो तो अन्य प्राणियो की तरह पेड़-पौधे भी कुछ दिनो मे मर जायँगे।

वातावरण (Environment) को एक मनोवैज्ञानिक ने निम्नलिखित शब्दों मे परिभाषित किया है—"जिन परिस्थितियों का आविर्भाव जीवन के गर्भधारण (Conception) के समय से आरम्भ होकर उसके चारो ओर जीवनपर्यन्त बना रहता है और जो उसकी क्रियाओ को प्रभावित करता है, उन्ही परिस्थितियों को हम वातावरण कहते हैं।"

स्पष्ट है कि ऐसी परिस्थितियाँ गर्भ के अन्दर भी है और बाहर के जगत् मे तो है ही। इसलिए वातावरण को हम मूलत दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं— (क) आन्तरिक वातावरण—(Internal Environment) एवं (ख) वाह्य वातावरण (External Environment)।

(क) आन्तरिक वातावरण—इसके अन्दर गर्भवती माँ के शरीर के अन्दर का तापमान (Temperature), रसायनिक सन्तुलन (Chemical balance), रक्त सचार (Blood Circulation) इत्यादि को शामिल करते हैं।

(ख) वाह्य वातावरण—इसमे जलवायु, परिवार, स्कूल, समाज इत्यादि की गणना होती है। वाह्य वातावरण भी दो भागो मे बाँटा जा सकता है—

(i) भौतिक वातावरण (Physical environment), जैसे—जगल, जल, वायु आदि।

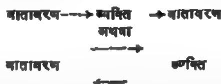
(ii) सामाजिक वातावरण (Social environment), जैसे—परिवार, पडोस, स्कूल, समुदाय इत्यादि।

प्राणी जब तक जीवित है तब तक उसे किसी-न-किसी प्रकार के वातावरण मे रहना ही पडता है, चाहे वातावरण आन्तरिक हो अथवा वाह्य। प्राणी का जीवन बहुत कुछ उसकी अभियोजनशीलता की क्षमता पर आधारित है।

अब तक हमलोगो ने तीन प्रमुख बातो की चर्चा की है—**प्राणी, अभियोजन और वातावरण**। हमने देखा है कि प्राणी किस प्रकार अपने वातावरण के अनुकूल परिवर्तन लाकर अपना अभियोजन करता है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि सिर्फ वातावरण ही प्राणी को प्रभावित करता है। ऐसे भी अवसर देखे जाते है जब प्राणी ही वातावरण को प्रभावित कर लेता है और वातावरण मे अपने अनुरूप परिवर्तन ला देता है, ताकि वातावरण और प्राणी का सम्यक् अभियोजन सम्भव

हो सके। गर्मी में पंखे का चलाना अथवा एयरकण्डीशन कमरे का निर्माण रात्रि में बिजली की रोशनी का जलाना आदि ऐसी प्रतिक्रियाएं है जिनके द्वारा मनुष्य वातावरण में ही अपने अनुकूल मे परिवर्तन ला देता है। फलस्वरूप, उसे गर्मी में भी गर्मी नही लगती अथवा रात्रि में भी अत्यधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता रहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति जब तक जीवित है तब तक उसमे और वातावरण में क्रिया प्रतिक्रिया (Action reaction) का सम्बन्ध बना रहता है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है।

अभियोजन की इस क्रिया को मनोवैज्ञानिको ने निम्नलिखित सूत्र के द्वारा अभिव्यक्त किया है—



मनुष्य की कोई प्रतिक्रिया वातावरण से पृथक नही हो सकती है। ध्यान से देखा जाय तो मनुष्यों की सारी प्रतिक्रियाएं जैसे—सीखना हँसना रोना भागना क्रोधित होना प्यार करना ध्यान देना इत्यादि सभी किसी-न किसी रूप में वातावरण से अभियोजन के ही परिणाम है। अस्तु प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य क्या करता है —तो इसके उत्तर में अलग अलग बहुत सी प्रतिक्रियाओ का नाम न लेकर मनोवैज्ञानिक हमें सिर्फ एक वाक्य में कहता है कि मनुष्य अपने वातावरण से अपना अभियोजन करता है।

अब दूसरा प्रश्न है—

२ प्राणी किस प्रकार करता ह (How the organism does)—अब तक हमने सिर्फ इतना देखा है कि प्राणी अपने वातावरण से अपना अभियोजन करता है। परन्तु अब प्रश्न है कि प्राणी अभियोजन किस प्रकार करता है।

प्राणी अपना अभियोजन अपनी प्रतिक्रियाओं (Reaction) के द्वारा करता है। वातावरण मे उत्पन्न कोई उत्तेजना जब प्राणी को प्रभावित करती है तो प्राणी में उस उत्तेजना के फलस्वरूप प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है जो उसके अभियोजन म सहायक होती है।

उत्तेजना (Stimulus)—'उत्तेजना (Stimulus) वातावरण में उत्पन्न एक ऐसी भौतिक शक्ति (Physical energy) है जो प्राणी म किसी ज्ञानेन्द्रिय को प्रभावित करती है तथा उसे क्रियाशील बनाती है।

आँख नाक कान जीभ त्वचा इत्यादि मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियां हैं। प्रकाश आँखों के लिए गन्ध नाक क लिए ध्वनि कान के लिए स्वाद जीभ के लिए तथा स्पर्श त्वचा के लिए उत्तेजना है।

जब प्रकाश-तरगें (Light waves) आँखो को उत्तेजित करती हैं तो प्राणी

के आँखो के भिन्न-भिन्न अवयव क्रियाशील हो उठते है। फलस्वरूप प्राणी उस वस्तु को देखता है जिससे प्रकाश-तरंगें निकल कर उसकी आँखो को उत्तेजित करती हैं।

ठीक इसी प्रकार जब किसी आवाज (सगीत, शोरगुल आदि) से उत्पन्न ध्वनि-तरगें हमारे कानो के अवयवो को उत्तेजित करती है तो वे क्रियाशील हो उठते है। परिणाम यह होता है कि हमे वह आवाज सुनाई पडती है।

इस प्रकार, हम देखते है कि उत्तेजना-विशेष हमारी ज्ञानेन्द्रिय-विशेष को प्रभावित ही नही करती वरन् उन्हे क्रियाशील भी बनाती है।

इन्ही उत्तेजनाओ के फलस्वरूप प्राणी मे हम प्रतिक्रियाएँ देखते हैं। मान लीजिये कि आप शिकार खेलने गये है। शिकार के दिखाई पडते ही झट आप निशाना लेकर गोली चला देते हैं। यहाँ शिकार का सामने चला आना आपकी आँखो के लिए उत्तेजना हुई। यह उत्तेजना प्रकाश तरंगो के रूप मे शिकार मे निकलकर आपकी आँखो तक पहुँची।

फिर सतर्क होना, निशाना लेना तथा गोली चला देना इत्यादि आपके ऐसे व्यवहार हुए, जिन्हे हम शिकार सामने आने की उत्तेजना से उत्पन्न आपकी प्रतिक्रिया (Response) कह सकते है।

उत्तेजनाएँ (Stimuli)— सच पूछिये तो सदा वातावरण मे सैकडो उत्तेजनाएँ अलग-अलग प्रभाव डालती रहती है। प्राणी सदा उत्तेजनाओ के बीच घिरा होता है। भिन्न-भिन्न वातावरण इन्ही उत्तेजनाओ का समूह मात्र है।

जो उत्तेजना प्राणी मे प्रतिक्रिया उत्पन्न करने मे समर्थ है, उसे समर्थ उत्तेजना (Adequate Stimulus) कहते है तथा जो उत्तेजनाएँ प्राणी मे प्रतिक्रिया उत्पन्न करने मे समर्थ नही है उन्हे असमर्थ उत्तेजना (Inadequate Stimulus) कहते हैं। मान लीजिये, आपके प्रोफेसर महोदय आपलोगो के वर्ग मे कुछ लिखवा रहे है। वे इतने जोर से बोल-बोलकर लिखवाते जा रहे है कि क्लास का हर एक लडका सुन सके। लडके सुनते जाते है और उनमे लिखने की प्रतिक्रिया होती जाती है। यहाँ प्रोफेसर महोदय की आवाज एक समर्थ उत्तेजना कहलायी जो छात्रो मे लिखने की प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में समर्थ है। ठीक इसके विपरीत, अगर प्रोफेसर महोदय अपनी आवाज बहुत धीमी कर दें अथवा फुसफुसाहट जैसे स्वर (Whisper) मे बोल-बोल कर लिखवाने लगें तो शायद सामने बैठे ध्यान लगाये कुछ लडको के अतिरिक्त अन्य लडके जो पीछे की सीटो (Seats) पर बैठे है वे कुछ ॥ सुन पायेंगे। अस्तु, उनमे लिखने की प्रतिक्रिया भी नही हो पायेगी। अस्तु, हम कह सकते हैं कि प्रोफेसर महोदय की फुसफुसाहट की आवाज छात्रो मे लिखने की प्रतिक्रिया उत्पन्न करने मे असमर्थ रही। अर्थात् अधिक छात्रो के लिये यह एक असमर्थ उत्तेजना सिद्ध हुई।

उत्तेजनाएँ वातावरण से ही उत्पन्न होती है। अस्तु, उत्तेजनाओ को भी हम मूलत: दो भागो मे बाँट सकते हैं—

(i) आन्तरिक उत्तेजना (Internal Stimuli) अर्थात् वे उत्तेजनाएं जो शरीर के अन्दर उत्पन्न होती है।

(ii) बाह्य उत्तेजना (External Stimuli) अर्थात् वे उत्तेजनाएं जो प्राणी के शरीर के भीतर न उत्पन्न होकर उसके बाहर उत्पन्न होती है।

आमाशय की दीवारों मे जब आपसी संघर्ष होता है तो उससे हमें भूख की उत्तेजना मिलती है तथा हम भोजन ढूंढने अथवा खाने की प्रतिक्रिया करते हैं। इसी प्रकार प्यास, थकावट आदि आन्तरिक उत्तेजनाएं है। इसके विपरीत प्रकाश ध्वनि गन्ध इत्यादि बाह्य उत्तेजनाओं के उदाहरण है।

यहाँ यह बात ध्यान मे रखने की है कि एक ही उत्तेजना भिन्न भिन्न व्यक्तियो मे एक ही समय भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं उत्पन्न कर सकती है। मान लीजिये कि कॉलिज की घण्टी समाप्त होने की घण्टी बज उठी। घण्टी से उत्पन्न ध्वनि-तरंगों की उत्तेजना छात्रों एवं अध्यापकों के कान ग्रहण करते हैं जिसके फलस्वरूप उन्हें घण्टी सुनाई पड़ती है। घण्टी का बजना एक उत्तेजना हुई।

परन्तु, घण्टी बजते ही वे छात्र क्लास (Class) से बाहर निकल आते हैं जिनको अब इस नये घण्टे में दूसरे कमरे मे जाना है। जिन अध्यापको को इस नये घण्टे मे अवकाश है, उनमे इस उत्तेजना के फलस्वरूप उठ कर क्लास की ओर जाने के बजाय आराम से बैठने अथवा स्वयं अध्ययन करने की प्रतिक्रिया होती है तथा जिनको उस घण्टी (Period) में क्लास लेना है वे अध्यापक शीघ्रता से उठ कर रजिस्टर (Register) खड़ी (Chalk), आदि लेकर क्लास की ओर जाते हैं।

अस्तु, घण्टी तो एक ही बजती थी परन्तु एक ही समय भिन्न भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न भिन्न प्रतिक्रियाएं देखी गयी।

इसी प्रकार एक ही व्यक्ति भिन्न भिन्न अवसरों पर एक ही प्रकार की उत्तेजनाओं के उपस्थित होने पर भी अपनी मानसिक स्थिति के अनुरूप प्राय भिन्न भिन्न प्रतिक्रियाएँ करते देखे जा सकते हैं। इतना तो स्पष्ट है कि प्रसन्नता के क्षणों में व्यक्ति ने जिस संगीत को एक बार सुन कर बार बार सुनने की प्रतिक्रिया देखी जाती है— प्राय उसी व्यक्ति मे शोक एवं दुःख के क्षणों मे उसी संगीत के प्रति उदासीनता विकर्षण अथवा प्रतिक्रियाएं देखी जाती है

प्रतिक्रियाएँ (Response)—इतना तो स्पष्ट है कि उत्तेजना जीव को प्रभावित करती है फलस्वरूप जीव मे कुछ क्रियाएं उत्पन्न होती हैं। इन क्रियाओं को उस उत्तेजना की प्रतिक्रिया कहते हैं।

खूब गर्म लोहे से हाथ छू जाने पर व्यक्ति हाथ तुरत खींच लेता है। अगर आपकी जीभ पर अँचार डाल दिया जाय तो लार निकलने लगती है। यहाँ लार का निकलना अथवा हाथ पीछे खींच लेना आदि अपनी अपनी उत्तेजना के प्रति की गयी प्रतिक्रियाएँ हैं।

कुछ प्रतिक्रियाएँ उत्तेजना के उपस्थित होने पर आप-से-आप उत्पन्न हो जाती है जिन्हें सहज क्रियाएं (Reflex actions) कहते हैं जैसे— आँखों पर तीव्र

प्रकाश पडने पर आँखो की पुतलियो का आकार स्वत अपेक्षाकृत अत्यधिक छोटा हो जाता है। ऊपर दिये गये दो उदाहरण, लार का गिरना तथा जलने पर हाथ का फुरत पीछे खीच लिया जाना इसके सुन्दर उदाहरण है।

परन्तु, कुछ प्रतिक्रियाएँ सहज रूप मे सहसा नही होती। मनुष्य उन प्रतिक्रियाओ को सोच समझकर करता है।

प्रतिक्रियाएँ हमारे चेतन मन (Conscious mind) से ही नही, वरन् अचेतन मन (Unconscious mind) से भी नियन्त्रित होती हे। यही कारण है कि मनुष्य जब सोया रहता है तो भी स्वप्न आदि मे उत्तेजना के प्रति कुछ-न-कुछ प्रतिक्रियाएँ करता रहता है।

हमारी प्रतिक्रियाओ पर हमारी मानसिक स्थिति का विशेष प्रभाव पडता है। यही कारण है कि एक ही उत्तेजना एक ही समय हममे क्रोध की प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है तो दूसरे समय प्रेम की प्रतिक्रिया। रोते हुए बच्चे को देख कर एक ही व्यक्ति मे कभी क्रोध उत्पन्न हो जा सकता है तो कभी उनमे बच्चे के प्रति स्नेह की प्रतिक्रिया देखी जा सकती है।

उत्तेजनाएँ प्राय हममे नयी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न ही नही करती वरन् पुरानी प्रतिक्रियाओ मे परिवर्तन अथवा परिमार्जन भी लाती पायी जाती है।

पहले से व्यक्ति मे कोई प्रतिक्रिया हो रही हो और इसी बीच यदि कोई नयी उत्तेजना उपस्थित हो जाय तो अक्सर ऐसा देखा जाता है कि पहले से होती हुई प्रतिक्रिया सर्वथा रुक-सी जाती है या कोई उसी से सम्बन्धित अथवा नयी प्रतिक्रिया होनी शुरू हो जाती है।

मान लीजिये, मैं किसी पत्र का उत्तर लिख रहा हूँ। इसी समय बगल के कमरे मे अगर घर का कोई लडका गिर जाने के कारण चीखने चिल्लाने लगे तो मुझमे लिखने की प्रतिक्रिया छोड कर उस बच्चे के कमरे मे जाने की प्रतिक्रिया देखी जायगी। इसी समय मुझसे मिलने अगर मेरा कोई मित्र दरवाजे पर आ जाय तो यदि मैं देखूँगा कि बच्चे को काफी चोट आयी है और मेरा उसको छोडकर जाना ठीक नही होगा तब मैं बच्चे को छोडकर मित्र के पास जाने की प्रतिक्रिया नही करूँगा। अगर कोई दूसरा सामान्य अवसर होता तो मुझमे मित्र के हेतु जाने की प्रतिक्रिया अविलम्ब देखी जाती।

अस्तु, यह परिस्थिति-विशेष एव व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक स्थिति पर निर्भर करती है कि किसी उत्तेजना के फलस्वरूप कब व्यक्ति मे कौन सी प्रतिक्रिया उत्पन्न होगी अथवा नही होगी। अत्यन्त दुखद सवाद पाकर प्राय मनुष्य रो देता है और कभी-कभी सुखद सवाद के कारण भी मनुष्य की आँखो मे आँसू आने की प्रतिक्रिया देखी जाती है। ऐसा भी देखा जाता है कि किसी प्रियजन की मृत्यु की खबर पाकर कोई-कोई भयकर किन्तु दर्दनाक हँसी हँस पडता है।

अस्तु यह कहना कि एक खास उत्तेजना के सम्पर्क मे आने पर व्यक्ति मे एक खास प्रकार की प्रतिक्रिया देखी जायगी, सर्वथा सत्य नही।

कुछ मनोवैज्ञानिकों (व्यवहारवादी) ने मनुष्यों के व्यवहारों की व्याख्या उत्तेजना प्रतिक्रिया-सूत्र (S-R Formula) के द्वारा करने का प्रयास किया है।

इस सूत्र के अनुसार किसी विशिष्ट उत्तेजना के सम्पर्क में आने पर व्यक्ति में एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया देखी जायगी। दूसरे शब्दों में हम ऐसा कह सकते हैं कि किसी विशेष प्रतिक्रिया के लिए उससे सम्बन्धित एक विशेष उत्तेजना का नितान्त आवश्यकता है। परन्तु जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से भी बहुत कुछ स्पष्ट है यह सूत्र ठीक नहीं कहा जा सकता। पहली बात तो यह है कि इस सूत्र के अनुसार उत्तेजना एवं प्रतिक्रिया का सम्बन्ध पूर्णतः यान्त्रिक (Mechanical) है।

दूसरी बात यह है कि सदा एक ही प्रकार की उत्तेजना के प्रति एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं देखी जाती है। एक छोटा बच्चा जलती लालटेन व चीज अथवा गर्म लोहा की उत्तेजना से प्रभावित होकर उसे छूने की प्रतिक्रिया करता है, परन्तु आगे चलकर अपने विकास के फलस्वरूप जलती लालटेन की उत्तेजना से प्रभावित होने पर भी वह उसे छूने का प्रयास नहीं करता। वह अब उसे दूसरा देखने की प्रतिक्रिया करता है साथ-ही-साथ हम यह भी जानते हैं कि जीवन से निराश एवं हताश व्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ भी शिथिलतर होती हैं। परन्तु जो व्यक्ति आशावादी है जिसमें उमंग है उसके द्वारा प्रकट की गयी प्रतिक्रियाएँ जोरदार होती हैं।

इस सूत्र में उत्तेजनाओं को ग्रहण करने वाले एवं प्रतिक्रियाओं को प्रकट करने वाले व्यक्ति की महत्ता स्वीकार नहीं की गयी है परन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी उत्तेजना को ग्रहण करने के बाद व्यक्ति में कैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न होगी यह व्यक्ति की मानसिक स्थिति स्वभाव मनोवृत्ति इत्यादि पर निर्भर करता है।

उत्तेजना प्रतिक्रिया सूत्र (S-R Formula) के अनुसार दुखद उत्तेजनाएं व्यक्ति में दुःखद की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करेंगी। परन्तु ऐसा अवसर देखा जाता है कि यदि व्यक्ति साहसी एवं प्रसन्नचित्त रहने वाला होता है तो दुखद उत्तेजनाएँ भी उसमें शोक की प्रतिक्रियाएँ नहीं उत्पन्न कर पाती है। दुःख की उत्तेजना पाकर भी व्यक्ति अपने दुःख को दबा कर मुस्कुराता ही पाया जाता है। यह मुस्कुराने की प्रतिक्रिया तथा दुःखद उत्तेजना दोनों के सम्बन्ध की व्याख्या उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सूत्र द्वारा नहीं हो पाती।

साधारणतः एक वयस्क स्त्री –
एक-दूसरे के प्रति कामोद्रेक से आकर्षित
के समान प्राणी के प्रति कामोद्रेक
परन्तु सभी में अक्सर [illegible] होने

प्रतिक्रिया जागृत नही होती है। यदि वासना उत्पन्न होने की प्रतिक्रिया के लिए सिर्फ विपरीत योनि (Opposite Sex) के व्यक्ति का दर्शन (उत्तेजना) ही यथेष्ठ होता तो सभी वयस्कों मे वासना की प्रतिक्रियाएँ समान अवसर पर समान रूप से पायी जाती, परन्तु हम ऐसा नही पाते हैं।

एक प्रेमिका अपने प्रेमी को घर आया देख कर प्रसन्नता न व्यक्त कर अपने माता-पिता को धोखा देने के उद्देश्य से अपने प्रेमी के प्रति अन्यमनस्कता अथवा परिस्थिति विशेष मे क्रोध की प्रतिक्रिया भी प्रकट करती पायी जाती है।

अगर हम प्रेमिका के मानसिक उद्देश्य को ध्यान मे न रखें तो उत्तेजना प्रतिक्रिया-सूत्र के अनुसार प्रेमी के आगमन (उत्तेजना) द्वारा प्रेमिका मे सदा प्रसन्नता की प्रतिक्रिया ही (बाह्य रूप से भी) उत्पन्न होनी चाहिए थी।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच व्यक्ति का बहुत ही प्रमुख स्थान है। किस उत्तेजना के प्रति कौन-सी प्रतिक्रिया होगी, यह व्यक्ति पर निर्भर करता है।

अस्तु, उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सूत्र (S-R-Formula) की जगह मनोवैज्ञानिकों ने निम्नलिखित सूत्र का प्रतिपादन किया है—

उत्तेजना-प्राणी-प्रतिक्रिया सूत्र

(Stimulus-Organism-Response Formula)

उत्तेजनाएँ व्यक्ति को प्रभावित करती हैं तथा व्यक्ति अपने प्रतिक्रियाओं को इन तीनो मे व्यक्ति (Organism) को पृथक् कर देना भूल है। इस सूत्र को उत्तेजना-प्राणी-प्रतिक्रिया(S-O-R-Formula) कहते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिको ने इन S-O R-Formula को S-O-R न लिखकर E-S-O-R-E लिखना अधिक उपयुक्त माना है। E से उनका अर्थ Environment से है। वे कहते है कि Stimulus वातावरण (E) से ही उत्पन्न होता है तथा वातावरण मे रहने वाले प्राणी की प्रतिक्रियाएँ भी वातावरण (E) मे ही प्रभाव उत्पन्न करती है। अस्तु, उनके इस सूत्र मे वातावरण (E) को भी शामिल कर लिया जाय। परन्तु, अधिक मनोवैज्ञानिक इस विचार से प्राय. तटस्थ जैसे हैं।

यहाँ पाठकों को यह नही भूलना चाहिए कि प्राणी अपने को प्रभावित करने वाली उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रियाओं के द्वारा ही वातावरण से अपना समुचित अभियोजन पाता है।

अब तीसरे प्रश्न पर थोड़ा विचार करें—

३ प्राणी किसी कार्य को क्यों करता है (Why the organism does)—इस अध्याय के प्रारम्भ मे ही हमारे सामने तीन प्रश्न आये थे—(१) मनुष्य क्या करता है ? (२) मनुष्य कैसे करता है ? (३) मनुष्य क्यों करता है ? इस क्या के उत्तर मे हमने देखा है कि मनुष्य अपने वातावरण से अपना अभियोजन करता है।

इस कैसे के उत्तर में हमने देखा है कि व्यक्ति अपने वातावरण म प्रभावित करने वाली उत्तेजनाओं की प्रतिक्रियों द्वारा अपना अभियोजन करता है।

अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि वह क्यों किसी परिस्थिति विशेष में किसी खास ढंग की ही क्रिया करता है और दूसरे ढंग की नहीं। मनुष्य ऐसा क्यों करता है जैसा कि वह करता हुआ पाया जाता है (Why a man does as he debaves) उसकी क्रियाओं के पीछे कौन-सी शक्ति काम करती है?

प्रातःकाल घड़ी के अलार्म (Alarm) के बजते ही हम क्यों अपना बिछावन छोड़ देते हैं? क्यों हम अपनी शौचादि दैनिक क्रियाओं से शीघ्र निवृत्त हो जाते हैं? क्यों हम किसी खास रंग की ही कमीज, साड़ी अथवा टाई अपने पहनावे के लिए चुनते हैं? हम क्यों अखबार पढ़ते हैं, चाय पीते हैं अथवा किसी को पत्र लिखने बैठ जाते हैं।

ऊपर दिए गये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके पीछे एक क्यों? लगा है तथा जिस "क्यों" का हमें उत्तर देना है। मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के व्यवहारों के पीछे छिपे इसी क्यों' का उत्तर देने का प्रयास किया है।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य द्वारा किये जाने वाले व्यवहारों के पीछे एक प्रेरक शक्ति (Motivating force) काम करती है। ये प्रेरक शक्तियाँ भिन्न भिन्न मनुष्यों में भिन्न भिन्न रूप तथा भिन्न भिन्न प्रकार से क्रियाशील पायी जाती हैं। एक ही व्यक्ति के जीवन में अलग अलग अवसरों पर किए गए व्यवहारों के पीछे अलग-अलग प्रेरक शक्तियाँ काम करती रहती हैं। ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही आधार पर कई एक प्रेरक शक्तियाँ मनुष्य को अपने अपने अनुसार व्यवहार करने के लिए बाध्य करने लगती है और मनुष्य के मस्तिष्क में यह संघर्ष (Conflict) उत्पन्न हो जाता है कि वह करे तो क्या करे? इस बात की व्याख्या क्रिया' नामक अध्याय में की गयी है। यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि मनुष्य के हर एक व्यवहार (जैसे दैनिक शौचादि क्रिया से लेकर गम्भीर चिन्तन तक के व्यवहार) के पीछे कोई-न-कोई प्रेरणा अथवा प्रेरणा देने वाली प्रेरक शक्ति काम करती रहती है।

हम किसी व्यवहार को किसी समय-विशेष में खास ढंग से इसलिए करते हैं कि उन व्यवहारों के उत्पन्न करने तथा उन्हें घटित करने एवं उनके द्वारा किसी लक्ष्य की प्राप्ति करने के पीछे कोई प्रेरक शक्ति अवश्य काम करती है।

अस्तु किस परिस्थिति में हमारा व्यवहार कैसा होगा इस बात को निर्धारित करने का प्रमुख श्रेय—प्रेरक शक्तियों को है।

अगर हमें मनुष्यों के व्यवहारों के पीछे छिपी हुई प्रेरक शक्तियों का सम्यक् ज्ञान हो जाय तो मनुष्यों के व्यवहार से सम्बन्धित हरेक क्यों? का उत्तर देने में समर्थ हो सकते हैं। प्रेरकों (Motive) की चर्चा मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न भिन्न शब्दों में की है जैसे—आवश्यकताएँ (Needs) प्रणोदन (Drives) इच्छा (Desire) इत्यादि।

प्रेरको की तीन प्रमुख क्रियाएँ— (१) हमारी क्रियाओ की उत्पत्ति करना (२) उत्पन्न करने के बाद उन्हें जारी रखना और (३) अन्त मे तब तक जारी रखना जब तक कि उनसे सम्बन्धित उद्देश्य की पूर्ति न हो जाय। प्रेरक शक्तियाँ उद्देश्य की पूर्ति होने तक हमारे व्यवहारो को एक खास ढग से नियन्त्रित करने का प्रयास करती है।

प्रेरक (Motive) व्यक्ति की एक आन्तरिक अवस्था (Internal condition) है, जिसके द्वारा उपर्युक्त तीनो कार्यो का सम्पादन होता है। इन आन्तरिक स्थितियो को हम प्रत्यक्ष रूप से देख नही पाते हैं। हमे इनका ज्ञान तभी प्राप्त होता है, जब प्रेरको का प्रकटीकरण व्यवहारो के रूप मे होता है। फिर उन व्यवहारो के निरीक्षण के आधार पर उनसे सम्बन्धित प्रेरको का अध्ययन कर पाते है।

भूख को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख पाते। परन्तु भूख की दशा मे किये गये व्यवहारो का अध्ययन कर हम समझ लेते है कि अमुक व्यक्ति इस प्रकार का व्यवहार भूख लगने के कारण कर रहा है। ठीक इसी प्रकार प्यास की अवस्था मे किये गये व्यवहार को देखकर हम यह समझ पाते है कि उस व्यक्ति-विशेष के व्यवहारो के पीछे प्यास की प्रेरक शक्ति काम कर रही है। इस प्रकार भूख (Hunger) और प्यास (Thirst) की तरह कई अन्य प्रेरक शक्तियो के नाम लिए जा सकते हैं, जैसे— काम (Sex—सेक्स), नीद, यश, मान-प्रतिष्ठता प्राप्त करने की इच्छा इत्यादि।

भूख और प्यास की प्रेरक शक्तियो के प्रभाव से हमारे शरीर के अन्दर कुछ आन्तरिक क्रियाएँ उत्पन्न होती है। फिर, इनके फलस्वरूप हममे भोजन अथवा पानी खोजने की इच्छा एवं व्यवहार देखे जाते है। ये व्यवहार किसी-न-किसी रूप मे प्राय तब तक चलते हैं जब तक कि उन प्रेरको की सन्तुष्टि न हो जाती है। भोजन अथवा पानी प्राप्त करने के बाद उनसे सम्बन्धित व्यवहारो का उस समय अन्त हो जाता है।

भूख और प्यास की अवस्थाओ मे उत्पन्न भोजन अथवा पानी की आवश्यकताओ के फलस्वरूप प्राणी मे एक प्रकार के तनाव (Tension) का अनुभव होता है। प्राणी इस तनाव की अवस्था मे बहुत अधिक समय तक नही रह सकता। अस्तु, वह इस प्रकार का व्यवहार करता है जिससे इस तनाव (Tension) का अन्त हो सके। भोजन ढूँढने की क्रिया से भोजन मिलता है और उसे खाकर व्यक्ति भूख द्वारा उत्पन्न मानसिक और शारीरिक तनाव (Tension) को दूर कर पाता है। इस प्रकार हम देखते है कि प्रेरित व्यवहार (Motivated behaviour) लक्ष्य-निर्देशित (Goal Directed) व्यवहार होते है।

अस्तु, मनुष्य क्यो किसी कार्य को करता है? इस प्रश्न के उत्तर मे हम कह सकते हैं कि मनुष्य अपने प्रेरको की सन्तुष्टि के लिए किसी व्यवहार को करता पाया जाता है।

प्रेरकों का वर्गीकरण (Classification of Motives)—ये प्रेरक शक्तियाँ कई प्रकार की होती हैं। मनोवैज्ञानिकों ने मूलतः इन्हें दो भागों में विभक्त किया है।

प्रेरक (Motives)

जन्मजात या प्रधान प्रेरक (Innate or Primary Motives)	*अर्जित या गौण प्रेरक* (Acquired or Secondary Motives)

जन्मजात प्रेरकों के अन्दर हम प्यास, भूख, नींद, भय, घृणा, प्रेम, यौन, काम इत्यादि को गिनते हैं। ये प्रेरक शक्तियाँ हमारे जीवन की रक्षा के लिए आवश्यक हैं। अस्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इन्हें प्रधान प्रेरक (Primary Motives) की संज्ञा दी है।

साथ साथ हममें कुछ अर्जित प्रेरक शक्तियाँ भी हैं जिन्हें हम अपने जीवन में अनुभवों के आधार पर धीरे-धीरे अपनाते जाते हैं। उदाहरण स्वरूप मान प्रतिष्ठा आत्म-स्थापना (Self assertion), धनार्जन इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं।

समाज में आदर तथा सम्मान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति बहुत-से कार्य करता पाया जाता है जैसे— दान देना, धर्मशाला बनवाना, अस्पताल खोलवाना इत्यादि। इन व्यवहारों के पीछे अधिक-से-अधिक आदर एवं सम्मान प्राप्त करने की भावना ही प्रेरक शक्ति बन कर काम करती रहती है। व्यक्ति चाहता है कि समाज में अधिक से अधिक यथा हो सके तो सभी लोग उसकी सराहना करें, उसे समाज में उच्च मान प्रतिष्ठा प्राप्त हो। यद्यपि ये गौण प्रेरकों के उदाहरण हैं परन्तु ऐसे भी व्यक्ति पाये जाते हैं जिनमें ये गौण प्रेरक इतने प्रमुख एवं बलशाली हो जाते हैं कि ये प्रायः प्रधान प्रेरकों के समान ही जीवन में स्थान प्राप्त कर लेते हैं। समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो समाज में अपनी इज्जत बनाये रखने के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा दे सकते हैं।

कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने प्रेरकों के दो और भागों में बाँटने की चेष्टा की है— (i) व्यक्तिगत प्रेरक (Personal Motives) तथा (ii) सामाजिक प्रेरक (Social Motives)।

(i) व्यक्तिगत प्रेरक शक्तियाँ— इसके अन्दर हम व्यक्ति के जीवन-लक्ष्य (Aim of life) आकांक्षाएँ (Aspirations) अभिरुचियाँ (Interests) मनोवृत्तियाँ (Attitude) इत्यादि को शामिल करते हैं।

अगर किसी व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य एक राजनीतिक नेता बनना है तो उसके व्यवहार एक अन्य व्यक्ति के व्यवहार से भिन्न देखे जायेंगे जो अपने भावी जीवन में एक कलाकार बनना चाहता है। दोनों के व्यवहारों में यह अन्तर इन दोनों के अन्दर क्रियाशील दो प्रेरक शक्तियों के कारण है जो दो भिन्न जीवन-लक्ष्यों की प्राप्ति से अपना सम्बन्ध रखती है। ठीक इसी प्रकार हमारी आकांक्षाएँ अभि

रुचियाँ आदि भी हमारी बहुत-सी क्रियाओ के पीछे प्रेरक का काम करती रहती है।

हमारी आदतें भी प्रेरक का कार्य करती हैं। यदि किसी को प्रतिदिन सुबह चाय अथवा रात्रि मे शराब पीने की आदत हो और समय हो जाने पर यदि उसे चाय अथवा शराब नही प्राप्त हो तो वह व्यग्र हो चाय अथवा शराब पीने के लिए चेष्ठाएँ करने लगेगा। जबतक उसे शराब मिल नही जायगी, तबतक वह इस प्रकार के व्यवहार करता रहेगा। अपनी आदत की आवश्यकता (Need) की पूर्ति नही कर पाने के कारण उसमे शारीरिक एव मानसिक असन्तुलन (Disequilibrium) की अनुभूति होगी।

इस असन्तुलन के कारण उसमे एक तनाव (Tension) उत्पन्न होगा, जो तब तक दूर नही होगा, जब तब वह अपनी क्रियाओ के फलस्वरूप शराब प्राप्त नही कर लेता है।

अस्तु, यहाँ अगर हमसे कोई पूछे कि अमुक मनुष्य मे व्यग्रतापूर्वक कुछ खोजने का व्यवहार क्यो हो रहा है, तो हम कह सकते हैं कि ऐसा व्यवहार वह अपनी आदत से प्रेरित होकर कर रहा है।

कुछ वैयक्तिक प्रेरक शक्तियाँ चेतन न होकर अचेतन रूप से कार्य करती हैं और हमारे व्यवहारो को एक निश्चित दिशा में निरन्तर जारी रखती हैं। इस अचेतन प्रेरकों का ज्ञान प्राणी को स्वय भी नही रहता। इसके उदाहरण सामान्य व्यक्तियो के निरीक्षण मे अनेक मिलेंगे। प्रतिदिन की बोलचाल अथवा लिखने आदि मे की गयी भूलो (Psychopathology of everyday life) से हमे अचेतन प्रेरकों का महत्त्व परिलक्षित होता है। हम प्राय उन लोगो को पत्र लिखकर भी उसे पत्र मजूषा (Letter box, लेटर बॉक्स) मे गिराना भूल जाते हैं, जिन लोगों के प्रति हमारे अचेतन में सुप्त घृणा अथवा विकर्षण (Hatred or aversion) वर्तमान है। यहाँ लिखा हुआ पत्र नही गिराने का व्यवहार अथवा यो कहें कि उसे गिराना भूल जाने का व्यवहार व्यक्ति मे इसलिए पाते है कि उसकी अचेतन प्रेरक शक्तियाँ (जैसे सुप्त घृणा आदि) उसे ऐसा ही करने को बाध्य कर देती है। फल यह होता है कि उन अचेतन प्रेरको की सन्तुष्टि हो जाती है।

(1) सामाजिक प्रेरक शक्तियाँ—इसके अन्तर्गत सामुदायिकता (Cregariousness), आत्म-स्थापना (Self-assertion), अर्जनात्मकता (Acquisitveness) एव कलह प्रवृत्ति (Pugnacity) इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

आपस मे समुदाय बना कर रहने की प्रवृत्ति प्राय प्रत्येक मनुष्य मे पायी जाती है। यही सामुदायिकता हमारे बहुत से सामाजिक व्यवहारो को प्रेरित करती है। जैसे—एक दूसरे से मिलकर रहना, एक-दूसरे की सहायता करना, दूसरे की बातो की इज्जत करना इत्यादि।

प्राय हरेक व्यक्ति चाहता है कि उसके अहम् (Ego) के प्रभुत्व को सभी स्वीकार करें। इसी प्रेरक शक्ति के वशीभूत होकर व्यक्ति कभी-कभी बिना किसी

मिलती है। ऐसी दशा में हम कहते हैं कि अमुक ने अपने माता पिता से इतना अधिक धन पाया था इतनी अधिक सम्पत्ति पायी थी। साधारण बोलचाल की भाषा में हम इसे सामाजिक वंशानुक्रम (Social inheritance) की सज्ञा देते हैं। परन्तु मनोविज्ञान में जब हम वंशानुक्रम शब्द का प्रयोग करते हैं तब हमारा अर्थ शारीरिक वंशानुक्रम (Biological inheritance) से रहता है। इसके कारण प्राणी अपने माता पिता तथा अन्य पूर्वजों से उनकी शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं के अतिरिक्त उनके अर्जित गुण भी अपने-आप स्वतः प्राप्त करते है। ये गुण ऊपर वाली पीढ़ियों (Generation) से नीचे वाली पीढियों में आप-से-आप उतरते (Transmitted) चले आते हैं। इसका एकमात्र आधार उनके माता पिता तथा अन्य पूर्वज पति पत्नी के यौन समागम (Sexual intercourse) को ही है। वंशानुक्रम एक ऐसी शारीरिक प्रक्रिया (Biological process) है जिसका आधार प्राय प्रत्येक प्राणी में यौन-समागम (Sexual Intercourse) ही है।[1]

शरीर की बनावट (Physique) स्नायु-मण्डल (Nervous system) बुद्धि (Intelligence), ग्रन्थि-मण्डल (Glandular system) आँखों का रग, शारीरिक रग हमारी मूल प्रवृत्तियाँ (Basic urges) कुछ सहज क्रियाएँ (Reflex action) इत्यादि हमें वंशानुक्रम द्वारा ही प्राप्त होती हैं। इन सभी का हमारे व्यक्तित्व के विकास में प्रमुख हाथ है।

व्यक्तित्व के विकास से हमारा तात्पर्य व्यक्ति के बाह्य गुणों जैसे—रहन सहन वेश भूषा, बोलचाल इत्यादि तथा आन्तरिक गुण जैसे धैर्य सहिष्णुता आत्म चिन्तन, जीवन दर्शन इत्यादि दोनों प्रकार के विकासों से होता है। कहना न होगा कि शारीरिक विकास का उपर्युक्त गुणों के विकास से बहुत-कुछ सम्बन्ध रहता है। अस्तु, शारीरिक विकास को भी व्यक्ति विकास का एक अंग ही समझना चाहिये।

वंशानुक्रम और वातावरण का व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव

वंशानुक्रमवादी मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए वंशानुक्रम ही सब कुछ (All in all) है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक गाल्टन (Galton) कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) आदि ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है मानसिक एवं शारीरिक शील-गुण (Traits) भी बहुत अशों में हमें अपने वंशानुक्रम से प्राप्त होते हैं। गाल्टन ने ९७७ उच्च स्तर के परिवारों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला था। गाल्टन (Galton) महोदय ने लगभग १८ परिवारों का दूसरा प्रमुख अनुसंधान किया। उन्होंने ३ ऐसे परिवारों को चुना जिनके लोग कलाकार प्रवृत्ति (Artistic ability) के थे। गाल्टन ने पाया कि परिवारों के ९४ प्रतिशत बच्चे भी

१ Sir ... sion of traits ... of

शक्ति से प्रेरित होकर जिस प्रकार के व्यवहार दिखाता है, उसी प्रकार के व्यवहार वयस्क एव प्रौढ व्यक्ति प्रदर्शित नही करते ।

व्यवहारो के परिवर्तन एव परिमार्जन के साथ-साथ प्रेरक प्रवृत्तियो मे बहुत कुछ परिमार्जन एव परिवर्तन होता देखा जाता है। यही कारण है कि विवाह के पूर्व बहुत-से पुरुषो की ओर काम वृत्ति (Sex-instinct) से प्रेरित होकर आकृष्ट होनेवाली स्त्री भी अपने विवाह के बाद अधिकतर अपने पति की ओर ही अपने काम (Sex) की तृप्ति (Satisfaction) के लिए आकर्षित होती है। प्राय ऐसी ही बातें पुरुषो मे भी पायी जाती हैं। वृद्धावस्था आते-आते यह काम वृत्ति तो इतना परिमार्जित हो जाती है कि इसका स्वरूप ही बदलकर, वात्सल्य, भक्ति आदि के व्यवहारो का रूप धारण कर लेता है।

फिर भी, मनुष्य कोई भी कार्य इसलिए करता है कि उसके करने मे उसके प्रेरक (Motive) को किसी-न-किसी रूप मे अवश्य सन्तुष्टि होती रहती है।

वशानुक्रम एव वातावरण
(Heredity and Environment)

अब तक हमलोगो ने प्राणी (विशेषकर मनुष्य) के व्यवहारो से क्या, कैसे तथा क्यो (What, How and Why) की चर्चा की है। इस क्यो के अध्ययन मे हमलोगो ने देखा है कि मनुष्यो की प्रतिक्रियाओ के पीछे कुछ प्रेरक शक्तियाँ (Motives) काम करती होती है। उन्ही प्रेरक शक्तियो की भिन्नता के कारण एक मनुष्य का व्यवहार दूसरे मनुष्य के व्यवहारो से भिन्न होता देखा जाता है।

सच पूछिये तो सिर्फ व्यवहार ही नही, वरन् स्वय मनुष्यो के व्यक्तित्व ही एक-दूसरे से वैयक्तित्व विभिन्नताएँ (Individual differences) रखते हैं। हरेक मनुष्य का व्यक्तित्व अपने ढग का अकेला (Unique) होता है।

वैयक्तिक भिन्नता का कारण वशानुक्रम एव वातावरण दोनो है। इन्ही दोनो के प्रभावो के ही कारण हरेक मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा एक मनुष्य का व्यक्तित्व दूसरे मनुष्य के व्यक्तित्व के जैसा बिल्कुल हू-ब-हू नही हो पाता है।

वशानुक्रम एक ऐसी शारीरिक प्रतिक्रिया (Biological process) है जिसके द्वारा आने वाली सन्ताने अपने माँ-बाप तथा पूर्वजों के जन्मजात एव जाति गुणो को अपने-आप स्वत ग्रहण कर लेती हैं। इस शारीरिक प्रक्रिया का सम्बन्ध प्राय एक ही जाति (Same species) के दो विपरीत यौन (Opposite sex) के प्राणियो के आपसी यौन-समागम (Sexual intercourse) से होता है। वशानुक्रम की उपर्युक्त परिभाषा को हम निम्नलिखित प्रकार से और भी अधिक स्पष्ट कर सकते है —

मान लीजिये कि किसी के माता-पिता काफी धन छोड कर स्वर्गवासी हो गये है। साधारणत उनका धन एव उनकी सम्पत्ति उनके मरने के बाद पुत्र का

मिलती है। ऐसी दशा मे हम कहते हैं कि अमुक ने अपने माता पिता से इतना अधिक धन पाया था इतनी अधिक सम्पत्ति पायी थी। साधारण बोलचाल की भाषा मे हम इसे सामाजिक वंशानुक्रम (Social inheritance) की संज्ञा देते हैं। परन्तु मनोविज्ञान मे जब हम वंशानुक्रम शब्द का प्रयोग करते हैं तब हमारा अर्थ शारीरिक वंशानुक्रम (Biological inheritance) में रहता है। इसके कारण प्राणी अपने माता पिता तथा अन्य पूर्वजों से उनकी शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं के अतिरिक्त उनके अर्जित गुण भी अपने आप स्वतः प्राप्त करते हैं। ये गुण ऊपर वाली पीढ़ियों (Generation) से नीचे वाली पीढ़ियों में आप-से-आप उतरते (Transmitted) चले जाते हैं। इसका एकमात्र कारण उनके माता पिता तथा अन्य पूर्वज पति-पत्नी के यौन समागम (Sexual intercourse) को ही है। वंशानुक्रम एक ऐसी शारीरिक प्रक्रिया (Biological process) है जिसका आधार प्राय प्रत्येक प्राणी में यौन-समागम (Sexual Intercourse) ही है।[1]

शरीर की बनावट (Physique) स्नायु मण्डल (Nervous system) बुद्धि (Intelligence), ग्रन्थि मण्डल (Glandular system) आँखों का रंग, शारीरिक रंग हमारी मूल प्रवृत्तियाँ (Basic urges) कुछ सहज क्रियाएँ (Reflex action) इत्यादि हमें वंशानुक्रम द्वारा ही प्राप्त होती हैं। इन सभी का हमारे व्यक्तित्व के विकास मे प्रमुख हाथ है।

व्यक्तित्व के विकास से हमारा तात्पर्य व्यक्ति के बाह्य गुणों जैसे—रहन सहन वेश भूषा, बोलचाल इत्यादि तथा आन्तरिक गुण जैसे धैर्य सहिष्णुता आत्म चिन्तन जीवन दर्शन इत्यादि दोनों प्रकार के विकासों से होता है। कहना न होगा कि शारीरिक विकास का उपयुक्त गुणों के विकास से बहुत-कुछ सम्बन्ध रहता है। अस्तु, शारीरिक विकास को भी व्यक्ति विकास का एक अंग ही समझना चाहिये।

वंशानुक्रम और वातावरण का व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव

वंशानुक्रमवादी मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए वंशानुक्रम ही सब कुछ (All in all) है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक गाल्टन (Galton) कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) आदि ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है मानसिक एवं शारीरिक शील-गुण (Traits) भी बहुत अंशों में हमे अपने वंशानुक्रम से प्राप्त होते हैं। गाल्टन ने ९७६ उच्च स्तर के परिवारों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला था। गाल्टन (Galton) महोदय ने लगभग १८० परिवारों का दूसरा प्रमुख अनुसन्धान किया। उन्होंने ३ ऐसे परिवारों को चुना जिनके लोग कलाकार प्रवृत्ति (Artistic ability) के थे। गाल्टन ने पाया कि परिवारों के ९४ प्रतिशत बच्चे भी

१ Simply defined biological heredity is the transmission of traits from one generation to the next through the process of reproduction — A P Sperling

कलाकार-प्रवृत्ति के निकले। इसके विपरीत लगभग १५० परिवारो के (जिनके लोग कलाकार-प्रवृत्ति के नही थे) ९७ प्रतिशत बच्चो मे भी कलाकार-प्रवृति नही पायी गयी।

गाल्टन ने ऐसे कई वंशवृक्षो (Family trees) का अध्ययन कर वंशानुक्रम के प्रभाव की चर्चा अपनी पुस्तक हेरीडिटेरी जिनियस (Hereditary Genius, 1869) मे की है। परन्तु डेकॉनडेले (Decondolle) नामक व्यक्ति ने ५०० यूरोपियन वैज्ञानिक के जीवन-इतिहास का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि वे वैज्ञानिक अपने वातावरण की देन थे, न कि वंशानुक्रम के।

गोडार्ड (Goddard) नामक मनोवैज्ञानिक ने वंशानुक्रम-सम्बन्धी अपने अनुसन्धानो मे पाया था कि मन्दबुद्धि की स्त्री की सन्ताने भी मन्द बुद्धि की ही होती है तथा तीक्ष्ण बुद्धि की माता से उत्पन्न सन्ताने तीक्ष्ण बुद्धि की होती है। उन्होने कई एक प्रयोग किये जिनमे कॉलिकॉक (Kallikak) नामक सैनिक की दो पत्नियो (एक मन्द बुद्धि, दूसरी तीक्ष्ण बुद्धि) से उत्पन्न-बच्चो का अध्ययन प्रमुख है जिसके आधार पर उन्होने उपर्युक्त निष्कर्ष निकाला।

गोडार्ड (Henery H. Goddard) ने सन् १९१२ ई० मे यह प्रयोग किया था। वस्तुत जिस व्यक्ति के परिवार के सदस्यो पर उन्होने अनुसन्धान किया उस व्यक्ति का नाम वे नही बताना चाहते थे। अस्तु, उन्होने उस व्यक्ति का एक नया नाम मार्टिन कॉलिकक (Mertin kallikak) रख दिया। कॉलिकॉक (Kallikak) एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ होता है भला-बुरा (Good bad)।

कॉलिकॉक एक मन्द बुद्धि की लडकी से अपना गुप्त सम्बन्ध (Illegitimate relation) रखता था जिससे उसे एक लडका पैदा हुआ जिसका नाम गोडार्ड (Goddard) ने अनुसन्धान-पत्र (Research pape) मे 'Old Horro' रखा है। इस 'Old Horror' नामक व्यक्ति से आगे चलकर उत्पन्न (६ पीढियो) ४८० व्यक्तियो के जीवन-इतिहास का गोडार्ड महोदय ने अध्ययन (Study) किया तो पाया कि उसमे सिर्फ ४६ व्यक्ति सामान्य बुद्धि के जैसे हुए।

१४३ मन्द बुद्धि निकले,
३ खूनी हुए,
३ मिरगी रोग (Epilepsy) के शिकार हुए,
३५ वेश्यागामी एव व्यभिचारी हुए,
२४ शराबी निकले,

और ८, वैश्यालय का चकला चलाने वाले (Brothel keeper) इत्यादि हुए।

पहले गुप्त प्रेम के सम्बन्ध के बाद कॉलिकॉक ने युद्ध मे सैनिक का काम किया। युद्ध से लौटकर उसने दूसरी तीव्र बुद्धि की महिला से विवाह किया। गोडार्ड (Goddard) ने उससे उत्पन्न ४९६ वंशजो का अध्ययन किया तो पाया कि तीव्र बुद्धि की महिला से उत्पन्न लडके आगे चलकर इंजीनियर, प्रोफेसर, जज, कुशल

व्यापारी और वज्ञानिक इत्यादि हुए । इस अध्ययन मे कालिकाँक के बाद की छ. पीढ़ियो (Generations) के लोग शामिल थे ।

विंशिप (Binship) ने भी एडवर्ड नामक एक व्यक्ति के परिवार में वंशानुक्रम का ऐसा ही महत्व पाया । बुद्धि वंशानुक्रम की देन है इस बात को टरमन Terman) ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है ।

एस्टाब्रुक्स (Estabrooks) एवं डगडल(Dugdale)ने ड्यूक वंश (अमेरिका निवास) में उत्पन्न लगभग एक हजार व्यक्तियों के जीवन इतिहास (Case-history) का अध्ययन किया और उनलोगों ने भी पाया कि मन्द बुद्धि एवं भ्रष्ट वंशानुक्रम रखने वाले पिता से उत्पन्न निम्न कोटि के परिवार के लगभग एक हजार व्यक्तियों से लगभग सौ सौ अस्सी चोर, डाकू खूनी जेलयोगा आवारा शराबी भिखारी इत्यादि निकले । एक हजार मे सिर्फ २० व्यक्ति ही ऐसे निकले जो किसी प्रकार अपना जीवन समाज मे सामान्य रूप से बिता पाये । इस एक हजार व्यक्तियों का जीवन प्रायः इस प्रकार बीता—

२०	व्यक्ति सामान्य जीवन
४०	जीवन भर किसी न किसी बीमारी से पीड़ित रहे,
१३०	बार बार जेल गये (चोरी जुआ आवारागर्दी इत्यादि के अपराध मे)
३१०	अन्त में भीख मांगने लगे
३००	अपनी बाल्यावस्था में ही मर गये ।
कुल १०००	

यह वंशानुक्रम का ही प्रभाव है कि समान जुड़वाँ (Identical twins) बच्चों मे मानसिक योग्यताएँ तथा शारीरिक बनावट आदि में अत्यधिक समानता होती है । इस अ श में भी न्यूमन का अस्सी जुड़वें बच्चों पर किया गया प्रयोग स्मरणीय है जिन्हें यहाँ विस्तार से लिखना अभीष्ट नहीं ।

वंशानुक्रम द्वारा हमे अपने शरीर मे कुछ ग्रन्थियाँ (Glands) भी प्राप्त होती है जिनकी क्रियाओं (Functions) द्वारा हमारे व्यक्तित्व का विकास एक खास प्रकार से होता है । यदि उनकी क्रियाओं में कोई असन्तुलन अथवा उनके रसस्राव (Secretion of Hormones) मे कोई कमी-बेशी हो जाती है तो उसका प्रभाव सिर्फ हमारे शारीरिक विकास पर ही नहीं पड़ता वरन् हमारे स्वभाव तथा अन्य मानसिक अवस्थाओं पर भी पड़ता है । इन ग्रन्थियो की क्रियाओं (Functions) मे कमी अथवा अधिकता होने के कारण कोई व्यक्ति क्रमशः शान्त अथवा चिड़चिड़ा हो जाता है तो कोई अत्यधिक नाटा अथवा खूब लम्बा हो जाता है। उसमे यौन समागम की इच्छा (Desire for sexual intercourse) एवं व्यवहार प्रौढ़ता प्राप्त करने के बहुत बाद भी नहीं दिखाई पड़ सकती है अथवा बहुत बचपन से यौन समागम के व्यवहार (Precocious sexuality) दिखाई पड़ने लग सकते हैं ।

उदाहरण के लिए, थायराइड (Thyroid), पिट्यूटरी (Pituitary) गोनाड्स (Gonads) इत्यादि ग्रन्थियो के नाम उल्लेखनीय हैं।

ग्रन्थियो अथवा पिण्डो की क्रियाओ मे गड़बडी उत्पन्न होने के कारण जो शारीरिक बनावट अथवा व्यवहारो मे परिवर्त्तन होते है उनका व्यक्ति के विकास पर काफी असर पडता है। यह ग्रन्थियो का प्रभाव है कि व्यक्ति बौना हो जाता है। एक अत्यधिक बौना व्यक्ति जब यह पाता है कि वह दूसरो से एकदम छोटा है तब उसके अन्दर हीनता की भावना (Feeling of inferiority) पैदा हो जाती है जिसका उसके व्यक्तित्व के विकास पर बुरा प्रभाव पडता है। ठीक इसी प्रकार यदि किसी किशोर अथवा किशोरी मे हो परिपक्व व्यक्तियो की तरह यौन-समागम की तीव्र इच्छा एव उनकी प्रकटीकरण देखा जाय तो निश्चय ही उनका व्यक्तित्व सभ्य समाज की दृष्टि से घृणित एव हास्यप्रद हो जायगा। इस विषय की विशद व्याख्या व्यक्तित्व के अध्याय (Chapter) मे की जा चुकी है। यहाँ कम-से-कम पाठको को इतना स्पष्ट जरूर हो गया होगा कि ग्रन्थियो की क्रियाओ (Function) अर्थात् उनके रसस्राव (Secretion of Hormones) के उचित अनुपात मे कमी अथवा बेशी होने से उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर उनका प्रभाव पडे बिना नही रहता है।

परन्तु इसका यह अर्थ नही कि मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास पूर्णत वशानुक्रम द्वारा ही नियन्त्रित होता हो। व्यक्तित्व का विकास वातावरण पर भी निर्भर करता है। वशानुक्रम किसी शून्यता (Vacuum) मे ही अकेला प्रभाव नही डालता।

वातावरण किसे कहते हैं तथा वातावरण कितने प्रकार का होता है, इन बातो की चर्चा सक्षेप मे पहले की जा चुकी है। यहाँ यह कहना अभीष्ट है कि वातावरण चाहे आन्तरिक (Internal environment) हो अथवा वाह्य (External), इसका प्रभाव व्यक्ति पर किसी-न-किसी रूप से अवश्य पडता है। भौतिक वातावरण तथा सामाजिक वातावरण के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिको ने एक मानसिक वातावरण (Psychological environment) की चर्चा की है। मनोवैज्ञानिको का कहना है कि इस मानसिक वातावरण का भी व्यक्तित्व के विकास पर कम महत्त्वपूर्ण प्रभाव नही पडता है।

मानसिक वातावरण के अन्दर हम मानसिक प्रतिमाओ (Mental images) एव अन्य अव्यक्त मानसिक प्रक्रियाओ (Mental contents) को शामिल करते हैं। मानसिक वातावरण प्राय व्यक्ति के तात्कालिक वातावरण से सर्वथा भिन्न देखा जाता है। मान लीजिए कि वर्ग मे अध्यापक पढा रहे है। परन्तु एक लडके के मस्तिष्क मे अपने घर पर बीमार वृद्ध पिता, दुखी माता, चिन्तित परिवार इत्यादि की मानसिक प्रतिमाएँ आ रही हैं तो हम कहेंगे कि यद्यपि उस लडके के तत्कालीन वाह्य वातावरण मे अध्यापक, पाठ्य-विषय अन्य लडके, पखे, डेस्क, वायुमण्डल

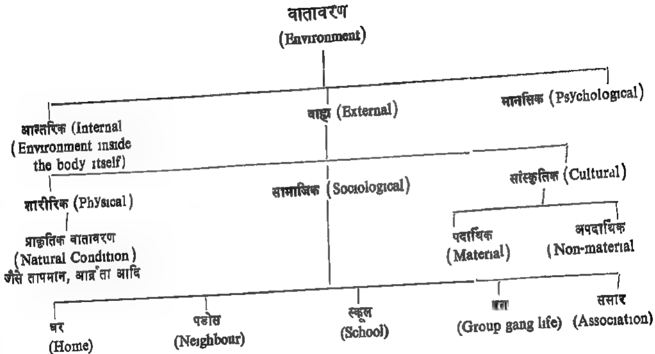
तापमान, आर्द्रता इत्यादि हैं फिर भी उसके मानसिक वातावरण में बाह्य वातावरण के इन भिन्न भिन्न पदार्थों से सर्वथा भिन्न ही बातें हैं। व्यक्ति जिस प्रकार अपने बाह्य वातावरण में प्रतिक्रियाएँ करता है, उसी प्रकार मानसिक वातावरण में भी प्रतिक्रिया करता पाया जाता है। इस मानसिक वातावरण का उद्गम प्रायः आन्तरिक या बाह्य वातावरण से ही होता है। परन्तु यदि किसी व्यक्ति में उसका मानसिक वातावरण ही अधिक प्रमुख एवं प्रभुत्वशाली हो जाता है तो वह व्यक्ति जीवन की वास्तविकता से क्रमशः तटस्थ होता जाता है और ख्यालों की दुनिया, मानसिक वातावरणों में ही अपना समायोजन करने लगता है। इससे यह व्यक्ति आत्मकेन्द्रित एवं अन्तर्मुखी हो जाता है जिसका उसपर तथा उसके समाज पर कभी-कभी बुरा असर भी पड़ता है।

जो वातावरणवादी मनोवैज्ञानिक हैं वे वातावरण को ही व्यक्तित्व के विकास के लिए सब कुछ मानते हैं। वाटसन (Watson) नामक मनोवैज्ञानिक ने तो यहाँ तक दावे के साथ कहा कि यदि उन्हें एक औसत स्वास्थ्य एवं बुद्धि का एक सामान्य बच्चा दिया जाय तो वे उसे वातावरण के समुचित नियन्त्रण द्वारा अपने इच्छानुसार वकील डाक्टर प्रोफेसर इन्जीनियर कलाकार इत्यादि कुछ भी निश्चित रूप से बना दे सकते हैं।[1] उन्होंने वंशानुक्रम के महत्व को एकदम नहीं स्वीकार किया। अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिए वातावरणवादियों ने बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के वातावरणों का व्यक्तित्व के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है इस बात का पता लगाया है।

एक ऐसा प्रयोग किया गया जिसमें गर्भ के अन्दर के बच्चे पर आन्तरिक वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है, इस बात का पता चल सके। ऐसे प्रयोग जानवरों पर ही अधिक हो पाये हैं। यह देखा गया है कि गर्भ के अन्दर बच्चे पर माँ के शरीर के अन्दर की ग्रन्थियों का रसस्राव गर्भ के अन्दर का तापमान रक्त संचार शारीरिक पाक-क्रिया (Basal metabolism) का भी प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रमवादियों का विश्वास था कि बुद्धि वंशानुक्रम की देन है तथा वातावरण के प्रभाव से यह अछूता रहता है। जिस व्यक्ति में बुद्धि की यथेष्ठ मात्रा वर्तमान है, उसका व्यक्तित्व आगे चल कर जरूर प्रतिभाशाली होगा। परन्तु प्रयोगों के आधार पर दैनिक जीवन में भी ऐसा देखा गया है कि तीव्र बुद्धि के बालक को भी यदि कुछ वर्षों तक मन्द बुद्धि के लोगों के बीच एक निश्चित समाज में रख दिया जाय तो उन पर वातावरण का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ने लगता है कि उनका व्यवहार भी मन्द

---

[1] Give me a dozen healthy infants well formed and my own specified world to bring them up in and I will guarantee to take anyone atrandom and train him to become any type of specialist I might select doctor lawyer artist merchant-chief and yes even beggarman and theif regardless of his talents penchants tendencies vocation and race of his ancestors. —Watson B (1925)



वातावरण के इन विभिन्न अंगो का व्यक्तित्व के विकास पर [illegible] प्रभाव पड़ेगा इसकी चर्चा व्यक्तित्व के अध्याय (दूसरे खण्ड के आठवे अध्याय) मे भी की गई है। यहाँ मानसिक वातावरण की थोडी चर्चा करेंगे।

बुद्धि के बालकों के व्यवहारों के जैसा ही होने लगता है। बुद्धि मापने की जाँच पद्धति (Test) के आधार पर यह भी पता चलता है कि बालकों की बुद्धि ऐसी अवस्था में बहुत कुछ घट भी जाती है। ऐसी तीव्र बुद्धि के बच्चो को जो अपने अनुचित वातावरण के कारण मन्द बुद्धि वाले हो जाते हैं उन्हें टरमन (Terman) ने एनविरानमण्टल ईडियट (Environmental Idiot) कह कर पुकारा है।

ठीक इसके विपरीत यह देखा गया है कि औसत से भी कम बुद्धि रखने वाले (Below the average intelligence) बच्चे बुद्धिमान व्यक्तियो के बीच अथवा योग्य समाज में रह कर औसत से उच्च बुद्धि रखने वाले (Above the average Intelligence) लडकों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। अर्थात् अच्छे अथवा बुरे वातावरण के प्रभाव से बालकों की बुद्धि के अनुपात में भी वृद्धि या कमी देखी गयी है। बारबरा एस० बर्कस (Barbara S Burks) ने कुछ बच्चो (Fostor children) की बुद्धि के विकास का अध्ययन किया और पाया कि बच्चे यदि जन्म से ही किसी दूसरे माता पिता के परिवार (Fostory homes) मे ही रख दिये जायें और वहीं ही पाले पोसे जायें तो भी उनकी बुद्धि उनके पहले वाले अपने माता पिता के समान ही होती है। अस्तु, बर्क्स ने वंशानुक्रम को ही अधिक महत्त्व दिया। पर ठीक इसी प्रकार के दूसरे प्रयोग मे फ्रीमन (Freeman) ने पाया कि अगर बच्चों को दूसरे माता पिता के साथ एकदम बचपन से ही पाला जाय और दूसरे माता पिता के यहाँ का वातावरण बहुत उन्नत हो तो बच्चों की बुद्धि में ७८ I Q की वृद्धि हो जाती है। अस्तु उन्होंने वातावरण को ही अधिक महत्त्व दिया।

आइओवा विश्वविद्यालय (Iowa University) के मनोवैज्ञानिकों ने तो इस विषय पर एक नया विवाद (Controversy) ही खडा कर दिया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार एक उपयुक्त वातावरण किसी की बुद्धि को और अधिक बढा सकता है उसी प्रकार एक बुरे वातावरण मे पडकर किसी सामान्य (Average) बुद्धि का बालक निम्नतर स्तर (Lower than the average) बुद्धि को प्राप्त हो सकता है। आइयोवा (Iowa) विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रसंग में कई एक प्रयोग किये जिनमे यहाँ सिर्फ दो प्रयोगों की चर्चा हम करते हैं।

१ वेलमन (Wellman) का प्रयोग— उन्होंने कुछ बच्चों को चुना। फिर उन्होंने उनकी बुद्धि की जाँच की। उसके बाद उन बच्चों को स्कूल (Nursery school) मे पढने को भेजा गया। वहाँ एक नया और अच्छा वातावरण था। कुछ दिनों के बाद उन बच्चों की बुद्धि (I Q) की जाँच (Test) की गयी। वेलमन ने पाया कि बच्चों को बुद्धि पहले से अधिक हो गयी थी। फिर कुछ दिनो के बाद उन्हें अपने घर (पहले वाला वातावरण) पर भेज दिया गया। घर का वातावरण स्कूल जैसा उन्नत न था। फल यह हुआ कि कुछ दिनो के बाद जाँच करने पर उनकी बढी हुई बुद्धि फिर घर पर प्राय पहले ही जैसी हो गयी थी। बुद्धि में बढ़ती घटती वातावरण के कारण ही हुई।

२ स्कील (Skeel) का प्रयोग—उन्होने मन्द बुद्धि (Feeble minded) माताओ के बच्चो को चुना और उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार के समुन्नत वातावरण मे रख कर पलने दिया। कुछ समय के बाद उन्होने फिर जब उन बच्चो की बुद्धि की परीक्षा की तो उन्होने पाया कि जो बच्चे जितने ही समुन्नत वातावरण मे पले थे उनकी बुद्धि मे उतनी ही अधिक बढती हुई थी।

फिर भी, बुद्धि के विकास पर हमे वंशानुक्रम और वातावरण दोनो का प्रभाव मानना चाहिए, सिर्फ किसी एक का नही।

यही कारण है कि एक अच्छे परिवार, स्कूल तथा समाज मे पला साधारण बुद्धि का बालक भी अपेक्षाकृत अधिक विकास एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति हो पाता है। वातावरण अगर अच्छा है तो एक बुरे वंशानुक्रम के बालक का भी व्यक्तित्व अच्छा हो सकता है। आज रूस और अमेरिका के बालक जो अपना इतना अधिक विकास कर पाते हैं, यह इसलिए नही कि वे भारतीय बालकों से मूलत अधिक बुद्धि रखते है, वरन् सिर्फ इसलिए कि रूस और अमेरिका के बालको को अपने व्यक्तित्व का सम्यक् विकास करने के लिए जैसा उपयुक्त वातावरण मिलता है वैसा भारतीय बालको को नही मिल पाता है।

यह वातावरण का ही प्रभाव है कि एक गरीब माँ-बाप का तीव्र-से-तीव्र बुद्धि का लडका भी अपना यथेष्ट विकास नही कर पाता है। साधारणत गरीब तथा अमीर के बच्चे मे बुद्धि का वास्तविक अन्तर (Significant differences) एकदम नही होता है। परन्तु आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक,धार्मिक इत्यादि वातावरणो की यथेष्ट सहायता के अभाव मे गरीब के बच्चे का यथोचित विकास कभी नही हो पाता।

मनोवैज्ञानिको ने तो कितने ही ऐसे प्रयोग किये हैं जिसमे समान उम्र एव बुद्धि के बालको को भिन्न-भिन्न वातावरणो मे कुछ वर्षो तक रखा गया। परिणाम यह हुआ कि जो बालक चोर, आवारा आदि के सम्पर्क मे पला वह चोर, आवारा हो गया तथा जो बालक पढे-लिखे परिवार एव सभ्य समाज मे रहा वह अपेक्षाकृत कही अधिक पढा-लिखा एव सभ्य बन पाया। ब्लाज (Blatz), न्यूमैन (Newman) आदि मनोवैज्ञानिको ने दो जुडवे बच्चो को दो प्रकार के व्यक्तित्व मे अलग-अलग रख दिया। फलस्वरूप, कुछ वर्षों के बाद दोनो बालको के व्यक्तित्व मे अलग-अलग गुण पाये गये। अस्तु, वातावरणवादियो का कहना है कि ज्यूक वश (Juke family Dugbale's experiment) के अधिकतर लोग चोर, बदमाश, भिखारी, खूनी इत्यादि सिर्फ इसलिए हो गये कि उनलोगो का सम्पूर्ण वातावरण ही चोर, बदमाश, आवारो इत्यादि से भरा था। अगर उन्हें एक अच्छे वातावरण मे रहने का अवसर मिल सकता तो उनका व्यक्तित्व कभी बुरा नही हो पाता।

हॉलजिनर (Holzner) ने दो समान (Identical) जुडवाँ बच्चियो का अध्ययन किया था। दोनो समान बुद्धि की थी। एक को एक अच्छे वातावरण मे रखा गया तथा दूसरी को एक पिछडे (Backward) ग्रामीण वातावरण मे रखा

गया। कुछ वर्षों के बाद फिर दानों की बुद्धि का जाँच की गयी तो पता चला कि पहली की बुद्धि लब्धि अब ११६ हो गयी थी तथा दूसरी की बुद्धि लब्धि ९२ थी। यह अन्तर वातावरण के कारण हुआ।

जुड़वें बच्चों पर किये गये अन्य प्रयोग— गाल्टन (Galton) महोदय ने ८० जुड़वें बच्चो के व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन किया जो प्राय: अलग अलग वातावरण म पले थे। परन्तु उन्होंने उन बच्चों के विकास में वातावरण की भिन्नता रहने हुए भी समानता पायी। अस्तु, गाल्टन ने वंशानुक्रम के प्रभाव में ही अधिक विश्वास किया है।

यह सन् १९०५ ई० की बात है कि थार्नडाइक (Thorndike Columbo University) महोदय ने कुछ जुड़वें बच्चो को चुना और कुछ सहोदर भाई-बहनों को उनलोगों पर उन्होंने कुछ टेस्ट (Test) किया। उनलोगो को कुछ हिसाब के प्रश्न हल करने के लिए दिये। कुछ शब्दों के विपरीतार्थक शब्द करने के लिए कहा गया आदि। थार्नडाइक ने पाया कि जुड़वें बच्चों ने उनके विभिन्न टेस्टों में प्राय समान ही अंक (Score) पाये थे। सहोदर भाई बहनों(Siblings) द्वारा प्राप्त अंकों का आपसी अन्तर अधिक था। थार्नडाइक ने जुड़वें बच्चों द्वारा प्राप्त अंकों की व्याख्या में वंशानुक्रम के प्रभावों को ही दर्शाया। मैकनेमर (Maknemer) ने भी अपने प्रयोगों में पाया कि एकरूप जुड़वें बच्चे (Identical twin) मानसिक और शारीरिक शील-गुणों (Traits) में प्राय समान ही होते है। उनमें बहुत कम ही का आपसी अन्तर होता है।

शिकागो यूनिवर्सिटी अमेरिका के कुछ मनोवैज्ञानिकों ने, जिनमे न्यूमन (Newmam) का नाम प्रमुख है यह जानने के लिए अनुसन्धान किया कि शारीरिक विकास के किस पहलू(Aspect) पर वातावरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। उनलोगों ने पाया कि शारीरिक बनावट (Structure of the body) तथा स्वभाव(Tempetament)पर वातावरण का सबसे कम प्रभाव पड़ता है। शारीरिक वजन और स्वास्थ्य पर वातावरण का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ता है। इस सिलसिले मे उनलोगो ने देश भर से चुने हुए १९ जोड़े जुड़वें बच्चों पर भी अध्ययन किया था। गाल्टन (Galton) के निष्कर्ष के विपरीत इनलोगो ने पाया कि यदि जुड़वें बच्चों को भी अलग-अलग वातावरण मे रखा जाये तो उनके व्यक्तित्व भिन्न भिन्न रूपों में विकसित होते हैं।

ऐडलर (Adler) ने स्पष्ट कहा कि किसी व्यक्ति की जीवन-शैली (Style of life) का निर्माण वातावरण करता है। बाल्डविन (Baldwin) हिंडले (Hindley) आदि मनोवैज्ञानिकों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह वातावरण के अन्तर का ही कारण है कि शहर के बालकों की बुद्धि देहात मे रहने वाले बच्चों की अपेक्षा अधिक विकसित होती है। प्रसी और थामस (Pressy and Thomas) भी ३२१ लड़कों पर किये अनुसन्धान मे यही पायी। डिकोण्डोले (Deccondolle)

ने ५०० यूरोपियन वैज्ञानिको के विकास-क्रम का अध्ययन कर बताया कि उन सारे वैज्ञानिको की उन्नति उनके वातावरण की ही देन थी।

गार्डन (Gordon) ने मल्लाहो एव अन्य पिछडी जातियों के बच्चो का, उनके विकास के साथ-साथ समय-समय पर बुद्धि माप कर देखा। उन्होने पाया कि अविकसित समाज मे पलने वाले उन बालको की बुद्धि धीरे-धीरे घटती जा रही थी। गार्डन ने पाया कि प्राय ६ वर्ष की उम्र मे पहुँचने पर वे ही बालक टेस्ट द्वारा परीक्षण करने पर औसत से कम बुद्धि के पाये गये। वातावरण का महत्त्व पोष्य घरो (Foster home) मे पलने वाले बच्चो को देख कर और स्पष्ट मालूम पडता है। बाल अपराध करने वाले बच्चे भी पोष्य-घरो मे पल कर सुधर जाते हैं।

वातावरण की प्रभुता सिद्ध करने वाले अन्वेषको ने तो कई ऐसे उदाहरण भी पाये हैं जहाँ पशु भी मनुष्यो के वातावरण मे रह कर बहुत कुछ मनुष्यो की तरह उठना, बैठना, चलना, कपडा पहनना इत्यादि सीख गया है तथा कई मनुष्यो के बच्चे भी जानवरो के बीच रहने अथवा जानवरो द्वारा पाले जाने के कारण जानवरो जैसे व्यवहार करने लगे है।

जगल और जानवरो के वातावरण मे पलने के कारण आदमी के बच्चे भी जानवरो-जैसे हो जाते है। फ्रास मे आदमी का एक बच्चा जगल मे पाया गया था। वह बचपन मे ही माता-पिता की भूल से अथवा किसी और कारणवश जगल मे छूट गया था। परन्तु सौभाग्यवश उसे किसी जानवर ने मार नही दिया वरन् उन जानवरो द्वारा ही पाला-पोसा गया। बडा होने पर मनुष्यो ने उसे एक दिन अचानक देखा और वे उसे बाहर ले आये। जगल मे रहते-रहते उस बच्चे का रहन-सहन बिलकुल जानवरो जैसा हो गया था। वह एकदम नगा अपने दोनो हाथो एव पैरो के सहारे जानवरो जैसा दौडता, उछलता-कुदता था। वह जानवरो जैसा ही भोजन मे मुँह सटा कर खाना सीख गया था, उसकी बोली भी जानवरो-जैसी हो गयी थी क्रोधित होने पर अपने दाँतो एवं बडे-बडे नाखूनो से मनुष्यो को नोचने-खसोटने के लिए उनपर झपट पडता था।

उसे पकड कर फ्रास की राजधानी पेरिस (Paris) लाया गया। वहाँ उसको मनुष्यो के जैसा सभ्य बनाने का प्रयास डा० जीनइटाई (Dr Jeanitai) महोदय के निरीक्षण मे होने लगा। उसका नाम विक्टर (Victor) रखा गया। वह बच्चा मन्द बुद्धि जैसा था। बहुत प्रयासो के बाद वह मनुष्यो की कुछ बोली समझ एव बोल सका, परन्तु सामान्य व्यक्तियो (Normal Individuals) की तरह सभ्य नही बनाया जा सका। वातावरणवादियो को अपनी धारणा के पुष्टिकरण के लिए यह एक सुन्दर उदाहरण मिला। उनका कहना है कि यह जगली वातावरण का ही प्रभाव था कि मनुष्य का बच्चा भी पशु-जैसा हो गया। ऐसे उदाहरण फ्रास मे ही नही वरन् संसार मे कई एक जगहो मे मिले है। लगभग सन् १९२० ई० की आश्चर्यजनक बात है कि बंगाल प्रान्त मे दो लडकियाँ भेडिये की माँद मे पायी गयी। सिंग (Mr.

Zingg) ने अपनी किताब वुल्फ चिल्ड्रन (Wolf Children) में इसकी चर्चा की है। इन लड़कियों की कहानी उन्होंने पाल सी स्पायर्स (Paul C. Spuires) नाम के व्यक्ति से सुनी थी। उन दोनों लड़कियों में एक की उम्र प्राय ९ वर्ष और दूसरे की उम्र २ वर्ष मालूम पड़ती थी। उन्हें एक अनाथाश्रम में जे० जे० एल सिंह (भारतीय) तथा उनकी पत्नी की देख रेख में रखा गया। उनलोगों ने उन लड़कियों को आदमी जैसा बनाने का प्रयास किया। उनके नये नाम रखे गये—कमला और विमला। ये लड़कियाँ भी अपने हाथ-पैर के सहारे चलती थी। कच्चा माँस खाना, नंगे उछलना कूदना, छोटे-छोटे जीवों जैसे चूहे, मुर्गी इत्यादि को कच्चा चबा कर निगल लेना इत्यादि सारे जंगली व्यवहार उनमें थे। रात को वे इधर-उधर बाहर चक्कर (Roaming) लगाने में दिलचस्पी रखती थी।

बहुत कठिन प्रयासों के बाद वे प्लेट में खाना, कपड़े पहनना, संकेत और दूसरों की सरल बोली समझना, लगभग १०० शब्द खुद बोलना, मानव बच्चों के साथ खाना, खेलना, सोना इत्यादि सीख सकीं।

परन्तु दुर्भाग्य से वे अधिक दिनों तक जीवित न रह सकी। अस्तु, यह अनुसंधान तथा प्रयास बन्द कर दिया गया।

अभी हाल ही की बात है कि सैलवाडोर (Salvador) के किसी जंगली हिस्से में एक पुलिस ने बड़ी मुश्किल से आदमी के एक बच्चे को पकड़ा था। वह बच्चा कुछ बड़ा हो गया था और वह सिर्फ एक ही शब्द बोल पाता था टैमोशा (Tamosha)। इसलिए इस लड़के का नाम ही टैमोशा (Tamosha) रख दिया गया। चुलु (Jorge Ramurez Chulu) नामक मनोवैज्ञानिक ने इसे सभ्य बनाने का काफी प्रयास किया। बच्चा पेड़ की डालों पर बन्दर की तरह बड़ी खूबी से चढ़ने उतरने, निशाना लगाने आदि कार्यों में निपुण था। उसे जमीन पर ही जानवरों की तरह सिकुड़ कर सोना पसन्द था। ऐसा लगता था जैसे वह कुछ बड़ा होने पर जंगल में घुस गया था। इसलिए वह खाना, नहाना, चलना, बोलना इत्यादि साधारण रूप से सीख तो गया परन्तु वह बहुत प्रयास के बाद भी अपने असली माँ बाप, पुराना घर-द्वार याद करने में समर्थ न हो पाया।

इन उदाहरणों से कम-से-कम इतना तो स्पष्ट है कि वातावरण यदि मनुष्यों को सभ्य सुसंस्कृत बना सकता है तो वह मनुष्यों को महान असभ्य और जंगली भी बना दे सकता है।

वंशानुक्रम और वातावरण के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन के दृष्टिकोण से किया गया केलॉग (Kellog) नामक मनोवैज्ञानिक का प्रयास प्रशंसनीय है। उन्होंने एक वनमानुष के बच्चे और अपने बच्चे को साथ-साथ पाला। वनमानुष के बच्चे की उम्र लगभग ६ महीने की थी और उनके बच्चे की उम्र प्रायः १० महीने की। इसी उम्र से दोनों को एक ही प्रकार की ट्रेनिंग दी गयी। वनमानुष के बच्चे का नाम गुआ (Gua) रखा गया और उनके बच्चे का नाम डोनाल्ड (Donald) था। १६ महीने की अवस्था तक पहुँचते पहुँचते गुआ में भी बहुत-से मानव शिशु जैसे व्यवहार

हो गये, जैसे—जूता, मोजा, कमीज, पट पहनना, अपना बटन लगा लेना, टहलने को निकलना, हाथ मिलाना, छूरी-चमचा का प्रयोग करना, चाय पीना इत्यादि। परन्तु धीरे-धीरे यह पाया गया कि डोनाल्ड की भाषा, चिन्तन (Reasoning) आदि बढ गयी। गुआ का शब्द-भण्डार और बोलने का ढग (Articulation and Intonation) आदि डोनाल्ड से काफी पिछडा हुआ रहा। परन्तु उछलने, कूदने, पेड पर चढने, ऊँची जगह से नीचे बेधडक कूद पडने मे गुआ ही आगे रहा।

समान वातावरण मे रहते हुए भी 'गुआ' डोनाल्ड की तरह सभ्य और शिक्षित नही बन सका। कुछ दूर तक उसने मानव-सुलभ-व्यवहारो को अपनाया, परन्तु एक निश्चित अवस्था पहुँचने के बाद उसमे आगे तरक्की नही देखी गयी। वस्तुत वशानुक्रम जीवन की उन्नति की एक सीमा (Limit) निर्धारित कर देता है, अर्थात् एक जीव अमुक स्तर तक अपनी तरक्की कर सकेगा, उसके बाद नही (Thus far and no further)। यदि वशानुक्रम का ऐसा प्रभाव न होता तो एक बन्दर को भी शायद ग्रेजुएट बना दिया जा सकता या प्रत्येक व्यक्ति एक बहुत बडा स्कॉलर (Scholar) हो जा सकता।

तब यह भी जान लेना आवश्यक है कि वाट्सन (Watson) आदि मनोवैज्ञानिको का वातावरण के महत्त्व पर जोर देना भी निर्मूल नही। उपयुक्त वातावरण जिस प्रकार व्यक्ति को बना सकता है उसी प्रकार अनुपयुक्त वातावरण उसके विकास को बिगाड सकता है। यदि गुआ (Gua) को ऐसे अच्छे मानव वातावरण मे नही रखा जाय तो वह पूर्णत जंगल का वनमानुष ही बना रहता। आदमी के बच्चे भी जगली वातावरण मे रह कर जंगली हो जाते है।

संक्षेप मे ऊपर दिये गये उदाहरणो से स्पष्ट है कि मनुष्य का विकास वातावरण पर बहुत अधिक निर्भर करता है परन्तु इसका अर्थ यह नही कि वशानुक्रम का कोई महत्त्व ही नही है। मनुष्य का व्यक्तित्व-विकास सच पूछा जाय तो वशानुक्रम एव वातावरण दोनो प्रभावित होता है। अत दोनो के महत्त्व समान हैं। दोनो मे से किसी एक को प्रधान तथा दूसरे को गौण कहना भूल है। जिस प्रकार किसी पौधे के समुचित विकास के लिए अच्छे बीज के साथ-साथ अच्छी मिट्टी, पानी, सूर्य के प्रकाश इत्यादि सभी की उचित मात्रा मे आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार व्यक्ति के विकास के लिए एक अच्छे वशानुक्रम के अतिरिक्त एक अच्छे वातावरण की भी आवश्यकता होती है। व्यक्तित्व वशानुक्रम एव वातावरण के आपसी सम्बन्ध एव घात-प्रतिघात (Inter-action) का ही प्रतिफल है। वशानुक्रम एवं वातावरण का घात-प्रतिघात मनुष्य के जीवन के आदि से अन्त तक चलता ही रहता है। इस घात-प्रतिघात के होने मे समय की बीतती हुई अवधि (Duration) का भी महत्त्व ध्यान मे रखना अनिवार्य है। यही कारण है कि व्यक्ति को वशानुक्रम, वातावरण एव समय इन तीनो का गुणनफल भी कहा गया है। इस प्रकार व्यक्तित्व-विकास

को निम्नलिखित सूत्र द्वारा अत्यधिक स्पष्ट किया जा सकता है—

व्यक्तित्व—वंशानुक्रम × वातावरण × समय (Personality = Heredity × Environment × Time or P = H × E × T)

वुडवर्थ (Woodworth) ने भी कुछ इस प्रकार लिखा है—

'The individual does not equal Heredity—Environment but does equal Heredity × Enviroment

अर्थात् व्यक्ति वातावरण तथा वंशानुक्रम का योगफल नहीं वरन् गुणनफल है। चूंकि यदि इन दोनों में से किसी एक को शून्य कर दिया जाय तो गुणनफल भी शून्य (Zero) हो जायगा, अर्थात् इनके अभाव में व्यक्तित्व का विकास सम्भव ही नहीं।

कहना न होगा कि बालकों के व्यक्तित्व के समुचित विकास के निमित्त इनमें वैयक्तिक भिन्नता उत्पन्न करने के लिए उपर्युक्त दोनों बातों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। किसी की महत्ता को मान कर दूसरे की उपेक्षा करना कभी ठीक नहीं कहा जा सकता है।

दूसरा अध्याय

मानस की अवस्थाएँ
(Phases of Mind)

चेतन—अवचेतन—अनुचेतना—अचेतन की प्रमुख विशेषताएँ—अचेतन का महत्त्व—अचेतन के अस्तित्व के कुछ प्रमाण

फ्रायड महोदय ने मस्तिष्क का विभाग दो पहलुओ से किया है, एक गत्यात्मक (Dynamic) पहलू के आधार पर दूसरा आकारात्मक (Topographical) पहलू की दृष्टि से। गत्यात्मक पहलू के अनुसार मस्तिष्क को इड (Id) इगो (Ego) और सुपर इगो (Super ego) तीन भागो मे विभक्त किया जाता है। आकारात्मक पहलू के अनुसार मस्तिष्क के तीन भाग है— (क) चेतन (Conscious), (ख) अनुचेतन (Sub-conscious) या अवचेतन और (ग) अचेतन (Unconscious)।

चेतन का तात्पर्य मस्तिष्क के उस भाग मे है जहाँ वर्त्तमान के विचार रहते हैं। अर्थात्, जिन चीजो के विषय मे हम अभी सोचते रहते है वे मस्तिष्क के चेतन (Conscious) भाग मे रहते है, जैसे—अभी आप नारगी खा रहे हो तो नारगी का ज्ञान या इससे सम्बन्धित जो विचार इस क्षण आपके मस्तिष्क मे हैं, वे मस्तिष्क के चेतन भाग मे ही स्थिर है।

व्यक्ति के सभी विचार चेतना मे नही रहते है। कुछ दिन पूर्व अगर किसी ने एक पुस्तक को पढा है तो पहले की पढी हुई पुस्तक अभी चेतना मे नही रहती है। परन्तु आवश्यकता पडने पर अगर व्यक्ति उस पुस्तक को अपनी चेतना मे ला सके तो हम कहेगे कि पहले की पढी हुई पुस्तक से सम्बन्धित विचार अनुचेतना (Subconscious) है, अत उसे चेतना मे हम ला सकते हैं। इस प्रकार अनुचेतना मे उन्ही विचारो (Ideas) का स्थान रहता है जिन्हें हम आवश्यकता पडने पर चेतना मे ला सकते है।

मस्तिष्क मे चेतना एव अनुचेतना के अतिरिक्त अचेतन (Unconscious) भाग भी है। अचेतन भाग मे स्थित विचार कभी भी चेतना मे नही आता है। मस्तिष्क के अचेतन भाग मे निम्नलिखित दो प्रकार के विचारो का स्थान है—

(क) ऐसे विचार जो एक समय चेतना मे थे परन्तु बाद मे कुछ कारणवश जैसे—भूलने के कारण या समाज के भय के कारण मस्तिष्क के अचेतन भाग मे

है। अचेतन के ये विचार व्यक्ति के व्यवहार को संचालित एवं नियन्त्रित करते हैं। अर्थात्, अचेतन के विचार व्यक्ति के सामने एक प्रेरक के रूप में उपस्थित होते हैं। अत मनुष्यो के व्यवहार को समझने के लिए अचेतन को समझना आवश्यक हो जाता है।

(ख) **अचेतन परिवर्त्तनशील होता है** (It is dynamic in nature) — अचेतन मे वर्तमान विभिन्न विचारो मे घात-प्रतिघात होता रहता है। इस घात-प्रतिघात के फलस्वरूप कुछ ऐसी प्रेरणा या शक्ति (Drives) की उत्पत्ति होती है जो व्यक्ति को कार्यशील बनाती है। व्यक्ति के सोचने-समझने एव अन्य मानसिक क्रियाओ के सचालन मे अचेतन का प्रमुख हाथ है। इस प्रकार अचेतन के विचारो के गत्यात्मक सगठन के फलस्वरूप उत्पन्न प्रेरणा व्यक्ति को खास ढग के व्यवहार करने को उद्यत करती है। अत व्यक्ति की कार्यशीलता का आधार अचेतन भी है।

(ग) **अचेतन के विचारों** (Concrete ideas) **एव मूल प्रवृत्तियो** (Instincts) **को प्रश्रय मिलता है** यहाँ शब्द नही रहते हैं। शब्द के अभाव मे एक अचेतन विचार अपनी अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम मे नही कर सकता है। अत प्राय. देखा जाता है कि अचेतन अपनी विचार-अभिव्यक्ति क्रिया (Action) द्वारा करते हैं। स्वप्न मे अचेतन की अभिव्यक्ति होती है। व्यक्ति स्वप्न मे उच्चरित शब्दो का प्रत्यक्षीकरण नही करता, बल्कि वह अपने विचारो की अभिव्यक्ति मौन नाटकीय ढग से होते पाता है। मौन नाटकीय ढग अभिव्यक्ति का तात्पर्य विचारो की ऐसी अभिव्यक्ति से है जहाँ हाव-भाव द्वारा ही विचारो को दूसरो तक पहुँचाया जाता है। मनुष्य भी अपने अचेतन विचारो की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से न कर हाव-भाव के माध्यम द्वारा करता है। इस प्रकार अचेतन के विचारो को भाषा का सहारा नही मिलता है, जिससे वे अपनी अभिव्यक्ति हाव-भाव द्वारा ही करते हैं।

(घ) **हम अचेतन विचारो** के अस्तित्व का अनुमान मनोस्नायुविकृति तथा मनोविकृत व्यक्तियो के व्यवहारो के विश्लेषण द्वारा लगाते है। अचेतन विचारो की अभिव्यक्ति स्वस्थ व्यक्ति स्वप्न मे करते है। स्वप्न के विश्लेषण द्वारा भी हम अचेतन विचारो का अनुमान लगाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि अचेतन विचारो का निरीक्षण सम्भव नही है। अनुमान द्वारा ही उनके विषय मे जाना जा सकता है।

(ङ) **अचेतन को समय, स्थान, उचित एवं अनुचित का ज्ञान नही रहता है।** अत· अचेतन विचार अपनी अभिव्यक्ति कभी भी कर सकते है। फ्रायड महोदय ने एक मनुष्य को मनोविश्लेषण के उपरान्त उसके अचेतन विचार का पता लगाया। इस व्यक्ति को अपने पिता से नही पटती थी। अत वह सदा अपने पिता से झगडता रहता था। पिता के विरोध की भावना चेतना मे नही रहती थी। दमन (Repression) नामक मानसिक क्रिया ने इस विरोधी भाव को अचेतन मे भेज दिया था। पिता की मृत्यु के उपरान्त भी इस व्यक्ति ने अपने विरोध-भाव की अभिव्यक्ति स्वप्न मे की। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि अचेतन को समय का ज्ञान नही रहता है। इस

ज्ञान के अभाव में ही वह पिता की मृत्यु के पश्चात् भी सदा पिता से अचेतन में झगड़ता रहा ।

(च) अचेतन में विरोध (Contradiction) नाम की चीज नहीं होती है । विचार या इच्छा से उत्पन्न होने पर अचेतन उसकी अभिव्यक्ति अवश्य करेगा । इच्छा पूर्ति एवं विचारों की अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की बाधा नहीं रहती है। अन्‍ अगर अचेतन में स्वप्न-यात्रा का विचार उत्पन्न होता है तो व्यक्ति अपने इस विचार की अभिव्यक्ति स्वप्न या अपने अन्य ऐसे व्यवहारों द्वारा कर लेता है जहाँ व्यक्ति की अपनी क्रिया में रुकावट न हुचने की कोई आशंका नहीं होती ।

(छ) अचेतन के विचार बार-बार अपनी अभिव्यक्ति के लिए उपस्थित होते है । बचपन में घटी कोई घटना जो अभी अचेतन मे है वह अपनी अभिव्यक्ति ग्रहण कर सकता है। अचेतन विचारों में बार बार अभिव्यक्ति के इस नियम को आवृत्ति एवं दबाव (Repetition-compulsion) का नियम कहते है ।

(ज) अचेतन को नैतिकता का ज्ञान नही होता है । उसके सामने अच्छे और बुरे का कोई भी प्रश्न नही रहता है । अत अचेतन विचारो को सचालित करने में सुखेच्छ दुखेच्छ के नियम (Pleasure pain principle) का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस नियम का अर्थ है कि जिस क्रिया से सतोष सुख एवं आनन्द की प्राप्ति की सम्भावना होती है उस क्रिया को अचेतन बार बार दुहराता है परन्तु ऐसे विचार जिनसे तकलीफ होनेवाली है उनकी अभिव्यक्ति वह कभी नही करता है ।

(झ) अचेतन के सभी विचार जागरूक होते है । चेतना या अवचेतन के विचारो को व्यक्ति कभी-कभी भूल जाता है । परन्तु अचेतन विचार अचेतन में अपने मूल रूप में ही उपस्थित रहता है । यहाँ विचारो के भूलने का प्रश्न उत्पन्न ही नही होता है ।

(ञ) अचेतन अपने विचारो की अभिव्यक्ति में सदा ध्यान रखता है कि उसके विचारों को समाज या अवचेतन या चेतन में स्थित इगो (Ego) या सुपर इगो (Super ego) समझ न जाय । इगो (Ego) व्यक्ति के अन्दर स्थित मस्तिष्क का वह भाग है जो व्यक्ति को सही एवं गलत का ज्ञान दिलाती है । सुपर इगो (Super-ego) व्यक्ति में स्थित मस्तिष्क का वह भाग है जो व्यक्ति को क्या क्या और कैसे करना चाहिए का आदेश देती है । सुपर इगो (Super ego) के आदेशानुसार नही चलने पर व्यक्ति में दोष भाव (Sense of guilt) उत्पन्न हो जाता है जिससे व्यक्ति विचलित एवं असन्तुलित हो जाता है। अचेतन का बार बार यह प्रयास होता है कि वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति इस प्रकार करे जिससे इगो (Ego) और सुपर इगो (Super-ego) को इन विचारों का ज्ञान न हो सके । इस प्रयास में अचेतन अपने विचारों की अभिव्यक्ति परिवर्तित रूप मे करता है । इस प्रकार अचेतन की प्रमुख विशेषता अपने विचारों को परिवर्तित ढग अभिव्यक्ति करना भी होता है ।

(ट) अचेतन शिशु स्वरूप (Infantile) होता है । बच्चे जिस प्रकार एक

इच्छा की उत्पत्ति के उपरान्त उसकी पूर्ति अति शीघ्र चाहते है उसी प्रकार अचेतन मे गत्यात्मक सगठन के उपरान्त उद्भूत विचार अपनी अभिव्यक्ति अतिशीघ्र करना चाहता है। जब तक अचेतन अपने विचार की सन्तुष्टि नही करता तब तक उसे चैन नही होता। अत अचेतन के स्वभाव की तुलना बच्चे के स्वभाव से की गयी है।

(ठ) अचेतन अतार्किक (Illogical) होता है। उसके चिन्तन की क्रिया मे तर्क-हीनता प्रलक्षित होती है।

अचेतन का महत्त्व
(Importance of Unconscious)

मस्तिष्क मे रहने वाले विचारो मे अधिकाश विचार अचेतन मे ही रहते है इस कारण व्यक्ति अपने अचेतन या अनुचेतन मे एक समय अनेक विचारो को नही रख सकता है। अत. व्यक्ति के लिए कुछ विचारो का भूलना आवश्यक है। इसके अतिरि[illegible] व्यक्ति के मन मे भिन्न-भिन्न इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती है। व्यक्ति इच्छाओ की पूर्ति करना चाहता है। परन्तु समाज असामाजिक कार्यो व्यक्ति को रोकता है। अत व्यक्ति की असामाजिक इच्छाएँ अचेतन है। अचेतन मे जाने पर यद्यपि व्यक्ति को अपनी इच्छाओ का ज्ञान फिर भी वे इच्छाएँ प्रबल रूप मे अचेतन मे वर्त्तमान रहती है। ये [illegible]लिए व्यक्ति को कार्यशील करती है। व्यक्ति जब तक इन [illegible]रता तब तक उसे चैन नही रहता है। अचेतन मे रहने [illegible] रूप बदल कर छद्मवेश मे करती हैं। अत इन इच्छाओ [illegible] नही रहता है। इस प्रकार व्यक्ति के व्यवहारो को केवल [illegible] नही जा सकता है। चूँकि व्यक्ति को अधिकाश व्यवहार अचेतन से प्राप्त होती है, अत अचेतन का अध्ययन अत्या-

[illegible] के अस्तित्व के कुछ प्रमाण
[illegible] the existence of Unconscious)

[illegible]ous) एव इसमे रहने वाले विचारो के अस्तित्व का [illegible] अवस्थाओ से मिलता है—

[illegible] —(Somnambulism)—कुछ ऐसे व्यक्ति [illegible]वस्था मे उठकर कुछ दूर चलते है तथा इस अवस्था मे [illegible] पाये जाते है। उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति सोयी हुई अपने घर के बाहर निकल दूसरे के घर में प्रवेश कर उपरान्त पुन अपने स्थान पर लौट आता है। सुबह [illegible]व्यवहारो की चेतना एकदम नही रहती है। अब प्रश्न है [illegible] व्यवहार जब कि चेतना और अनुचेतना मे नही हैं [illegible] ही इन व्यवहारो के सचालन की सम्भावना है।

२ चेतनाविहीन होने की अवस्था में अभिव्यक्त विचार—अचेतन का प्रमाण उपयुक्त निद्राभ्रमण के व्यवहार के अतिरिक्त व्यक्ति को चेतनाविहीन करने के क्रम में उत्पन्न व्यवहार से भी मिलता है। व्यक्ति को एनेसथेसिया नामक दवा देकर चेतनाविहीन किया जाता है। इस दवा के उपरान्त व्यक्ति की चेतना धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। व्यक्ति की चेतना जब लुप्त होने लगती है तो वह अपने-आप कुछ बोलता है। ऐसे समय में व्यक्ति के विचारों को हम न तो चेतना में ही देखते हैं और न अनुचेतना में ही। अतः स्पष्ट है कि वे अचेतन में रहते हैं। अतएव जब व्यक्ति की चेतना धीरे-धीरे आने लगती है तो इस अवस्था में अभिव्यक्त विचारों से भी अचेतन के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।

३ सम्मोहन विस्मृति (Post hypnotic Amnesia)—अचेतन का प्रमाण हमें पश्चात् सम्मोहन विस्मृति (Post hypnotic Amnesia) से भी मिलता है। अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें व्यक्ति को सम्मोहन (Hypnosis) की अवस्था में ले आया जाता है और इस अवस्था में ले जाकर व्यक्ति को कुछ समय के पश्चात् कोई कार्य सम्पन्न करने का आदेश दिया जाता है। ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति जब सम्मोहन की अवस्था से अपनी पुरानी अवस्था को प्राप्त करता है तो उसे सम्मोहन की अवस्था में दिये गए आदेशों की चेतना नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त वह प्रयास करने पर भी आदेशों को चेतना में लाने में असमर्थ रहता है। इससे स्पष्ट है कि आदेश न चेतना में रहता है और न अनुचेतना में ही फिर भी नियत समय के आने पर व्यक्ति दिये गए आदेशों के अनुरूप कार्य करता पाया जाता है। व्यक्ति के ऐसे व्यवहारों से भी अचेतन का प्रमाण मिलता है।

४ सोयी हुई अवस्था में समस्याओं का समाधान—इसके प्रमाण हमारे सामने अनेक हैं। समस्याओं के ऐसे समाधान का एक मात्र तात्पर्य यह है कि मस्तिष्क द्वारा सभी काम चेतन या अनुचेतन की अवस्था में ही सम्पादित नहीं होते हैं वरन् कुछ कार्यों को मस्तिष्क अचेतन अवस्था में भी सम्पादित करता है। ऐसे कार्य जिनकी चेतना सम्भव हो तो स्पष्टतया निर्देश करता है कि ये कार्य अचेतन द्वारा ही सम्पादित एवं नियन्त्रित होते हैं। अतः व्यक्ति द्वारा अचेतन अवस्था में किये गए कार्यों से अचेतन का प्रमाण मिलता है।

५ स्वप्न विश्लेषण (Dream interpretation)—स्वप्न विश्लेषण के द्वारा हमें यह मालूम होता है कि व्यक्ति की सभी इच्छाएं चेतन में नहीं रहती हैं। अनेक ऐसी इच्छाएं हैं जिनके विषय में व्यक्ति को ज्ञान नहीं रहता है। कुछ इच्छाएँ जिनका व्यक्ति को ज्ञान नहीं रहता है, व्यक्ति के अचेतन मन में रहती हैं। स्वप्न विश्लेषण से अचेतन मन में रहने वाले विचारों का ज्ञान प्राप्त होता है।

६ दैनिक मनोविकृतियां (Psycho pathology of everyday life)—प्रतिदिन हम कुछ ऐसे कार्यों को करते हैं जिनका विश्लेषण करते हुए कहते पाये जाते

हैं कि यह कार्य अकारण हो गया; जैसे—दूसरो की पुस्तक को रोज-रोज अपने ही घर मे रख लेना या दूसरे की कलम अपने पास रख लेना आदि। इन कार्यों के विश्लेषण से हमे पता चलता है कि ये कार्य कभी भी अकारण या यूँ ही (By chance) नही घटते। अब इन कार्यो के पीछे भी कोई कारण अवश्य रहता है। परन्तु इस कार्य का कारण चेतना या अनचेतना मे नही पाया जाता है। अत. व्यक्ति को इसका कारण पता लगाने मे कठिनाई होती है फिर भी मनोवैज्ञानिक विश्लेपण द्वारा उन क्रियाओ के कारण का पता लगाया गया हैं। इस विश्लेषण से स्पष्टतया मालूम होता है कि इन क्रियाओ का सम्पादन अचेतन द्वारा होता है, चेतना एव अनुचेतना द्वारा नही। अत दैनिक मनोविकृतियों के विश्लेषण से भी हमे अचेतन का प्रमाण मिलता है।

उपर्युक्त प्रमाणो से स्पष्ट है कि अचेतन के अस्तित्व पर कोई भी शका की सम्भावना नहीं है। अचेतन मे हमलोगो के अधिकाश के विचार प्रश्रय पाते है तथा अचेतन हमलोगो की क्रियाओ को सचालित एव नियन्त्रित करता है। अत: व्यक्ति के व्यवहारो के समझने के लिए अचेतन का समझना आवश्यक है।

तीसरा अध्याय

कल्पना और स्वप्न

(Imagination and Dream)

(क) कल्पना

(Imagination)

परिचय— विशेषताएं— उपप्रक्रियाएं— विस्तार परस्थापन संयोगीकरण पृथक्कीकरण—प्रकार— पुनर्निर्माणक कल्पना रचनात्मक कल्पना। रचनात्मक कल्पना में निहित अवस्थाएँ— तैयारी गर्भीकरण आलोक फल प्राप्ति।

नियन्त्रित और अनियन्त्रित कल्पना

(ख) स्वप्न

(Dream)

परिचय—विशेषताएं—साधक आत्मनिष्ठ, निद्रारक्षक प्रतीकात्मक अचेतन से सम्बन्धित प्रतिमापुंज शीघ्र विस्मृत भ्रमात्मक और अतार्किक एवं इच्छा-पूर्ति का प्रयास।

स्वप्न के कुछ प्रमुख प्रकारात्मक उदाहरण—इच्छापूर्वक स्वप्न चिन्ता स्वप्न गति संवेदित स्वप्न समाधान स्वप्न भविष्यवाचक स्वप्न प्रतिरोध स्वप्न दण्ड स्वप्न पुनरावर्तक स्वप्न मरण स्वप्न सामूहिक स्वप्न तथा बहुरंगी स्वप्न।

सलैंड द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण—(क) सरल स्वप्न (ख) मिश्रित स्वप्न।

स्वप्न के सिद्धान्त (क) कुछ दार्शनिक विचार (ख) दैहिक सिद्धान्त—(i) प्रत्यक्षीकरण विभ्रम सिद्धांत और (ii) प्रबोधन क्रिया तन्त्र सिद्धांत (ग) मनोवैज्ञानिक सिद्धांत।

(i) फ्रायड का इच्छा-पूर्ति सिद्धान्त— स्वप्न कलाएं —प्रतिकीरण विस्थापन आकुंचन नाटकीयता तथा उप विस्तारण—फ्रायड के सिद्धांत की समालोचना (ii) एडलर का स्वप्न सम्बन्धी विचार (iii) युंग का विचार और एक स्वप्न तथा फ्रायड 'एडलर' और 'युंग'।

स्वप्न विश्लेषण— व्यक्त कथावस्तु तथा अव्यक्त कथावस्तु— विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषणात्मक पद्धतियाँ—व्याख्या के दो स्तर— सामान्यार्थक और गुह्यार्थक स्तर—स्वतन्त्र साहचर्य विधि।

स्वप्नों से सम्बन्धित कुछ आधुनिक विचार।

(क) कल्पना
(Imagination)

कल्पना एक मानसिक क्रिया है जिसके द्वारा हम अपनी विगत अनुभूतियों (Past experiences) अथवा उनके खण्डो को सर्वथा एक नवीन रूप मे (In an original way)जोडते है, जैसे परियो की कल्पना। हमने चिडियो को आकाश मे उडते देखा है। हमने सुन्दर लडकियो को भी देखा है। परन्तु अलग-अलग प्राप्त विगत अनुभवो को जब हम एक नये रूप मे जोड देते हैं तो परी (Fairy) की कल्पना हो जाती है—एक सुन्दर युवती जिसको चिडियों जैसे पख लगे हो इसी प्रकार सोने का पहाड, दूध की नदी, आँसू का समुद्र, जुल्फो के बादल इत्यादि कल्पना के उदाहरण है। ईसप तथा पंचतन्त्र की कथाओ मे जानवर भी आदमी की तरह बोलते है। यह कल्पना हो की देन है।

कला और साहित्य के क्षेत्र मे ही नही, विज्ञान के क्षेत्र मे भी कल्पना के सहस्त्रो उदाहरण हैं। कवि अथवा चित्रकार अपनी रचनाओ मे कल्पना के द्वारा ही नवीनता ला पाता है। इन नये-नये आविष्कृत पदार्थो तथा उनके नये-नये मॉडलो (Models) के निर्माण मे कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है।

कल्पना की प्रमुख विशेषता यह है कि कल्पना भूत पर आधारित रहती हुई भी भविष्योन्मुख होती है। हमने देखा है कि स्मृति का सम्बन्ध भूतकाल की घटनाओ और अनुभूतियो से रहता है। प्रत्यक्षीकरण वर्तमान से सम्बन्धित है। परन्तु व्यक्ति की कल्पना भविष्य से भी अपना सम्बन्ध रखती है। कल्पना मे आयी बहुत-सी वस्तुएं भविष्य मे निर्मित हो जाती हैं। आगे चलकर व्यक्ति क्या करेगा, इस बात की कल्पना वह पहले भी कर ले सकता है। यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि कल्पना आत्मगत (Subjective) होती है, इसका सम्बन्ध व्यक्ति की अनुभूतियो और सूझ से है। कल्पना के लिए व्यक्तिगत अनुभूतियाँ (Personal experiences) आवश्यक है। एक अन्धा व्यक्ति जिसने कभी कमल का फूल देखा ही नही है, वह स्वर्ण कमल (Golden lotus) की कल्पना नही करता। इसी प्रकार जो व्यक्ति बहरा है वह अप्सराओ के सगीत की कल्पना नही कर सकता। कल्पना की क्रिया मे व्यक्ति अपनी विगत अनुभूतियो को ही एक नये रूप मे जोडकर (The different contents of the past experiences are combined into a new pattern) रखता है। यदि उससे सम्बन्धित अनुभूतियो का व्यक्ति मे अभाव रहेगा तो व्यक्ति कल्पना नही कर सकता है।

स्मृति (Memory) मे हमलोग बीती हुई घटनाओ एव अनुभूतियो का उसी रूप मे (In the same order and manner) दुहराने की कोशिश करते हैं।[१]

१ "Memory consists in the ideal revival of the past experience, as far as possible, in the order and manner, of its original occurrence with the awareness of its pastness in one's own personal reactional biography"

परन्तु कल्पना में हम उनको एक नये रूप में सजाते हैं। स्मृति की क्रिया में पहचान (Recognition) एक आवश्यक अंग माना जाता है परन्तु कल्पना की क्रिया में पहचान (Recognition) आवश्यक अंग नहीं है। फलतः स्मृति में लायी गयी चीजें परिचित मालूम पड़ती हैं, परन्तु काल्पनिक चीजों में परिचय (Familiarity) नहीं मालूम पड़ता। यह चीज एकदम नयी मालूम पड़ती है।

मान लीजिए कि वृन्दावन फुलवारी आपने देखी है। अब आप यहाँ अपने कमरे में बैठ उसकी स्मृति अपने मस्तिष्क में ला रहे हैं। वहाँ कैसे-कैसे फूल हैं कैसी कैसी क्यारियाँ है उसमें कैसे फव्वारे लगे हैं किस प्रकार लताओं द्वारा जीव-जन्तु के आकार बनने लगते हैं इत्यादि बात यदि आप यथासम्भव हू-बहू उसी प्रकार अपने मस्तिष्क में ला रहे हैं तो उसे स्मृति कहेंगे। परन्तु यदि आप यहाँ एक ऐसे गुलाब की प्रतिमा (Image) अपने मस्तिष्क में ला रहे हैं जिसकी पत्तियाँ भिन्न भिन्न रंगों की हैं जैसे एक पत्ती (Petal) लाल एक गुलाबी एक नीली एक हरी, एक सफेद इत्यादि हैं तो हम कहेंगे कि यह बहुरंगी (Multicoloured) गुलाब आपकी रचना (Product) है। नवीन रचना का यह कार्य कल्पना का अभिन्न गुण है। इसीलिए कल्पना को वुडवर्थ ने—मानसिक दस्तकारी (mental manipulation) की क्रिया कहना अधिक उपयुक्त समझा है। उन्होंने कल्पना की परिभाषा इस प्रकार दी है— Imagination is mental manipulation When the individual recalls facts previously observed in reality and then proceed to rearrange these facts into a new pattern he is said to show imagination. —Woodworth

अर्थात जब व्यक्ति भूतकाल में वास्तविक रूप में देखी गयी बातों को अपनी स्मृति में लाता है और पुनः जब वह स्मृति की इन बातों को एक नये रूप (New pattern) में सजाता है तो हम कह सकते हैं कि वह कल्पना कर रहा है।

भिन्न भिन्न अवसरों पर कल्पना में भिन्न भिन्न प्रकार की उपक्रियाएं (Subprocesses) देखी जाती हैं जैसे (क) विस्तारण (Augmentation) (ख) लघुकरण (Diminution) (ग) परस्थापन (Substitution) (घ) संयोगीकरण (Conjoining) तथा (ङ) पृथक्करण (Disjoining)।

कल्पना में हम जब अपने विगत अनुभवों को वास्तविकता से अधिक बड़े आकार अथवा शक्ति के साथ सजाते हैं तो कल्पना में विस्तारण क्रिया पाते हैं। रामायण में एक जगह सुरसा नामक राक्षसी का मुंह खुलकर इतना बड़ा हुआ वर्णित है कि उसका आकार तुलसीदासजी ने सौ योजन लिखा है। इस छोटे से मुंह के आकार को सौ योजन बड़ा निर्मित करना कल्पना में विस्तारण की क्रिया है। आँखों का आकार आँसू का समुद्र खून की नदी इत्यादि की कल्पना विस्तारण क्रिया के परिचायक हैं। साहित्य के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन (Exaggerated depiction) इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

ठीक इसी प्रकार कल्पना में विगत अनुभवों को नया रूप देने में बहुत घटा

कर लाने की बात देखी जाती है। 'ग्युलिवर और लिलिपुट' वाली कहानी मे इसका रूप देख सकते है। लिलिपुट के व्यक्तियो की ऊँचाई केवल ६ इन्च ही वर्णित है। इस प्रकार लका पहुँचने पर हनुमान जी मच्छड के समान छोटा आकार धारण कर लेना तुलसी दास जी की कल्पना मे लघुकरण की क्रिया का बोध कराती है।

परस्थापन (Substitution) की दशा मे भूतकाल के अनुभव प्राय उसी प्रकार आते है सिर्फ उनके किसी भाग-विशेष मे नवीनता ला दी जाती है। जैसे आल्हा-ऊदल की कहानी मे रूपवती महारानी फूलमती के शरीर का वजन केवल पाँच फूल के बराबर कल्पित है। जैसे, राजा मलखान के प्राण हृदय मे न बसकर उसके तलवे मे बसते थे। जैसे, महारानी के 'सोना' बाल सोने के सुनहले कोमल तारो जैसे आकर्षक थे आदि। कमलनयन, चन्द्रमुख, चरण-कमल-जैसी कल्पनाओ के पीछे इस परस्थापन की क्रिया वर्त्तमान रहती है।

सयोगीकरण (Conjoining) के सुन्दर उदाहरण कुछ देवताओ की कल्पित, मूर्त्तियो मे पाते है। जैसे, नरसिंह देव, दस सिर और बीस हाथो वाला रावण, ब्रह्मा पचानन, देवी-दुर्गा इत्यादि की मूर्त्तियो मे हम पाते है कि बहुत सी विशेषताओ, शक्तियो एव शारीरिक अवयवो को एक साथ मिलाकर उनकी कल्पना की गयी है।

पृथक्करण (Disjoining) की क्रिया वहाँ देखी जाती है जहाँ विगत अनुभूतियो (Past experiences) के कुछ भागो का सर्वथा लोप कर दिया जाता है और उसमे कुछ विशिष्ट गुणो का समावेश कर दिया जाता है, जैसे—बिना धड के ही बोलते हुए सिर की कल्पना, कटे हुए हाथ का लिखने लगना आदि। ऐसी कल्पनाएँ रोमाञ्चकारी एव जादू वाली कहानियो मे पाते है।

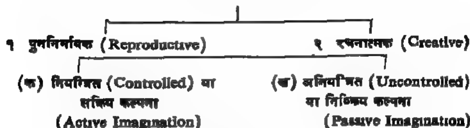
परन्तु यहाँ इतना जानना आवश्यक है कि प्रत्येक कल्पना के पीछे कोई न-कोई प्रेरक वृत्ति (Motive) कार्य करती है। जब वैज्ञानिक, मोटरो और हवाई जहाजो के नये 'मॉडलो' (Models) की कल्पना करता रहता है उस समय उसके अन्दर आत्मसन्तुष्टि, यशप्राप्ति एव द्रव्यप्राप्ति की प्रेरक वृत्तियाँ कार्य करती होती है। इसलिए कल्पना व्यक्ति को सन्तोष और आनन्द की प्राप्ति मे सहायता प्रदान करती है।

काल्पनिक अवस्थाओ एव घटनाओ के सम्पर्क मे आकर व्यक्ति थोडी देर के लिए इस ससार की दुःखमय वास्तविकताओ से अपना पलायन (Escape) कर पाता है। यही कारण है कि सफल अथवा असफल प्रेम के काल्पनिक साहित्य मे भय और रोमाञ्चकारी कहानियो मे व्यक्ति खो जाता है और अपने को उसी कल्पना लोक का एक प्राणी समझने लगता है। ऐसी काल्पनिक परिस्थितियो मे व्यक्ति की बहुत-सी दमित इच्छाओ की सन्तुष्टि भी होती है। वास्तविक जीवन मे प्रेम-पिपासु व्यक्ति काल्पनिक रोमाण्टिक कहानियो के नायको अथवा नायिकाओ के साथ अपना आत्म सम्बन्ध (Identification) स्थापित कर मनचाहा प्रेम अथवा उसका प्रतिमान प्राप्त करते हैं। वास्तविक जीवन मे हम जो नही पाते हैं उसे हम कल्पना मे प्राप्त कर लेते हैं। इस बात की पुष्टि हमारे दिवास्वप्नो (Day dreams) से अच्छी

तरह होती है। जो भी हो इतना तो सभी मानते हैं कि आज का समाज और संस्कृति बहुत अर्थों में मनुष्य की सक्रिय रचनात्मकता की देन है।

मनोवैज्ञानिक ने कल्पना का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया है—

कल्पना के प्रकार
(Kinds of Imagination)



१ पुनर्निर्मायक कल्पना (Reproductive Imagination)

भूतकाल में देखी हुई घटनाओं (Incidents) अथवा प्राप्त अनुभूतियों (Experience) को जब हम फिर से चेतना में लाते हैं तो इसे पुनर्निर्मायक कल्पना कहते हैं। कल्पना में विगत अनुभूतियां प्रतिमाओं (Images) के रूप में आती हैं। पुनर्निर्मायक कल्पना और स्मृति के लक्षण प्राय एक ही जैसे होते हैं। कल प्रात काल मैंने क्या-क्या नाश्ता किया था कहां-कहां घूमने गया था इन बातों को यदि मैं फिर से अभी मस्तिष्क में लाऊं तो इसे हम पुनर्निर्मायक कल्पना कहेंगे।

इस प्रकार के पुनर्निर्माण पुस्तक पढ़ने के समय भी हम पाते हैं। पुस्तक पढ़ते समय पुस्तक की लिखि बातें प्रतिमाओं के रूप में मस्तिष्क में आती रहती हैं। किसी कविता अथवा उपन्यास को पढ़ते समय उनके पात्र उनकी घटनाएं उनके कथनोपकथन इत्यादि का प्रतिमाएं (Images) हमारी कल्पना में चलचित्र की तरह में आती रहती है। व्यक्ति पढ़ता जाता है और तत्सम्बन्धित प्रतिमाएं उसकी कल्पना में आती जाती हैं—इसे ग्राहक कल्पना (Receptive Imagination) के नाम से भी कुछ मनोवैज्ञानिको ने पुकारा है क्योंकि कल्पना की उत्पत्ति का कारण अधिकांश रूप में बाह्य उत्तेजनाएं ही हैं जिन्हें व्यक्ति ग्रहण करता है तथा जिसके साथ उसके मस्तिष्क में प्रतिमाएं आती हैं।

२ रचनात्मक कल्पना (Creative Imagination)[1]

रचनात्मक कल्पना को ही कल्पना का उपयुक्त रूप समझना चाहिए। इस अवस्था में पूर्व-अनुभूत वस्तुओं का नये रूप में सृजन होता है। किसी आविष्कारक ने

१ Imagination is a device for attaining anattainable goal
—Murphy A *Briefer General Psychology* P 346

अनुसन्धान-कार्य मे रचनात्मक कल्पना की अभिव्यक्ति देखी जाती है। जब कोई इन्जीनियर किसी कारखाने, मकान अथवा खान की खुदाई किस प्रकार होगी इत्यादि का नक्शा तैयार करता है, उस समय उसके अन्दर रचनात्मक कल्पना की क्रिया देखी जाती है। इस प्रकार की कल्पनाओ को हम कई एक पहलूओ से समझ सकते हैं। पहले पहलू मे **बौद्धिक रचनात्मक कल्पनाओ** (Intellectual creative imagination) को पाते है।

रसोई बनाते समय खौलते हुए पानी के निकलते हुए भाप (Steam) को ऊपर लगे ढक्कन को ठेलते देखकर वाटसन (Watson) की जिस कल्पना द्वारा भाप से चलने वाले इजन की रचना हुई—उसे हम बौद्धिक रचनात्मक कल्पना कहेंगे। यही बात कॉपरनिकस (Copernicus), न्यूटन (Newton), एन्सटाइन (Einstein) इत्यादि के अन्वेषणो मे पाते है। बड़े-बड़े रिसर्च स्कॉलरो (Research Scholars) मे यही कल्पना-क्रिया अधिक देखी जाती है।

रचनात्मक कल्पना का दूसरा प्रमुख पहलू है **ललित रचनात्मक कल्पना** (Aesthetic creative imagination)। इसके द्वारा एक सगीतकार नये गीतो मे नयी धुनें भर पाता है। कहानीकार, कवि, लेखक, नर्तक इत्यादि सभी इसी ललित क्षेत्र मे रचनात्मक कल्पनाएँ दर्शाते हैं। इनका सम्बन्ध हमारी **ललित प्रवृत्तियों** (Aesthetic tendencies) की सन्तुष्टि से है।

ठीक उसी प्रकार यह **समयानुकूल रचनात्मक कल्पना** (Practical creative imagination) का फल है कि कोई-कोई व्यक्ति प्राय प्रत्येक परिस्थिति मे अपना उचित अभियोजन शीघ्रता से कर पाता है। कब किसके साथ क्या बोलने से वह खुश होगा, कौन आगे चलकर क्या-क्या भला अथवा बुरा हमारे प्रति कर सकता है, कौन-सा व्यवहार किसी परिस्थिति (जैसे—पिकनिक, सभा) मे सर्वप्रिय होगा तथा उसे किस प्रकार सम्पादित किया जाय इत्यादि बातो मे व्यक्ति अपनी समयानुकूल रचनात्मक कल्पना द्वारा सफल होता पाया जाता है।

रचनात्मक कल्पना मे कई एक अवस्थाएँ देखी जाती हैं। सन् १९०० ई० मे **रिबौट** (Ribot) ने अपने प्रयोग के आधार पर बतलाया कि मशीनो के आविष्कार-सम्बन्धी रचनात्मक कल्पना मे कुछ प्रमुख अवस्थाएँ पायी जाती हैं, जैसे—

(१) **आविष्कार सम्बन्धी समस्या का समाधान करने की प्रथम इच्छा** (First desire) **और उससे जागृत कल्पनासमूह**, (२) **गर्भीकरण** (Incubation) अर्थात् वह अवस्था जब उपस्थित समस्या का समाधान व्यक्ति के अन्दर अचेतन रूप से होता रहता है, (३) **आकस्मिक रूप से समाधान** (Sudden Solution or Illumination—according to Graham Wallace) **गर्भीकरण की दशा मे हुए समाधान सहसा प्रस्फुटन** और (४) **फलप्राप्ति** (Solution) **आविष्कार का होना।** **कैथेरिन पैट्रिक** (Catherin Patrick) ने इस सम्बन्ध मे एक प्रयोग किया था। उन्होंने एक पहाड़ो का सुन्दर चित्र बहुत-से कवियो को दिखाया और उसने कहा

कि वे इस चित्र को देख कर एक कविता बनायें। कवियों से यह आग्रह किया गया कि रचना करने के सिलसिले में आदि से अन्त तक जो प्रतिमाएं एवं विचार उनके मस्तिष्क में आते जायें उन्हें वे उसी क्रम से बोलते जायें।

सभी कवियों की बातें बारी बारी से सुन लेने के बाद पट्रिक ने रचनात्मक कल्पना में ये चार प्रमुख अवस्थाएं मानी हैं—(१) तयारी (Preparation) (२) गर्भीकरण (Incubation) (३) आलोक (Illumination) तथा (४) दुहराना और प्रमाणित करना (Revision and Verificaiton)।

यह बात जानने की है कि बुद्धि (Intelligence), चिन्तन (Thinking) और कल्पना में घनिष्ट सम्बन्ध है तथा प्रत्येक व्यक्ति मे रचनात्मक कल्पना की क्रिया समान मात्रा (Degree) मे नही पायी जाती है। इस क्षेत्र में भी वैयक्तिक विभिन्नता देखी जाती है।

अब यह रचनात्मक कल्पना नियन्त्रित (Controlled) भी हो सकती है तथा अनियन्त्रित भी हो सकती है, जब कोई उपन्यासकार उपन्यास लिखने बठता है तो पहले से ही वह अपने मस्तिष्क में अपने उपन्यास का कथानक रखता है। उपन्यासकार मे कैसे चरित्र (Characters) आयेंगे घटना का विकास किस प्रकार होगा क्लाई मेक्स(Climax) किस प्रकार आयगा इन सारी बातों को कल्पना के सहारे उपन्यास कार पहले से ही मन रूप में सजाने का प्रयास करता है। वह ऐसी घटनाओं, पात्रों, कथोपकथन इत्यादि को चुनता है जो उसके उपन्यास के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हैं। एलिस इन वण्डरलैंड (Alice in Wonderland) नामक पुस्तक इसका एक सुन्दर उदाहरण प्रतीत होती है। ठीक इसी प्रकार एक इन्जीनियर जब एक पुल (Bridge) का निर्माण अपनी रचनात्मक कल्पना के सहारे करता है तो उसकी कल्पना एक निश्चत दिशा व नियन्त्रित रूप से होती है।

परन्तु, अनियन्त्रित (Uncontrolled) रचनात्मक कल्पना में कल्पना की न एक निश्चित दिशा होती है और न उस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण। यह संसार की वास्तविकताओं (Realities) से प्राय अलग एवं दूरी होती है। इस प्रकार की कल्पना के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं दिवास्वप्न (Daydreams) में आने वाली कल्पनाएं। इसके अतिरिक्त बच्चो के खेलों में भी इसी प्रकार की अनियन्त्रित कल्पना दिखाई पड़ती है। ये दिवास्वप्न प्राय तीन प्रकार के होते हैं—(१) विजयी नायक वाले दिवास्वप्न (Conquering hero type) (२) पीड़ित नायक वाले दिवास्वप्न (Suffering hero type) और (३) एकत्रित चिन्ता दिवास्वप्न (Organised worry type)।

दिवास्वप्नों में प्राय हम अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति मनचाहे ढग से करते हैं, इसलिए हम अपनी रुचि के अनुकूल मानसिक प्रतिमाओं के सहारे कुछ-से कुछ स्वतन्त्रतापूवक सोचते चले जाते हैं। अनियन्त्रित कल्पना के उदाहरण हमस्व तन्त्र साहचय विधि (Free association technique) के प्रयोग द्वारा भी पाते हैं।

दिवास्वप्न की अवस्था मे मस्तिष्क (Mind) अपेक्षाकृत (Relatively) निष्क्रिय (Passive) रहता है। इसलिए मनोवैज्ञानिको ने दिवास्वप्नो को निष्क्रिय कल्पना भी कहा है। एक के बाद एक प्रतिमा ख्याली पोलाव पकाते वक्त स्वत: आती-जाती है परन्तु नियन्त्रित कल्पना (Controlled imagination) मे 'हमचित चुन-चुनकर (After selection and rejection) अपने उद्देश्य के अनुकूल प्रतिमाओ को लाता है। इससे नियन्त्रण-कल्पनाओ की अवस्था मे मस्तिष्क अधिक सक्रिय (Active) रहना है। अस्तु, इसे सक्रिय कल्पना (Active imaginatson) भी कहना अनुपयुक्त न होगा।

(ख) स्वप्न
(Dream)

सपने हमने भी देखे हैं, आप भी देखे होगे। हम सभी अक्सर सपने देखते है। नींद आती है और व्यक्ति सो जाता है। ये सपने इसी बीच आया-जाया करते हैं। हमें सपने मे प्राय अपनी इस दुनिया से मिलती-जुलती एक नयी-अनोखी दुनिया दिखाई पडती है। सपनो की अवस्था मे भी हमे ऐसा भास होता है जैसे अन्य कोई या हम बोल रहे हैं, हँस रहे हैं, भाग रहे है इत्यादि। जिस प्रकार वास्तविक जागृत जीवन मे घटनाएँ घटती हैं, उसी तरह हमारे सपनो मे घटनाएँ घटती जैसी लगती हैं।

स्वप्न की घटनाएँ किसी कहानी (Episode) जैसी घटती प्रतीत होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टकोण से ये सपने भी व्यक्ति के सुप्तावस्था मे होने वाली एक प्रकार की मानसिक क्रियाएँ है। चाहे व्यक्ति जगा हो अथवा सोया, उससे कोई-न-कोई मानसिक क्रिया सतत् किसी-न-किसी रूप मे चलती ही रहती है। फिशर (Fisher V E) नामक मनोवैज्ञानिक ने अपनी पुस्तक मे लिखा है—"There is a continuity of mental activity during sleep and dream is merely a phase of this continuity of activity" भावार्थ यह है कि निद्रावस्था मे भी मानसिक क्रिया लगातार चलती रहती और स्वप्न इन्हीं लगातार चलने वाली मानसिक प्रक्रियाओं की एक अवस्थाविशेष है।

कुछ मनोवैज्ञानिको के अनुसार व्यक्ति की निद्रावस्था मे कुछ-न-कुछ स्वप्न हमेशा आते रहते हैं। प्रात काल यदि व्यक्ति कहता है कि रात को उसने कोई भी स्वप्न नही देखा है तो सिर्फ इसका यही अर्थ समझना चाहिए कि स्वप्न तो उसने कुछ-न-कुछ देखे अवश्य हैं, परन्तु उन्हें वह अपने स्मरण मे लाने मे असमर्थ हो रहा है।

हमारी मानसिक क्रियाएँ (Mental activities) सतत् चलती रहती है। इस बात की पुष्टि निद्रावस्था (Subwaking period or hypnogogic period) मे प्राप्त अनुभवो से भी होती है। यदि व्यक्ति की तन्द्रावस्था मे होने वाली मानसिक क्रियाओ पर ध्यान दिया जाय तो पता चलेगा कि कोई-न-कोई विचार

अथवा घटना एक के बाद एक उसके मस्तिष्क में आती-जाती रहती है । तन्द्रावस्था जाग्रतावस्था और निद्रावस्था इन दोनो के बीच की स्थिति है जब व्यक्ति न पूर्णत: सो गया होता है और न उसे पूर्णत: जगा हुआ कहा जा सकता है । यही तन्द्रावस्था धीरे धीरे निद्रावस्था मे बदल जाती है ।

तन्द्रावस्था के टूटते ही उसके अन्दर होने वाली मानसिक क्रियाओं में उत्पन्न विचारों अथवा घटनाओं की कड़ी भी टूट जाती है और व्यक्ति तन्द्रावस्था में अनुभूत बहुत-सी बातें भूल जाता है । अस्तु निद्रावस्था टूटने के बाद यदि व्यक्ति उस अवस्था में घटित मानसिक क्रियाओं को बहुत कुछ भूल जाता है तो इसमें आश्चर्य क्या ? नींद की अवस्था में तो व्यक्ति में और भी अधिक मानसिक पृथक्करण (Mental dissociation) के लक्षण दिखाई पड़ते हैं ।

इन स्वप्नों पर व्यक्ति की वैयक्तिक सामाजिक आर्थिक इत्यादि सारी अवस्थाओं का प्रभाव देखा जाता है । इसका सम्बन्ध व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य से अत्यधिक है । ये स्वप्न प्रतिमाओं (Images) के रूप में आते हैं । ये प्रतिमाएं (Images) कई प्रकार की होती हैं परन्तु उनमें दृष्टि-प्रतिमाओं (Visual Images) और श्रवण प्रतिमाओं (Auditory images) की अत्यधिक प्रधानता रहती है । अन्ध व्यक्तियों के स्वप्न में श्रवण प्रतिमाओं की अधिकता रहती है ।

किमिन्स (Kimmins) के कथनानुसार बच्चों के सपनों और युवकों के सपनों के उपकरणों (Material) मे बहुत कुछ अन्तर रहता है । यही बात युवकों एवं बूढ़ो मे तथा पुरुषो एवं स्त्रियो और सामान्य एवं असामान्य (Normal and Abnormal) व्यक्तियों के सपनों के साथ भी है । और कोई आश्चर्य नहीं यदि उच्च स्तर के जानवर (Higher animals) भी स्वप्न देखते हों ।

सनफोर्ड (Sanford) तथा बेरियन (Berrien) आदि के अनुसार सपने अधिकतर नींद के अन्तिम भाग में आते हैं रात्रि के अन्तिम पहर में सपनों की बहुलता पायी जाती है । मनोवैज्ञानिक इन सपनों का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन इतिहास (Life-history) से मानते हैं । यही कारण है कि स्वप्नों में वैयक्तिक विभिन्नताएं (Individual differences) होती हैं ।

अभी हाल में अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में डेमन्ट (Dement) तथा क्लिटमन (Kleitman) जैसे मनोवैज्ञानिकों ने स्वप्नो पर कई एक प्रयोग किये हैं । उन्होंने अपने प्रयोगों मे पाया कि स्वप्न की अवस्था मे पलकें बन्द रहती हैं परन्तु अन्दर ही अन्दर आँखों की पुतली में गति (Eye movement) होती रहती है । धरातल की चीजों एवं घटनाओं से सम्बन्धित स्वप्नो मे यह नेत्रगति (Eye movement) बायें से दायें अधिक होती है । ऊँचाई या चढाई से सम्बन्धित स्वप्नों म यह नेत्र गति ऊपर से नीचे की दशा में देखी गयी है ।

साथ-साथ उनलोगों ने स्वप्न की अवस्था में निद्रित व्यक्ति की 'मस्तिष्क लहर' (Brain waves) का भी अध्ययन एलेक्ट्रो एनसेफलोग्राफ (Electro Ence-

phalograph) द्वारा किया है। उनलोगो ने पाया कि मस्तिष्क-लहरो का सम्बन्ध स्वप्न की अनुभूतियो से घनिष्ठ रूप से रहता है।

नींद मे स्वप्न शुरू होने के पहले निद्रित व्यक्ति मे कुछ करवटें बदलने, अपने हाथ-पैर, अँगुलियों, सिर इत्यादि हिलाने-डुलाने की क्रिया देखी जाती है, परन्तु जब स्वप्न का देखना शुरू हो जाता है तो शरीर धीरे-धीरे अधिक शान्त और शिथिल-जैसा हो जाता है। ये सपने 'डेमेन्ट' के अनुसार अत्यधिक लम्बे और घण्टो तक चलने वाले भी हो सकते है। उन्होंने अपने प्रयोग द्वारा इस प्राचीन कथा का अब खण्डन कर दिया है कि सपने छोटे होते है (Dream are always brief)। स्वप्नो पर अभी भी अनुसंधान जारी है तथा आशा है कि मनोवैज्ञानिक निकट भविष्य मे ही हमारे स्वप्नो का और भी अधिक वैज्ञानिक अध्ययन एव मीमासा प्रस्तुत कर सकेंगे।[1]

स्वप्न की विशेषताएँ
(Characteristics of dream)

पहले लोगो का विचार था कि स्वप्न अनर्गल एव निरर्थक होते हैं, परन्तु आज के मनोवैज्ञानिको के अनुसार स्वप्नो की सबसे पहली विशेषता यह है कि—

१. स्वप्न सार्थक होते हैं (Dreams are meaningful)—स्वप्न निरर्थक एवं अनर्गल नहीं होते हैं। हमारे स्वप्न हमारे जीवन के अनुभवो एव उसकी समस्याओ से एक विशेष सम्बन्ध रखते हैं। ऊपर-ऊपर से सुनने-देखने मे भले उनका कोई विशेष अर्थ नही मालूम पडे, परन्तु उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे अर्थपूर्ण एव साकेतिक होते हैं।

एक व्यक्ति ने स्वप्न मे एक भयकर जादूगरनी (Witch) को माँ कह कर पुकारा तथा एक माँ ने स्वप्न में यह देखा कि उसकी एकलौती बच्ची मर गयी है। नींद खुली तो वह देखती है कि उसकी बच्ची सकुशल सो रही है।

ऊपर से देखने पर जादूगरनी को माँ कहना अथवा बच्ची की मृत्यु को देखना, दोनो निर्मूल तथा व्यर्थ की बातें मालूम पडती हैं। परन्तु स्वप्न विश्लेषण के बाद पता चलता है कि उस व्यक्ति ने उस जादूगरनी को स्वप्न मे 'माँ' कहकर इसलिए सम्बोधित किया, क्योकि बचपन मे उसकी अपनी माँ उस पर जादूगरनी की तरह ही प्रभाव (Witch like influence) डाल कर अपने नियंत्रण मे रखा था। अस्तु व्यक्ति के द्वारा माँ शब्द निकल जाने का कुछ विशेष गहरा अर्थ अवश्य था। ठीक इसी प्रकार 'माँ' का अपनी बच्ची की मृत्यु देखने का यह छिपा अभिप्राय मनो-विश्लेषण से पता लगा कि माँ किसी नये व्यक्ति के प्रेम मे पड कर उससे विवाह करने को उतावली हो रही थी और उसके मार्ग की एकमात्र रुकावट उसकी बच्ची थी जिस रुकावट को वह अचेतन (Unconsciously) या एकदम हटा देना

१. *Psychology Made*, Simple-sperling, A. P., Page 158,

हवा में उड़ता, दौड़ना, छाता लेकर चलना, तैरना, गाड़ी मे बैठना इत्यादि सब के-सब अपना प्रतीकात्मक अर्थ हैं (Symbolic meaning) रखते जिनकी चर्चा आगे चल कर की गयी है।

५ सपने हमारे अचेतन से सम्बन्धित होते हैं (Dreams are related to unconscious) - प्रत्येक स्वप्न के पीछे व्यक्ति की अपनी अचेतन मानसिक अवस्था क्रियाशील रहती है। फ्रायड ने लिखा है कि Dreams are the roads to unconscious यह अचेतन का ही प्रभाव है कि सपनों मे नाटकीयता (Dreamtisation) आकुंचन (Condensation), विस्तारण (Secondary Elaboration) इत्यादि पाये जाते हैं। इनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

६ स्वप्न प्रतिमाओं से बनते हैं (Dreams are made of images)—स्वप्न प्रतिमाओं से बनते हैं परन्तु स्वप्नों में दृष्टि प्रतिमाओं (Visual Images) की सर्वाधिकता रहती है। श्रवण-प्रतिमाओं (Auditory Images) का स्थान प्राय दूसरा होता है। अन्य प्रतिमाएँ अपेक्षाकृत कम आती हैं।

७ स्वप्न नींद टूटने के पश्चात् प्राय शीघ्र भूल जाते हैं (Dremas are quickly forgotten after sleep)—नींद खुलने के कारण जब स्वप्न टूट जाता है तो स्वप्न की कथावस्तु बहुत कुछ भूल गयी होती है और उसका जो भाग याद भी रहता है वह भी प्राय शीघ्रता से व्यक्ति भूल जाता है।

८ स्वप्न भ्रमात्मक होते हैं (Dreams are hallucinatory)—स्वप्न भ्रमात्मक (Hallucinatory) होता है जो थोड़ी देर के लिए वास्तविक (Real) मालूम पड़ता है।

९ स्वप्न में हमारी इच्छापूर्ति का प्रयास रहता है (Dreams are the attempted wish fulfilments)—स्वप्न हमारे अचेतन की दमित इच्छाओं (Repressed desires) की पूर्ति का प्रयास है। बच्चों के सपनों में वयस्कों की अपेक्षा उनकी इच्छाओं की पूर्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष रूप से (More directly) होती है। जब बच्चों को वास्तविक जाग्रत-जीवन में सुन्दर खिलौने खेलने को नहीं मिलते तो अक्सर स्वप्न मे अच्छे-अच्छे खिलौने के साथ अपने को देखते हुए अथवा खूब अच्छी-अच्छी मिठाइयो को खाते-लुटाते हुए देखते है। वयस्कों की दशा में इच्छापूर्ति (Wish-fulfilment) की यह क्रिया प्राय अधिक अप्रत्यक्ष रूप (Nore-indirectly) से होती हैं।

उदाहरणार्थ [१]—एक लड़की एक युवक से अनुराग (Love) रखती थी। उसके मानस मे उस युवक के प्रति बहुत-सी काम-भावना भी जगती थी जो सामाजिक तथा वैयक्तिक कारणो के कारण दमित (Repressed) हो जाया करती थी। उस लड़की ने एक स्वप्न देखा, जिसका कुछ अ श इस प्रकार है—"वह किसी बड़े शहर में अपने प्रिय युवक के साथ घूमने निकली है। दोनों 'बस' में सवार होकर चल पड़ते

१ Brown *Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, Page 219.

हैं। कुछ ही दूर के बाद उस युवक को बहुत भूख लग जाती है और वह उस लड़की से अनुरोध करके उतर जाता है। फिर दोनों वहाँ से एक होटल में जाते हैं जहाँ दोनों मिल कर जी भर कर खूब खाना खाते हैं। खाना समाप्ति के बाद युवक अपने हाथ का छाता युवती को दे देता है और होटल का बिल 'बिना चुकाये हुए ही युवती को छोड़कर होटल से बाहर चला जाता है।'

ब्राउन (Brown) नामक मनोवैज्ञानिक ने स्वप्न विश्लेषण के बाद कहा कि इसमें युवती की दमित इच्छाओं की पूर्ति हुई थी। सामाजिक बन्धनों के कारण वास्तविक जीवन में युवक के साथ स्वतन्त्रता से घूम फिर नहीं सकती थी परन्तु स्वप्न में वह ऐसा कर सकी। साथ-साथ होटल में जाकर खूब भोजन करना यौन समागम की दमित इच्छा की प्रतीकात्मक पूर्ति (Symblic satisfaction) है तथा युवती के पास युवक का छाता छोड़कर चला जाना युवती के अन्दर पुरुष लिंग (Male genital organ) के सम्पर्क में आने की काम-सम्बन्धी दमित इच्छाओं की सन्तुष्टि करता है।

इस छोटे-से उदाहरण से हमने देखा कि किस प्रकार स्वप्न में हमारी दमित इच्छाओं की सन्तुष्टि का प्रयास होता है। इसी प्रकार एक सन्यासिनी (Nun) ने स्वप्न में देखा कि उसके क्लारुज में कुछ बच्चे लग गये हैं जिनका रंग दूध-जैसा है। स्वप्न विश्लेषण से पता लगा कि उसकी माँ बनने की इच्छा इस स्वप्न में संतुष्टि पा रही थी। सन्यासिनी का यौन-जीवन असन्तुष्ट था जिसकी आंशिक सन्तुष्टि इस स्वप्न में हुई।

स्वप्न के कुछ प्रकारात्मक उदाहरण
(Some Typical Examples of Dream)

१ इच्छापूर्ति स्वप्न (Wish fulfilment dream)—ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट होगा कि इच्छापूरक स्वप्न किस प्रकार के होते हैं।

ऐसे तो प्राय प्रत्येक स्वप्न से किसी न किसी प्रकार की इच्छापूर्ति होती ही है परन्तु कुछ स्वप्नों में इसकी सन्तुष्टि प्रत्यक्ष रूप से (Directly) होती है। कुछ में यह कम प्रत्यक्ष रूप से और अधिकतर स्वप्नों में तो यह सन्तुष्टि एकदम अप्रत्यक्ष और सांकेतिक रूप से प्राप्त होती है। अक्सर तो स्वप्नद्रष्टा (Dreamer) को पता भी नहीं चलता कि अमुक स्वप्न से उसकी इच्छा की पूर्ति हुई है।

२ चिन्ता-स्वप्न (Anxiety dream)—ऐसे स्वप्न की अवस्था में स्वप्न देखने वाले व्यक्ति के अन्दर एक तीव्र चिन्ता की स्थिति (State of anxiety) विशेष रूप से देखी जाती है। इस अवस्था में स्वप्न देखते-देखते व्यक्ति भयभीत हो जाता है तथा उसके शरीर के अन्दर और बाहर भय से सम्बन्धित संवेगात्मक व्यवहार भी देखे जाते हैं। एक भयपूर्ण बेचैनी से व्यक्ति की नींद टूट जाती है। स्वप्न में सहसा काँपना, चीखना चिल्लाना पसीना से तरबतर हो जाना इत्यादि लक्षण प्रायः देखे जाते हैं। कुछ व्यक्तियों को ऐसे स्वप्न प्राय समान रूप से बराबर आते

हैं। इस प्रकार के स्वप्नों द्वारा किस इच्छा की पूर्ति किस प्रकार होती है, यह विवाद का विषय है।

उदाहरणार्थ—(क) एक महिला ने स्वप्न मे देखा कि जाड़े की रात है। जाने कैसे वह एक अजनबी जगह मे पहुँच गयी है जहाँ वह किसी होटल के कमरे मे ठहरी हुई है। रात काफी बीत चुकी है। अस्तु, वह सोने जा रही है। सोने से पहले वह कमरे का दरवाजा बन्द करने जाती है। सहसा वह देखती है कि जिस कमरे में वह खडी है उसकी चारो दीवारें पीछे की ओर हटती जा रही हैं और छत भी फैलती जा रही है। कमरे का आकार बहुत जल्दी-जल्दी उसकी इच्छा के विरुद्ध बढ़ा होता जा रहा है। परिणाम यह होता है कि वह दरवाजा जिसे वह सोने जाने के पहले बन्द कर देना चाहती है, उससे बहुत दूर पीछे बहुत तेजी से हटता जा रहा है और वह भागते हुए दरवाजे को पकड कर बन्द करने के लिये उसकी ओर तेजी से दौडने का असफल प्रयास करती-करती परेशान हो रही है। वह जितनी तेजी से दौडने का प्रयास करती है और पैर उतने ही धीरे-धीरे उठ पाते हैं। परन्तु दरवाजा भागता जा रहा है और वह उसे पकड नही पा रही है। वह पसीने-पसीने हो गयी है। वह भय और हतोत्साह के कारण अजीब घबराहट का अनुभव कर रही है। दरवाजा भागते-भागते पता नही क्या हो जाता है और अचानक यह महिला अपने को पहाड की चोटी पर खडी पाती है जहाँ उसके पैर घबराहट से फिसल जाते हैं और वह नीचे तराई मे गिरी जा रही है। सहसा एक चीख के साथ उसकी नींद खुल जाती है।

(ख) इसी प्रकार एक ३४ वर्षीय व्यक्ति प्रायः यह देखा करता था कि उसका लडका कुआँ में गिर गया है। आस-पास कई एक जाने-पहचाने जैसे व्यक्ति खडे हैं, पर कोई उस बच्चे की ओर ध्यान नही देता। वह चिल्लाता हुआ स्वयं कुएँ की ओर दौडता है और रस्सी मे बाल्टी लगा कर वह जल्दी से कुएँ में इस उम्मीद से गिराता है कि शायद बच्चा इस बाल्टी द्वारा ऊपर खींच लिया जा सके। बाल्टी अन्दर जाती है। उसे ऐसा लगता है कि उसमें उसके बच्चे के सम्पूर्ण शरीर की जगह उसका खण्डित एवं खून से लथ-पथ शरीर बाल्टी मे है। वह जोर-जोर से रोने लगता है और सहसा उसकी नींद खुल जाती है तो वह पाता है कि उसका कलेजा धडक रहा है और शरीर पसीने से तर हो रहा है तथा उसका वह बच्चा वास्तव मे उसी के साथ सुख की नींद सो रहा है।

मनोवैज्ञानिक ऐसा मानते है कि जाग्रतावस्था मे व्यक्ति के अन्दर किसी कारण से अत्यधिक भय अथवा चिन्तन (Fear or anxiety) उत्पन्न हो जाती है तो सो जाने पर भी इनका प्रभाव रह जाता है और वे ही हमारे सपनो को भयपूर्ण एवं चिन्तामय बना डालते है। इस प्रकार के सपनो का सरल रूप (Simple form) भी हम पाते हैं, जैसे—विद्यार्थी का परीक्षा के बाद स्वप्न मे यह देखना कि उसका परीक्षाफल अखबार मे निकला है और उनमें उसे अपना नाम बहुत प्रयास के बाद

९ मरण स्वप्न (Death dreams)—स्वप्नों में व्यक्ति अपने किसी परिचित सम्बन्धी अथवा प्रिय व्यक्ति की मृत्यु होते अथवा उनको मृतावस्था मे देखता पाया जाता है। ऐसे स्वप्नों में प्राय वे ही लोग मरते देखे जाते हैं जो वास्तव में जीवित होते हैं और जो स्वप्नद्रष्टा के आत्मीय होते हैं। इस प्रकार मरे हुए व्यक्ति को स्वप्न में फिर से मरते देखना अथवा उनका जीवित होकर फिर बातें अथवा कुछ क्रिया करना तथा पुन मर जाना इत्यादि ऐसे स्वप्न के साधारण अनुभवो में से हैं।

१० सामूहिक स्वप्न (Common or Collective dreams)—कभी-कभी ऐसा पाया जाता है कि किसी परिस्थिति विशेष में बहुत-से लोग प्राय एक ही जैसा स्वप्न देखते हैं। किसी स्थान विशेष के निवासियों को यदि यह विदित हो जाय कि आजकल में उनके शहर पर बम गिराया जाने वाला है या भूकम्प आनेवाला है अथवा बाढ आने जाने की सम्भावना है तो ऐसे अवसरो पर अनेक नगरवासियों को प्राय एक जैसे स्वप्न आते पाये जायेंगे। पर वे सपने हू ब हू एक जैसे नहीं होते।

इसी प्रकार कुछ व्यक्तियों को स्वप्न के दृश्य अवसर बहुरंगे चलचित्र की तरह स्पष्ट एवं यथेष्ट रंगीन दिखाई पडते हैं। ऐसे सपनो को हम बहुरंगे स्वप्न (Technicolour dreams) की संज्ञा दे सकते है।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कौन-सा व्यक्ति किस प्रकार का स्वप्न देखता है। यह उसके अपने गत अनुभवों (Paste experience) इच्छाओं (Desires) समस्याओं (Problems) इत्यादि पर निर्भर करता है यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि स्वप्नों के इस प्रकार भेद के अध्ययन का यह अर्थ नहीं कि ये विभिन्न प्रकार के स्वप्न एक-दूसरे से सर्वथा पृथक्‌तया अपना पृथक् स्थान रखते हैं वरन् यह विभाजन तो सिर्फ इन्हें समझने की सुविधा के दृष्टिकोण से किया गया है।

अब तक हमलोगो ने स्वप्नो के कुछ प्रमुख प्रकारो का वर्णन किया है। इन स्वप्नों के और भी प्रकार भेद किये गये हैं। परन्तु सारजेंट (Sargent) नामक मनोवैज्ञानिक ने स्वप्नों को सिर्फ दो वर्गों में विभाजित करना ही उचित समझा है जो हैं—(क) सरल स्वप्न (Simple dreams) एवं (ख) मिश्रित अथवा सम्बन्ध स्वप्न (Involved dreams)।

सारजेंट का वर्गीकरण
(Sargent s Classification)

(क) सरल स्वप्न (Simple dreams)—इन स्वप्न देखने वाले की इच्छाओं की पूर्ति अत्यधिक प्रत्यक्ष रूप से होते पाते हैं जैसे—एक दिन लडकी अपने पिता के साथ बाजार घूमने जा रही थी। उसने एक दुकान म तीन पहियों की साईकिलें बिकती देखनी। उसने पिताजी से ट्राइसिकिल खरीद देने का आग्रह किया। परन्तु पिताजी ने उसे कुछ मीठी मीठी बातें कह कर बहला दिया। लड़की

को रेडीमेड कपडो की दूकान मे टँगे कुछ सुन्दर कपडे भी बेहद पसन्द आये । परन्तु उसने अपने पिता से किसी कारण से कपडो को खरीद देने का आग्रह नहीं किया उसकी इच्छा उसके अन्दर ही दब गयी ।

रात मे उस लडकी ने स्वप्न मे देखा कि वह एक सुन्दर-सी 'ट्राइसिकिल' पर खूबसूरत पोशाक पहने पार्क मे सैर करने निकली है तथा उसके बहुत-से दोस्त उसकी इन नयी सायकिल तथा पोशाक को लालच भरी नजर से देख रहे हैं ।

ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने वास्तविक जीवन मे धनी नही हो पाता वह सपने मे अपने को रुपयो के ढेर के बीच देख सकता है ।

(ख) मिश्रित स्वप्न (involved dreams)—यहाँ हमारी इच्छाओ की पूर्ति इतनी स्पष्टता से होती नही पायी जाती है । इस प्रकार के स्वप्न मे **प्रतिकात्मकता** (Symbolization), **संकुचन** (Condensation), **विस्थापन** (Displacement) इत्यादि की क्रियाएँ देखी जाती हैं जिनसे ऐसे स्वप्नो को समझना कठिन हो जाता है जिनके उदाहरण आगे दिए गए है ।

स्वप्न के सिद्धान्त
(Theories of Dream)

स्वप्न की दुनिया आदिकाल के विद्वानो के लिए एक जिज्ञासा, कौतूहल एव अनुसन्धान की समस्या रही है । ये सपने क्या है, हम क्यो देखते हैं ? क्या सपने सच होते हैं अथवा क्या ये सपने एक निर्मूल एव असंगत अनुभव मात्र है ? इत्यादि कुछ ऐसे चिरन्तन प्रश्न है जो मनुष्य की बुद्धि और तर्क को युग-युग की चुनौती देते आये है ।

भिन्न-भिन्न विद्वानो एव दार्शनिको ने अपने अनुभव एव सूझ के आधार पर स्वप्न की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की है ।

कुछ दार्शनिको का विचार है जब मनुष्य सो जाता है तब उसकी आत्मा का एक रूप उसके शरीर से बाहर निकलता है और शरीर के आस-पास या उसको छोड कर कुछ दूर या बहुत दूर इधर-उधर घूमता-फिरता, चक्कर लगाता रहता है । इस घूमने-फिरने के सिलसिले मे आत्मा का वह रूप नये एव अनोखे स्थानो मे भी पहुँचता है फलस्वरूप उसे नये नये अनुभव प्राप्त होते है । उन दार्शनिको के अनुसार आत्मा के इस रूप मे भी देखने-सुनने, दुःख प्रकट करने, हर्षित होने इत्यादि के गुण वर्तमान रहते है । आत्मा तब तक शरीर के बाहर घुमती रहती है तब तक मनुष्य सोया रहता है । मनुष्य जब जागता है, उस समय तक वह आत्मा फिर से लौट कर उसके शरीर मे आ गयी होती है । आत्मा को घुमने-फिरने के सिलसिले मे जो-जो दृश्य दिखाई पडते है अथवा जो भी अनुभव प्राप्त होते है वे ही दृश्य तथा अनुभव व्यक्ति के जागने के बाद याद आते है जो उसे देखे हुए स्वप्न जैसे प्रतीत होते है । **हिपोक्रेटिस**(Hipocrates—460-354 B C) नामक दार्शनिक का प्राय ऐसा ही विचार था ।

ल्यूक्रिटिस (Lucretius—98 55 B C) नामक दार्शनिक का कहना था कि मनुष्य की आत्मा अपने कई-एक छोटे छोटे भागों को मिला कर बनी होती है। इनके भिन्न भिन्न भाग शरीर के भिन्न भिन्न भागों की क्रिया का सचालन करते है। वह यह भी मानता है कि आत्मा (Soul) म ऐसी शक्ति होती है कि वह शरीर को छोड़ कर बाहर जा सके और ऐसे ऐसे काम कर सके जैसे कार्य करना शरीर के लिए असम्भव है। रात मे सो जाने पर यह आत्मा अक्सर अनेक अनोखे कार्य करती होती है। ल्यूक्रिटस के अनुसार व्यक्ति की सुप्तावस्था में उसकी आत्मा द्वारा किये गये इन्ही विभिन्न क्रियाकलापो से प्राप्त अनुभव एव उनकी याददाश्त को ही स्वप्न कहा जाना चाहिए।

कुछ भारतीय दार्शनिक यह भी मानते रहे है कि मनुष्य योनि मे जन्म लेने के पहले यह जीवात्मा (Soul) चौरासी लाख लघु निम्नस्तर (Lower in the ladder of evolution) की योनियो मे भटक चुकी होती है और तब अन्त में मनुष्य योनि में जन्म लेती है। भिन्न भिन्न योनियों के शरीर तो नष्ट होते जाते है लेकिन आत्मा अमर (Immoral) होती है जो एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में प्रविष्ट होती है। इस प्रकार वह भिन्न भिन्न योनियों के जीवन काल में प्राप्त अनुभव का अपने-आप में सचय करती जाती है। स्वप्नावस्था में हमारी आत्मा के इन भिन्न भिन्न योनियों में प्राप्त अनुभवो का पुन स्मरण होता है। इसके अनुसार हम स्वप्न मे अपने को उड़ते हुए देखते हैं क्योंकि कभी हमारी आत्मा पक्षी के शरीर में रही होगी। हम अपने को स्वप्न में तैरते हुए इसलिए पाते है चू कि जो आत्मा इस शरीर में वर्तमान है वह कभी जल में रहने वाले जीव-जन्तुओं की अवस्था से भी गुजर चुकी है। स्वप्न में हम पहाड़ पर चढ़ते हुए इसलिए नजर आते है कि हमारी आत्मा ने कभी किसी जीव के शरीर मे रह कर पहाड़ पर चढने का अनुभव प्राप्त किया था। एक ही समय ऐसे कई विगत अनुभवों का पुन स्मरण भिन्न भिन्न प्रकार से हो जाने से स्वप्न को समझना हमारे लिए कठिन हो जाता है। ऐसे दार्शनिक स्वप्न का सम्बन्ध आत्मा के भूतकालिक अनुभवो से मानते है।

प्राय प्रत्येक युग मे कुछ ऐसे भी विद्वान रहे है जो स्वप्नों को जानकर जिस व्यक्ति ने स्वप्न देखा है उसके भावी जीवन म कुछ भविष्यवाणी करने का प्रयास करते हैं। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो हमारे स्वप्नों में आने वाले शुभ-अशुभ का सकेत पाते हैं। व्यक्ति रात्रि के किस प्रहर में स्वप्न देखता है इस पर भी यह बात निर्भर करती है कि स्वप्न सत्य होगा या असत्य। कुछ लोग सपनों के पीछे दैवी प्रभाव (Divine inluence) होने की बात सोचते रहे है। कहने का अर्थ यह है कि आदिकाल से ही विद्वानों ने स्वप्नों के कारण और अभिप्राय (Cause and signi ficance) के समझने की चेष्टा की है।

परन्तु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि प्राचीन (Ancient) काल के विद्वानों ने स्वप्न के प्रश्न पर प्राय उतनी सावधानी क्रमबद्धता एव धीरज के साथ चिन्तन

मनन एव अनुसन्धान करने का प्रयास नही किया जितना कि अर्वाचीन मनोवैज्ञानिकों (Modern psychologists) ने किया है।

ऐसे तो स्वप्न की व्याख्या करनेवाले बहुत से सिद्धान्त (Theories) हैं, परन्तु उनके आधुनिक सिद्धान्तो को हम मोटा-मोटी इन दो वर्गों मे बाँट सकते हैं—

१ दैहिक सिद्धान्त (Physiological Theory)—ऐसे सिद्धान्त जो बाह्य अथवा आन्तरिक उत्तेजनाओ (External or Internal Stimuli) के फलस्वरूप उत्पन्न शारीरिक अवस्थाओ (Physical Conditions) को अधिक महत्त्व देते है और उन्हे ही स्वप्न का मूल कारण जानते है—इन्हे हम दैहिक सिद्धान्त (Physiological theories) की सज्ञा दे सकते है। इस वर्ग (Class) मे हम दो प्रमुख सिद्धान्तो के नाम लिए जा सकते हैं—(क) प्रत्यक्षीकरण विपर्यय सिद्धान्त (Perception Illution Theory) एव (ख) प्रयोधन-क्रियात्मक सिद्धान्त (Apperceptive Trial and Error Theory)।

२ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Psychological theories)—दूसरे वर्ग मे हम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Psychological theories) को रखते है। इसमे फ्रायड (Freud), एल्डर (Elder), युग (Jung) इत्यादि के सिद्धान्त एव विचार उल्लेखनीय है। ये मानसिक अवस्थाओ (Phases of mind) तथा उनसे प्राप्त अनुभवो का स्वप्ननिर्माण (Dream formation) का प्रमुख कारण मानते है।

अब हम एक-एक कर सक्षेप मे इनका वर्णन आगे करेंगे।

१ दैहिक सिद्धान्त (Physiological Theory)

(क) प्रत्यक्षीकरण विपर्यय सिद्धान्त (Perception Illusion theory)—नींद की अवस्था मे व्यक्ति की चेतना का नियन्त्रण एकदम शक्तिहीन एव शिथिल पड जाता है। हमारे उच्च स्नायुमण्डल (Higher nervous system) की क्रिया भी अपेक्षाकृत अत्यन्त निष्क्रिय हो जाती है। परिणाम यह होता है कि नींद की अवस्था मे जो बाहरी उत्तेजनाएँ व्यक्ति की ग्राहकेन्द्रियो को प्रभावित करती हैं उनका प्रत्यक्षीकरण ठीक नही हो पाता है। नींद की अवस्था मे उत्तेजनाओ की उपस्थिति से उत्पन्न साहचर्य की क्रिया (Associative process) का स्नायुमार्ग (Nervous tracts) अवरुद्ध (Blocked) रहता है। पहले से बने हुए साहचर्य-मार्ग (Previously made associative tracts) के अवरुद्ध रहने के कारण उत्तेजनाओ के प्रभाव से ज्ञानेन्द्रियो मे उत्पन्न स्नायुप्रवाह (Nerve impulse) नये और आसान (Paths of least resistance) मार्गों से स्नायुमण्डल के उच्च स्तर तक पहुँचने का प्रयास करते है। फलत नींद मे उच्चतर स्नायुमण्डल (Higher nervous system) की निष्क्रियता (Passivity) के कारण उत्तेजनाओ का गलत एव भ्रामक (Illusory and Hallucinatory) अर्थ लग जाता है। अर्थात् उपस्थित उत्तेजनाओ का सामान्य अर्थ (Normal association) नही लग पाता है और उसका जो भी

अथ प्रतीत होता है अतार्किक (Illogical) जैसा होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार निद्रावस्था में भी व्यक्ति को बहुत-सी उत्तेजनाओं के प्रतिक्रिया (Response) स्वरूप उत्पन्न होता है।

नींद की अवस्था में भी व्यक्ति उत्तेजनाओं (Stimuli) से घिरा होता है। ये उत्तेजनाएं कमरे के तापमान (Temperature) आद्रता (Humidity) बिछावन, कपड़, पखे की हवा तकिया इत्यादि से भी उत्पन्न हो हो कर व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती है। नींद की अवस्था म हमारी चेतना (Conscious mental process) चूंकि घोर निर्बल हो जाती है इसीलिए जो उत्तेजनाएं हमारी ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती है उनका सही अथ नहीं समझा है। उत्तेजनाओं के इस दोष पूर्ण ज्ञान के कारण ही स्वप्न इतने असंगत निरर्थक एव बेतुके दिखाई पड़ते है। अर्थात् स्वप्न से प्रत्यक्षीकरण विपर्यासात्मक (Illusory) होता है।

यहाँ एक बात और जानने की है कि स्नायुमण्डल के उच्चतर भाग (Higher centre of the nervous system) निचले भागों (Lower centres of the nervous system) की क्रियाओं पर नियन्त्रण रखते हैं। नींद पड़ जाने पर बहुत मस्तिष्क एवं अन्य उच्च मस्तिष्क केन्द्रों का नियन्त्रण नीचे के केन्द्रों पर प्राय एकदम नहीं रहता है। फलत स्नायुमण्डल के निचले केन्द्रों Lower centres) की कार्यवाही निद्रावस्था में अत्यधिक स्वतः म रहती है। यही कारण है कि स्वप्न में उत्तेजनाओं का अतिशयात्मक अर्थ (Exaggerated meaning) लगता है। नींद म अगर चारपाई की रस्सी में जरा-सा भी पर उलझ जाये तो सोया हुआ व्यक्ति सपने में अपने को गिरफ्तार या किसी जाल में फँसा देख सकता है। शरीर पर किसी कारण पड़े एक तकिया (Pillow) का भी बोझ उसे पर्वत-जैसा लग सकता है। उसे दम घुटने (Suffocation) का अनुभव होने लगता है।

उच्च मस्तिष्क-केन्द्र जब तक सक्रियता से अपना काम करते रहते हैं तब तक ऐसा अतिशयता नहीं देखा जाती। परन्तु उच्च केन्द्रों के स्नायुओं मे क्रियाशीलता के कारण एक प्रकार का रासायनिक द्रव (Toxin) जमा हो जाता है। इस द्रव के अधिक मात्रा में जमा हो जाने के कारण इन केन्द्रों की सक्रियता मे कमी आती जाती है। नींद की अवस्था में ये स्नायु-केन्द्र पूर्ण विश्राम (Refactory period) की अवस्था म रहते हैं। फलत उनकी नियन्त्रणात्मक क्रियाएं निष्क्रिय हो जाती है। इसी निष्क्रियता का परिणाम है कि स्वप्न में प्राप्त अनुभवो द्वारा सुदृढ़ मस्तिष्क चिह्न (Strong mental traces) भी नहीं बन पाते हैं। यही कारण है कि *व्यक्ति स्वप्न की बातें अधिक शीघ्रता से भूल जाता है।*

प्राय इसी सिद्धान्त से मिलता-जुलता एक और प्रमुख दैहिक सिद्धान्त है जिसे प्रबोधन क्रियात्मक सिद्धान्त (Apperceptive Trial and Error Theory) की संज्ञा दी गयी है।

(ख) स्वप्न का प्रबोधन नियात्मक सिद्धान्त (Apperceptive Trial and Error Theory)—प्रत्यक्षीकरण विपर्यय सिद्धान्त की तरह यह सिद्धान्त भी स्वप्न

को उत्तेजनाओ के प्रतिक्रिया-स्वप्न मानता है। परन्तु, इस सिद्धान्त के पोषक यह भी मानते है कि सुप्तावस्था मे जब वाह्य अथवा आन्तरिक उत्तेजनाएँ (External or Internal stimuli) व्यक्ति को प्रभावित करती रहती है उस समय यद्यपि व्यक्ति के उच्च स्नायुकेन्द्र निष्क्रिय रहते, है, फिर भी उनके द्वारा आने वाली उत्तेजनाओ के अर्थ के स्पष्टीकरण का प्रयास किया जाता है। परन्तु सुप्तावस्था के कारण यह प्रयास अत्यन्त निर्बल होता है। यही कारण है कि उत्तेजनाओ का सही अर्थ न लगा कर उससे सम्बन्धित कोई दूसरा ही अर्थ लग जाता है। इन प्रयासो (Trials) मे कई भूले (Error) होती है जिनके कारण सपनो को समझना कठिन होता जाता है। अर्थात्, नीद की अवस्था मे भी उच्च मस्तिष्क-केन्द्र एकदम घोर रूप से निष्क्रिय नही हो जाते हैं।

इतना तो यह सिद्धान्त भी मानता है कि स्वप्न वाह्य एव आन्तरिक उत्तेजनाओ के प्रभाव से उत्पन्न होते है। ये उत्तेजनाएँ सोने के शारीरिक मुद्राओ (Bodily postures during sleep) से भी उत्पन्न होती है, जैसे—तकलीफ-देह मुद्रा (Odd position) मे सोया रहना, सोने के समय पैर-हाथ बिलकुल फैलाकर चित लेटना, सोने के समय अपनी दोनो हथेलियो को अपने कलेजे पर रखे रहना इत्यादि। हार्टन (Lyeiord H W Horton) के मुताबिक सपनो मे जो हम अपने को उडते हुए पाते है (Flying dreams) उनका सम्बन्ध हमारी साँस-क्रिया (Respiration) के समय हमारी छाती की पेशियो और पसलियो के ऊपर-नीचे होनेवाली लयात्मक गति (Rythmical movements) से उत्पन्न असामान्य परिवर्तनो (Abnormal changes) है। परन्तु श्रीमती अरनॉल्ड फौस्टर (Arnold Foster) का यह विचार है कि ऐसे स्वप्नो का सम्बन्ध सुप्तावस्था मे होनेवाली मानसिक क्रियाओ (Mental activities) की अतिशयता से है। आन्तरिक शारीरिक अवस्थाओ (Internal physical condition) का महत्व यह सिद्धान्त काफी मानता है। सारजेण्ट (Sargent) ने उसकी पुष्टि मे लिखा है कि एक व्यक्ति यदि रात्रि मे अधिक खाकर सोता है और उसकी पाचन-क्रिया मे कोई गडबडी उत्पन्न हो जाय तो उसके हृदय की गति (Palpitation of heart) मे वृद्धि होना सम्भव है और इस अवस्था मे वह व्यक्ति स्वप्न मे यह देख सकता है कि वह किसी ऊँची जगह से नीचे गिर रहा है या किसी भयकर घटना को स्वप्न मे देखकर भयभीत हो जा सकता है।

नाइट डनलप (Knight Dunlop) ने अपने अनुसधानो मे यह पाया कि किसी ऊँचे स्थान से गिरने के स्वप्न का सम्बन्ध सम्भवत निद्रावस्था मे जननेन्द्रिय एव मूत्रग्रन्थियो मे किसी कारण से सिकुडने की क्रिया उत्पन्न होने से है। अपने कथन की पुष्टि के लिए, इनका यह कहना है कि व्यक्ति जाग्रतावस्था मे भी कही ऊँचाई से गिरता है तो सच मे उसके जननेन्द्रियो एव मूत्र-ग्रन्थियो मे यह सिकुडन (Contraction) पायी जाती है। उसी प्रकार उनका कहना है कि नग्नता (Nakedness) के स्वप्न वातावरण अधिक तापमान (Temperature) के कारण उत्पन्न

होते हैं अर्थात्, सोने वाला व्यक्ति क्या स्वप्न देखेगा, यह उसके तात्कालिक वातावरण से उत्पन्न उत्तेजनाओं के स्वभाव (Nature) पर तथा नींद की अवस्था में उसके एकदम निष्क्रिय चेतन-मानस द्वारा उन उत्तेजनाओं का अर्थ लग पाता है, इन दोनों बातों पर निर्भर करता है। सोनेवाला व्यक्ति उन उत्तेजनाओं को ग्रहण करता है, परन्तु उसका निद्रित मानस सकल उनके अर्थ का स्पष्टीकरण नहीं कर पाता (The stimulus is accepted by dreamer but the sleeping Mind fail to interpret it all right—Sargent Psychology P 127

मनोवैज्ञानिकों ने पाया कि निद्रित व्यक्ति के पास यदि अलार्म घड़ी बजायी जाय तो निद्रित व्यक्ति को इसका ठीक प्रत्यक्षीकरण न होकर, हो सकता है कि स्वप्न में यह दिखाई दे कि वह सड़क पर चल रहा है और कोई पीछे से लगातार साईकिल की घण्टी बजाकर उससे सड़क के एक किनारे हो जाने के लिए संकेत कर रहा है या किसी मन्दिर में बड़ी घण्टा बजा कर आरती हो रही है या वह किसी बस में यात्रा कर रहा है जिसका कण्डक्टर (Conductor) बार-बार अपनी घण्टी बजाकर बस के ड्राइवर को बस चालू (Start) करने का संकेत दे रहा है या किसी रेलवे स्टेशन पर आने वाली गाड़ी के लिए लाइन क्लियर (Line clear) की घण्टी बजायी जा रही है इत्यादि। इसी प्रकार के व्यक्ति को मिस्टर मौरी (Mr Morry) ने चेहरे पर जल का फुहारा दिया तो उस व्यक्ति ने स्वप्न में अपने को वर्षा म भीगते हुए, किसी रेस्तराँ में ठंडा पानी पीते हुए, अपने सिर को पसीने से तरबतर होते हुए स्वप्न में स्नान अथवा अपना मुँह धोते हुए इत्यादि इत्यादि अवस्थाओं म भिन्न भिन्न अवसरों पर देखा।

सारजेण्ट (Sargent) महोदय ने इस प्रबोधन क्रियात्मक सिद्धान्त (Apperceptive Trial and Error Theory) जाँच करने के लिए कुछ प्रयोग किये। एक बार उन्होंने एक निद्रित व्यक्ति की नाक के पास इत्र की एक खुली शीशी रखी। थोड़ी देर बाद उस व्यक्ति को जगाया गया और पूछा गया कि क्या वह स्वप्न देख रहा था। उस व्यक्ति ने कहा कि हाँ वह अभी स्वप्न में अपनी एक प्रियतमा के साथ आनन्द से घूम रहा था जो एक विशेष प्रकार का इत्र इस्तेमाल करती थी। यहाँ उपस्थित उत्तेजना के प्रबोध (Apperceptive) के लिए निद्रित मानस द्वारा किया गया प्रयास और उससे भूल स्पष्ट है।

हार्टन (Horton) महोदय ने तो स्पष्ट कहा है कि निद्रित मानस द्वारा संवेदनात्मक प्रभावों का गलत अर्थ लगाना ही स्वप्न है (Dreams are misinterpretation of sensory impression) उदाहरणस्वरूप हॉर्टन ने कहा है कि एक छात्र के दाँत में दर्द हो रहा था। उसने स्वप्न में देखा कि वह किसी पहलवान के साथ मुक्का-मुक्की (Boxing) खेल रहा है। परन्तु बार बार उसका विपक्षी पहलवान उसके मुँह के जबड़े (Jaws) पर मुक्का मार देता है जिससे वह बहुत परेशान हो रहा है। एक दूसरे व्यक्ति के कान में कुछ खराबी हो जाने के कारण हमेशा उसके कान के अन्दर कुछ आवाज जैसी होती मालूम पड़ती थी। उसने स्वप्न म देखा कि भयकर आँधी के बीच बादल बड़ी गड़गड़ाहट के साथ बरस रहे हैं।

हॉलिंगवर्थ (Hollingworth) ने भी ऐसे कई उदाहरण पेश किये हैं। उन्होंने जब अपने प्रयोज्य (Subject) को निद्रित अवस्था में इत्र सुँघाया तब उसने स्वप्न में देखा कि वह कैरो (Cairo) शहर में किसी इत्र की दूकान में इत्र खरीद रहा है। जब निद्रित व्यक्ति की गर्दन पर चिकोटी काटी गयी तो उसने स्वप्न देखा कि उसके शरीर में कुछ फफोले आ गये हैं जो झनझना रहे हैं तथा जिनके इलाज के लिए उसके बचपन का एक डाक्टर सामने खड़ा है। जब प्रयोज्य (Subject) की नाक और उसके होंठ पर चिड़िया का पंख हलके से सटाया गया तो निद्रित व्यक्ति ने स्वप्न में यह देखा कि उसके चेहरे के चमड़े को खरोंच कर मरोड़ रहा है।

अब इनके प्रयोगों में हमने देखा कि एक ही व्यक्ति में भिन्न-भिन्न उत्तेजनाएँ भिन्न-भिन्न निद्रित अवसरों पर किस प्रकार भिन्न-भिन्न सपने उत्पन्न करती हैं।

ठीक इसी सिलसिले में हिलब्राण्ड (Hillbrand) ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि एक ही उत्तेजना (Stimulus) एक ही व्यक्ति में भिन्न-भिन्न निद्रित अवसरों पर भिन्न-भिन्न सपने उत्पन्न करती है। एक घंटी की आवाज (Stimulus) के प्रति एक व्यक्ति ने तीन निद्रित अवसरों पर निम्नलिखित प्रकार के स्वप्न देखे— (१) उसने देखा शिकार पर जाते हुए घोड़ों के गले से लगी हुई घण्टियाँ एक साथ बज रही हैं, (२) ऐसा स्वप्न आया जिसमें उसने गिरजाघर (Church) की प्रार्थना की पुकार की घण्टी बजती सुनी और (३) तीसरी बार उसने यह देखा कि घर की नौकरानी के हाथ से अचानक किसी कारणवश बरतन छूट कर गिर जाने से एक प्रकार की आवाज हुई है।

उपर्युक्त उदाहरणों से अब तक पाठकों को इतना तो अवश्य स्पष्ट हो गया होगा कि बाह्य अथवा आन्तरिक उत्तेजनाओं का स्वप्न-निर्माण में कितना बड़ा हाथ है तथा किस प्रकार उनका अतिशयात्मक (Exaggerated) एवं अयथार्थ अर्थ (Misinterpretation) लगता है।

दैहिक सिद्धान्त की संक्षिप्त आलोचना (A brief criticism of physiological theories)—परन्तु इन दैहिक सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए अन्य मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि इस प्रकार के दैहिक सिद्धान्त सिर्फ इतना बता पाते हैं कि व्यक्ति स्वप्न कैसे (How) देखता है। ये सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं कर पाते हैं कि अमुक व्यक्ति अमुक प्रकार का ही स्वप्न क्यों (Why) देखता है। एक ही प्रकार की उत्तेजना न केवल भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न प्रकार का स्वप्न उत्पन्न करती है वरन् एक ही व्यक्ति में भी भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वप्न उत्पन्न करती पायी जाती है। ऐसा क्यों होता है? इस बात की सफल व्याख्या दैहिक सिद्धान्त नहीं कर पाता है। क्योंकि इत्र सूँघने पर एक व्यक्ति को स्वप्न में उसकी प्रियतमा का साहचर्य होता है तथा दूसरा व्यक्ति स्वप्न में इत्र की दूकान देखता है और इत्र की दूकान भी वह कैरो (Cairo) को ही क्यों देखता है, दूसरे शहरों को क्यों नहीं देखता है। इन बातों की व्याख्या ऊपर वर्णित दोनों दैहिक सिद्धान्त नहीं कर पाते हैं।

होते हैं अर्थात्, सोने वाला व्यक्ति क्या स्वप्न देखेगा यह उसके तात्कालिक वातावरण से उत्पन्न उत्तेजनाओं के स्वभाव (Nature) पर तथा नींद की अवस्था में उसके एकदम निष्क्रिय चेतन-मानस द्वारा उन उत्तेजनाओं का अर्थ लग पाता है इन दोनों बातों पर निर्भर करता है। सोनेवाला व्यक्ति उन उत्तेजनाओं को ग्रहण करता है परन्तु उसका निद्रित मानस चेतन उनके अर्थ का स्पष्टीकरण नहीं कर पाता (The stimulus is accepted by dreamer but the sleeping Mind fail to interpret it all right—Sargent Psychology P 127

मनोवैज्ञानिकों ने पाया कि निद्रित व्यक्ति के पास यदि अलार्म घड़ी बजायी जाय तो निद्रित व्यक्ति को इसका ठीक प्रत्यक्षीकरण न होकर, हो सकता है कि स्वप्न में यह दिखाई दे कि वह सड़क पर चल रहा है और कोई पीछे से लगातार साईकिल की घण्टी बजाकर उससे सड़क के एक किनारे हो जाने के लिए संकेत कर रहा है या किसी मन्दिर में बड़ी घण्टा बजा कर आरती हो रही है या वह किसी बस में यात्रा कर रहा है जिसका कण्डक्टर (Conductor) बार-बार अपनी घण्टी बजाकर बस के ड्राइवर को बस चालू (Start) करने का संकेत दे रहा है या किसी रेलवे स्टेशन पर जाने वाली गाड़ी के लिए लाइन क्लियर (Line clear) की घण्टी बजायी जा रही है इत्यादि। इसी प्रकार के व्यक्ति को मिस्टर मौरी (Mr Morry) ने चेहरे पर जल का फुहारा दिया तो उस व्यक्ति ने स्वप्न में अपने को वर्षा म भीगते हुए, किसी रेस्तरां में ठंडा पानी पीते हुए अपने सिर की पसीने से तरबतर होते हुए स्वप्न मे स्नान अथवा अपना मुंह धोते हुए इत्यादि इत्यादि अवस्थाओं म भिन्न भिन्न अवसरों पर देखा।

सार्जन्ट (Sargent) महोदय ने इस प्रत्यक्ष क्रियात्मक सिद्धान्त (Appeceptive Trial and Error Theory) जाँच करने के लिए कुछ प्रयोग किये। एक बार उन्होंने एक निद्रित व्यक्ति की नाक के पास इत्र की एक खुली शीशी रखी। थोड़ी देर बाद उस व्यक्ति को जगाया गया और पूछा गया कि क्या वह स्वप्न देख रहा था। उस व्यक्ति ने कहा कि हाँ वह अभी स्वप्न में अपनी एक प्रियतमा के साथ आनन्द से घूम रहा था जो एक विशेष प्रकार का इत्र इस्तेमाल करती थी। यहाँ उपस्थित उत्तेजना के प्रबोध (Apperceptive) के लिए निद्रित मानस द्वारा किया गया प्रयास और उनसे भूल स्पष्ट है।

हॉर्टन (Horton) महोदय ने तो स्पष्ट कहा है कि निद्रित मानस द्वारा संवेदनात्मक प्रभावों का गलत अर्थ लगाना ही स्वप्न है (Dreams are misinterpretation of sensory impression) उदाहरणस्वरूप हार्टन ने कहा है कि एक छात्र के दाँत मे दर्द हो रहा था। उसने स्वप्न मे देखा कि वह किसी पहलवान के साथ मुक्का-मुक्की (Boxing) खेल रहा है। परन्तु बार बार उसका विपक्षी पहलवान उसके मुँह के जबड़े (Jaws) पर मुक्का मार देता है जिससे वह बहुत परेशान हो रहा है। एक दूसरे व्यक्ति के कान में कुछ खराबी हो जाने के कारण हमेशा उसके कान के अन्दर कुछ आवाज जैसी होती मालूम पड़ती थी। उसने स्वप्न म देखा कि भयकर आँधी के बीच बादल बड़ी गड़गड़ाहट के साथ बरस रहे हैं।

हॉलिंगवर्थ (Hollingworth) ने भी ऐसे कई उदाहरण पेश किये है। उन्होने जब अपने प्रयोज्य (Subject) को निद्रित अवस्था मे इत्र सुँघाया तब उसने स्वप्न मे देखा कि वह कैरो (Cairo) शहर मे किसी इत्र की दुकान मे इत्र खरीद रहा है। जब निद्रित व्यक्ति की गर्दन पर चिकोटी काटी गयी तो उसने स्वप्न देखा कि उसके शरीर मे कुछ फफोले आ गये है जो छलछला रहे है तथा जिनके इलाज के लिए उसके बचपन का एक डाक्टर सामने खड़ा है। जब प्रयोज्य (Subject) की नाक और उसके होठ पर चिड़िया का पख हलके से सटाया गया तो निद्रित व्यक्ति ने स्वप्न मे यह देखा कि उसके चेहरे के चमड़े को खरोच कर मरोड़ रहा है।

अब इनके प्रयोगो मे हमने देखा कि एक ही व्यक्ति मे भिन्न-भिन्न उत्तेजनाएँ भिन्न-भिन्न निद्रित अवसरो पर किस प्रकार भिन्न-भिन्न सपने उत्पन्न करती है।

ठीक इसी सिलसिले मे हिलब्रान्ड (Hillbrand) ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि एक ही उत्तेजना (Stimulus) एक ही व्यक्ति मे भिन्न-भिन्न निद्रित अवसरो पर भिन्न-भिन्न सपने उत्पन्न करती है। एक घटी की आवाज (Stimulus) के प्रति एक व्यक्ति ने तीन निद्रित अवसरो पर निम्नलिखित प्रकार के स्वप्न देखे—(१) उसने देखा शिकार पर जाते हुए घोड़ो के गले से लगी हुई घण्टियाँ एक साथ बज रही है, (२) ऐसा स्वप्न आया जिसमे उसने गिरजाघर (Church) की प्रार्थना की पुकार की घण्टी बजती सुनी और (३) तीसरी बार उसने यह देखा कि घर की नौकरानी के हाथ से अचानक किसी कारणवश बरतन छूट कर गिर जाने से एक प्रकार की आवाज हुई है।

उपर्युक्त उदाहरणो से अब तक पाठको को इतना तो अवश्य स्पष्ट हो गया होगा कि बाह्य अथवा आन्तरिक उत्तेजनाओ का स्वप्न-निर्माण मे कितना बड़ा हाथ है तथा किस प्रकार उनका अतिशयात्मक (Exaggerated) एव अयथार्थ अर्थ (Misinterpretation) लगता है।

दैहिक सिद्धान्त की संक्षिप्त आलोचना (A brief criticism of physiological theories)—परन्तु इन दैहिक सिद्धान्तो की आलोचना करते हुए अन्य मनोवैज्ञानिको ने कहा कि इस प्रकार के दैहिक सिद्धान्त सिर्फ इतना बता पाते है कि व्यक्ति स्वप्न कैसे (How) देखता है। ये सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नही कर पाते है कि अमुक व्यक्ति अमुक प्रकार का ही स्वप्न क्यों (Why) देखता है। एक ही प्रकार की उत्तेजना न केवल भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न प्रकार का स्वप्न उत्पन्न करती है वरन् एक ही व्यक्ति मे भी भिन्न-भिन्न अवसरो पर भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वप्न उत्पन्न करती पायी जाती है। ऐसा क्यो होता है? इस बात की सफल व्याख्या दैहिक सिद्धान्त नही कर पाता है। क्योकि इत्र सूँघने पर एक व्यक्ति को स्वप्न मे उसकी प्रियमा का साहचर्य होता है तथा दूसरा व्यक्ति स्वप्न मे इत्र की दूकान देखता है और इत्र की दूकान भी वह कैरो (Cairo) को ही क्यो देखता है, दूसरे शहरो को क्यो नही देखता है। इन बातो की व्याख्या ऊपर वर्णित दोनो दैहिक सिद्धान्त नही कर पाते है।

आज हम मानते हैं कि स्वप्न (Dream) का सम्बन्ध स्वप्नद्रष्टा (Dreamer) के जीवन से घनिष्ठ रूप से रहता है। अस्तु, ये बाहरी (External) या आन्तरिक (Internal) उत्तेजनाओं के अलावा व्यक्ति के जीवन-इतिहास (Life history) से भी सम्बन्धित हैं। इस बात की पुष्टि बहुत-से मनोविश्लेषणात्मक अध्ययनों (Psycho analytic studies) द्वारा होती है। अस्तु यहाँ अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों (Psychological Theories) की भी चर्चा आवश्यक है।

२ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त
(Psychological Theories)

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों में सर्वप्रथम फ्रायड का सिद्धान्त उल्लेखनीय है—फ्रायड का स्वप्न सिद्धान्त (Freud's Theory of Dream)—फ्रायड (सन् १८९९ १९३९ ई) को दैहिक सिद्धान्तों की यह मान्यता अच्छी नहीं लगी। उसने अपने मनोविश्लेषणात्मक अध्ययनों के आधार पर स्वप्न का एक नया मनोवैज्ञानिक सिद्धात रखा। फ्रायड के अनुसार मानस (Mind) की तीन अवस्थाएं हैं—चेतन Conscious) उपचेतन (Sub-conscious or Preconcious) तथा अचेतन (Unconscious)। साथ ही साथ फ्रायड के अनुसार मानस (Mind) के तीन गत्यात्मक पहलू (Dynamic aspects) भी हैं—अहम् (Ego) आदर्श अहम् (Super Ego) तथा अज्ञात मानस (Id)। इस प्रकार फ्रायड ने मानस को दो दृष्टिकोणों से वर्गीकृत किया है। पहले वर्गीकरण को हम आकारात्मक वर्गीकरण (Topographical division) तथा दूसरे वर्गीकरण को हम गत्यात्मक वर्गीकरण (Dynamic division) कहते हैं। इसकी विशेष चर्चा गत अध्याय में की गयी है।

हमारा अहम् (Ego) हमारे बाह्य जगत् की वास्तविकताओं की ओर उन्मुख रहता है। (The Ego is guided by the reality principle)। परन्तु हमारा अज्ञात मानस सिफ हमेशा ऐसे कार्यों की ओर उन्मुख रहता है जिससे व्यक्ति को आनन्द की प्राप्ति होती है (Pleasure principle)। इसके अन्दर हमारी जनित अपाशविक तथा अन्य प्रवृत्तियाँ भरी होती हैं। इनमें पैशाचिक एव काम (Sex) सम्बन्धी न जाने कितनी प्रवृत्तियाँ सतत उठती रहती हैं जो उत्तानसी सी अपनी सन्तुष्टि के लिए भाग दौड़ती रहती हैं। इसका सम्बन्ध हमारे अचेतन मानस से है जिसका निर्माण ही प्राय इन्हीं आदिम प्रवृत्तियों के दमन (Repression) के कारण हुआ है। अस्तु अचेतन मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों (Primitive Impulses) का घर भी माना गया है।

अहम् (Ego) का सम्बन्ध चेतनावस्था से है। यह व्यक्ति के अचेतन की अवांछनीय प्रवृत्तियों (Undesirable impulse] तथा बाह्य जगत् म उसके द्वारा किय जाने वाले व्यवहारों के बीच एक सतुलन [Balance] स्थापित करता है। इसके फलस्वरूप बाह्य जगत् के साथ उस व्यक्ति का अभियोजन [Adjustment]

सदा यथोचित बना रहता है। अगर अहम् (Ego) देखता है कि किसी परिस्थिति-विशेष मे अचेतन मे उठती हुई किसी इच्छा की पूर्ति सम्भव नही, तो फलस्वरूप अचेतन की इच्छाएँ दब जाती है (Repressed) या दबा दी जाती (Repressed) है तथा उन इच्छाओ की सन्तुष्टि नही हो पाती है। आदर्श अहम् (Super Ego) आदर्शोन्मुख होने के कारण हमारी आदि मूल प्रवृत्यात्मक अभिलाषाओ (Primitive instinctive desires) के अधिक ऊपर उठने पर उनकी सतुष्टि के मार्ग मे सदा रोक लगाता रहता है।

फ्रायड यह मानता है कि व्यक्ति के मानस के अचेतन (Unconscious) तथा उपचेतन (Sub-conscious) अवस्थाओ के बीच एक प्रतिबन्धक क्रिया (Act of Censoring) होती रहती है। व्यक्ति जब तक जगा रहता है तब यह क्रिया चलती रहती है। परिणामस्वरूप अचेतन मे उठने वाली अनैतिक प्रवृत्तियाँ सतत वही दमित (Repressed) हो जाती है और जब तक वे अत्यधिक उग्र बलिष्ठ नही होती तब तक व्यक्ति की चेतना तक आ भी नही पाती है।

जब तक यह प्रतिबन्ध क्रिया (Act of Censoring) सक्रिय रूप से चलती होती है तब तक ये दमित इच्छाएँ (Repressed wisher) अचेतन मे पडी रहती हैं। परन्तु दमन (Repression) के फलस्वरूप वे इच्छाएँ कभी भी पूर्णत मृत (Dead) नही होती (Nothing dies in Unconscious)। ये दमित इच्छाएँ जीवित ही नही वरन् हमारे अचेतन में किसी-न-किसी रूप मे क्रियाशील भी रहती हैं। ये पुन अपना प्रकटीकरण एव अपनी सतुष्टि की ताक मे लगी रहती है।

जब मनुष्य नीद मे सो गया होता है उस समय उसकी चेतना एव उसकी नियन्त्रण-शक्ति खो जाती है। साथ-ही-साथ नीद की अवस्था मे प्रतिबन्धक (Censor) की भी क्रिया अत्यन्त शिथिल एव कमजोर पड जाती है। परिणाम यह होता है कि व्यक्ति के अचेतन मे पडी दमित इच्छाएँ सुअवसर पाकर अपनी सतुष्टि के लिए फिर क्रियाशील होकर ऊपर उठती है और अपनी सतुष्टि का प्रयास करती है।

एक साधारण उदाहरण लें। एक यथासम्भव हवा दिया हुआ फुटबॉल (Hard pumped foot-ball) तभी तक पानी के अन्दर दबा रह सकता है जब तक ऊपर से आप अपने हाथ या किसी अन्य उपयुक्त चीज से उसे दबाये हुए है। परन्तु जैसे-जैसे ऊपर का दबाव आप कम करते जायँगे, वैसे-वैसे यह फुटबाल पानी के ऊपर स्वत निकलता आयेगा। इसी प्रकार मनुष्य की दमित इच्छाएँ निद्रावस्था मे चेतन एव प्रतिबन्धक क्रिया की शिथिलता के कारण पुन अपनी सतुष्टि के हेतु सक्रिय होकर ऊपर उठने लगती हैं। परन्तु इस समय भी उन्हे प्रतिबन्धक (Censor) का भय थोडा-बहुत बना रहता है इसलिए ये दमित प्रवृत्तियाँ अपना प्रकटीकरण तथा अपनी संतुष्टि छद्म (Disguised) रूप मे करती है ("Freud belived that dreams symbolised in disguised form our repressed desires on conflicts")।

आज हम मानते हैं कि स्वप्न (Dream) का सम्बन्ध स्वप्नद्रष्टा (Dreamer) के जीवन से घनिष्ठ रूप से रहता है। अस्तु, ये बाहरी (External) या आन्तरिक (Internal) उत्तेजनाओं के अलावा व्यक्ति के जीवन इतिहास (Life-history) से भी सम्बन्धित है। इस बात की पुष्टि बहुत-से मनोविश्लेषणात्मक अध्ययनों (Psycho analytic studies) द्वारा होती है। अस्तु यहाँ अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों (Psychological Theories) की भी चर्चा आवश्यक है।

२ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त
(Psychological Theories)

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों में सर्वप्रथम फ्रायड का सिद्धान्त उल्लेखनीय है—फ्रायड का स्वप्न सिद्धान्त (Freud s Theory of Dream)—फ्रायड (सन् १८९९ १९३९ ई) को वह्निक सिद्धान्तों की यह मान्यता अच्छी नहीं लगी। उसने अपने मनोविश्लेषणात्मक अध्ययनों के आधार पर स्वप्न का एक नया मनोवैज्ञानिक सिद्धांत रखा। फ्रायड के अनुसार मानस (Mind) की तीन अवस्थाएं हैं—चेतन Conscious) उपचेतन (Sub-conscious or Preconcious) तथा अचेतन (Unconscious)। साथ ही-साथ फ्रायड के अनुसार मानस (Mind) के तीन गत्यात्मक पहलू (Dynamic aspects) भी हैं—अहम् (Ego) आदर्श अहम (Super Ego) तथा अज्ञात मानस (Id)। इस प्रकार फ्रायड ने मानस को दो दृष्टिकोणों से वर्गीकृत किया है। पहले वर्गीकरण को हम आकारात्मक वर्गीकरण (Topographical division) तथा दूसरे वर्गीकरण को हम गत्यात्मक वर्गीकरण (Dynamic division) कहते हैं। इसकी विशेष चर्चा गत अध्याय में की गयी है।

हमारा अहम (Ego) हमारे बाह्य जगत् की वास्तविकताओं की ओर उन्मुख रहता है। (The Ego is guided by the reality principle)। परन्तु हमारा अज्ञात मानस सिर्फ हमेशा ऐसे कार्यों की ओर उन्मुख रहता है जिससे व्यक्ति को आनन्द की प्राप्ति होती है (Pleasure principle)। इसके अन्दर हमारी अमानिक असामाजिक तथा अन्य प्रवृत्तियाँ भरी होती हैं। इनमें वीभत्स एवं काम (Sex) सम्बन्धी न जाने कितनी प्रवृत्तियाँ सतत उठती रहती हैं जो उतावली सी अपनी सन्तुष्टि के लिए माग ढूंढती रहती हैं। इसका सम्बन्ध हमारे अचेतन मानस से है जिसका निर्माण ही प्राय इन्हीं आदिम प्रवृत्तियों के दमन (Repression) के कारण हुआ है। अस्तु अचेतन मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों (Primitive impulses) का घर भी माना गया है।

अहम् (Ego) का सम्बन्ध चेतनावस्था से है। यह व्यक्ति के अचेतन की अवांछनीय प्रवृत्तियों (Undesirable impulse] तथा बाह्य जगत् में उसके द्वारा किये जाने वाले व्यवहारों के बीच एक सन्तुलन [Balance] स्थापित करता है। इसके फलस्वरूप बाह्य जगत् के साथ उस व्यक्ति का अभियोजन [Adjustment]

सदा यथोचित बना रहता है। अगर अहम् (Ego) देखता है कि किसी परिस्थिति-विशेष मे अचेतन मे उठती हुई किसी इच्छा की पूर्ति सम्भव नहीं, तो फलस्वरूप अचेतन की इच्छाएँ दब जाती है (Repressed) या दबा दी जाती (Repressed) है तथा उन इच्छाओ की सन्तुष्टि नही हो पाती है। आदर्श अहम् (Super Ego) आदर्शोन्मुख होने के कारण हमारी आदि मूल प्रवृत्यात्मक अभिलाषाओ (Primitive instinctive desires) के अधिक ऊपर उठने पर उनकी सतुष्टि के मार्ग मे सदा रोक लगाता रहता है।

फ्रायड यह मानता है कि व्यक्ति के मानस के अचेतन (Unconscious) तथा उपचेतन (Sub-conscious) अवस्थाओ के बीच एक प्रतिबन्धक क्रिया (Act of Censoring) होती रहती है। व्यक्ति जब तक जगा रहता है तब यह क्रिया चलती रहती है। परिणामस्वरूप अचेतन मे उठने वाली अनैतिक प्रवृत्तियाँ सतत वही दमित (Repressed) हो जाती है और जब तक वे अत्यधिक उग्र व तिव्र नहीं होती तब तक व्यक्ति की चेतना तक आ भी नही पाती है।

जब तक यह प्रतिबन्ध क्रिया (Act of Censoring) सक्रिय रूप से चलती होती है तब तक ये दमित इच्छाएँ (Repressed wisher) अचेतन मे पड़ी रहती हैं। परन्तु दमन (Repression) के फलस्वरूप वे इच्छाएँ कभी भी पूर्णत मृत (Dead) नही होती (Nothing dies in Unconscious)। ये दमित इच्छाएँ जीवित ही नही वरन् हमारे अचेतन में किसी-न-किसी रूप मे क्रियाशील भी रहती हैं। ये पुन अपना प्रकटीकरण एव अपनी सतुष्टि की ताक मे लगी रहती है।

जब मनुष्य नींद मे सो गया होता है उस समय उसकी चेतना एव उसकी नियन्त्रण-शक्ति खो जाती है। साथ-ही-साथ नींद की अवस्था मे प्रतिबन्धक (Censor) की भी क्रिया अत्यन्त शिथिल एव कमजोर पड़ जाती है। परिणाम यह होता है कि व्यक्ति के अचेतन मे पड़ी दमित इच्छाएँ सुअवसर पाकर अपनी सतुष्टि के लिए फिर क्रियाशील होकर ऊपर उठती है और अपनी सतुष्टि का प्रयास करती है।

एक साधारण उदाहरण लें। एक यथासम्भव हवा दिया हुआ फुटबॉल (Hard pumped foot-ball) तभी तक पानी के अन्दर दबा रह सकता है जब तक ऊपर से आप अपने हाथ या किसी अन्य उपयुक्त चीज से उसे दबाये हुए है। परन्तु जैसे-जैसे ऊपर का दबाव आप कम करते जायेंगे, वैसे-वैसे यह फुटबाल पानी के ऊपर स्वत निकलता जायेगा। इसी प्रकार मनुष्य की दमित इच्छाएँ निद्रावस्था मे चेतन एव प्रतिबन्धक क्रिया की शिथिलता के कारण पुन अपनी सतुष्टि के हेतु सक्रिय होकर ऊपर उठने लगती है। परन्तु इस समय भी उन्हें प्रतिबन्धक (Censor) का भय थोडा-बहुत बना रहता है इसलिए ये दमित प्रवृत्तियाँ अपना प्रकटीकरण तथा अपनी संतुष्टि छद्म (Disguised) रूप मे करती है ("Freud belived that dreams symbolised in disguised form our repressed desires on conflicts")।

कहने का अभिप्राय यह है कि स्वप्नों में दमित इच्छाओं की पूर्ति छद्म रूप मे होती है। ये इच्छाएँ सेक्स (Sex) भावनाओं से सम्बन्धित होती है। फ्रायड के अनुसार सेक्स (Sex) का अर्थ सिर्फ यौन समागम (Sexual intercourse) की भावनाओं एवं क्रियाओ से ही नही वरन् कोई भी कार्य अथवा विचार जिसके द्वारा व्यक्ति को आनन्द (Pleasure) मिलता है उसे हम सेक्स (Sex) की कोटि में रख सकते है।

व्यक्ति की नींद को बनाये रखने (Preservation of Sleep) के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति की दमित इच्छाओं की यथासम्भव पूर्ति भी हो जाये और व्यक्ति की चेतना को इसका प्रत्यक्ष रूप से पता भी न चले। इसके लिए मानव स्वप्न रचना (Dream work) की कुछ क्रियाए होती है। इन स्वप्न क्रियाओ द्वारा हमारी दमित इच्छाओं का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है जिससे वे छद्म वेष (Disguised form) धारण कर अपने उद्देश्य की पूर्ति कर पाती हैं।

फ्रायड द्वारा आविष्कृत स्वप्न क्रियाएँ अथवा स्वप्न कलाएँ (Dream work) इस प्रकार है—(i) प्रतीकीकरण (Symbolisation) (ii) विस्थापन (Displacement) (iii) आकुंचन (Condensation) (iv) नाटकीयता (Dramatisation) तथा (v) उप विस्तारण (Secondary Elaboration)।

नींद को बनाये रखने और साथ साथ दमित इच्छाओं की यथासम्भव संतुष्टि के निमित्त उपयुक्त स्वप्न क्रियाए अथवा स्वप्न-कलाएँ बहुत महत्वपूर्ण है। मानो वैज्ञानिको ने इस स्वप्न क्रियाओं के विश्लेषण द्वारा स्वप्न को मूल कथावस्तु (Dream text) के दोनों रूप को समझने मे सफलता पायी है फ्रायड के अनुसार स्वप्न कथावस्तु के दो रूप होते है—(क) व्यक्त कथावस्तु (Manifest Content) और (ख) अव्यक्त कथावस्तु (Latent Content)। नींद खुलने पर स्वप्न में देखी गयी सारी बातें व्यक्ति को प्राय हू-ब-हू याद नही रहती। स्वप्न की जितनी घटनाएं तथा जितने अनुभव व्यक्ति को याद रह जाते हैं तथा जिन्हें वह व्यक्त करता है उन्हें हम स्वप्न की व्यक्त कथावस्तु (Manifest Contents) कहते हैं। फ्रायड ने कहा कि इस व्यक्त कथावस्तु के बाह्य अर्थ (Apparent meaning) पीछे स्वप्न मे देखी हुई घटनाओ का एक विशेष एवं वास्तविक (True) अर्थ होता है जिसका सम्बन्ध स्वप्नद्रष्टा के जीवन इतिहास से रहता है। यह अर्थ पहले गुप्त रहता है जो स्वप्न विश्लेषण द्वारा प्रकट होता है। इस छिपे हुए परन्तु विशेष अर्थ वाली कथावस्तु को अव्यक्त कथावस्तु (Latent Content of the Dream) कहते हैं।

स्वप्न कलाएँ
(Dream word of Mechanisms of Dream)

(1) प्रतीकीकरण (Symbolisation)— प्रतीक (Symbol) अमूर्त या अनुपस्थित वस्तुओं परिस्थितिया तथा भावनाओं का एक अन्य रूप में प्रतिनिधित्व करता है। इसकी उपयोगिता हम साहित्य एवं दैनिक जीवन में भी पाते हैं।

हमारा राष्ट्रीय झंडा हमारे देश की एकता और संस्कृति का प्रतीक है। जैसे 'क्रुसफिक्स' ईसामसीह का धर्म के नाम पर किये गये आत्मबलिदान का प्रतीक है, इसी प्रकार स्वप्न में भी कुछ प्रतीक बनकर आते हैं जो व्यक्ति के अनुभवों से सम्बन्धित किसी वस्तु अथवा विचार का सांकेतिक प्रकटीकरण करते हैं (In dream a symbol is a concrete representation of some fact, thing or idea . related to the dreamer's life history—Sargent)। अचेतन में उठने वाले बुरे-से-बुरे दमित विचार भी प्रतीकों के रूप में स्वप्न आते हैं, जैसे—एक व्यक्ति ने स्वप्न में देखा कि यह एक कब्रगाह (Cementery) में खड़ा है। स्वप्न-विश्लेषण (Dream analysis) से पता चला कि कुछ दिन पहले उसने एक युवती से बहुत प्यार किया था परन्तु किसी कारणवश उसका अपनी प्रियतमा से सम्बन्ध टूट गया। इससे उसे घोर दु:ख हुआ, परन्तु उसने अपने मन को यह कह कर सान्त्वना बँधायी (Rationalisation) कि ऐसा तो उसके शहर ही में बहुत से लोगों के जीवन में हुआ है, अस्तु उसे इस दु:ख को यथाशक्ति सहना चाहिए। स्वप्न में देखी गयी कब्रगाह (Cementery) उसके तथा उसी की तरह के और प्रेमियों के टूटे हुए अथवा मृत प्रेम-बन्धन (Dead love) का प्रतीक थी।

एक दूसरा उदाहरण—एक लड़के ने स्वप्न देखा की बहुत से कीड़े-मकोड़े एवं जीव जन्तुओं को वह मार रहा है। स्वप्न विश्लेषणों (Dream analysis) पता चला कि वे कीड़े मकोड़े उसके अपने भाई-बहन के प्रतीक थे जिन्हें वह मरा हुआ देखना चाहता था। यह सिर्फ इसलिए कि वह अपने परिवार की आमदनी से अकेले ही सुख भोगने का इच्छुक था। परन्तु, अपने भाई-बहनों को मार देना—यह उसका चेतन मन कभी सह नहीं सकता था। अस्तु, यह इच्छा अचेतन में दमित हो गयी थी। परन्तु अचेतन की यह दमित इच्छा प्रतीक के रूप में (छोटे-छोटे कीड़ों और जीवों को मारना) उसके सपने में सन्तुष्टि पा सकी, परिणामस्वरूप उसकी दमित इच्छा की सांकेतिक पूर्ति भी हो गयी और उसकी चेतना को कष्ट भी नहीं पहुँचा।

ये प्रतीक व्यक्ति के अपने अनुभव तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों पर भी निर्भर करते हैं। फ्रायड तथा उनके अनुयायियों ने वैयक्तिक प्रतीकों (Personal symbols) के अतिरिक्त, कुछ विश्वजनीन प्रतीकों (Universal symbols) की भी चर्चा की है। विश्वजनीन प्रतीक ऐसे हैं जो प्राय: प्रत्येक व्यक्ति के स्वप्न में समान अर्थ रखते हैं। ऐसे प्रतीकों की एक छोटी-सी तालिका नीचे दी जाती है—

प्रतीक (Meaning)	अर्थ (Symbols)
(क) छड़ी, खम्भे, कलम, पेंसिल, पेड़, छाता, औजार, बैलून, हथियार, हवाई जहाज, साँप, टाई, बौना,	

मनचाही इच्छाओं की पूर्ति की राहों में उसकी माँ सदा एक रुकावट जैसे ही थी। उस लड़की का अचेतन, माँ की मृत्यु हो जाने में ही ऐच्छिक सन्तुष्टि पा सकता था परन्तु उसकी चेतना के लिए माँ की मृत्यु असह्य बात थी। अस्तु, उसे स्वप्न में अपनी मा से मिलती-जुलती अपनी मौसी की मृत्यु दिखाई पड़ी। यहाँ माँ की जगह पर मौसी की मृत्यु देखना विस्थापन (Displacement) के कारण हुआ।

एक दूसरा उदाहरण लें— एक व्यक्ति ने एक रात स्वप्न देखा कि वह अपने शहर के किसी गली में जा रहा है। सहसा सामने से उसकी चचेरी बहन और चाची जा रही है। चाची लंगड़ा कर चल रही है। वे दोनों इसे देख कर खड़ी हो जाती हैं और इसकी ओर बहुत प्यार से मुस्कुराने लगती हैं।

इस स्वप्न में विस्थापन का कार्य किस प्रकार हुआ है ?—बात यह थी कि स्वप्न देखने वाला युवक एक ऐसी सुन्दरी से प्रेम करता था जो कि उसके प्रति जरा भी आकर्षित नहीं थी। उस सुन्दरी की माँ लँगड़ी (Lame) थी। इस प्रेमी व्यक्ति ने सोचा था कि यदि उसकी लँगड़ी माँ की खूब सेवा की जाय तो शायद वह उस लड़की का अपने प्रति अनुराग भी पा सकेगा।

स्वप्न में उसकी प्रियतमा और उसकी माँ की जगह उसकी चचेरी बहन और उसकी चाची ने ले ली। उसकी चाची सचमुच लँगड़ी नहीं थी, परन्तु स्वप्न में यह विस्थापन-क्रिया का ही प्रभाव था कि उसकी चाची भी प्रियतमा की माँ की तरह लँगड़ी दिखाई पड़ी।

(iii) आकुंचन (Condensation)— आकुंचन दमित इच्छाओं को इस प्रकार छद्मवेशित (Disguised) करना है कि उसमें और अधिक जटिलता उत्पन्न हो जाती है। स्वप्न कभी ऐसी जगह, ऐसी घटना या ऐसा व्यक्ति दिखाई पड़ता, है जो परिचित जैसा लगता हुआ भी पूर्णतः पहचान में ही नहीं आता है। ऐसा व्यक्ति दिखाई पड़ सकता है जिसका मुँह राम जैसा हो और पोशाक श्याम जैसी हो आवाज शेखर जैसी हो, कान गाय जैसे हो, बाल भालू जैसा हो इत्यादि। ऐसी परिस्थिति में बहुत सी दमित इच्छाओं की पूर्ति एक साथ होने का प्रयास रहता है। यही कारण है कि ऐसे सपनों के रूप इतने जटिल हो जाते हैं। एक स्त्री ने स्वप्न में एक ऐसे सैनिक को देखा जो देखने से सिकन्दर (Alexander) के युग का मालूम पड़ता था। सैनिक की ऊँचाई उस स्वप्न देखने वाली स्त्री के दादा से मिलती थी जिन्होंने उसको बचपन में बड़े कठोर अनुशासन (Discipline) के अन्दर रखा था। सैनिक का आकार-प्रकार पुलिस कर्मचारी से भी मिलता था जिससे वह स्त्री बचपन में बहुत डरती थी। साथ-साथ उस सैनिक का मुँह उसकी बड़ी चाची से मिलता था जिसे वह बहुत नफरत करती थी।

इसी प्रकार स्वप्न की अव्यक्त कथावस्तु (Latent content) का कई एक अंश एक साथ मिल जाता है अथवा ऐसा भी देखा जाता है कि कोई-कोई अंश-विशेष स्वप्नों में आता ही नहीं।

	प्रतीक (Meaning)	अर्थ (Symbols)
	व्यक्ति जीप सन्दूक पर इत्यादि। लम्बे आकार की वस्तु	पुरुष लिंग (Male genital organ)
(ख)	बर्तन, ऊंचा दरवाजा कमरा गेट, (Gate) सन्दूक बोतल टेबुल गुफा जहाज नाव इत्यादि। खोखली चीजें	स्त्रीलिंग (Female gential organ)
(ग)	सेब नासपाती आम अमरूद जैसे फल	स्तन (Breast)
	बहन (Stekel के अनुसार)	
(घ)	नाचना किसी चीज से पिघना चढ़ना उतरना तैरना उड़ाना इत्यादि	यौन समागम (Sexual intercourse)
(ङ)	पानी से निकलना	जन्म (Birth)
(च)	यात्रा करना या गाड़ी पकड़ना	जीवन में कोई बड़ा परिवर्तन लाना (To bring about a radical change in one's life) या मृत्यु (Fisher) के अनुसार।
(छ)	बच्चों का आपसी मारपीट तथा साथ-साथ खेलना	हस्तमैथुन (Masturbation)
(ज)	छोटे छोटे जीव-जन्तु कीड़े मकोड़े	भाई बहन (Siblings)
(झ)	घर	मानव शरीर (Human body)
(ञ)	ईश्वर राजा रानी या श्रेष्ठ पुरुष	माता पिता (Parents)
(ट)	आग	प्रेम (Love) इत्यादि।

फ्रायड ने अपने प्रतीकीकरण (Sybmolisation) के विचार की पुष्टि प्राचीन कथा साहित्य (Myths) परियों की कहानियाँ (Fairy tales) एवं तथाकथित धार्मिक कहानियों के आधार पर भी करने की कोशिश की है हालांकि बहुत से अन्य मनोवैज्ञानिक फ्रायड के इस विचार से उतने सहमत नहीं हैं।

(ii) विस्थापन (Displacement)—दमित इच्छाएं स्वप्न में किसी प्रकार छद्मवेष धारण करती हैं इसका थोड़ा थोड़ा अन्दाज पाठक को अब तक लग गया होगा। विस्थापन द्वारा एक व्यक्ति अथवा वस्तु की जगह-स्वप्न में कोई दूसरा व्यक्ति अथवा दूसरी वस्तु दिखाई पड़ने लगती है। स्वप्न में दिखाई पड़ने वाला व्यक्ति वास्तविक व्यक्ति (Real Individual) से कुछ रूप एवं गुण में साम्य रखने वाला होता है। यही बात स्वप्न में विस्थापित (Displaced) वस्तुओं के साथ भी होता है।

एक लड़की ने सपना देखा कि उसकी मौसी (Aunt) मर गयी है। स्वप्न विश्लेषण (Dream analysis) के सिलसिले में पता चला कि उसकी माँ बहुत सख्त मिजाज की थी और वह हमेशा उस पर कड़ी निगाह रखती थी फलस्वरूप उसकी

मनचाही इच्छाओ की पूर्ति की राहो मे उसकी माँ सदा एक रुकावट जैसे ही थी। उस लड़की का अचेतन, माँ की मृत्यु हो जाने से ही ऐच्छिक सन्तुष्टि पा सकता था परन्तु उसकी चेतना के लिए माँ की मृत्यु असह्य बात थी। अस्तु, उसे स्वप्न मे अपनी मा से मिलती-जुलती अपनी मौसी की मृत्यु दिखाई पडी। यहाँ माँ की जगह पर मौसी की मृत्यु देखना विस्थापन (Displacement) के कारण हुआ।

एक दूसरा उदाहरण ले— एक व्यक्ति ने एक रात स्वप्न देखा कि वह अपने शहर के किसी गली मे जा रहा है। सहसा सामने से उसकी चचेरी बहन और चाची आ रही हैं। चाची लगड़ा कर चल रही है। ये दोनो इसे देख कर खडी हो जाती हैं और इसकी ओर बहुत प्यार से मुस्कुराने लगती हैं।

इस स्वप्न मे विस्थापन का कार्य किस प्रकार हुआ है?—बात यह थी कि स्वप्न देखने वाला युवक एक ऐसी सुन्दरी से प्रेम करता था जो कि उसके प्रति जरा भी आकर्षित नही थी। उस सुन्दरी की माँ लँगडी (Lame) थी। इस प्रेमी व्यक्ति ने सोचा था कि यदि उसकी लँगडी माँ की खूब सेवा की जाय तो शायद वह उस लड़की का अपने प्रति अनुराग भी पा सकेगा।

स्वप्न मे उसकी प्रियतमा और उसकी माँ की जगह उसकी चचेरी बहन और उसकी चाची ने ले ली। उसकी चाची सचमुच लँगडी नही थी, परन्तु स्वप्न मे यह विस्थापन-क्रिया का ही प्रभाव था कि उसकी चाची भी प्रियतमा की माँ की तरह लँगडी दिखाई पडी।

(iii) आकुंचन (Condensation)— आकुंचन दमित इच्छाओ को इस प्रकार छद्मवेषित (Disguised) करना है कि उसमे और अधिक जटिलता उत्पन्न हो जाती है। स्वप्न कभी ऐसी जगह, ऐसी घटना या ऐसा व्यक्ति दिखाई पडता, है जो परिचित जैसा लगता हुआ भी पूर्णत पहचान मे ही नही आता है। ऐसा व्यक्ति दिखाई पड सकता है जिसका मुँह राम जैसा हो और पोशाक श्याम जैसी हो आवाज शेखर जैसी हो, कान गाय जैसे हो, बाल भालू जैसा हो इत्यादि। ऐसी परिस्थिति मे बहुत सी दमित इच्छाओ की पूर्ति एक साथ होने का प्रयास रहता है। यही कारण है कि ऐसे सपनो के रूप इतने जटिल हो जाते हैं। एक स्त्री ने स्वप्न मे एक ऐसे सैनिक को देखा जो देखने से सिकन्दर (Alexander) के युग का मालूम पडता था। सैनिक की ऊँचाई उस स्वप्न देखने वाली स्त्री के दादा से मिलती थी जिन्होने उसको बचपन मे बडे कठोर अनुशासन (Discipline) के अन्दर रखा था। सैनिक का आकार-प्रकार पुलिस कर्मचारी से भी मिलता था जिससे वह स्त्री बचपन मे बहुत डरती थी। साथ-साथ उस सैनिक का मुँह उसकी बडी चाची से मिलता था जिसे वह बहुत नफरत करती थी।

इसी प्रकार स्वप्न की अव्यक्त कथावस्तु (Latent content) का कई एक अश एक साथ मिल जाता है अथवा ऐसा भी देखा जाता है कि कोई-कोई अश-विशेष स्वप्नो मे आता हा नही।

(iv) नाटकीयता (Dramatisation)— स्वप्नो में दमित इच्छाएँ रूप बदल कर तो आती ही हैं साथ-साथ उनका आना एक नाटकीय ढंग से होता है। उनकी अभिव्यक्ति कुछ व्यवहारों द्वारा होती है जो स्वप्न में या तो व्यक्ति स्वयं करता है या स्वप्न के दूसरे पात्र (Characters) प्रदर्शित करते हैं।

साथ-साथ स्वप्नो मे जो भी क्रिया-कलाप होते है वे अधिकतर दृष्टि प्रतिमाओ (Visual images) के रूप में आते हैं।

परन्तु यहाँ यह ध्यान लेना आवश्यक है कि स्वप्न में दृष्टि प्रतिमाओं (Visual images) के साथ साथ ग्राहकेन्द्रियो से सम्बन्धित अन्य प्रकार की प्रतिमाएँ (Images) भी आती हैं जैसे— श्रवण प्रतिमाएँ (Auditory images) घ्राण प्रतिमाएँ (Olfactory images) आदि। किसके स्वप्न में कैसी प्रतिमाए आयेंगी यह उसने अपनी ग्राहकेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभवों की तीव्रता (Intensity) साहचय (Association) अनुपात (Ratio) पर निर्भर करता है। जोसेफ जैस्ट्रो (Joseph Jastrow) ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में पाया कि जो बच्चे पाँच वर्ष की उम्र से पहले ही अन्धे हो गये थे उनके स्वप्नों के दृष्टि प्रतिमाए (Visual images) नही आती थी परन्तु जो सात वर्ष की उम्र प्राप्त करने के बाद अन्धे हुए थे उनके स्वप्नों मे दृष्टि प्रतिमाए (Visual images) आती पायी गयी।

(v) उपविस्तारण (Secondary Elaboration)— जितनी दमित इच्छाए स्वप्न म प्रकट होती हैं सब प्राय एक-दूसरे से सम्बन्धित नही होती फिर भी स्वप्ना म दृश्य क्रम एव घटना-क्रम कुछ इस प्रकार चलता है कि इन अलग अलग रूप मे दमित इच्छाओं का प्रकाश भी एक-दूसरे से सम्बन्धित प्रतीत होता है। स्वप्नों को एक कहानी (Episode) जैसा रूप प्रदान करने में उपविस्तारण की क्रिया विशेष सहायक प्रतीत होती है।

उपयुक्त सारी स्वप्न कलाओं के अनुसन्धान का श्रेय फ्रायड (Freud) को ही है।

इन्ही स्वप्न कलाओं (Dream work) द्वारा फ्रायड महोदय ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि स्वप्न में व्यक्ति की इच्छापूर्ति (Wishfulfilment) होती है। बालको के स्वप्न म तो यह बात स्पष्ट रूप से पायी जाती है। वयस्कों की अवस्था म इसका पता स्वप्न विश्लेषण (Dream analysis) के बाद लगता है। ऐसे तो व्यक्ति दिवास्वप्न (Day dreaming) की अवस्था म भी अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति ही करता रहता है। एक साधारण युवक भी अपने को दिवास्वप्न की अवस्था म एक आई० ए० एस० ऑफिसर चैम्पियन एक महान् नेता सेनापति एक सफल प्रेमी इत्यादि समझ समझ कर भिन्न भिन्न प्रकार से मन के मुताबिक अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति करता है।

फ्रायड (Freud) के इस इच्छापूर्ति सिद्धान्त (Wishfulment Theory)

की पुष्टि इस बात से भी होती है कि स्वप्न मे व्यक्ति अपनी नग्न वासनाओं की पूर्ति भी करता पाया जाता है। ऐसे अवसर पर पुरुषो मे स्वप्न-दोष होता पाया जाता है। इसी प्रकार नींद मे प्यास लगने पर व्यक्ति स्वप्न मे ऐसा देखता पाया जा सकता है कि वह किसी झरना के किनारे या किसी होटल में बैठा (या इसी तरह कुछ और) अपनी प्यास बुझा रहा है।

साथ-साथ कुछ ऐसे प्रसग (Context) एव किंवदन्तियाँ (Anecdotes) भी हैं जो फ्रायड की इच्छापूर्ति सिद्धान्त जैसी बातें अभिव्यक्त करती है। उदाहरण के लिए मनोवैज्ञानिको ने बिलाई सपनाई मलाई जैसी कहावतो को उद्धृत किया है।

फ्रायड के इच्छापूर्ति सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिको ने बहुत अशो मे स्वीकार किया है, परन्तु कुछ ऐसे स्वप्न हैं जिनकी व्याख्या फ्रायड का यह सिद्धान्त सफलता-पूर्वक नही कर पाया है। ऐसे स्वप्नो मे कुछ मानसिक बीमारियो (जैसे—Repetition-Compulsion) से पीडित व्यक्तियो के स्वप्न लिए जा सकते हैं। कुछ स्वप्नो का व्याख्या फ्रायड ने अचेतन मे दण्ड भोगने की इच्छा (Unconscious need for punishment)[1] कह कर की है। फ्रायड के अनुसार कष्टदायक एवं भयकर सपनो द्वारा हमारा अचेतन अपने अन्दर निहित दण्ड भोगने की सन्तुष्टि करता है परन्तु फ्रायड स्वय भी मानता है कि उसका सिद्धान्त ऐसे सपनो की व्याख्या करने मे पूर्णत सफल नही है। ऐसे सपनो को वह अपने सिद्धान्त के अपवादस्वरूप मानता है।

अस्तु, फ्रायड ने इच्छापूर्ति (Wishfulfilment) की जगह स्वय आगे चल कर यह कहा कि "स्वप्न इच्छापूर्ति का प्रयास करता है (Dream are the attempted wishfulfilment)।"

फ्रायड के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Freud's Theory of) Dream)—फ्रायड एक बहुत बडा असाधारण (Genius) मनोवैज्ञानिक था। उसने मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रो की तरह स्वप्न के क्षेत्र मे भी बहुत सी नयी-नयी एव अमूल्य बातो का अनुसधान किया है। स्वप्न मे अचेतन की दमित इच्छाओ की सतुष्टि का प्रयास, स्वप्न की विविध कलाएँ (Dream-work) प्रतीकीकरण (Symbolism) इत्यादि कुछ मौलिक (Original) बाते फ्रायड ने ढूँढ निकाली है।

फ्रायड ने फिर कुछ पक्षो (Aspects) पर बहुत अधिक जोर (Emphasis) देकर अपने सिद्धान्त मे कुछ दोष (Defects) ला दिया है, जैसे फ्रायड ने स्वप्न मे काम-सम्बन्धी दमित इच्छाओ (Repressed Sex wishes) की सतुष्टि को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दे दिया है।[2] (जीवन मे केवल काम-सभावना को ही इतना अधिक

१ "Dreams that occur in traumatic neurotics are the only genuine exceptions, and punishment dreams are the only apparent exceptions, to the wishfulfilment tendency of dreams"—Freud

२ "Freud's formula for the interpretation of dreams may be true for some dreams, more specially some dreams of some neurotics but there is no sufficient ground for trying to force the interpretation of every dream to fit the formula" [McDougall, Outline of Abnormal Psychology, pages 186, 187]

महत्व प्रदान करना ठीक नहीं। अन्य सामाजिक तथा वयक्तिक धर्मों की इच्छाएं भी दमित हो सकती हैं जिनका काम (Sex) से कोई सम्बन्ध न हो।

यह इस सेक्स पर अधिक जोर देने का परिणाम है कि स्वप्न के प्राय सभी प्रतीक (Symbol) काम सम्बन्धी ही प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि उनके द्वारा आविष्कृत प्रतीकों को भी सभी फ्रायडियन अर्थ (Freudian sense) में स्वीकार करना नहीं चाहते। फ्रायड का विचार एकतरफा (One sided) लगता है।

फ्रायड ने सपनों का कारण विगत अनुभवों (Past experiences) में ढूंढने का प्रयास किया है जो सभी मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं। एडलर और युग जैसे मनोवैज्ञानिक सपनों का सम्बन्ध वर्तमान-कालीन समस्याओं तथा भविष्य में होने वाली घटनाओं से भी मानते हैं।

फ्रायड के स्वप्न विश्लेषण (Dream analysis) में प्राप्त निष्कर्ष यान्त्रिक रूप से (Mechanically) खींच-तान कर निकाले गये (Far fetched) प्रतीत होते हैं। सभी सपनों के पीछे वह प्राय: दमित कामेच्छा की पूर्ति ही देखता है। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने फ्रायड द्वारा प्रस्तुत स्वप्नों की व्याख्याओं को आलंकारिता (Figurative description) से युक्त माना है। इसका प्रमुख कारण यह है कि फ्रायड ने अपनी व्याख्या में दमित इच्छाओं तथा मानसिक अवस्थाओं का मानवीकरण (Personification) कर दिया है जो वैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं लगता।

फिर कुछ ऐसे भी सपने हैं कि जिनकी व्याख्या फ्रायड भी नहीं कर पाता है जैसे—'दुःस्वप्न' तथा अन्य कष्टकर स्वप्न (Traumatic dream)।

परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी फ्रायड पहला व्यक्ति था जिसने स्वप्न का इतना बड़ा मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया।

एडलर का स्वप्न-सम्बन्धी विचार
(Adler's ideas about Dream)

एडलर यह मानता है कि मनुष्य में स्वभावतः दूसरों पर अपना आधिपत्य जमाने की प्रवृत्ति (Will to dominate) होती है। हरेक व्यक्ति आत्म संस्थापन (To dominate over others) का प्रयास करता है। एडलर फ्रायड की तरह सेक्स (Sex) को अधिक महत्त्व नहीं देता। जीवन के प्रत्येक व्यवहार सेक्स से अभिप्रेरित हों ऐसी बात एडलर नहीं मानता। एडलर के अनुसार व्यक्ति का अपने यौन-जीवन (Sexual life) के प्रति अभियोजन से अधिक महत्त्व उसका अपने समाज (Social) और अपने धंधे (Vocation) के प्रति किये गये अभियोजनों का है। अपने व्यक्तिगत सामाजिक जीवन में यदि व्यक्ति किसी प्रकार की हीनता (Inferiority) का अनुभव करता है तो वह ऐसे व्यवहार करता पाया जाता है जिसके कारण वह अपनी हीनता की भावना (Feeling of inferiority) पर विजय

पा सके और अपने अन्दर श्रेष्ठता की भावना (Feeling of superiority) ला सकेगा। जब तक मनुष्य जीवित रहता है तब तक उसके सामने अनेकानेक समस्याएँ उपस्थित होती रहती है जिनका समाधान व्यक्ति को करना पड़ता है। अपनी समस्याओ पर विजय पा लेने से व्यक्ति के अन्दर उसकी प्रभुत्व स्थापना की प्रवृत्ति (Will to dominate) की सन्तुष्टि होती है। कोई व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान किस प्रकार करेगा यह उसकी जीवन-शैली (Style of life) पर निर्भर करता है।

सपनो का सम्बन्ध हमारे नित्य-प्रति (Daily life) की समस्याओ के समाधान से है।[1] सपनो मे व्यक्ति की अपनी समस्याओ के समाधान का प्रयास होता है। स्वप्नो मे सिर्फ पुरानी दमित इच्छाओ की सन्तुष्टि ही नही होती वरन व्यक्ति की अपनी समस्याओ के प्रति कैसी सवेगात्मक मनोवृत्ति (Emotional attitude) है, इसका भी सकेत मिलता है।[2] अस्तु, स्वप्नो का सम्बन्ध भूतकाल (Past) मे अधिक वर्त्तमान (Present) से मानना चाहिए।

एलडर के अनुसार स्वप्न मे व्यक्ति ऐसे कार्यों को करता पाया जाता है जिनका सम्बन्ध उसकी समस्याओं से है तथा जिनके द्वारा वह अपने किसी प्रकार की हीनता की भावना को दूर कर अपना प्रभुत्व स्थापित करने मे समर्थ हो सकता है।[3]

एडलर प्रतीकीकरण (Symbolisation) की क्रिया मे विश्वास करता है। परन्तु एलडर ने अचेतन की दमित प्रेरक प्रवृत्तियो (Repressed motives) को उतना अधिक महत्त्व नही दिया जितना फ्रायड ने दिया है।

अब एक-दो उदाहरण देखे—एक व्यक्ति की जीवन-शैली (Style of life) ऐसी हो गयी थी कि हर एक कार्य के पीछे उसे शक मालूम पड़ता था तथा किसी भी कार्य को करने मे बहुत आगे-पीछे अर्थात्, करे या न करे (Hesitation) मे वह पड जाता था। उस व्यक्ति की शादी कही ठीक हुई और वह फिर उलझन और शक मे पड गया। उन्ही दिनो उसने स्वप्न देखा कि वह कहीं जा रहा है। जाते-जाते वह ऐसी जगह पहुँच गया है जहाँ दो देशो के बीच की सीमा है। अगर वह सीमा पार कर जायगा तो वह अपने देश मे नही रह कर दूसरे देश मे चला जायगा। इसी बीच कोई आकर धमका देता है कि अगर उसने बिना इजाजत सीमा पार की तो वह तुरत गिरफ्तार कर लिया जायगा।

---

१ "Dreams are the attempt to solve or anticipate the present problems of life in order to free oneself from the feeling of inferiority and to gain the feeling of superiority over them"

२ " it (dream) can serve to reveal the patient's emotional attitude towards his present problems"—Woodworth

३ "Adler's theory interprets dream as turning over unsolved problems or anticipating new ones"—Sargent

एडलर के अनुसार इस स्वप्न का अस्पष्ट सम्बन्ध—स्वप्नद्रष्टा की वर्तमान समस्याओं से है। यह धमकी और सीमा पार कर या नहीं का उलझन उसके सन्देह और दुविधा (Doubt and Hesitation) का परिचायक है। विवाह कर या नहीं इस समस्या समाधान का इस स्वप्न मे प्रतीकात्मक रिहसल (Symbolic rehearsal) हुआ है। एडलर के अनुसार इसका सम्बन्ध स्वप्नद्रष्टा की जीवन शैली से है।

युग का स्वप्न सम्बन्धी विचार
(Car Gusto Jungs ideas about Dream)

युग के अनुसार व्यक्ति के अचेतन मानस के दो पहलू है—एक को वह व्यक्तिगत अचेतन (Personal unconscious) की संज्ञा देता है और दूसरे को जातीय अचेतन (Racial unconscious) की संज्ञा देता है। व्यक्तिगत अचेतन का विकास जन्म के बाद होता है परन्तु जातीय अचेतन को व्यक्ति अपने जन्म के साथ ही लाता है। व्यक्ति के पूर्वजों की इच्छाएं और अनुभवों से उत्पन्न प्रभाव—वे सारे के सारे जातीय अचेतन में संचित रहते है जो आवश्यकतानुसार सपनो मे विभिन्न रूपों मे प्रकट होते है।

युग यह मानता है कि हर व्यक्ति मे जीने की इच्छा (Will to live) वर्तमान रहती है। इस इच्छा की सतत अभिव्यक्ति जीव करता रहता है। जब तक इसकी अभिव्यक्ति की दिशा में कोई रुकावट उत्पन्न नही होती तब तक इसमे उन्नति (Progressive trend) रही जाती है। मार्ग मे रुकावट के उत्पन्न होते ही यदि इस इच्छा की अभिव्यक्ति की यह धारा उस रुकावट को पार करके आगे बढ़ने मे असमर्थ हो जाती है तो युग के अनुसार इसकी दिशा पीछे की ओर (Regressive trend) मुड़ जाती है। यह पीछे की ओर हटना (Regression) तब होता है जब मार्ग की रुकावट को विभिन्न प्रयासों के बाद भी यह इच्छा धारा पार करने में समर्थ नही होती है। पीछे हटने की इस क्रिया को युग ने इस इच्छा की पीछे हटाने की प्रवृत्ति (Regressive trend) कहा है। यह धारा (Flow of Psychic energy) पीछे हटते-हटते चेतन से अचेतन मे चली जाती है। फिर अचेतन मे उसके अन्दर अवस्थित व्यक्तिगत अचेतन (Personal unconscious) के किसी स्तर (Level) को पार करती हुई यह जातीय अचेतन (Racial unconscious) के किसी स्तर (Level) विशेष तक पहुंचती है जिसके पीछे वह नही जाती है। यह लौटती हुई धारा (Flow of Psychic energy) जातीय अचेतन की जिस अवस्था विशेष तक लौट कर रुक जाती है उसी अवस्था विशेष मे संचित अचेतन के अनुभवों (Archytyps are the primordial modes of apprehensions) के प्रभाव से हम एक खास प्रकार का स्वप्न देखते है जिसके द्वारा हम अपने जीने की इच्छा की पूर्ति करने का प्रयत्न करते है। इसलिए ऐसे सपने अतार्किक (Illogical) एवं रहस्यमय प्रतीत होते है।

हमारे जातीय अचेतन (Racial unconscious) मे सचित जातीय अनुभवों (Racial experiences) एवं उनकी अपूर्ण इच्छाएँ, आरचीटाइप्स (Archytypes) के रूप मे सचित रहती है। जातीय अचेतन मे ऐसे लाखो आरचीटाइप्स (Archytypes) वर्त्तमान है। सृष्टि के सबसे पहले पुरुष ने सबसे पहली स्त्री के सम्पर्क मे आने पर जो अनुभव प्राप्त किया होगा, हमारे पूर्वजो ने पेड की डाली पकड कर चढने में जो अनुभव प्राप्त किया होगा, अपने को नग्न देखकर उन्हें सबसे पहली बार जैसा लगा होगा—इत्यादि सब के सब अनुभव हमारे जातीय अचेतन (Racial unconscious) मे आरचीटाइप्स (Archytypes) के रूप मे सगृहीत एवं सचित हैं।

युग स्वप्न-निर्माण मे इन आरचीटाप्स (Archytypes) का महत्त्वपूर्ण हाथ मानता है। साथ-साथ युग यह भी मानता है कि सपनो का सम्बन्ध व्यक्ति के वर्त्तमानकालिक समस्याओ मे है। परन्तु स्वप्न होने के लिए वह फ्रायड की तरह दमन (Repression) की क्रिया को अत्यावश्यक नही मानता।

युग प्रतीको (Symbols) मे विश्वास तो करता था परन्तु वह फ्रायड की तरह प्रतीको की विश्वजनीनता (univesality) से पूर्ण सहमत न था। युग के अनुसार एक ही प्रतीक (Symbol) का दो व्यक्तियो के स्वप्न मे दो एकदम भिन्न अर्थ हो सकते हैं। किस प्रतीक-विशेष का किस व्यक्ति-विशेष के लिए क्या अर्थ-विशेष होगा, यह उस व्यक्ति के वैयक्तिक एव जाति अचेतन पर निर्भर करता है।

फ्रायड ने स्वप्न का सम्बन्ध भूतकालिक अनुभव एव सिर्फ दमित इच्छाओ से माना था। एडलर (Adler) महोदय ने स्वप्न का सम्बन्ध व्यक्ति की वर्त्तमान समस्याओ के समाधान के प्रयास से माना। युग ने इन दोनो बातो के अतिरिक्त यह भी प्रतिपादित किया कि हमारे स्वप्नो का सम्बन्ध हमारे भविष्य मे होनेवाली घटनाओ से यथेष्ठ रूपमे है। युग ने ऐसे कई एक स्वप्नो का उल्लेख किया है जिसमें भविष्य मे होने वाली घटनाओ का सकेत है। पहाड की चोटी पर से गिर कर मरे एक सैनिक के पॉकिट से एक डायरी निकली जिसमे उसको दो-चार दिन पहले का देखा हुआ स्वप्न लिखा था, स्वप्न इस प्रकार का था—"मैं दिन-रात पहाडो को पार करता बढता जा रहा हूँ। घने जंगल है। पीठ पर सारे समान लिए ऊपर चढने मे बडी कठिनाई हो रही है। हमारे और साथी एक-एक कर छूटते जा रहे हैं और मैं एकाएक पहाड के एक किनारे से फिसलता जा रहा हूँ। कुछ नही पकड पाने के कारण मैं तराई मे गिर जाता हूँ—'नींद खुल गयी'। हे ईश्वर!" सपने भविष्य बोल सकते है—युग इस बात मे विश्वास रखता है। युग के सिद्धान्त को आत्म-प्रतिकात्मक सिद्धान्त (Auto symbolic theory) भी कहा गया है।

एक स्वप्न और फ्रायड, एडलर तथा युंग
(A dream and Freud Adler and Jung)

सम्पूर्ण में स्वप्न की इतनी चर्चा कर लेने के बाद अब हम अन्त में उदाहरणार्थ एक स्वप्न को लें और यह देखने का प्रयास करें कि हम एक ही स्वप्न का अर्थ एडलर एवं युंग के विचारों के अनुसार किस प्रकार अलग अलग निकलता है—युंग ने एक ऐसा उदाहरण दिया कि[१]—

एक युवक था। यूनिवर्सिटी की पढ़ाई खत्म कर लेने के बाद वह यह निश्चित करने में असमर्थ हो रहा था कि जीवन में कौन-सा धन्धा शुरू करें। इस बीच एक रात उसने एक स्वप्न देखा कि वह अपनी माँ तथा बहन के साथ सीढ़ियों पर ऊपर चढ़ता जा रहा है। जब वे लोग सीढ़ियों पर चढ़ते हुए ऊपर पहुँचे स्वप्न द्रष्टा को स्वप्न में ही किसी ने कहा कि उसकी बहन को शीघ्र ही बच्चा होने वाला है।

फ्रायड के अनुसार सीढ़ियों पर चढ़ना यौन समागम (Sexual inter course) का प्रतीक है और 'माँ और बहन का साथ होना' शैशव लैंगिकता (infantile sexuality) से सम्बन्धित दमित इच्छाओं का प्रतीक स्वरूप माना जायगा।

एडलर के अनुसार सीढ़ियों पर चढ़ना अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना है। बहन और माँ के साथ होने का अर्थ है कि व्यक्ति में आत्म निर्भरता की भावना का अभाव है। वह दूसरों के बिना अपना काम ठीक से नहीं कर सकता—इस बात का संकेत है।

परन्तु युंग ने अपने विश्लेषण के आधार पर कहा कि स्वप्न की माँ युवक के अन्दर अपने कर्त्तव्यों के पालन करने की भावना की कमी (Neglect of duty) का प्रतीक है (क्योंकि वह युवक अपनी माँ के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता था)। युंग ने स्वप्न में बहन को किसी स्त्री के प्रति युवक द्वारा किये गये सच्चे प्रेम का प्रतीक माना और होने वाले बच्चे का अर्थ उस युवक द्वारा अपने जीवन में एक नया रूप ग्रहण करने से है।

इस प्रकार हमने देखा कि विभिन्न सिद्धान्तों एवं विचारों को मानकर चलने से किसी प्रकार स्वप्न का अर्थ भिन्न भिन्न लग सकता है।

स्वप्न विश्लेषण
(Dream Analysis)

स्वप्न का अर्थ कैसे लगाया जाय यह बड़ा ही मनोरंजक किन्तु जटिल प्रश्न है। स्वप्न विश्लेषण (Dream-analysis) द्वारा स्वप्न की व्यक्त कथावस्तु (Manifest content) को जानकर उसके पीछे छिपे अव्यक्त कथावस्तु (Latent

१ Woodworth Contemporary School or Psychology Page 203

content) का पता लगाया जाता है। इस कार्य के लिए फ्रायड ने स्वतन्त्र साहचर्य विधि (Free association technique) को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। स्वतन्त्र साहचर्य विधि का उपयोग फ्रायड बहुत दिनो तक अपने स्वप्नो के विश्लेषण मे करते रहे। फिर, उन्होंने अपने इलाज मे आये हुए रोगियो के स्वप्नों की व्याख्या के लिए इस विधि का उपयोग किया। सन् १९०० ई० मे फ्रायड ने इससे प्राप्त निष्कर्षो लेकर (Dic traumdetung' Interpretation of Dreams) पुस्तक प्रकाशित की थी। इस सम्बन्ध मे फ्रायड का दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक (Analytical) रहा है अर्थात् फ्रायड ने स्वप्न-विश्लेपण द्वारा सिर्फ भूतकाल मे अचेतन की इच्छाओ का पता लगाना ही सर्वाधिक आवश्यक माना है।

दूसरी ओर, युग (Jung) ने इस सिलसिले मे अपने दृष्टिकोण को अधिक सश्लेषणात्मक (Synthetical) रखा है। वे अपनी 'सश्लेषणात्मक विधि' मे व्यक्ति के वर्तमान और भविष्य की अभिलाषाओ को शामिल करते हैं परन्तु आवश्यकतानुसार युग ने विश्लेषणात्मक विधि भी अपनायी है।

स्वतन्त्र साहचर्य विधि को अपनाने से पूर्व जिस स्वप्न की व्याख्या करनी है उसे विश्लेषणात्मक (Analyst) को (Note) करना पडा है। यदि स्वप्न को स्वप्न द्रष्टा स्वय लिख देता है तो ठीक ही है। विश्लेषक (Analyst) स्वप्न का अर्थ मगाने के पहले स्वप्न द्रष्टा के जीवन-इतिहास (Life-history) का यथासम्भव पता लगाता है। उस व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक, मानसिक स्थितियाँ कैसी रही है इसका पता होना विश्लेषण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्ति के सुख-दुख (Frustration and pleasures) से स्वप्नो का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। फिर उस व्यक्ति को एक कमरे मे ले जाकर बहुत आराम से बैठने या लेटने के लिए कहा जाता है। उससे कहा जाता है कि इस समय वह अपने को पूर्णरूप से विश्राम (Relaxation) की अवस्था मे ले आये। कमरे मे सिर्फ धुंधला प्रकाश रहता है और वहाँ पर विश्लेषक और स्वप्नद्रष्टा के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नही होता है।

स्वतन्त्र साहचर्य विधि के अनुसार व्यक्ति से कहा जाता है कि उसके मस्तिष्क में कोई भी विचार जिस किसी क्रम से आते जायें उन्हें वह निसकोच भाव से बोलता चला जाय। जिस समय वह अपने मस्तिष्क में आनेवाले विचार की स्वतन्त्रतापूर्वक बोलता रहता है उस समय विश्लेषक उसके द्वारा भाव-भगिमाओ पर भी ध्यान देता रहता है। अपनी विधि के अनुसार विश्लेषक व्यक्ति द्वारा बोली गयी बातो का भी अपने वैज्ञानिक ढग से नोट करता है। बीच-बीच में व्यक्ति का बोलना रुक जाता है (Resistance)। वैसी अवस्था में मस्तिष्क में कोई विचार आते ही नही है। ऐसे अवसरो पर विश्लेषक मनोवैज्ञानिक ढग से उसकी सहायता कर उसका बोलना फिर शुरु करता है। इस प्रकार कई बार व्यक्ति को स्वतन्त्र साहचर्य लेना स्वप्न के सिद्धान्त तथा स्वप्न रचना (Dreem work) की बातो का ध्यान

रखकर स्वप्न की मीमांसा करता है तथा स्वप्नद्रष्टा को उसके स्वप्न का अर्थ बतलाता है।

अभी हाल में सारजण्ट (Sargent) ने स्वप्न की व्याख्या दो स्तरों (Level)पर करने की सलाह दी है—(१) एक है सामान्यार्थक स्तर (Horizontal interpetation) और (२) दूसरा है गों गूढार्थक स्तर (Vertical interpretation)।

स्वप्नों की व्याख्या का सामान्यार्थक स्तर स्वप्नद्रष्टा के अचेतन (Subcooscious) मानस से सम्बन्धित है। गो गूढार्थक स्तर अचेतन (Unconscion) की गहराइयों से छिपी दमित इच्छाओं को समझने का प्रयास है।

यहा पाठकों को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि दमन (Repression) की क्रिया का स्वप्न से गहरा सम्बन्ध है। स्टान्सफील्ड (Stansfeld) द्वारा स्वप्न विश्लेषण के आधार पर उद्धृत एक उदाहरण से इसे अत्यधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

एक महिला थी जो मन-ही मन सन्तान प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा रखती थी। उसे एक पुरुष के साथ प्रेम हो गया और दोनों ने कहीं जाकर रात बितायी। यौन-समागम (Sexual intercourse) के समय इच्छा नहीं रहने पर भी उन्हें सन्तान निग्रह के साधनों (Measures of birth control) को अपनाना पड़ा। दो एक दिन बाद उसने जो स्वप्न देखा वह इस प्रकार है— वह सड़क पर कहीं जा रही है। सहसा देखती है कि पीछे से एक सैनिक उसका पीछा करता हुआ आ रहा है। सैनिक ने लाल टोपी पहन रखी है। सैनिक को अपनी तरफ आता देखकर वह भागती भागती अपने घर पर आती है और जल्दी-जल्दी सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर वाले कमरे में चली जाती है और वह दरवाजा बन्द कर लेती है। सहसा वह पाती है कि वह सैनिक भी ऊपर चढ़ जाता है और किवाड़ में बने एक छेद (Keyhole) से कमरे के अन्दर झांक रहा है। थोड़ी देर तक झांकते रहने के बाद बाहर रखे एक बेंच पर बैठ जाता है और सुबक सुबक कर रोने लगता है। इसी समय उस महिला की नींद खुल जाती है।

स्टान्सफील्ड (Stansfeld) ने स्वप्न विश्लेषण के बाद जो उसका अर्थ निकाला है उसमें चार प्रमुख बातें ध्यान देने योग्य हैं—

१ सैनिक का पीछा करना स्त्री का सीढ़ियों पर चढ़ना आदि यौन समागम की दमित इच्छाओं के द्योतक हैं।

२ दरवाजा बन्द कर इस प्रणय आखेट (Chase of love) से अपने को अलग कर लेना (Inversion of defence mechanism) इस बात को सूचित करता है कि वास्तविक यौन-समागम के समय उसके प्रेमी ने सन्तति निग्रह (Birth control) के ख्याल से अपने ही को पीछे खींच लिया था।

३ लेकिन ऐसा होने से उस स्त्री को दुःख पहुँचा था। इस दुःखद अनुभव की

उसने सैनिक पर विक्षेपित (Projection of another difence mechanism) कर दिया है। सैनिक का रोने लगना इस बात का सूचक है।

४. महिला के स्वप्न मे सैनिक की आँखो से आँसू निकलना इस बात का निरूपण करता है कि वास्तविक जीवन मे उसके प्रेमी ने यौन-समागम के समय किस प्रकार वीर्यस्खलन किया था।

स्वप्न से सम्बन्धित कुछ आधुनिक विचार

फ्रायड के सिद्धान्त से कुछ मिलता-जुलता एक नया विचार यह है कि सपने हमारे सवेगात्मक अनुभवो से लगे होते है। इनका सम्बन्ध हमारे अन्दर उठने वाले सवेगो से है, जैसे—भय, घृणा, आशा, चिन्ता (Worry) इत्यादि। यदि ये सवेगात्मक अवस्थाएँ व्यक्ति मे उत्पन्न होती है या इनके उत्पन्न होने की आशका (Anticipation) हो जाती है तो ये सपनो की रचना मे सहायक पृष्ठभूमि (Background) का कार्य करती है। यदि व्यक्ति मे सवेगात्मक दशा (Emotional state) और कोई आशका (Anticipation) दोनो साथ-साथ उत्पन्न हो जायें तो स्वप्न-निर्माण मे ये सर्वाधिक सहायक प्रमाणित होती है। इस विचार के समर्थको मे शेफर (Shaffer) और डॉरकस (Darcus) के नाम उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि स्वप्न की अवस्था मे व्यक्ति अपने तीन सवेगात्मक अनुभवो को ही पुनर्जीवित पाता है।

कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक है जो हमारे दैनिक जीवन मे किये गये कार्य एव पेशे (Vocation) के प्रभाव से ही स्वप्न को उत्पन्न मानते है। पीयर्स (pierce) नामक मनोवैज्ञानिक ने कुछ भिन्न-भिन्न प्रकार के पेशे-धन्धे करनेवालो को चुना, जैसे—प्रोफेसर, इजीनियर, डाक्टर, व्यापारी, किसान, वैज्ञानिक, कवि, कलाकार, इत्यादि और उन्होने अपने अनुसन्धान द्वारा पाया कि इन सब लोगो के सपनो का सम्बन्ध इनके पेशे (Nature of Vocation) से ही अधिक है। इन पेशो से सम्बन्धित दैनिक वातावरण (Daily environment) भी स्वप्न के निर्माण मे सहायता प्रदान करता है। इसलिए इनके अनुसार स्वप्न व्यक्ति की दैनिक क्रियाओ के प्रभावो का (A carry over from our daily doings) बहुत अशो मे उसकी निद्रित अवस्था मे भी बने रहने के फलस्वरूप उत्पन्न होते है।

जेस्टाल्ट वादियो (Gestaltists) को कुछ बच्चो के स्वप्नो का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनलोगो के सपनो का सम्बन्ध उन्ही विषयो और कार्यों से अधिक था जो उन्होंने अपने जाग्रतावस्था मे अधूरा ही छोड दिया था। जेस्टाल्टवादी यह कहते हैं कि व्यक्ति का जो अधूरा (Unfinished) छूट जाता है वह व्यक्ति मे एक प्रकार का तनाव (Tension) उत्पन्न करता है। किसी भी व्यक्ति के लिए अधिक समय तक इस तनाव की अवस्था मे रहना कष्टप्रद है। स्वप्न इसी कष्ट का

निवारण करता है। स्वप्न इस तनावपूर्ण स्थिति से व्यक्ति को फिर से सामान्य स्थिति (Normal condition) में लाने का एक साधन है।

स्वप्नों के सम्बन्ध में अभी भी विचारों की बहुत विविधता है और सबों में कुछ-न कुछ सत्यता भी वर्तमान है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई भी एक सिद्धान्त सभी प्रकार के स्वप्नों की सर्वांगीण व्याख्या ठीक-ठीक रूप से करने में समर्थ है। अभी इस दिशा में अनुसन्धान जारी है। आशा है, भविष्य में और भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त बनकर रहेंगे। शायद वे अधिक सहायक सिद्ध हों।

अभ्यास के लिए प्रश्न

पहला भाग (PART I)

पहला अध्याय—विषय प्रवेश (Introduction)

१ मनोविज्ञान से क्या समझते हैं ? अपने दृष्टिकोण से मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा क्या है ? अपने उत्तर का पुष्टिकरण करें।

What is Psychology ? What is the best definition of Psychology according to you ? Give reasons for your answer

२ "मनोविज्ञान एक समर्थक विज्ञान है जो अनुभूति और व्यवहारों का अध्ययन अनुभूति के माध्यम से करता है।" इसकी व्याख्या करें।

"Psychology is a positive science of experience and behaviour interpreted in terms of experience" Discuss

३ विज्ञान की कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं ? क्या मनोविज्ञान एक विज्ञान है ?

What are the characteristics of a Science ? Is Psychology a Science ?

दूसरा अध्याय—मनोविज्ञान की शाखाएँ एवं उपयोगिताएँ (Branches and uses of Psychology)

१ मनोविज्ञान की कौन-कौन-सी मुख्य शाखाएँ हैं ? मनोविज्ञान की किन्हीं तीन प्रमुख शाखाओं का वर्णन करें।

What are the main branches of Psychology ? Describe any three important branches of Psychology

२ मनोविज्ञान की कौन-कौन उपयोगिताएँ हैं ?

What are the uses of Psychology ?

तीसरा अध्याय—मनोविज्ञान की विधियाँ (Methods of Psychology)

१ मनोविज्ञान की कौन-कौन-सी विधियाँ हैं ? इनमें कौन-कौन-सी विधि आपके दृष्टिकोण से क्यों सर्वोत्तम है, उल्लेख करें।

What are the methods of Psychology ? Which of these methods appear to you as the best method and why ?

२ अन्तर्निरीक्षण से क्या समझते हैं ? मनोविज्ञान का अन्तर्निरीक्षण-विधि के गुणों और दोषों का उल्लेख करें।

What is Introspection ? Discuss the merits and demerits of Introspection as a method of Psychology.

३ बाह्य निरीक्षण विधि के गुणों एवं दोषों का वर्णन करें।

What are the merits and demerits of method of objective observation ?

४ अन्तर्निरीक्षण एवं बाह्य निरीक्षण विधि परस्पर विरोधी नहीं है वरन् एक-दूसरे के पूरक हैं। इसकी व्याख्या करें।

Methods of Introspection and objective observation are not opposed to each other rather they are complementary to each other" Discuss

५ प्रयोग से क्या समझते है ? प्रयोग कैसे किया जाता है, इसका वर्णन करें।

What is an Experiment and how is it performed ?

६ प्रयोगात्मक विधि के गुणों एवं दोषों का उल्लेख करें।

Discuss the merits and demerits of Experimental method

चौथा अध्याय—केन्द्रीय स्नायुमण्डल (Central Nervous-system)

१ स्नायुप्रवाह का स्वरूप क्या है ? स्नायु प्रतिक्रिया के 'सम्पूर्ण या नहीं' के नियम की भी व्याख्या करें।

What is the nature of Nervous impulse ? Also explain the All or None of Nervous reaction

२ केन्द्रीय स्नायुमण्डल की बनावट एवं क्रियाओं का उल्लेख संक्षेप में कीजिए।

Describe briefly the structure and functions of the General Nervous system

३ मानव मस्तिष्क की बनावट एवं क्रियाओं का उल्लेख करें।

Describe the structure and function of the human brain

४ निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें —

(क) स्नायुकोष (ख) सन्धि-स्थल (ग) सुषुम्ना (घ) प्रतिक्षेप धनु (ङ) लघु मस्तिष्क (च) हाइपोथेलेमस (छ) वृहत् मस्तिष्क।

Write short notes on the following—(a) Nurons (b) Synapes, (c) Spinal cord (d) Reflex arc [e] Cerebellum [f] Hypothalamus [g] Cerebrum or Cerebral Gortex

पाँचवाँ अध्याय संवेदना (Sensation)

१ संवेदना से क्या समझते हैं ? संवेदना के कौन-कौन से गुण हैं ? संवेदना के मुख्य गुणों का उल्लेख सोदाहरण कीजिए।

What is Sensation ? Name the attributes of Sensation and describe with the help of suitable examples the main attributes of Sensation

२ 'मानव-आंख' की बनावट एवं कार्यवाही का वर्णन एक चित्र के सहारे करें। दृष्टि संवेदना किस प्रकार उत्पन्न होती है, इस पर प्रकाश डालें।

Describe the structure and functions of the Human Eye with the help of a diagram Also explain how Visual sensation takes place

३. 'मानव-कान' की बनावट एवं कार्यवाही का वर्णन एक चित्र के सहारे करें। श्रवण-संवेदना की उत्पत्ति पर भी प्रकाश डालें।

Describe the structure and functions of Human Ear with the help of a diagram. Also explain how the Auditory sensation arises

४ इन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखें— (क) गंध संवेदना, (ख) घ्राणसंवेदना (ग) त्वक् संवेदना (घ) गति संवेदना और (ङ) अन्तरावयवी संवेदना।

Write short notes on—[a] Olfactory sensation, [b] Gustatory sensation [c] Cutaneous sensation, [d] Kinesthetic sensation, and [e] Organic sensation

छठा अध्याय प्रत्यक्षीकरण (Perception)

१ प्रत्यक्षीकरण क्या है ? किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण में संलग्न क्रियाओं की व्याख्या भी करें।

What is Perception ? Also explain the processes through which Perception of an object takes place

२ 'प्रत्यक्षीकरण' में पूर्व अनुभूति के स्थान की व्याख्या सोदाहरण करें।

Explain, with the help of examples, the role of the past experience in Perception

३ इनके बीच की विभिन्नता पर प्रकाश डालें—(क) संवेदना और प्रत्यक्षीकरण, (ख) प्रत्यक्षीकरण और विपर्यय, (ग) विपर्यय और विभ्रम।

Make a distinction between—[a] Sensation and Perception, [b] Perception and Illusion [c] Illusion and Hallucination

४ विपर्यय से क्या समझते है ? विपर्यय कितने प्रकार के होते हैं। विपर्यय के कारणों का भी उल्लेख उदाहरणों से करें।

What is Illusion ? What are the kinds of Illusion ? Also discuss with the help of suitable examples the causes of Illusion.

सातवाँ अध्याय—ध्यान (Attention)

१ ध्यान से क्या समझते है ? ध्यान के प्रकारों को उपयुक्त उदाहरणों के सहारे व्याख्या कीजिए।

What is Attention ? Explain with the help of suitable examples the kinds or forms of Attention

२ ध्यान के कौन-कौन निर्धारक हैं ? ध्यान के बाह्य एव आन्तरिक निर्धारकों के अन्तर पर प्रकाश डालें। ध्यान क आन्तरिक निर्धारकों का भी वणन उपयुक्त उदाहरणो के सहारे करें।

What are the conditions or determiners of Attention? Distinguish between objective and subjective conditions or determiners of Attention. Also discuss with the help of suitable examples the subjective conditions of Attention

३ ध्यान के बाह्य निर्धारको का उपयुक्त उदाहरणो के सहारे उल्लेख करें

Discuss with the help of suitable examples the objective conditions of Attention

४ ध्यान से क्या समझते हैं ? किसी वस्तु पर ध्यान देने की क्रिया म होने वाले मुख्य शारीरिक परिवतनो का वणन करें।

What is Attention? Describe the main bodily accompaniments in the process of attending to an object

आठवाँ अध्याय—भाव (Feeling)

१ भाव की परिभाषा क्या है ? भाव और सवेग के अन्तर को स्पष्ट करें। क्या भाव सवेदना का एक गुण है ?

Define Feeling. Make a distinction between Feeling and Sensation Is Feeling an attribute of Sensation?

२ भाव की मुख्य विशेषताओ की व्याख्या कीजिए। भाव एवं सवेग के अन्तर पर प्रकाश डालिए।

Explain the main characteristics of Feeling. Also distinguish between Feeling and Emotion.

३ मिश्रित भाव नाम की कोई प्रक्रिया मानस मे नही है इसकी व्याख्या कीजिए। भाव त्रिविमात्मक सिद्धात का भी वणन करें।

'There is nothing like mixed feeling Discuss Also examine the Tri dimensional theory of Feeling.

नवा अध्याय—सवेग (Motion)

१ सवेग की परिभाषा दें। सवेग की अवस्था मे होने वाले मुख्य शारीरिक परिवर्तनों का वणन कीजिए।

Define Emotion Describe the main bodily changes that accompany any emotion.

२ सवेग के 'जेम्स-लांजे' क सिद्धान्त की व्याख्या आलोचनात्मक ढग मे कीजिए।

Critically examine the James Lange theory of Emotion

३. सवेग के हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त की व्याख्या आलोचनात्मक ढग मे कीजिए।

Critically examine the Hypothalamic theory of Emotion.

दूसरा भाग (PART II)

पहला अध्याय—प्रेरणा और प्रेरक वृत्तियो का सघर्ष
[Motivation and conflict of Motives]

१ प्रेरणा से आप क्या समझते है ? प्रेरणा और प्रणोदन के अन्तर को स्पष्ट करें।

What do you mean by Motivation ? Distinguish clearly between Motive and Drive

२ प्रेरक कितने हैं ? प्रत्येक की सोदाहरण व्याख्या करे।

How many Motives are there ? Explain each of them with examples

३ प्रेरक वृत्तियो के सघर्ष से आप क्या समझते है ? मानसिक सघर्ष के समाधान मे निहित प्रतिक्रियाओ की व्याख्या उपयुक्त उदाहरण द्वारा करे।

What do you mean by Conflict of Motives ? Explain with the help of suitable examples, the processes involved in the resolution of a Mental Conflict

दूसरा अध्याय—सीखना (Learning)

१ सीखने की परिभाषा दे। सीखने की परिपक्वता के अन्तर को उपयुक्त उदाहरणो द्वारा स्पष्ट करें।

Define Learning Distinguish between Learning and Maturation with the help of suitable examples

२ 'सीखने' के कौन-कौन से नियम है ? अभ्यास तथा प्रभाव के नियमो का वर्णन आलोचनात्मक ढग से करें।

What are the laws of Learning ? Critically examine the laws of 'Exercise' and 'Effect'

३ सीखने के प्रयत्न एवं भूल के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। क्या सभी प्रकार के सीखने की क्रियाओ की व्याख्या इस सिद्धान्त द्वारा सम्भव है ?

Explain the Trial and Error theory of Learning ? Can all Learning be explained by the help of this theory ?

४ अन्तर्दृष्टि से आप क्या समझते है ? सीखने की 'सूझ' के सिद्धान्त की व्याख्या करें।

What do you mean by Insight ? Explain the insight theory of learning.

५. सीखने के 'सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन' के सिद्धान्त की व्याख्या करें। क्या यह सभी प्रकार के सीखने की क्रियाओ की व्याख्या सन्तोषजनक ढग से करता है ?

Explain the conditioned Reflex theory of Learning Does it explain all forms Learning satisfactorily

६ सीखने की मुख्य विधियों का वर्णन करें।

Describe the main method of Learning

७ पशुओं एवं मानवों के सीखने की क्रियाओं के अन्तर पर प्रकाश डालिए।

Distinguish between Animal and Human Learning

तीसरा अध्याय—स्मरण तथा विस्मरण
(Remembering and Forgetting)

१ स्मृति क्या है ? स्मरण की क्रिया में संलग्न प्रक्रियाओं का वर्णन करें।

What is the Remembering ? Describe the processes involved in the act of Remembering

२ आपके अनुसार स्मरण का ठीक-ठीक स्वरूप क्या है ?

या स्मृति एक पुनर्निर्माणक प्रक्रिया नहीं है वरन् यह एक रचनात्मक प्रक्रिया है। इसकी व्याख्या करें।

What according to you is the true nature of Remembering ?

Or Memory is not a reproductive or reduplicative process rather constructive process Discuss

३ प्रत्याह्वान का स्वरूप क्या है ? प्रत्याह्वान की अवस्थाओं की चर्चा संक्षेप में करें। प्रत्याह्वान और प्रतिभिज्ञा के अन्तर को भी स्पष्ट करें।

What is the nature of Recall ? Describe briefly the condition of Recall. Also distinguish Recall and Recognition

४ विस्मरण की परिभाषा दें। विस्मरण के कौन-कौन-से कारण हैं ?

Define Forgetting ? What are the causes of Forgetting ?

५ विस्मरण का ठीक-ठीक स्वरूप क्या है ?

या क्या विस्मरण एक सक्रिय या निष्क्रिय प्रक्रिया है ? इसकी व्याख्या करें।

What is the true nature of Forgetting ?

Or Is Forgetting and active or passive process ? Discuss.

६ अच्छी स्मृति से आप क्या समझते हैं ? स्मृति प्रशिक्षण के कुछ मार्ग बतलायें।

What do you mean by a good Memory ? Suggest some measure to train Memory

चौथा अध्याय—प्रतिमा और साहचर्य (Image and Association)

१ प्रतिमा क्या है ? प्रतिमा और प्रत्यक्ष के अन्तर को सोदाहरण स्पष्ट करें।

What is an image ? Distinguish between an Image and a Percept with the help of suitable examples

२ विभिन्न प्रतिमाओ का वर्णन उपयुक्त उदाहरण द्वारा करें।

Describe the different types of image with the help of suitable examples

३ 'विचारो के साहचर्य' से क्या समझते है ? साहचर्य के विभिन्न नियमो की व्याख्या सोदाहरण करें।

What is meant by Association of ideas ? Explain with the help of examples, the various laws of Association

पाँचवाँ अध्याय—चिन्तन (Thinking)

१ चिन्तन से क्या समझते हैं ? समस्या-समाधान मे निहित चिन्तन-क्रिया का सोदाहरण विश्लेषण करें। क्या यह प्रयत्न और भूल की क्रिया है ?

What is Thinking ? Analyse the process of Thinking in solving a problem, with the help of an example It is a Trial and Error process ?

२ निम्नलिखित का आपस मे क्या सम्बन्ध है—(क) चिन्तन और भाषा, (ख) मस्तिष्क एव चिन्तन, (ग) क्रिया एव चिन्तन, (घ) प्रतिमा और चिन्तन ?

How the following are related—(a) Thought and Language, (b) Brain and Thinking, (c) Action and Thinking, (d) Imagery and Thinking.

३ धारणा का निर्माण किस प्रकार होता है ? चिन्तन मे धारणा का क्या हाथ है, इसका उल्लेख एक उदाहरण के सहारे करें।

How is concept formed ? Discuss the role of Concept in Thinking ?

४. रचनात्मक चिन्तन से आप क्या समझते है ? इसकी मुख्य अवस्थाओ का उल्लेख करें।

What do you understand by Creative Thinking ? Discuss, with the help of an example, its main stages

छठा अध्याय—क्रिया (Action)

१. क्रिया से क्या समझते है ? क्रिया के प्रकारो की व्याख्या उपयुक्त उदाहरण के सहारे करें।

What is Action ? Explain, with the help of suitable examples, the kinds of Action.

२ ऐच्छिक तथा अनैच्छिक क्रियाओ के अन्तर पर प्रकाश डालें। अनैच्छिक तथा ऐच्छिक क्रियाओ की कौन-कौन-सी विशेषताएँ है ?

Distinguish between Voluntary and Involuntary Action What are the characteristics of Involuntary and Voluntary Actions

३. सहज-क्रिया तथा मूल-प्रवृत्यात्मक क्रिया के अन्तर पर प्रकाश डालें।

सहज क्रिया की विशेषताओं का भी वर्णन करें।

Distinguish between Reflex Action and Instinctive Action Also describe the characteristics of Reflex Action

४ मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाओं से आप क्या समझते हैं ? मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया की विशेषताओं का उल्लेख करें।

What do you mean by Instinctive Action ? Discuss the characteristics of Instinctive Action

सातवाँ अध्याय—बुद्धि (Intelligence)

१ बुद्धि' से आप क्या समझते हैं ? बुद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डालें।

What is Intelligence ? Discuss the nature of Intelligence

२ बुद्धि' मापने के विभिन्न परीक्षणों की व्याख्या सोदाहरण करें।

Explain with examples the different tests of measuring Intelligence.

३ बुद्धि-लब्धि का क्या तात्पर्य है ? इसे कैसे निर्धारित किया जाता है ?

What is meant by I Q ? How is it determined ?

४ क्या आपके दृष्टिकोण में बुद्धि-लब्धि स्थिर होती है ? इसकी पुष्टि करें।

Do you think I Q to be constant ? Give reasons for your answer

५ बुद्धि लब्धि निर्धारण की कौन सी उपयोगिताएं हैं ? उनका उल्लेख करें।

What are the uses of I Q determination ? Explain each of them

आठवाँ अध्याय—व्यक्तित्व (Personality)

१ व्यक्तित्व' की परिभाषा दें। व्यक्तित्व निर्माण में सामाजिक कारकों के पारस्परिक महत्ता की व्याख्या करें।

Define the term Presonality Discuss the relative value of biological and social factors in the formation of Personality

२ व्यक्तित्व के शील-गुण से क्या समझते हैं ? व्यक्तित्व के कुछ शील गुणों की व्याख्या सोदाहरण करें।

What is meant by the trait of Personality ? Explain with examples some of the traits of Personality

३ व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करें। अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता के शील गुणों के अन्तर को भी स्पष्ट करें।

Discuss the different types of Perfonality and distinguish between the traits of Introversion and Extroversion

४ व्यक्तित्व-मापन से क्या समझते हैं ? व्यक्तित्व मापने के विभिन्न विधियों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करें।

What do you mean by measurement of Personality ? Discuss briefly the methods of measuring Personality

तीसरा भाग (PART III)

पहला अध्याय - प्राणी और वातावरण (Organism and Environment)

१ आपके दृष्टिकोण से मनोविज्ञान के अध्ययन मे उत्तेजना, प्रतिक्रिया तथा अभियोजना का क्या महत्त्व है ?

What according to you is the importance of Stimulus, Response and Adaptation in the study of Psychology ?

२, "उत्तेजना प्राणी-प्रतिक्रिया-सूत्र" की व्याख्या करें। क्या इस सूत्र के माध्यम से मानव-व्यवहार की व्याख्या सम्भव है ?

Explain the S O R. formula It it possible to interpret Human Behaviour in terms of this formula ?

३ वशानुक्रम तथा वातावरण की परिभाषा दें। क्या मानव-व्यवहार के अध्ययन मे इनका जो पारस्परिक हाथ है, सम्भव है ?

Define 'Heredity' and 'Environment' Also discuss their relative roles in the study of Human Behaviour.

४ "प्राणी, वशानुक्रम तथा वातावरण का योगफल नही है वरन् वातावरण तथा वशानुक्रम का गुणनफल है" इसकी व्याख्या करें।

"The individual does not equal Heredity and Environment but does equal Heredity × Environment" Discuss

दूसरा अध्याय—मानस की अवस्थाएँ (Phases of Mind)

१ मानस के "अकारात्मक विभाजन" से आप क्या समझते है ? अचेतन के स्वरूप पर भी प्रकाश डाले।

What do you mean by Topographical division of Mind ? Also discuss the nature of Unconscious

२ अचेतन क्या है ? इसके अस्तित्व के प्रमाणो का वर्णन करे।

What is Unconscious ? Describe the proofs for its existence

तीसरा अध्याय — कल्पना और स्वप्न (Imagination and Dream)

१ कल्पना से क्या समझते है ? इसकी विशेषताओ एव प्रकारो का वर्णन सोदाहरण सक्षेप मे करें।

What is Imagination ? Discuss briefly with examples the characteristics and types of Imagination

२ स्वप्न की परिभाषा दें। सक्षेप मे स्वप्न के विभिन्न प्रकारो का उल्लेख सोदाहरण करें।

Define Dream Describe briefly with examples, the different kinds of Dream

३ स्वप्न कलाओ मे क्या समझते हैं ? इसके विभिन्न अगो पर सोदाहरण प्रकाश डालें।

What is Dream work ? Describe with examples the different mechanism of Dream work

४ फ्रायड महोदय के स्वप्न सम्बन्धी इच्छापूर्ति सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या सोदाहरण करें।

Critically examine with examples Freud s wishfulfilment theory of Dream

५ फ्रायड और युग महोदय के स्वप्न-सम्बन्धी सिद्धान्तो के अन्तर को सोदाहरण स्पष्ट करें।

Distinguish with examples Freud s and Jung s theories of Dream

६ फ्रायड युग तथा एडलर के स्वप्न सम्बन्धी विचारों की विभिन्नता को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें।

Take a Dream analyse it according to the views of Freud Jung and Adler and make out their distinctions

———